सुबह होगी

पात्र

आनन्द	:	युवक उम्र 25 वर्ष
औरत	:	उम्र 40 वर्ष
गोपी	:	चरवाहा, उम्र 30 वर्ष
चेतन	:	आनन्द का मित्र, उम्र 24 वर्ष
लड़की	:	उम्र 20 वर्ष
समय	:	13 एप्रिल, 1949 की एक शाम

[शहर के किनारे की तितर-बितर बस्ती और उसका एक सुनसान रास्ता, जिसके दोनों ओर झाड़ियाँ हैं। इधर-उधर झाड़ियों में, झाड़ी के पीछे कुछ बँगले और मकान बने हैं। दायीं ओर झाड़ी के आगे रेवती नदी बह रही है।

पर्दा उठते ही स्टेज पर सुनसान अँधेरा रहता है। हरी झाड़ियों के दृश्य के बीच से एक रास्ता स्पष्ट है। इसके पीछे ही रेवती नदी के कगार का सटा हुआ दृश्य दूर से दिखाई दे रहा है।

थोड़ी देर स्टेज सूना पड़ा रहता है और क्षण-भर बाद एक औरत अदने में सिमटी हुई किसी रहस्य की छाया-सी उसी रास्ते पर आती है और डरी हुई मृगी की भाँति कातर दृष्टि से इधर-उधर देखती है, फिर झाड़ी में होकर कोई वस्तु अपने आँचल से निकालकर झाड़ी में छिपा देती है और क्षणभर उसे देखकर, फिर रास्ते पर आकर अजीब डरावनी दृष्टि से इधर-उधर देखती हुई स्टेज से दूर भाग जाती है। थोड़ी देर के लिए स्टेज फिर सूना रहता है। सहसा पृष्ठभूमि से दो हँसते हुए युवक बायीं ओर से प्रवेश करते हैं, एक आनन्द है, दूसरा उसका दोस्त चेतन। दोनों बहुत अच्छे व्यक्तित्व के हैं। आनन्द अपेक्षाकृत सौम्य, दुबला, लेकिन जीवनपूर्ण तथा ढीला पैजामा, कुर्ता और जवाहर बनियान में है। दायें हाथ में एक समेटा हुआ दैनिक पत्र लिए है। चेतन पेंट और कमीज़ में है। दायें कंधे पर कैमरा लटक रहा है।

दोनों हँसते हुए रास्ते पर आते हैं। सहसा झाड़ी में एक क्षीण आवाज़ होती है।]

आनन्द : (रुककर झाड़ी की ओर देखकर) चेतन !

चेतन : (**आश्चर्य से**) क्या है भाई, झाड़ी में क्या देख रहे हो ?

आनन्द : (**संकेत कर**) वहाँ से कुछ अजीब-सी आवाज़ आई है।

चेतन : (**आगे बढ़ता हुआ**) अमें चलो यार, (**अपनी पिछली बातों के सिलसिले में**) हाँ, मैं कह रहा था कि अभी घर पहुँचते ही फ़ादर को स्टेट दूँगा कि…।

आनन्द : (**बीच ही में उसे रोककर पीछे मुड़ जाता है**) रुको चेतन ! (**बढ़कर**) मुझे देख लेने दो, झाड़ी से फिर कुछ आवाज़ आई है।

[चेतन देखता ही रह जाता है।]

आनन्द : (**आगे बढ़ता हुआ**) मैं देखता हूँ, झाड़ी से फिर कुछ आवाज़ आई है।

[आनन्द बढ़कर झाड़ी में झुक जाता है। सहसा आश्चर्य से पुकारता हुआ—]

आनन्द : चेतन, चेतन ! यह देखो कोई चीज़ पड़ी है, यह देखो !

चेतन : (**पास आकर देखता हुआ**) यार यह तो किसी का गंदा कपड़ा पड़ा हुआ है, क्या देख रहे हो, अपने रास्ते चलो।

आनन्द : नहीं चेतन रोशनी करो (**देता हुआ**) लो यह अखबार और यह मैचबाक्स जलाओ इसे, जल्दी करो।

[चेतन अखबार को लम्बा समेट कर एक किनारे से जलाकर रोशनी करता है और स्टेज पर रोशनी फैल जाती है।]

चेतन : (**रोशनी देता हुआ**) लो देखो क्या है ?

आनन्द : (**आश्चर्य से उठाता हुआ**) चेतन यह तो बच्चा है, ओह ओ ! फूल-सा नन्हा बच्चा।

[अखबार जलकर बुझ जाता है लेकिन स्टेज पर ऊपर से मद्धिम-मद्धिम रोशनी आ रही है। चेतन आश्चर्य में खड़ा है, आनन्द कपड़े में लिपटे हुए बच्चे का मुँह देखता है।]

आनन्द : चेतन ! इस खून के लोथड़े में अभी साँसें चल रही हैं, इसमें अभी जिन्दगी है।

चेतन : (**देखता हुआ**) ओह ओ, अजीब है। लगता है कि आज ही सुबह का पैदा हुआ है और अभी-अभी इसे यहाँ कोई छोड़ के चला गया है।

आनन्द : नहीं, लगता है कि यहाँ कब का पड़ा हुआ है। देखो, यह रो नहीं पा रहा है, होंठ टेढ़ा ही करके रह जा रहा है।

चेतन : न जाने किस पापी ने इसे फेंका होगा।

आनन्द : नहीं चेतन, ऐसी बात नहीं। ऐसी बात नहीं, यह बच्चा भूल से किसी माँ के आँचल से यहां छूट गया है, वह दौड़कर अभी आती ही होगी।

चेतन : (**आश्चर्य से सोचता हुआ**) तब क्या होगा, (**झुंझलाकर**) यार कहाँ अपने रास्ते से जा रहे थे, बेकार तुमने लौटकर देखा।

[आनन्द, चेतन और बच्चे को देखता हुआ चुप है।]

चेतन : और तुमने बिना जाने-बूझे इसे गोद में भी उठा लिया (**झुंझलाकर**) यार यहीं रख दो इसे इसकी जगह पर।

आनन्द : नहीं, ज़रा तुम इधर-उधर देख लो। यहीं कहीं इसकी माँ छिपी होगी।

चेतन : भाई तुम तो अजीब बात कर रहे हो। यहाँ इसकी माँ कैसे होगी ? देखते नहीं, किस तरह जानबूझकर कपड़ों में लपेटा हुआ, यहाँ नफ़रत से फेंका गया है।

आनन्द : लेकिन यह तो जी रहा है, देख पिघलते हुए मक्खन की तरह इसके मुँह को देख चेतन !

चेतन : भाई चाहे जो हो, छोड़ इस जंजाल को। चलो, अपने रास्ते चलें।

आनन्द : चेतन···!

चेतन : हाँ, हाँ, मैं ठीक कह रहा हूँ, यह दुनिया है यार। क्या सोच रहे हो?

आनन्द : मैं किसी माँ की गोद में एक नवजात शिशु को आराम से सोया हुआ सोच रहा हूँ और इस अभागे शिशु को झाड़ियों में फेंका हुआ सोच रहा हूँ।

चेतन : भई, सोचो-वोचो कुछ नहीं, मेरी मानो, रख दो इसे, इसी झाड़ी में। नहीं तो यार! अभी पुलिस को खबर मिली तो लेने के देने पड़ जाएँगे।

आनन्द : ऐसी बातें मत करो, तुम्हें इस बच्चे को देखकर दर्द नहीं आ रहा है। सोचो यह भी किसी इंसान का खून है, किसी माँ का सुनहरा सपना है।

चेतन : भई, तुम तो अजीब फ़िलासफ़र हो। यह कुछ नहीं है, कुछ नहीं है। यह जबरन किसी की गोद में आ गिरा होगा। इसलिए नफ़रत से यहाँ फेंका गया है। न इसमें किसी इन्सान का खून है, न किसी माँ का सपना।

आनन्द : लेकिन इसमें इन्सान की आत्मा तो है चेतन! इसकी बन्द आँखें अपनी माँ को ढूँढ़ रही हैं, इसके नन्हे-नन्हे हाथ माँ के दूध को ढूँढ़ रहे हैं।

चेतन : बेकार की बातें कर रहे हो। कहाँ इसकी माँ होगी, उसने अपना मातृत्व ही तो छिपाने के लिए इसे यहाँ फेंका होगा। शायद वह इस रक्त से घृणा भी करती हो।

आनन्द : ऐसा न कहो,…तुम प्रकृति के विरुद्ध तर्क कर रहे हो, इसे किसी तरह जिला लेने की बात सोचो चेतन!

चेतन : (डर से) न भइया! यह बिलकुल ग़लत, तुम्हीं सोचो, तुम महर्षि जो हो।

आनन्द : व्यंग्य न करो दोस्त! तुम इसे बहुत आसानी से जिला सकते हो। तुम्हारी धर्म-पत्नी है, तुम बड़े घर के लड़के हो, नौकर-चाकर हैं; ईश्वर के लिए तुम इसे किसी की गोद में डाल देना और मुझसे जितनी सहायता होगी मैं हमेशा देता रहूँगा।

चेतन : अगर तुम इतने उदार हो तो इसे अपने ही घर क्यों नहीं ले चलते हो। ले चलो। रुपये-पैसे की सहायता मैं भी कर सकता हूँ।

आनन्द : अजीब हो यार तुम। सब जानते हुए भी ऐसी बातें कर रहे हो।

चेतन : तो इससे क्या, माता जी को समझा लेना, बस।

आनन्द : (आश्चर्यमिश्रित चिन्ता से) माता जी को समझा लूँगा। विचारों में कट्टर सनातन धर्मी ब्राह्मण के संस्कार छुआछूत; और वे तो अकेली दिन-रात पूजा-पाठ ही करती रहती हैं, बोलो और मेरे घर में है ही कौन?

चेतन : एक दूध पिलाने वाली रख लेना।

आनन्द : यार, तुम मेरी परिस्थिति पर चोट करते हो। मैं ज़रूर इसे अपने घर ले जाता लेकिन माता जी पाप और धर्म का नाम लेकर खाना-पीना छोड़ देंगी, (रुककर) लो चेतन! इंसानियत के नाम पर तुम इसे जिला लो।

चेतन : न बाबा, खानदान में रहना मुश्किल हो जाएगा! (रुककर) आनन्द, मेरी एक बात सुनो। छोड़ो सब चक्कर!

आनन्द : कौन-सी बात?

चेतन : बताऊँ, लाओ मैं इस बच्चे का 'स्नैप शाट' ले लूँ और कल के अखबार में सूचना सहित इसका चित्र निकलवा दूँगा।

आनन्द : क्या सूचना दोगे ?

चेतन : यही कि, ऐसा-ऐसा लड़का फ़लाँ रास्ते की झाड़ी में मरा हुआ मिला और शोक-संवेदना प्रस्ताव बस, इससे अधिक और क्या हो सकता है ?

आनन्द : ओह ! तुम कितने निर्मम हो चेतन ! क्या इस ग़रीब इन्सान का इतिहास इतना छोटा है कि बेचारा उधर पैदा हुआ, उधर फेंका गया और उधर मर गया !

चेतन : भाई ! तुम्हें इसे लेकर और इतिहास बनाना हो और कांड रचने हों तो तुम्हीं जानो. मैं तो चला ।

आनन्द : चेतन !

चेतन : बोलो, क्या कह रहे हो ?

आनन्द : जाओ कुछ नहीं कह रहा हूँ ।

चेतन : तुमने मुझे पुकारा है ?

आनन्द : मैंने नहीं इस अनबोलते बच्चे की आत्मा ने तुम्हें पुकारा है, सुनते जाओ ।

चेतन : अरे यार ! हटाओ क्या रूह-फूह की बातें कर रहे हो ? अच्छा-ख़ासा मज़ाक़ बनाया ।

आनन्द : मज़ाक़ नहीं, अगर हम लोग इस आत्मा को इसी झाड़ी में छोड़कर या रेवती नदी में फेंककर चले जाते हैं तो सच मानो यह तड़पती हुई आत्मा दिन-रात यहाँ पुकारती फिरेगी और हम लोगों से पूछती फिरेगी कि बोलो ! मेरा पाप क्या था ?

चेतन : मैं इतना 'सेंटीमेंटल' नहीं हूँ आनन्द, मैं चला ।

[दूर से एकाएक वंशी का स्वर आने लगता है, जिसे पास ही मैं कोई मस्ती से बजा रहा है ।]

आनन्द : चेतन, एक प्रार्थना सुनते जाओ ।

चेतन : बोलो ।

आनन्द : सुनो, यह वंशी की आवाज़ आ रही है न ! गोपी चरवाहा अपनी बाँसुरी बजा रहा है । घर तो देखा ही है, तुम जल्दी से उसके पास दौड़ जाओ । मेरा नाम लेना और सिर्फ़ इतना ही कहना कि थोड़ा-सा गाय का दूध लेकर चल, तुझे जल्दी से आनन्द बाबू बुला रहे हैं बस, जाओ, जल्दी जाओ, नहीं तो बच्चा साँस तोड़ देगा ।

[चेतन का प्रस्थान]

आनन्द : (टहलता हुआ बच्चे को प्यार से देखता हुआ) मेरे अनबोलते दोस्त, इस धरती पर गिरने के पहले तूने ईश्वर को श्राप क्यों नहीं दिया, बोलो यार ! तुम तो जन्म ही से इतने ग़रीब हो कि तुम्हारी आँखों में आँसू तक नहीं, रोने तक की शक्ति नहीं । तुम्हारे पास तो तुम्हारा नाम तक भी नहीं है ।

[टहलता रहता है । कुछ क्षणों के उपरांत सहसा बाहर किसी के आने की आहट होती है ।]

आनन्द : (चौंक कर पुकारता हुआ) गोपी !

[गोपी चरवाहे के वेश में घुटनों तक धोती, कुर्ता, सर पर पगड़ी, एक हाथ में छोटे-से बर्तन में दूध और एक हाथ में छोटा-सा डंडा ।]

गोपी : (प्रवेश करते ही) आया आनन्द बाबू !

आनन्द : तुम आ गए गोपी ! चेतन बाबू कहाँ रह गए ?

गोपी : अपने घर की ओर गइन बाबू (देखता हुआ) ई गोदिया माँ का लिया है भइया ?

आनन्द : (बैठता हुआ) गोपी जल्दी इसके मुँह में दो बूँद दूध डाल दो, हाय रे भूख, देखो बेचारा नन्ही सीप की तरह बार-बार अपना मुँह खोल रहा है ।

गोपी : (बैठकर उँगली से दूध डालता हुआ) ई बिपत आपका कहाँ मिल गवा बाबू ?

आनन्द : इसी झाड़ी में गोपी, अब बताओ इसे क्या किया जाय ?

गोपी : (दूर हटकर) हम का बताई बाबू **(सोचकर)** छोड़ी यहाँ एकरे भाग पर, यह तो दुनिया है बाबू ।

आनन्द : (उठता हुआ) गोपी, इसकी क़िस्मत तो देख ही रहे हो। तुमसे मैं हाथ जोड़ता हूँ दोस्त ! तुम इसकी खोई हुई क़िस्मत बन जाओ । इसे अपने घर ले चलो और जिला लो इसे गोपी !

गोपी : (हाथ मलता हुआ) आनन्द बाबू, हम जरूर जिलाय लेइत, मुला बात ई है कि हमार मेहरुआ बहुत फॅंकट है, बहुते मुँहजोर, एका देखत लाखन गारी देई बाबू ! औ पानी न पूछी ।

आनन्द : नहीं चलो मैं उसे मना लूँगा ।

गोपी : अरे ! बाबू, बाप रे बाप । ई कुल बात आप नाहीं समझब । ऊका मानी, उल्टे मुसीबत मा डाल देई औ भिनसारवे पुलिस आय घेरी ।

आनन्द : गोपी तुमसे मेरी बड़ी आशा थी, कुछ तो सहायता करो ।

गोपी : हम यह बात मा का सहायता कै सकिथें भइया ! हाँ गइया के दूध जितना जरूरत पड़े दे सकिथें; लेकिन मेहरुआ के दूध···।

आनन्द : हाँ-हाँ, बोलो रुक क्यों गए, बोलो !

गोपी : कुछ नाहीं भइया । हम यह माँ का मदद कै सकीथें ।

आनन्द : तुम इसे अपने घर दो-एक दिन तो रख ही सकते हो; नहीं तो यह मर जायगा, देखो रोने की कौन कहे, इसमें साँस लेने की भी शक्ति नहीं, इसे दो-एक दिन सम्हाल गोपी, मैं तब तक इसकी माँ को ढूँढ लूँगा ।

गोपी : (डरकर) न भइया ! इकरे माँ का ढूँढब मुश्किल बात आय भइया ! आप का जानी, वोकरे सर से बिपत उतरा···ऊ कहूँ छटकत कूदत होई कि···।

आनन्द : नहीं, गोपी ! तुम माँ का दिल नहीं जानते, उसके आँचल का तड़पता हुआ दूध उसे पागल बना रहा होगा, अगर कहीं वह हँसती-कूदती भी होगी तो उसकी आँखें रो रही होगी, मैं उसे लाखों औरतों में ढूँढ लूँगा, विश्वास करो मैं उसे ढूँढ लूँगा ।

गोपी : लेकिन बेचारी का ढूंढ़ कै का करबो बाबू ! दुखिया का और बिपत माँ डालब, न जाने कितना संकट पाय, कितने बिपत माँ पड़िकै यहाँ एका फेंके होई।

आनन्द : तुम तो मुझे चारों ओर से रोक रहे हो गोपी ! अब बोलो मैं क्या करूँ ?

गोपी : यही नदिया माँ परिवाह देय बाबू, और का कही ?

आनन्द : गोपी ! मेरा गला न दबाओ। अजीब पत्थर तुम भी निकले (रुककर) हाँ, एक बात तो तुम कर सकते हो ?

गोपी : हाँ-हाँ बोलो बाबू।

आनन्द : तुम आसपास के इन बँगलों में, घरों में क्या किसी ऐसी औरत को जानते हो जो बच्चे के लिए भूखी है, वह बहुत ख़ुशी से इसे अपने आँचल में छिपा लेगी; सोचो कोई ऐसी औरत, मैं इसे उसकी भूखी गोद में सौंप दूंगा।

गोपी : ऐसन औरत तो बहुत हैं भइया ! मुला यह फेकल बच्चा केउ लेई, ई हम नाईं कह सकित।

आनन्द : तुम ऐसी किसी भी औरत को बुला लाओ, मैं उसके पैरों पड़कर उसे तैयार कर लूंगा। जाओ, जल्दी किसी को लाओ। बहुत देर हो रही है, जाओ मैं तब तक फिर इसके गले में दूध डाल रहा हूँ।

गोपी : (जाता हुआ) बहुत अच्छा बाबू।

[आनन्द बैठकर बच्चे के मुँह में थोड़ा-सा दूध डालता है और फिर प्यार से उसे अपनी जवाहरबण्डी से ढँप लेता है फिर खड़ा होकर धीरे-धीरे टहलता हुआ।]

आनन्द : मेरे बेज़बान दोस्त ! इस धरती पर भेजने के पहिले जब ईश्वर तुम्हारी क़िस्मत लिखने बैठा होगा, तब वह इसके पहले बहुत रोया होगा, (रुककर) सो गए तुम, अच्छा सोओ, मैं तुम्हें इन्ही झाड़ियों में छिपाए हुए टहलता रहूँगा तुम सोओ, कितने अच्छे हो तुम, बिना लोरियाँ सुने ही सो गए, तुममें कितना संतोष है, सोओ !

[मौन टहलता रहता है, कुछ क्षणों के बाद गोपी एक औरत को लिए आता है, औरत की अवस्था प्राय: 35 वर्ष की होगी। इसके वेश तथा व्यक्तित्व से मातृत्व-गरिमा टपक रही है।]

गोपी : (प्रवेश करते ही) यही है वह बच्चा ?

आनन्द : हाँ आओ माँ, यही है बच्चा !

औरत : कहाँ मिला है यह बच्चा आपको ?

आनन्द : इसी झाड़ी में फेंका हुआ मिला है।

औरत : (पास आकर) अब तक जी रहा है ?

आनन्द : जी हाँ, अब तक जी रहा है और अपनी क्षीण साँसों से किसी भी औरत को पुकार कर कह रहा है माँ, मुझे जिलाओ, मैं निर्दोष हूँ। माँ मुझे अपना दूध पिलाओ और इस बच्चे की एक-एक साँस प्रतीक्षा कर रही है कि माँ, मुझे दूध पिलाओ,

मैं तुम्हारे एक-एक बूंद दूध का मूल्य चुकाऊँगा, दूध से सागर भरकर तुम्हारे नाम पर दान करवा दूंगा ।

औरत : (**पास आकर देखती हुई**) बहुत प्यारा बच्चा है, न जाने किसने इतना बड़ा पाप किया है ।

आनन्द : पाप नहीं माँ, लो इस बच्चे को सम्हालो और इसकी पुण्यमयी माँ बन जाओ।

औरत : कौन-सा बच्चा है यह ?

आनन्द : कौन-सा बच्चा ? बच्चा है, बच्चा, बल्कि खून का जमा हुआ लोथड़ा कह लो माँ !

औरत : नहीं, मेरे पूछने का मतलब यह है कि यह···।

आनन्द : हाँ-हाँ, क्या मतलब है आपका, पूछिए मैं बताऊँगा ।

औरत : मतलब यह है कि, यह लड़का है या लड़की ?

आनन्द : (**आश्चर्य से**) ओह ओ ! यह तो अभी तक मुझे पता ही नहीं, यह तो केवल बच्चा है बच्चा (**देता हुआ**) लीजिए आप ही देख लीजिए, यह कितना अच्छा बच्चा है !

औरत : (**देखती हुई**) ओह ! यह तो लड़की है ।

आनन्द : (**चिंता से**) लड़की !

गोपी : (**आश्चर्य से**) यह लड़की है आनन्द बाबू, अरे !

आनन्द : यह लड़की है तो इससे क्या ? यह तो निरा बच्चा है, अबोध ।

औरत : (**देती हुई**) लीजिए, पकड़िए अपने बच्चे को ।

आनन्द : क्यों माँ, क्या हो गया ? क्यों इसे लौटा दे रही हो, बात क्या है ? (**गोपी से**) क्या हो गया गोपी इन्हें ?···पूछो···!

गोपी : (**हाथ मलता हुआ**) बाबू, हम कुछ नाहीं जानित, हम तो यही के मारे यहाँ किनारे खड़ा हुई ।

आनन्द : क्यों माँ ! आप बच्चे से दूर क्यों चली गईं ?

औरत : सब बातों के साथ-साथ यह लड़की भी तो है ।

आनन्द : लेकिन इसमें इस अनबोलते का क्या क़सूर, लड़की होना पाप है क्या ?

औरत : पाप तो नहीं है लेकिन यहाँ की परिस्थितियाँ कुछ अजीब हैं । झाड़ी में फेंका हुआ, न जाने किसका बच्चा; न जाने किस कारण से, सो भी लड़की ।

आनन्द : (**गिड़गिड़ाकर प्रार्थना के स्वर में**) मैं हाथ जोड़ता हूँ माँ । उन सब बातों को भूल जाइए, सिर्फ इतना याद रखिए कि यह एक पवित्र आत्मा है निष्कलंक, न इस पर अभी किसी जाति की छाया है, न किसी संस्कार की सीमा । यह बेनाम है माँ, बिल्कुल नया, बिल्कुल पवित्र, नितान्त निर्दोष ! इसे अपनी गोद में शरण दो माँ । यह अपना नन्हा-सा हाथ जोड़कर आपसे जीवन-दान माँग रहा है ।

औरत : मैं कैसे इसे ले सकती हूँ, आप ही सोचिए ! (**गोपी से**) क्या गोपी, तुम्हीं बताओ···।

गोपी : (**घबड़ाकर**) हम कुछ नाहीं जानित, कुछ नाहीं ।

आनन्द : माँ एक बार इसका मुँह देखकर सोचो और फिर अपना निर्णय दो, (**देता हुआ**) लो देखो।

औरत : नहीं, मैंने बहुत सोच लिया है, अब आप ही सोचिए।

आनन्द : मैं तो सोच रहा हूँ, बच्चे का लड़की हो जाना इसका पाप हो गया। लेकिन माँ, मैं आपको वचन देता हूँ कि इस मासूम बच्ची के पीछे मैं आपको लड़के के रूप में अपने को सौंप रहा हूँ। मैं जन्म भर इसकी कमी को पूरा करता रहूँगा। गोपी इसका साक्षी रहेगा।

गोपी : हाँ बाबू आप बिलकुल ठीक कहीथै।

औरत : सब सही है, लेकिन इसके लिए सामाजिक व्यंग्य कौन सुनेगा। (**रुककर**) तुम्हीं बोलो गोपी ?

गोपी : आप ठीक कहीथैं।

आनन्द : (**चिढ़कर**) गोपी !

गोपी : (**घबड़ाकर**) कुछ नहीं आनन्द बाबू···कुछ नहीं !

आनन्द : हाँ, आप सामाजिक व्यंग्य की बातें कह रही हैं ! उसे आप मुझ पर डाल दीजिएगा।

औरत : इसके बाद भी लेकिन सबसे बड़ा प्रश्न तो यह है कि मेरे पति महोदय इसे किस रूप में लेंगे। मैं उनके विरुद्ध नहीं जा सकती और मुझे मालूम है वे इसे कभी नहीं स्वीकार कर सकते।

आनन्द : मैं उनके पाँव पड़कर मना लूँगा, आप अपनी ओर से इस दम तोड़ते हुए बच्चे को अपनी गोद में तो ले लीजिए।

औरत : लेकिन मैं कैसे ले जा सकती हूँ। यह प्रश्न यहीं थोड़े समाप्त हो जाता है। इसके बाद भी तो बहुत लम्बा प्रश्न रह जाता है।

आनन्द : (**चिन्ता से**) लम्बा प्रश्न ! और अगर यह लड़का होता तो, (**रुककर**) बोलिए, आप जवाब क्यों नहीं दे रही हैं ?

औरत : अब मैं घर जाने की बात सोच रही हूँ, मुझे जल्दी है। अब उनके खाने का समय हो रहा है, अब मैं जा रही हूँ।

आनन्द : मातृत्व को ठुकरा कर ?

औरत : नहीं, नहीं मुझे देर हो रही है।

आनन्द : इसका मुझे भी ज्ञान है। लेकिन वह लम्बा प्रश्न तो बताते जाइए जिसकी लम्बाई पर इस बच्चे की टूटती हुई साँस एक अमिट कराह बिखेर दे; जिसकी आवाज़ से दुनिया में एक बार सब माँ और बाप का दिल पिघल जाए।

औरत : हाँ, वह लम्बा प्रश्न इसकी शादी के समय खड़ा होगा। इससे कौन शादी करेगा, कहाँ शादी होगी ?

आनन्द : ओह ! यही है लम्बा प्रश्न। यह तो बहुत बाद की चीज़ है।

औरत : मुझे देर हो रही है, क्षमा कीजिएगा।

आनन्द : लेकिन अगर यह दम तोड़ने वाला बच्चा आपको क्षमा कर दे तो।

औरत : (गम्भीरता से) क्यों, अजीब बात आप करते हैं ! इसकी आत्मा अपनी उस माँ को न क्षमा करे जिसके गर्भ से यह पैदा हुआ होगा और जिसने अपने दिल पर इतना बड़ा पत्थर रखकर इसे इस झाड़ी में फेंक दिया होगा ।

आनन्द : न, उसने माताओं की परीक्षा के लिए इसे यहाँ रख छोड़ा होगा ।

औरत : जो कुछ भी हो मैं अब जा रही हूँ । (प्रस्थान)

आनन्द : (अँधेरे में देखता हुआ) जाओ, चली जाओ, यह दुधमुँहा बच्चा अपनी अन-बोलती ज़बान से धरती पर इन्सानियत की गहराई देखता रहेगा, और इसी से अपनी मौन कहानियाँ कहता रहेगा, नहीं तो यह बच्चा इस झाड़ी में कैसे जिन्दा रहता ।

[क्षणिक अन्तराल]

आनन्द : गोपी !

गोपी : हाँ बाबू !

आनन्द : (गंभीरता से) तुम भी जाओ, तुम्हें भी तो डर लग रहा है न ! जाओ, जल्दी घर जाओ, नहीं तो तुम्हारी घरवाली तुम्हें गधे की तरह पीटेगी ।

गोपी : (हाथ मलता हुआ) हाँ, हाँ, बाबू ! आप ठीक कहत हईं, बड़ी खराब बाय ऊ ।

[हँसने लगता है ।]

आनन्द : (व्यंग्य से) हाँ-हाँ खूब हँसो ! और घर जाकर इन्सानियत की मौत पर बाँसुरी बजाओ ।

गोपी : बाबू ! नाराज़ न हों !

आनन्द : मैं नाराज़ नहीं हूँ गोपी ! दुखी हूँ दुखी; धरती पर इन्सानियत का रिश्ता टूट रहा है···दूध और रक्त का रिश्ता···

गोपी : तो आप ई बच्चा के अपने घर ले जात हईं ।

आनन्द : हाँ, ले तो जा रहा हूँ । रात-भर इसके मुँह में दूध डालता रहूँगा, सुबह होगी, मैं इसकी माँ को ढूँढ़ निकालूँगा । तुम जाओ, खड़े क्या हो ?

[गोपी चला जाता है, आनन्द बच्चे को लिए हुए कुछ सोचता है और जैसे ही वह स्टेज से आगे बढ़ने लगता है, चेतन का पुकारते हुए प्रवेश ।]

चेतन : आनन्द ! सुनो कहाँ जा रहे हो ?

आनन्द : कहीं भी जा रहा हूँ, क्यों बात क्या है ? पुलिस आ गई क्या ?

चेतन : नहीं भाई, सुनो तो ।

आनन्द : (पास आकर) क्या सुनूँ, सुनाओ ?

चेतन : एक बात मालूम हुई है ।

आनन्द : कौन-सी बात ?

चेतन : घर पर पहुँचते ही मेरी नौकरानी सुग्गी पूछने लगी कि बाबू जी, आपने इतनी

देर कहाँ की ? मैंने अजीब उदासी के साथ कहा, समझो कि, एकाएक मेरे मुँह से निकल गया कि सुग्गी ! क्या बताऊँ अब तो किसी औरत से बोलने की तबियत नहीं होती। उसने पूछा क्यों, मेरे मुँह से निकल गया कि अब तो औरतें बच्चा पैदा कर झाड़ियों में फेंक देती हैं।

आनन्द : तब आखिर बात क्या हुई ?

चेतन : सुनो तो, बता रहा हूँ। उसने कहा कि इसमें औरतों का क्या दोष है ? अब तो औरतों की गुप्त बातों—लज्जा की बातों पर भी पुरुष ही मालिक होने लगा है।

आनन्द : तब क्या हुआ ?

चेतन : तभी वह दृष्टांत देती हुई एक रहस्य की बात कहने लगी।

आनन्द : कौन-सी बात ?

चेतन : उसने कहा कि वह जो त्रिवेनी रोड की पुलिया पर मिलिट्री-सारजेन्ट रहता है, आज सुबह उसकी बीवी को बच्चा पैदा हो रहा था और जब मुहल्ले की कुछ औरतें उसे देखने के लिए अन्दर जाने लगीं तब सारजेन्ट ने अपना दरवाजा बन्द कर दिया और सबका आना मना कर दिया।

आनन्द : तब क्या हुआ ?

चेतन : इसके बाद उसे नहीं मालूम कि क्यों सारजेन्ट ने ऐसा किया, वह स्वयं इसकी जिज्ञासा में है। उसने तो दृष्टांत देके कह दिया कि अब स्त्रियों की कितनी शोचनीय दशा है।

आनन्द : इसमें तो कोई मूल्य की बात हाथ न लगी।

चेतन : क्यों नहीं, इसी में कोई रहस्य है।

आनन्द : कैसे ?

चेतन : क्योंकि सुग्गी ने उसके विषय में बातें करते हुए यह भी बताया कि पिछले साम्प्रदायिक दंगों में सारजेन्ट उस लड़की को कहीं अमृतसर की ओर से भगाकर लाया, उसकी असली ब्याही औरत तो उसी दंगे में ही मर गई।

आनन्द : लेकिन इतनी रहस्य की बात सुग्गी को कैसे मालूम ?

चेतन : सारजेन्ट की आया ने उसे सब बताया है, आया को सब मालूम है।

आनन्द : (आश्चर्य से) सच चेतन !

चेतन : हाँ भाई, सच बिल्कुल सच, सुग्गी कहती थी कि वह अपनी बीबी को बहुत निगरानी में रखता है।

आनन्द : तो चेतन क्या सोच रहे हो ?

चेतन : दोस्त, मुझे तो विश्वास हो रहा है कि यह बच्चा उसी रहस्यात्मक शक्ति का है और यहाँ नफ़रत से फेंक दिया गया है।

आनन्द : लेकिन अपना बच्चा भी कोई फेंक सकता है; भला यह कोई अभिशाप है क्या ?

चेतन : क्यों नहीं, उसके लिए यह अभिशाप हो सकता है, तभी तो यहाँ फेंका गया।

आनन्द : कैसी बातें कर रहे हो ? यह कैसे हो सकता है ?

चेतन : शायद यह बच्चा वर्णसंकर हो, इसकी माँ न जाने किस जाति-विचार की हो। शायद इस बच्चे से उसका बाप घृणा करता हो, (**रुककर**) और यार, एक बात यह कि इस महँगाई में दुनिया आनन्द ही ढूँढ़ती है, जिम्मेदारी से तो लोग नफ़रत करने लगे हैं।

आनन्द : (**बात काटते हुए**) लेकिन सुग्गी और कुछ नहीं कह रही थी, उसे और भी कुछ बातें मालूम होंगी।

चेतन : शायद···मैं कुछ कह नहीं सकता।

[आनन्द बच्चे को देखता हुआ सोचने लगता है।]

चेतन : क्या सोच रहे हो ?

आनन्द : चलो, मैं तुम्हारे घर चलता हूँ।

चेतन : (**घबड़ाकर**) क्यों···क्यों···?

आनन्द : इस सिलसिले में सुग्गी से बातें करूँगा···फिर कोई उपाय सोचा जायगा।

चेतन : वह तो सही है···तुम मेरे घर चल सकते हो···सुग्गी से सब पूछ सकते हो !··· (**डरता हुआ**) लेकिन बाबा !···इस बच्चे को साथ न ले चलो !

आनन्द : फिर क्या करूँ···?

चेतन : यहीं झाड़ी में छिपाकर रख दो और अभी लौट आना···।

आनन्द : तो तुम्हें इस बच्चे से इतनी घृणा है !

चेतन : यार, घृणा क्यों कहते हो ?···डर कहो···अगर तुम बच्चे को लिए हुए मेरे साथ घर चलोगे···तो 'फादर' मुझे घोट कर पी लेंगे···।

आनन्द : तो सुग्गी को यहीं बुला लाओ···या मैं बच्चे को लिए हुए अपने घर चल रहा हूँ···वहीं सुग्गी को लेकर आना···।

चेतन : (**एकाएक चेतन आनन्द की गोद से बच्चे को लेता हुआ**) बच्चे को मुझे दो··· देखो, मैं कितनी सफाई से बच्चे को इसी झाड़ी में छिपा कर रख दे रहा हूँ···और अभी तुम दस ही पाँच मिनट में लौट आओगे···।

[चेतन बच्चे को कपड़े में रख, सावधानी से ढककर झाड़ी में छिपा देता है।]

चेतन : (**आनन्द को अबरन रास्ते पर घसीटता हुआ**) चलो···जल्दी चलो···क्या सोच रहे हो ? देखना तब तक बच्चे का बाल भी न बाँका होगा···चलो, दौड़ चलो···।

[आनन्द बच्चे को देखता हुआ चेतन के साथ, रास्ते पर भागकर दृश्य से दूर चला जाता है, कुछ क्षणों तक स्टेज बिलकुल सूना रहता है। धीरे-धीरे दायीं ओर से एक डरी और टूटी हुई लड़की अपूर्व शंका, भय और बेचैनी से पैर बढ़ाती हुई रास्ते पर आती है और स्टेज के चारों ओर देखती है। फिर झुककर झाड़ियों में कुछ ढूँढ़ने लगती है। सहसा झाड़ी से अपने जीवित बच्चे को अंक में छिपा लेती है और

उसे अपलक देखती है। फिर बार-बार बच्चे को देखकर पीछे नदी की ओर देखती है तथा नदी की ओर देखती हुई फिर स्टेज के दायें-बायें और सामने देखती है। कुछ समय के उपरान्त एकाएक पृष्ठभूमि में किसी के दौड़ने की आहट होती है। लड़की और डर से काँप उठती है और पीछे मुड़कर नदी की ओर भागने लगती है। आनन्द दौड़कर चिल्लाता हुआ एकाएक स्टेज पर आ जाता है और लड़की को पकड़ लेता है—]

आनन्द : कौन हो तुम ?

[लड़की आनन्द से अपने को छुड़ाती रहती है जैसे वह न किसी का स्पर्श चाहती है, न किसी की कोई आवाज; लेकिन आनन्द अपूर्व जिज्ञासा और करुणा से प्रश्न करता रहता है।]

आनन्द : यह बच्चा लेकर कहाँ जा रही हो ?···कौन हो तुम ?···बोलो···तुम कौन हो ?···इस बच्चे को लेकर नदी में क्यों कूदने जा रही हो ?···बोलो कौन हो तुम ?···यह बच्चा मुझे दो; मैं इसे झाड़ी में छोड़कर अभी-अभी गया था···तुम कौन हो ?···बोलती क्यों नहीं ?

लड़की : (चीखकर अपने को छुड़ाती हुई)···छोड़ दो मुझे···मैं कुछ नहीं हूँ···कुछ भी नहीं हूँ !

आनन्द : (सम्हालता हुआ) नहीं, मैं तुम्हें नहीं छोड़ सकता।

लड़की : (आग्नेय दृष्टि से देखती हुई) क्यों नहीं छोड़ सकते ?

आनन्द : क्योंकि मैं आत्महत्या नहीं करने दूँगा···और तुम्हारे पाँव पड़ता हूँ, तुम मुझे बता दो···कौन हो ? कौन हो तुम ?

लड़की : मैं वहम हूँ···!

आनन्द : (डर से) वहम !···नहीं,···कभी नहीं···!

लड़की : मैं प्रेतनी हूँ और मैं इसी रेवती नदी की धार में रहती हूँ···मेरी कभी आत्म-हत्या नहीं होती।

आनन्द : और इस बच्चे की !

लड़की : इसकी भी नहीं···यह तो मेरा कर्त्तव्य है !

[एकाएक नदी की ओर भागने लगती है; लेकिन आनन्द उसे आगे बढ़ने नहीं देता है।]

लड़की : (छुड़ाती हुई) मुझे छोड़ दो···मैं वहम हूँ···मेरा यही काम है।

आनन्द : क्या काम है ?

लड़की : मैं इन झाड़ियों में,···इस कगार और···इन ओटों में, शहर के फेंके हुए ताजे, नये बेगुनाह, दुधमुँहे बच्चों को ढूँढ़ती रहती हूँ···और ऐसे बच्चों को अपनी गोद में छिपाकर इन लहरों में खो जाती हूँ···सच, इन लहरों में मेरा घर है···मैं वहम हूँ···मुझे छोड़ दो, नहीं तो तुम्हारी जान को खतरा है !

आनन्द : नहीं, सब झूठ है ! ···तुम मुझे धोखा नहीं दे सकती···तुम जरूर कोई हो··· वहम नहीं हो···क्योंकि तुम्हारी आँखों में आँसू हैं···और इंसान के आँसू हैं···तुम मुझे किसी भी तरह धोखा नहीं दे सकती !

लड़की : **(गुस्से से)** लेकिन इन बातों से तुम्हारा मतलब ?

आनन्द : जरूर···इस बच्चे से मेरा मतलब जरूर है···और इस समय यह बच्चा तुम्हारी गोद में है, इसलिए तुमसे भी मतलब है।

[लड़की अपलक आनन्द को देखने लगती है।]

आनन्द : **(प्यार और करुणा से)** बोलो···तुम्हीं इसकी माँ हो···बोलो···अरे ! क्यों इस तरह काँपने लगी ? ···ओह ! ···अच्छा तुम बैठ जाओ···और बच्चे को मुझे दे दो !

[आनन्द बच्चे को लेने लगता है, लेकिन लड़की और भी डरकर दूर हट जाती है और बच्चे को अपने अंक में छिपा लेती है।]

आनन्द : बोलो···डरो नहीं···मैं इंसान हूँ···बता दो···तुम्हीं इस बच्चे की माँ हो न !

लड़की : **(आश्चर्य से)** तुम इंसान हो ?

आनन्द : हाँ मैं इंसान हूँ, तभी तुमसे और इस दुधमुँहे बच्चे से मेरा रिश्ता है ! **(प्यार से)** मुझे बता दो···तुम्हीं इसकी माँ हो न !

[लड़की फिर एकाएक नदी की ओर भागने लगती है और आनन्द उसे पकड़ लेता है।]

लड़की : **(छुड़ाती हुई)** मुझे छोड़ दो···! मैं अपनी बच्ची के साथ इन लहरों में सदा के लिए खो जाऊँगी···!

आनन्द : (करुणा से) ओह ! ···तो मुझे बच्चे की माँ मिल गई **(लड़की को देखता हुआ)** तो सुग्गी की बात सही निकली !

लड़की : **(डरी हुई)** नहीं,···कोई बात नहीं बनाओ···नहीं तो कोई मिलिट्री का अफ़सर तुम्हें गोली मार देगा ! ···वह सार्जेन्ट है···सार्जेन्ट ! ···पिस्तौलें हैं उसके पास !

आनन्द : कोई बात नहीं, मैं सह लूँगा पिस्टलें, लेकिन मैं तुम्हारे पाँव पड़ता हूँ, मुझे बता दो···यह तुम्हारा बच्चा यहाँ कैसे आया ?

[अन्तराल]

लड़की : मुझसे छिनकर आया है।

आनन्द (पीड़ा से) तुमसे छिनकर !

लड़की : हाँ···वह मिलिट्री-अफ़सर है न ! ···उसकी मालकिन उसकी माँ है···वह भगवान की पूजा करती है, मन्दिर जाती है···मेरी छाया तक से नफ़रत करती है और···!

आनन्द : हाँ बोलो, और क्या ?

लड़की : और उसका बेटा···मेरे शरीर से प्यार करता है···बस मेरा शरीर चाहता है···इस पर शराब के कुल्ले करता है और मेरी इस बच्ची से घृणा करता है। उसकी माँ कहती है, यह न जाने किस जात-मज़हब की लड़की होगी, हमें इसकी सन्तान से क्या मतलब ?···उसे दूर फेंको···दूर फेंक दो···

[यह कहती हुई लड़की घूमकर फिर नदी में कूदने के लिए दौड़ती है; लेकिन आनन्द फिर दौड़कर पकड़ लेता है।]

आनन्द : यह बार-बार क्या कर रही हो ?

लड़की : (**भागने के प्रयत्न में**) नहीं, मेरी बच्ची को अब मेरी गोद से कोई नहीं छीन सकता···कोई नहीं।

आनन्द : लेकिन नदी में क्यों कूद रही हो ? ···इससे क्या होगा ?

लड़की : इससे मेरी यह खुशबू···मेरा यह आँसू मुझसे कभी अलग न हो सकेगा !

आनन्द : (**मनाता हुआ**) लेकिन यह पागलपन मत करो ! मेरी एक बात मानो।

लड़की : पागल···तुम हो; जो मेरे रास्ते में आ गए ! (**याचना करती हुई**) मैं तुमसे हाथ जोड़ती हूँ, ···मुझे इन लहरों में खो जाने दो···बहुत देर हो रही है !

आनन्द : नहीं; जिन्दगी इस तरह मरने के लिए नहीं बनी है···।

लड़की : तुम जियो···तुम्हारी जिन्दगी तुम्हें बहुत प्यारी होगी ! मुझे तो मौत प्यारी है !

आनन्द : नहीं, ऐसा न कहो···अपनी साँसों को अपनी दुधमुँही बच्ची की साँसों की छाँव में सुनो···यह बच्ची बेगुनाह है···तुम कभी भी इसकी मौत न सोचो, नहीं तो तुम्हें कहीं शान्ति न मिलेगी। इसे जिला लो···इसकी जिन्दा साँसों में तुम्हें एक दिन नयी सुबह मिलेगी !···अपनी इस मासूम बच्ची को देखो (**दिखाता हुआ**) और उधर देखो···नदी के उस पार, ···वह नीला आसमान इस नयी जिन्दगी से नई उम्मीद लिए झुका है···। (**माँगता हुआ**) मुझे दे दो अपनी बच्ची को···और तुम अपने घर लौट जाओ।

लड़की : लेकिन ये दोनों रास्ते ग़लत हैं !

आनन्द : वह कैसे ?

लड़की : मैं अपनी इस बच्ची को इन इंसानों में जिन्दा नहीं छोड़ना चाहती···

आनन्द : क्यों ?

लड़की : नहीं तो यह भी एक दिन जवान होगी ! और दुल्हन बनने के पहले इसे भी कोई उठा ले जाएगा, ···इसका शरीर···और जब एक दिन यह माँ होगी···तो इसकी आँखों के सामने से ही इसकी आत्मा छीन ली जाएगी···इसलिए मैं अपनी बच्ची को जिन्दा नहीं छोड़ना चाहती···और···और···।

आनन्द : और क्या ?···बोलो···!

लड़की : मैं लौट भी नहीं सकती क्योंकि मेरे आगे-पीछे दोनों ओर मौत है ! और तुम भी पागल मत बनो···मैं तुमसे अपने को छुड़ाने के लिए कब से अपना रास्ता साफ़ कर रही हूँ···लेकिन तुम तो न जाने कैसे इंसान···न जाने क्या सोच रहे हो ?

आनन्द : नहीं,···तुम्हें अपनी बच्ची के साथ जीना होगा !···मैं···मैं···।

लड़की : कुछ नहीं···तुम चाहते हुए मेरी मदद नहीं कर सकते···!

आनन्द : कर सकता हूँ,··· (**माँगता हुआ**) यह बच्ची मुझे दो···मैं इसे जिलाऊँगा··· अपनी पलकों में पालूँगा···और देख लेना तुम्हारे सारे सपने, एक दिन तुम्हारी इस बच्ची में सच निकलेंगे···तुम्हें वह सुबह देख कर खुशी होगी जब तुम्हारी यह नन्ही, दुल्हन बनकर मेरे घर के मड़वे से अपने पति के घर जाएगी···। तब तुम्हें बहुत खुशी होगी···और उस आने वाली सुबह के लिए तुम्हें इन्तजार करना होगा।

लड़की : (**घबराती हुई**) नहीं, नहीं···मुझ पर इस तरह जादू न डालो···मुझे उड़ाके आसमान में न ले जाओ···मुझे डर लग रहा है।

आनन्द : यह जादू···नहीं···सच है···जीने के लिए डर को जीना पड़ेगा···तुम अकेले अपने घर लौट जाओ···और उस आने वाली सुबह का इन्तज़ार करो···।

लड़की : नहीं,···तुम मुझे और मेरी बच्ची को धोखा दे रहे हो !

आनन्द : (**पीड़ा से**) आह ! तुम क्यों ऐसा कहती हो ?

लड़की : क्योंकि मेरा इन्सानियत से विश्वास उठ चुका है !

आनन्द : लेकिन···इस बच्ची से पूछो···इसे इन्सानियत पर विश्वास है ! और तुम इसकी माँ हो···इस खून के लोथड़े के लिए तुम दूध का सागर हो ! ···दूध का खून पर विश्वास कभी नहीं टूटता···!

लड़की : यह तुम क्या कह रहे हो ?

आनन्द : मैं कह रहा हूँ···कि तुम अपनी बच्ची को फिर से देखो···यह अपनी बेहोशी में ज़िन्दगी को पुकार रही है। उसे बचाओ···तुम इन साँसों की माँ हो···ये साँसें अभी नई और ज़िन्दा हैं···इन्हीं से एक दिन तुम्हारा इंसानियत से टूटा हुआ रिश्ता फिर जुड़ेगा···।

[लड़की फटी-फटी आँखों से आनन्द को अपलक देखती रहती है।]

आनन्द : बोलो···क्या सोच रही हो ?

लड़की : ये बातें क्या सच हैं ?

आनन्द : हाँ, सच हैं ! (**रुककर**) इतनी सच हैं···जैसे ये सितारे···जिनमें रोशनी है···यह नीला आसमान, जिसमें रोज़ एक नयी सुबह होने की सच्चाई है···।

लड़की : (**काँपते हुए हाथों से बच्ची को देती हुई**) अच्छा, तो लो मेरी बच्ची को; इसे मैं तुम्हें सौंप रही हूँ।

[बच्ची को देकर फिर नदी की ओर बढ़ती है।]

आनन्द : (**रोकता हुआ**) अब यह क्या कर रही हो ?

लड़की : (**प्रार्थना के स्वर में**) अब मेरी भी बात मान जाओ···मुझे अकेली इन लहरों

में खो जाने दो···

आनन्द : लेकिन उस आने वाली नयी सुबह को कौन देखेगा ?···जब तुम्हारी बेटी दुल्हन बनेगी···तब उसे कौन देखेगा ?

लड़की : तुम देखना···!

आनन्द : और जब यह अपनी माँ को पूछेगी···तब मैं क्या कहूँगा ?

लड़की : मुझे बता देना।

आनन्द : और जब यह बेटी तुम्हें ढूँढ़ने निकलेगी···तब मैं इसे किस रास्ते का इशारा करूँगा।

लड़की : इन्हीं लहरों की ओर इशारा करके मेरी कहानी कह देना···!

आनन्द : तब तो मुझसे बहुत बड़ा गुनाह हो जाएगा···

लड़की : क्यों ?

आनन्द : इसलिए कि तब यह बच्ची भी एक दिन मुझसे छिपकर इन्हीं लहरों में अपनी माँ को ढूँढ़ने के लिए जान दे देगी !

लड़की : (**बहुत डरकर**) सच,···तब ऐसा हो जाएगा···और तुम इसे···बचा न सकोगे··· !

आनन्द : तुम्हारे बिना मैं इसे किसी भी तरह नहीं बचा सकूँगा !

[लड़की की आँखें आनन्द पर स्थिर हो जाती हैं।]

आनन्द : मैं इसे नहीं बचा सकूंगा···और अकेले इस बच्ची को बचाने में तब मेरी भी जान चली जाएगी ··।

[लड़की पागलों की भांति आनन्द की आँखों में देख रही है।]

आनन्द : अगर तुम न रहोगी···ज़िन्दगी के नाम पर मेरे साथ नहीं लौट चलोगी···तो एक दिन यह बच्ची अपनी माँ को ढूंढ़ती फिरेगी···और मैं इस बच्ची को ढूंढ़ता फिरूँगा और एक रात को यह आसमान अपनी गोद में एक नयी सुबह लिए हुए हम सब को ढूंढ़ता फिरेगा।

[लड़की पागलों की तरह खामोश है और आनन्द उसे अपनी बाँहों का सहारा दिए हुए रास्ते पर लौटाने लगता है]

···सच यह आसमान···उसकी नयी सुबह हम लोगों को ढूँढ़ती फिरेगी (आगे बढ़ाता हुआ)···चलो···कुछ सोचो नहीं···मैं तुम्हारे साथ हूँ···और हम लोगों के ऊपर सितारों भरा आसमान है···और उसकी गोद में एक नयी सुबह है ·चलो ···आओ मेरे साथ चलती चलो···बढ़ो···मैं तुम्हारे साथ हूँ···और हम लोगों के साथ हमारा विश्वास है।

[आनन्द बच्ची को अंक में छिपाए लड़की को सहारा देता हुआ आगे रास्ते पर बढ़ता जाता है और स्टेज पर रोशनी फैलती जाती है।]

[परदा गिरता है।]

नई इमारतें

पात्र

डाक्टर पापा	:	रिटायर्ड सिविल सर्जन
गीता	:	रिसर्च स्कालर
रीता	:	(द्वितीय वर्ष)
डाक्टर सुनीत	:	नवयुवक असिस्टेंट सर्जन
नीना	:	गीता की सहपाठिनी
रेखा	:	रीता की सहपाठिनी

[संध्या के सात बजने वाले हैं। आज डाक्टर व्यास (पापा) के परिवार में रीता की बाईसवीं वर्षगाँठ मनाई जा रही है। सामने लॉन, पोर्टिको और समूचे बँगले में रोशनी हो रही है। और नाटक का पर्दा बँगले के उस विशिष्ट कमरे में उठता है जो गीता और रीता दोनों का स्टडी-रूम और अलग उनका ड्राइंग-रूम भी है। समूचा कमरा बहुत सुरुचिपूर्ण ढंग से सजा हुआ है और इसके वातावरण से पूरी अंग्रेजियत झलक रही है। कमरे के दायें हिस्से में आमने-सामने की दीवार में दो बंद शीशे की आलमारियाँ हैं। सामने की आलमारी गीता की किताबों से बोझी हुई है और उसके नीचे ही गीता का स्टडी टेबुल है, उस पर टेबुल लैम्प के दोनों किनारों पर नई पुस्तकें सजाई हैं। पीछे रीता की आलमारी किताबों से सूनी है, उसमें शीशे में जड़ी हुई कुछ रंगीन तस्वीरें रक्खी हैं, नीचे स्टडी टेबुल की जगह सूनी है। कमरे के शेष बायें भाग में बीचो-बीच दोनों ओर से सोफासेट लगे हैं। बीच में एक मैचिंग चौकोर टेबुल पर ताजे फूलों से भरा हुआ एक अमेरिकन 'वाज' रक्खा है। सामने दीवार में मेंटलपीस पर सुनीत का एक खूबसूरत चित्र रक्खा हुआ है और उसके दायें-बायें बुद्ध और गांधी के सफेद 'बस्ट' रक्खे हैं। नीचे फ़र्श पर, मेंटलपीस की परिधि में कपड़े से सजे हुए एक छोटे से टेबुल पर रेडियो-सेट रक्खा है। सामने से कमरे में तीन दरवाजे हैं, दायें-बायें दो पर्दे लगे हुए हैं जो क्रमशः गीता और रीता के व्यक्तिगत कमरों में (सोने, पहनने, मेकअप, ट्वायलेट आदि करने के कमरे) खुलते हैं। मेंटलपीस के बायें तीसरा दरवाजा है जिससे भीतर जाया जाता है। पर्दा उठने पर समूचा कमरा बिजली की सफ़ेद रोशनी में धुला जा रहा है। रेडियो से धीमे-धीमे कहीं से आर्केस्ट्रा पर राग जय-जयवन्ती बजने की आवाज़ आ रही है। एकाएक क्षण-भर के बाद बायें दरवाज़े से खूब सजी हुई मेकअप में सफल होकर रीता बिजली की तरह स्टेज पर आती है। कमरे में चारों ओर एक दृष्टि घुमाकर मेंटलपीस पर सुनीत की तस्वीर को देखने लगती है और मुस्कराकर नीचे रेडियो के वाल्यूम को तेज़ कर देती है और स्वयं उस मीठे आरकेस्ट्रा की धुन की पृष्ठभूमि में मस्ती से गुनगुनाने लगती है—

"मैं मैं मैं मैं, अलबेली, रुमझुम
रुमझुम बाजे घूंघर मोरा···।
मैं अलबेली···।"

[बीच ही में सहसा बाहर बरामदे से आवाज़ आती है।]

आवाज़ : अरे! घूंघर वाली···!···

रीता : (**चौंककर रेडियो को धीमा करती हुई**) रेखा···!

[हँसती हुई रेखा प्रवेश करती है और तेजी से शरारत में डूबी हुई रीता के पास आ जाती है और दोनों प्यार से एक दूसरे की बातों में समा जाती हैं।]

रेखा : वाह ! कितना मज़ा है तुम्हारे गले से लिपटने में !

रीता : (**दूर हटती हुई**) देखो···बस यह मत करो···हाँ रेखा ··!

रेखा : बाँहों में लिपटने से सूट की क्रीज़ नहीं खराब होगी ! ···खैर, फिर भी भई मान गई···वाह !

रीता : क्या बात है···वाह-वाह किए जा रही है ?

रेखा : अरे···"हद्दे आशिक़ी में हुस्न का आना क़यामत है
किसी तड़पाने वाले का तड़प जाना क़यामत है।"

रीता : (**हँसती हुई**)···वाह···वाह···वाह, वाह···!

रेखा : मज़ाक नहीं···तू आज कितना अच्छी लग रही है; बाई गाड, मैं तो डर गई कि कहीं ग़ज़ब न हो जाए···!

रीता : क्यों···?

रेखा : भई !···यह कोहक़ाफ़ की परियों जैसी···बस समझ···जाओ···!

[रीता हँसने लगती है।]

रेखा : बस···तू तो हँसने लगी !···(रुक कर)···जैसे मैं कोई शायरी कर रही हूँ ! ···खुद तो ग़ज़ब कर रही है···सर से पैर तक खुशबू···स्किनमिल्क, शैम्पू, पाउडर, लोशन, स्नो···!

[सहसा रीता हँसकर रेखा को चुप कर देती है।]

रीता : आज तो तुम्हारा बहुत अच्छा मूड है !

रेखा : आज मेरे मूड की पूछती हो ?···बाई गाड, तुम्हारी वर्षगाँठ रोज़ आए···लो मेरी बधाई···मेरी आत्मिक मंगल-कामना (रुक कर) दिल तो···बस कह रहा है कि आज तुमसे मुहब्बत करूँ···! और दुनिया को भूल जाऊँ !

रीता : चुप, बहकती चली जाती है···कहीं गीता जी ने सुन लिया तो···समझती है ?

रेखा : वाह जी !···बड़ी डरने वाली आ गई !···इतना डरती तो क्या,···अच्छा, जाने दो इन बातों को···अच्छा, यह बताओ···ये ब्लाउज़ का सूट कब खरीदा ! सच, बड़ा अपीलिंग है !

रीता : परसों 'फ़ैशन इम्पोरियम' में खरीदा है···बिल्कुल नया-नया उसी दम, बस यही एक सूट 'स्पेसिमेन' के लिए आया था···!

रेखा : गुड लक···(**रुककर मुस्कराती हुई**) और···आज तो शायद फ़ार्म-फ़िट या इन्टरल्यूड स्टाइल की ब्रेसियर्स भी पहनी है···!

रीता : (**बिगड़कर**) देखो रेखा ! शैतानी मत करो···जैसे अपने रबर 'पैडिंग्स' लगाती

है···वैसे सब को समझती है···।

रेखा : अच्छा लो भई···अब कुछ नहीं कहूँगी···ठीक···!

[और चुपके से सोफ़े पर बैठ जाती है।]

रीता : (**मुस्कराकर सामने बैठती हुई**) रेखा !···आज तुम कोई गाना सुना दो···!

रेखा : मैं क्यों सुनाऊँ···मेरी जान ! जिसकी वर्षगाँठ होती है···वह गाता है और तुम्हें तो 'डार्लिंग'···सब कुछ आता है···!

रीता : बहाने करने लगी···!

रेखा : बहाने की बात नहीं···बस तुम्हीं गा दो···जो अभी चुपके से अकेले-अकेले गा रही थी—'मैं···अलबेली···बाजे घूंघर मोरा'

रीता : और तू क्या करेगी ?

रेखा : मैं तब तक यहाँ से रेफ्रीजरेटर तक आइसक्रीम की दौड़ लगाती रहूँगी !

रीता : तो आप सिर्फ यहाँ दौड़ ही लगाने आई हैं !

रेखा : नहीं जी···क्या बातें करती हो···ओह !···मैं तो भूली ही जा रही थी··· (**वैनिटी-बैग से किताब निकालती हुई**) ये लो अपनी वर्षगाँठ पर मेरी भेंट ! सच इस चीज़ को बहुत मेहनत से पा सकी हूँ, बीसों बुकस्टालों को छान डाला··· तब जाके कहीं···!

रीता : (**लेती हुई**) अच्छा,···कौन सी-किताब है यह ?

रेखा : कोई साइंस-फाइंस की किताब थोड़े है···हनुमान-चालीसा है !

[रीता हँसने लगती है।]

रीता : भई ! मैंने सुना कि तुम रात को अकेले चौंकती हो !···कभी-कभी तुम्हें नींद भी नहीं आती···तो मैंने सोचा कि बस···

"नासै रोग हरै सब पीरा,
जो सुमिरै हनुमत बलबीरा !"

[रीता हँसते-हँसते लोट पोट हो जाती है।]

रेखा : अच्छा जी, तो आप हँसती ही रहेंगी···(**रुककर**) अच्छा हँस लीजिए !

रीता : बोलो, तब क्या करूँ ?

रेखा : चलो, पहले कुछ खिलाओ-पिलाओ···

रीता : (**उठती हुई**)···ओ···के···चलो भीतर चलें···!

[दोनों सामने के दरवाज़े से भीतर जाती हैं, क्षण भर कमरा सूना रहता है; रेडियो से अब भी आर्केस्ट्रा पर जयजयवन्ती की धुन आ रही है। सहसा गीता गम्भीर व्यक्तित्व में अपनी सौम्यता और उदासी छिपाए हुए बायें दरवाज़े से कमरे में प्रवेश करती है और सीधे अपने कमरे की ओर जाने लगती है। एकाएक उसकी दृष्टि मेंटलपीस पर रक्खे हुए सुनीत के चित्र पर पड़ती है और वह अवचेतनतः उसे देखती हुई खड़ी हो जाती है और क्षण ही भर के बाद वह एक कड़वी उपेक्षा से

मुँह फेरकर सामने बढ़ना चाहती है तब तक रेडियो की धीमी आवाज में यह रेकार्ड बजने लगता है—

"तुम्हारे बुलाने को जी चाहता है, जी चाहता है।
वफ़ा आज़माने को जी चाहता है···।"

[गीता बीच ही में बढ़कर क्रोध से रेडियो को आफ़ कर देती है।]

गीता : ओह···ये सड़े हुए फ़िल्मी गाने !

[और तेजी से मुड़कर अपने कमरे में चली जाती है। क्षण-भर के बाद हँसती हुई रीता और रेखा बायीं ओर से कमरे में प्रवेश करती हैं।]

रीता : (**आते ही**) अरे ! रेडियो किसने आफ़ कर दिया ?
गीता : (**तेजी से अपने कमरे से निकलकर**) मैंने किया है···क्यों ?
रीता : बजने दीजिए···इसमें क्या हर्ज है ?
रेखा : और आज रीता की वर्षगाँठ भी तो है !
गीता : वर्षगाँठ और फ़िल्मी गाने···! शौक से सुनो···!
रेखा : गीता जी ! आपका रिसर्च-वर्क कैसा चल रहा है ?
गीता : (**बात काटती हुई मेंटलपीस की ओर संकेत कर**) यह सुनीत की तस्वीर यहाँ किसने रक्खी है ?
रीता : मैंने रक्खी है···क्यों ?
गीता : किसलिए रक्खी है ?
रीता : अभी सुनीत बाबू आने वाले हैं !
गीता : तो ?
रीता : ऐसे ही···ऐसे ही रख दी है !
गीता : लेकिन मैं इस तस्वीर को नहीं देखना चाहती···!
रीता : आपकी इच्छा···?
गीता : इच्छा नहीं रीता ! इस तस्वीर को मेरे सामने से दूर कर दो···!

[रीता, गीता को देखती हुई चुप है।]

गीता : क्या सोचती हो ?···तस्वीर को नहीं हटाना चाहती···बोलो···!
रीता : इस तस्वीर से आपको क्या घृणा है ?···यह तो आप ही की तस्वीर है···!
गीता : मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ रीता ? मुझसे बहस मत करो··· (**रुक कर**) तुम मेरे खिलाफ़ इस तस्वीर को यहाँ रखना चाहती हो···बस यही न !

[रीता चुप है।]

गीता : लेकिन यह गन्दी तस्वीर महात्मा बुद्ध और गांधी के 'बस्टों' के बीच नहीं रह सकती।

[बढ़कर मेंटलपीस से गांधी और बुद्ध के 'बस्टों' को नीचे उतार लेती है और अपने स्टडी-टेबुल पर रख देती है ।]

गीता : अब शौक़ से इस तस्वीर को अपनी आँखों में रक्खो···!

रीता : (ताव में आकर) गीता जी···!

गीता : क्या है ! ···(रुक कर) ···इस गन्दी तस्वीर का रहस्य मुझे मालूम है रीता,··· लेकिन मैं इसे आगे नहीं बढ़ने दूँगी !

रीता : आप···आप···मेरे पास भी मेरा आत्मसम्मान है !

गीता : तो ?

रीता : इतनी तीखी बातें करते समय आपको इसका ध्यान रखना चाहिए ।

गीता : तो इस तस्वीर की छाँव में तुम मुझे शिक्षा देने चली हो !

रीता : ख़ैर, आप बड़ी हैं···आप चाहे जो इसका अर्थ लगा सकती हैं !

गीता : बड़ी कह कर तुम मुझे पागल न बनाओ रीता !

रीता : आप तो मुफ़्त में इतना क्रोध करती जा रही हैं !

गीता : यह मुफ़्त नहीं है···मुफ़्त तुम्हारे लिए हो सकता है !

रीता : लेकिन आपको इससे इतनी घृणा क्यों है ?

गीता : मैं बहस नहीं चाहती···!

रीता : फिर क्या चाहती हैं ?

गीता : इन दीवारों से टकराकर अपना सर फोड़ना चाहती हूँ और क्या चाहती हूँ—मैं अभी···डाक्टर पापा से बात साफ़ कर लेना चाहती हूँ कि मुझे इस तरह पागल बनाया जा रहा है ?

[तेज़ी से भीतर चली जाती है ।]

रेखा : (गम्भीरता से) ओह ! माई गाड···हारीबुल···हारीबुल रीता !

रीता : हुँ ! ···न जाने क्या अपने आपको लगाती हैं !

रेखा : लेकिन···भई रीता ! अगर 'इम्पारशियल' हो के सोचा जाए···तो ज्यादती तुम्हारी है !

रीता : क्यों ?

रेखा : तपस्या उन्होंने की और वरदान तूने पा लिया···!

रीता : (बिगड़ कर) रेखा···देखो ताव न दिलाओ, नहीं तो अभी चपत लगा दूँगी, हाँ···!

रेखा : वाई गाड, मंज़ूर है ! लेकिन डबल दावतें देनी पड़ेंगी···एक वर्षगाँठ की और ···एक···अच्छा ख़ैर जाने दो···(रेडियो की ओर बढ़ती है) हुँ···रेडियो पर भी गुस्सा उतार दिया···!

रीता : (रोकती हुई) देखो रेखा, रेडियो मत ऑन करो···जब लोगों को मेरी वर्षगाँठ से इतनी जलन है···तो जाने दो···!

रेखा : अरे जाने भी दो ! ···क़िस्मत हमारे साथ है···जलने वाले जला करें !

...वली

...द्ध के 'बस्टों' को नीचे उतार लेती है और
...]

...वों में रक्खो...!

...तस्वीर का रहस्य मुझे मालूम है रीता,...

...सम्मान है !

...इसका ध्यान रखना चाहिए ;
...आ देने चली हो !
...अर्थ लगा सकती हैं !
...रीता !
...ही है !
...सकता है !

...चाहती हूँ और क्या चाहती हूँ—मैं
...चाहती हूँ कि मुझे इस तरह पागल

...थैंक्स, वेरी...रीबुल रीता !

...सोचा जाए...तो ज्यादती

...तो अभी चपत लगा दूँगी,

...एक वर्षगाँठ की और
...हूँ...रेडियो पर भी

...नों को मेरी वर्षगाँठ

...करें !

रीता : इन दिनों गीता जी को न जाने क्या हो गया है ?...जब देखो तब मुझ पर इसी तरह बरसती रहती हैं !

रेखा : बता दूं !...बुरा तो नहीं मानोगी !

रीता : क़तई नहीं !

रेखा : सुनीत और गीता जी के बीच में तू जो आ गई !

रीता : बाई गाड रेखा ! मैं अपने सर की क़सम खाकर कहती हूँ कि मैं गीता जी के रास्ते में कभी नहीं आना चाहती थी। मैं तुमसे सच कहती हूँ...सुनीत बाबू स्वयं न जाने क्यों उधर से भागकर मेरे सामने आ गए...और बुरी तरह आ गए...फिर मैं मजबूर हो गई !

रेखा : भई ! यही तो मैं भी कह रही हूँ कि ये तो अपनी-अपनी क़िस्मत है !...न चाहने वालों को स्वर्ग मिलता है और तपस्या करने वाले बैठे ही रह जाते हैं।

रीता : वैसे मैं इस चीज़ को पसंद नहीं करती थी। लेकिन परिस्थितियों ने इस तरह माहौल क्रियेट किया कि...!

[सहसा पृष्ठभूमि में किसी के आने की आहट के साथ आवाज़ आती है।]

आवाज़ : गीता !...ओ गीता !

रीता : **(बढ़कर)** जी आइए।

[नीना का प्रवेश, बिल्कुल गीता जैसी...लेकिन दोनों में अन्तर सिर्फ़ इतना ही है कि जैसे नीना कुछ सामाजिक दीवारों को तोड़कर एक नई इमारत के सामने खड़ी है; इसके जीवन के दृष्टिकोण निश्चित हो गए हैं लेकिन गीता अभी जीवन के सक्रान्ति-बिन्दु पर खड़ी है।]

नीना : **(कमरे में प्रवेश करके नमस्कार आदि करते हो)** गीता कहाँ है ?

रीता : जी...पता नहीं...!

नीना : अच्छा... **(सोचने लगती है)** लेकिन इस समय तो घर में होना चाहिए, आज तुम्हारी वर्षगाँठ है न !

रीता : जी...है तो...लेकिन...गीता जी तो मुझसे बहुत नाराज़ हैं !

नीना : क्या बताऊँ, यही तो उसकी कमज़ोरी है ?

रेखा : मैं तो इसे 'काम्पलेक्स' कहूँगी...!

रीता : खैर...एक ही बात है !

रेखा : **(मुड़ती हुई)**...अच्छा रीता !...अब मैं जा रही हूँ...!

रीता : जा रही हो ! रुको, थोड़ी देर और...!

रेखा : नहीं...फिर कल क्लास में मुलाक़ात होगी !...थैंक्यू...! **(जाती हुई)** गुड नाइट...! **(प्रस्थान)**

रीता : चलिए...नीना जी !...डाइनिंग रूम में...कुछ...!

नीना : नहीं,...थैंक्यू भाई !...बस गीता से मिलने आ गई !

रीता : उनसे तो भीतर ही भेंट होगी...!

नीना : कोई बात नहीं···अभी मिल लूँगी।

[बढ़कर गीता के स्टडी टेबुल की ओर जाती है और उस पर रक्खी हुई नई पुस्तकों को देखने लगती है, क्षण भर के अन्तराल के बाद बाहर पोर्टिको में कार रुकने की आवाज़ होती है, रीता एकाएक बाहर दरवाजे की ओर बढ़ती है।]

नीना : (**जिज्ञासा से**) कौन आ रहा है ?

रीता : पता नहीं कौन है ?

[सहसा डाक्टर सुनीत का प्रवेश—उम्र अधिक से अधिक 25 वर्ष, गौर वर्ण, स्वस्थ भरा हुआ मुख, बिल्कुल अप-टू-डेट !···हाथ में ताज़े फूलों के गुच्छे का प्रेज़ेन्ट और सम्पूर्ण व्यक्तित्व से बनावट और गर्व टपक रहा है।]

सुनीत : (**प्रवेश करते ही रीता के नमस्ते के साथ**) हलो रीता !···कांग्रेचुलेशन्स··· ओह ! नीना !···आप भी···गुड ईवनिंग !

नीना : (**किताबों के पन्नों में देखती हुई**) नमस्ते !

सुनीत : (**फूलों के गुच्छे भेंट करता हुआ**) लो रीता ! विशिंग आल हैपीनेस···!

रीता : (**लेती हुई**) थैंक्यू !···आइए बैठिए···!

सुनीत : (**सोफ़े पर बैठता हुआ**)···आइए···मिस नीना जी !···इधर बैठिए···!

[नीना हाथ में एक किताब लिए हुए आती है और सामने बैठ जाती है।]

सुनीत : कहिए···नीना जी, आप आनन्द से तो हैं !

नीना : (**किताब के पन्ने उलटती हुई**)···जी···सब ठीक है···कहिए···आपकी डाक्टरी कैसी चल रही है ?

सुनीत : (**बीच की टेबुल पर 'वाज' में सजे हुए फूलों को स्पर्श करते हुए**) 'इट···इज आल ओ० के०' (**रुक कर**) रीता···आज तो यहाँ बड़ी खामोशी है !···क्या बात है ?···आज तो पूरे बँगले में मीठी आवाज़ गूँजनी चाहिए···!

[रीता फूल के गुच्छे को मैंटलपीस पर सुनीत के चित्र के सामने रख देती है।]

सुनीत : (**प्रसन्नता से**) थैंक्यू···!···अच्छा, अब इधर आ जाओ···मेरे सोफ़े पर काफ़ी जगह है !

[रीता मुस्कराती हुई उसी सोफ़े पर बैठ जाती है।]

नीना : (**देखती हुई**) आज तो आप लोग एक साथ बैठे हुए बहुत अच्छे लग रहे हैं !

सुनीत : क्यों रीता···?

रीता : हो सकता है !

सुनीत : (**सहसा पेंट की दाईं पाकेट से कुछ निकालते हुए**) 'इट इज लवली अकेज़न'···! लो रीता···अपना दायाँ हाथ मुझे दो···(**हाथ पकड़कर उँगली में एक हीरे की अँगूठी पहनाते हुए**) 'माई हम्बुल प्रेज़ेन्ट आन योर हैप्पी बर्थ डे' ! ····'विश यू आल गुड लक'···!

रीता : (शरमाकर अँगूठी देखती हुई) थैंक्यू···लेकिन इसकी क्या जरूरत थी ! आप का भेंट किया हुआ फूल ही काफ़ी था।

सुनीत : भई ये तो अपनी-अपनी खुशी है !···क्यों मिस नीना !

नीना : (पन्ने उलटती हुई) जी···बिल्कुल ठीक···मैंने एक जगह पढ़ा है कि 'शेली' जब किसी लड़की को नई अँगूठी भेंट करता था तो न जाने क्यों सहज रूप में उसकी आँखों में आँसू उमड़ आते थे, पता नहीं, इसके क्या माने···?

सुनीत : मैं आपको कैसे समझाऊँ !···'दैट इज़ टोटली बायालॉजिकल ट्रूथ', एक पोयट में यह चीज अच्छी तरह जाहिर हो जाती है, और एक डाक्टर इसे···मेरे कहने का मतलब···डाक्टर इज़ डाक्टर···क्यों···रीता ? तुम भी तो साइंस पढ़ती हो !

रीता : क्या पता···! 'शेली' की बात···लिटरेचर वाले जानें !

सुनीत : (हँसता हुआ) ठीक कहती हो···बिल्कुल ठीक···इसे लिटरेचर वाले जानें।

[सहसा भीतरी दरवाज़े से विक्षिप्त-सी गीता कमरे में दाखिल होती है और तेज़ी से अपने कमरे की ओर मुड़ती है।]

नीना : (पुकारती हुई) अरे गीता !

गीता : (रुककर) ···अरे ! तुम कब आई ?

सुनीत : नमस्ते गीता जी !

गीता : नमस्ते ! नीना···तुम कब आई ?

नीना : अभी तो आई···आओ बैठो···कहाँ···किस परेशानी में हो ?

गीता : (मुड़ती हुई) ···आओ बाहर लान में चलें !

सुनीत : अरे !···आइए··दो मिनट बैठिए भी तो सही !

नीना : हाँ, आओ न गीता !···अभी चलते हैं !

[गीता धीरे से नीना के साथ सोफे पर बैठ जाती है और नीना के हाथ से किताब लेकर पन्ने पलटने लगती है।]

सुनीत : (शिष्टता से) कहिए गीता जी !

गीता : पूछिए !

सुनीत : अभी मैं आपको याद ही कर रहा था···और नीना जी भी···!

गीता : कहिए, बात क्या है ?

सुनीत : आपकी तबीयत कैसी है ?

गीता : क्यों···मेरी तबीयत तो बिल्कुल ठीक है !···कहिए, आपको इसमें कुछ एतराज़ है ?

सुनीत : मैंने सुना था कि आपकी तबीयत पिछले दिनों से कुछ···खैर···।

[गीता अपनी फटी-फटी आँखों से एक बार सामने देखकर फिर शून्य में देखने लगती है। इन निगाहों में एकसाथ फूल और शोले दोनों बरस रहे हैं।]

सुनीत : वैसे मेरे लायक़ कोई सेवा हो···मैं हमेशा हाज़िर हूँ। ईश्वर ने मुझे यहीं असिस्टेन्ट सर्जन भी बना दिया है···!

गीता : (क्रोध से) आप ये क्या फ़िज़ूल की बातें कर रहे हैं ?

सुनीत : सिर्फ़ मैं आपकी तबीयत का हाल···।

गीता : जी···मैं बिल्कुल ठीक हूँ···स्वस्थ···!

सुनीत : लेकिन वैसे तो आप बहुत उदास लग रही हैं; आप लोग भी देखिए···!

गीता : आपका ख़याल ग़लत है ! ···मैं आपसे कहीं ज़्यादा खुश हूँ···बहुत खुश···!

सुनीत : लेकिन मुझे तो नहीं लगता···!

गीता : (तेज़ी से) तो आपको शायद यह लग रहा है कि आपको देखकर गीता प्रेम के आँसुओं से रोने लगेगी !···तड़पेगी, माफ़ियाँ माँगेगी···आपके पाँव पड़कर अपनी ग़लतियों को पूछने लगेगी, लेकिन मेरी ओर से ऐसी कोई बात नहीं है···मैं बहुत खुश हूँ···न मुझे रोना आता है···न तड़पना···!

सुनीत : अरे ! आप तो···नाराज़ हो गईं !

गीता : आपकी फ़िज़ूल बातों पर कोई भी नाराज़ हो सकता है; मुफ़्त में मुझे मरीज़ बना रहे हैं ! उदास साबित कर रहे हैं···और दूसरी ओर अपने डाक्टरपने का ढिंढोरा पीट रहे हैं कि मैं···सिविल हास्पिटल का असिस्टेन्ट सर्जन हूँ···!

सुनीत : भाई ! आप चाहे जो इसका मतलब लगाइए···वैसे मैं अपने शब्दों को वापस ले रहा हूँ !

नीना : गीता ! तुम तो बेकार में इस तरह परेशान हो जाती हो···डाक्टर साहब ने तो ऐसे ही हालचाल के सिलसिले में पूछा था···!

गीता : तुम नहीं समझती नीना !···ये लोग चाहते हैं कि औरत हर हालत में इनसे दया की भीख माँगती फिरे और ये उस पर दया दिखाते फिरें···! पुरुषों को यह भी एक तरह का नशा है···नीना···!

सुनीत : न जाने क्यों, आप इस तरह बिगड़ रही हैं, मेरे पूछने का लेकिन यह बिल्कुल मतलब नहीं था···!

गीता : ख़ैर···(रुककर नीना से) चलो अन्दर चलें···कहाँ बिठा दिया तूने ?

सुनीत : मुझे माफ़ कीजिएगा गीता जी ! 'आई एम रियली वेरी सारी'···!

[सहसा भीतर से डाक्टर पापा की आवाज़ आती है।]

आवाज़ : (बुलाती हुई) अरे डाक्टर साहब !···सुनीत बाबू···!

सुनीत : (एकाएक बढ़ते हुए) जी डाक्टर साहब···आया···!

[जल्दी से भीतर जाते हैं, क्षण-भर बाद ही रीता भी उठकर दरवाज़े की ओर बढ़ने लगती है।]

गीता : (तेज़ी से) रीता···तुमसे मुझे कुछ बातें करनी हैं !

[रीता तमतमायी हुई वहीं रुक जाती है।]

नीना : आओ बैठ जाओ···रीता···!

रीता : (घूमकर)···कहिए, क्या बात है ?

गीता : अगर उसका जवाब दो तो कहूँ···नहीं तो शौक़ से अपने रास्ते ही जा सकती हो !

रीता : (घूमती हुई) ख़ैर···तो मैं जा रही हूँ।

[जाने लगती है। सहसा गीता आवेश में बढ़कर उसे रोक लेती है।]

गीता : नहीं तुम्हें मेरी बात सुननी होगी !

नीना : (बीच ही में)···हाँ, हाँ···रीता ! आओ बैठो···इसमें ऐसी क्या बात है ? ···गीता···फिर भी तुम्हारी बड़ी बहन है !

गीता : (बीच ही में) नीना ! हाथ जोड़ती हूँ···मुझसे तुम इस रिश्ते को न जोड़ो···

रीता : आख़िर आप क्या चाह रही हैं ?

गीता : कुछ नहीं···बस एक जवाब चाहती हूँ !

रीता : (बिगड़कर) बड़ी जवाब वाली बनती हैं, आप तो ज़रा-ज़रा-सी बात पर इतना छू जाती हैं, लेकिन इसी तरह औरों को भी तो सोचना चाहिए···सबको चोट लगती है···!

गीता : इस बात को तुम्हें सोचना चाहिए···मैंने तो इसका ख़ूब अनुभव किया है !

रीता : क्या सोचा है आपने ?···यह कहाँ की शराफ़त थी कि घर आए हुए मेहमान डाक्टर सुनीत बाबू की हैसियत पर आप इस क़दर बरस पड़ीं।

गीता : वह मेरी ग़लती है रीता ! उसके लिए मैं तुमसे माफ़ी चाहती हूँ···!

रीता : उन्होंने क्या 'फ़ील' किया होगा !

गीता : (झुँझलाकर)···मेरे सर की क़सम···इस बात को यहीं ख़त्म कर दो रीता !

[सब चुप हो जाते हैं।]

नीना : गीता ! तुम तो अजीब पागल हो !···क्या इस तरह झुँझलाती रहती हो ? ···इन बातों में रीता का क्या दोष ?

रीता : ख़ैर···आप कहना क्या चाहती हैं ?

गीता : सिर्फ़ एक बात···!

नीना : (बीच ही में उठती हुई) अच्छा भाई गीता ! मैं तो चली···!

गीता : बैठो···बस थोड़ी देर और बैठो···तुम साक्षी रहोगी···!

नीना : (बैठती हुई) क्या साक्षी-वाक्षी की बेकार भावुकतापूर्ण बातें करती हो ?···मैं तो कभी-कभी बोर हो जाती हूँ तुमसे···!

गीता : नीना···तुम शान्त रहो···ये बातें ही कुछ अजीब हैं !

रीता : (बीच ही में) जी कहिए···मुझसे आप क्या कहना चाहती हैं ?

गीता : लेकिन सोच लो रीता ! तुम्हें पूरी ईमानदारी से इसका जवाब देना होगा !

रीता : 'प्लीज़ डोन्ट इन्सल्ट मी' ! पहले आपकी बात तो सुनूँ···!

गीता : सुनीत और तुममें प्रेम है ?

रीता : (**आग्नेय दृष्टि से**) मुझसे ऐसी बातों के पूछने के पहले आपको शरम खानी चाहिए···!

गीता : समझ लो···मेरे शरम की मौत हो गई ! अब बताओ···!

रीता : (**आवेश में बढ़ती हुई**) 'आई कान्ट टालरेट इट'···!···मैं अभी डाक्टर पापा से कहती हूँ कि मेरा क्यों इस तरह गला घोंटा जा रहा है !

गीता : (**रोकती हुई**) भागो नहीं रीता !···(**संकेत कर**) तुम्हें इस तस्वीर और फूल के गुच्छे की क़सम ! तुम्हें मेरी बात का जवाब देना होगा !

रीता : (**क्रोध में**) बट आई कान्ट···आई कान्ट ! आई हेल्पलेस···!

गीता : (**रोकती हुई**) नहीं···तुम्हें···तुम्हारी इस नई अँगूठी की क़सम···तुम्हें जवाब देना होगा !

रीता : आप अपनी कमज़ोरियों और सीमाओं को देखिए···मुझसे दुश्मनी न कीजिए !

गीता : (**थकी हुई वाणी से**) मेरी आँखों में देखो रीता ! मैं तुम्हारी दुश्मन नहीं···मैं सिर्फ़ अपनी बात का तुमसे जवाब चाहती हूँ···बस···!

रीता : लेकिन यह कोई बात नहीं है; इट इज़ इन्सल्ट ! मैं अभी पापा से···!

गीता : (**सामने से नीना की ओर लौटती हुई उपेक्षा से**)···जाओ···शौक़ से जाओ···और मेंटलपीस पर रक्खे हुए इन फूलों के गुच्छों को भी लेती जाओ···

[रीता अन्दर चली जाती है।]

गीता : मैं भी तो डाक्टर पापा की बेटी हूँ !

[और गीता खड़ी-खड़ी मेंटलपीस की ओर देखने लगती है; नीना अपने सोफ़े से उठती हुई एकाएक हँस पड़ती है।]

गीता : (**घबड़ाकर**) क्या बात है नीना ?···क्यों हँस रही हो ?

नीना : (**हँसी बन्द करती हुई**)···ऐसे ही हँस पड़ी···मुझे एक फ्रेंच नावेल का सीन याद आ गया···एक ठण्डे पहाड़ का सीन है···हीरो, जॉन्द्रे गोद में अपनी बीमार प्रेमिका को लिए हुए सामने सेनीटोरियम की ओर जा रहा है। जॉन्द्रे ख़ामोश है···और वह औरत किसी दर्द से कराह रही है और वह हर सातवें क़दम पर छटपटाती हुई जॉन्द्रे से पूछती जाती है कि बताओ मेरा जॉन्द्रे कहाँ है ? ···मेरा जॉन्द्रे कहाँ है ?···जल्दी से मुझे उसके पास ले चलो···। और जॉन्द्रे की ख़ामोश आँखों से आँसू टपकते रहते हैं !

[हँसने लगती है।]

गीता : तो इसमें हँसने की क्या बात है ?···यह तो बहुत ट्रेजिक सीन है !

नीना : है तो···लेकिन मुझे उस बेवक़ूफ़ प्रेमिका पर हँसी आती है ! और सच पूछो तो मैं दुनिया की उन तमाम औरतों से घृणा करती हूँ जो किसी पुरुष की मुहब्बत में

बीमार पड़ती हैं···घुलती हैं !

गीता : क्यों ?

नीना : भई, इसका मुझे पता नहीं क्यों ?···लेकि
आती है !

गीता : तो क्या मैं भी तुम्हारी हँसी में आ सकती हूँ

नीना : जी···क्यों नहीं···आपका तो 'लव काम्प्लेक्स

गीता : कैसे ?

नीना : जब आपके सामने सारी बातें ज़ाहिर हैं···सु
का सुनीत की ओर···सब बातें···सब रिश्ते···
होने की क्या ज़रूरत ?···तुम्हारे उस प्रश्न क

गीता : बस, मैं उसके मुँह से एक बार सुनना चाहती

नीना : और जो दुनिया की देखती हुई आँखें कह र
है।

गीता : लेकिन मुझे डर है कि कहीं सुनीत रीता को
करने के लिए पूछ रही थी !

नीना : लेकिन अब इन बातों से तुम्हें क्या मतलब ?

गीता : वैसे मतलब तो मेरा कुछ नहीं है !

नीना : फिर क्यों अपनी कमज़ोरियों से जल रही हो
आज भी अगर आप उन्हीं पंगु परम्पराओं
भारतीय ललना हैं···तो घुलिए···झूठे च
किसी सेनीटोरियम में घुलिए और अपने
कीड़ों में खिलाइए···

गीता : ऐसा न कहो नीना !···मैं इन बातों
मैं सुनीत से कितनी कटु हूँ !

नीना : यह सब ग़लत है !···तुम्हारी
धीरे सुलग रही है···तभी तुम इस
हो ! और···!

गीता : नीना तुम मुझे ग़लत समझतीं

नीना : माफ़ कीजिएगा यह सब
है गीता !···इस देश में
जाती है कि औरत कमज़ो
है···औरत का अलग

गीता : लेकिन अब तो मेरी

नीना : तुम्हारी झुंझलाह
यक़ीन नहीं···तुम
···उसी जगह

बीमार पड़ती हैं···घुलती हैं !

गीता : क्यों ?

नीना : भई, इसका मुझे पता नहीं क्यों ?···लेकिन मुझे ऐसी बातों पर अक्सर हँसी आती है !

गीता : तो क्या मैं भी तुम्हारी हँसी में आ सकती हूँ···।

नीना : जी···क्यों नहीं···आपका तो 'लव काम्प्लेक्स' और भी भोंडा है !

गीता : कैसे ?

नीना : जब आपके सामने सारी बातें जाहिर हैं···सुनीत का रीता की ओर और रीता का सुनीत की ओर···सब बातें···सब रिश्ते···तो फिर आपको इस तरह पागल होने की क्या ज़रूरत ?···तुम्हारे उस प्रश्न का रीता क्या जवाब देती ?

गीता : बस, मैं उसके मुँह से एक बार सुनना चाहती थी···और फिर···!

नीना : और जो दुनिया की देखती हुई आँखें कह रही हैं; उस पर तुम्हें सन्तोष नहीं है।

गीता : लेकिन मुझे डर है कि कहीं सुनीत रीता को भी न धोखा दे ! मैं उसे आगाह करने के लिए पूछ रही थी !

नीना : लेकिन अब इन बातों से तुम्हें क्या मतलब ?

गीता : वैसे मतलब तो मेरा कुछ नहीं है !

नीना : फिर क्यों अपनी कमज़ोरियों से जल रही हो ?···(**रुककर**) इतना पढ़-लिखकर आज भी अगर आप उन्हीं पंगु परम्पराओं और झूठी मर्यादाओं में जकड़ी हुई भारतीय ललना हैं···तो घुलिए···झूठे चरित्र के नाम पर, भोंडे प्रेम के नाम पर किसी सेनीटोरियम में घुलिए और अपने अच्छे-ख़ासे स्वास्थ्य को टी० बी० के कीड़ों से खिलाइए···

गीता : ऐसा न कहो नीना !···मैं इन बातों से ऊपर उठ आई हूँ···तूने देखा भी तो, मैं सुनीत से कितनी कटु हूँ !

नीना : यह सब ग़लत है !···तुम्हारी आत्मा में अब भी वह प्रेम की ज़हरीली गैस धीरे-धीरे सुलग रही है···तभी तुम इस तरह उदास रहती हो; सूफ़ी बनती जा रही हो ! और···!

गीता : नीना तुम मुझे ग़लत समझती हो; आई हेट हिम सिन्स···!

नीना : माफ़ कीजिएगा यह सब बाहरी प्रतिक्रिया है···लेकिन इसमें तुम्हारा क़सूर नहीं है गीता !···इस देश में जन्म से ही औरत को सिखाया जाता है···किताबें पढ़ाई जाती हैं कि औरत कमज़ोर है, सहनशीलता उसका सौंदर्य है; पुरुष उसका ईश्वर है···औरत का अलग कोई अस्तित्व ही नहीं है···!

गीता : लेकिन अब तो मेरी ओर से ऐसी बात नहीं···मैं बहुत आगे बढ़ आई हूँ !

नीना : तुम्हारी झुँझलाहट और रीता के प्रति तुम्हारे व्यवहार को देखकर मुझे इसका यक़ीन नहीं···तुम अपने शरीर से चाहे आगे बढ़ आई हो···लेकिन तुम्हारी नारी···उसी जगह भेड़ों की तरह सर झुकाये खड़ी है जहाँ तुम्हें सुनीत ने पहला प्यार

किया होगा। यह तुम्हारी ही कमजोरी नहीं···यही औरतों की गन्दगी है ! जहाँ एक बार कहीं लगाव हुआ वहीं कैदी बन गईं। पुरुष ऐसी दीवारों को झट से बनाता है और अपना काम निकालकर उन दीवारों को तोड़ता हुआ न जाने कितनी दूर भाग जाता है···लेकिन···हम तो भेड़ हैं···गऊमाता !···जहाँ एक बार खड़ी हुईं···बस खड़ी रह गईं !

[सहसा पृष्ठभूमि में डाक्टर पापा के आने की आहट होती है। वे बाईं ओर से 'गीता', 'गीता' पुकारते हुए आते हैं। गीता अजीब हालत में नीना को देखती हुई चुप खड़ी रहती है।]

पापा : (**प्रवेश करते ही**) अरे गीता !

गीता : क्या है पापा जी ?

पापा : बेटी ! तुमसे कुछ बातें करनी हैं···।

गीता : मुझे भी करनी हैं।

नीना : (**बीच ही में**) अच्छा गीता, मुझे आज्ञा दो···!

पापा : मेरे आते ही चल पड़ी ?

नीना : नहीं डाक्टर साहब···काफ़ी देर से यहाँ हूँ !

गीता : थोड़ी देर और बैठो न !

नीना : नहीं·· फिर मिलेंगे···और एक बात सुनो···(**गीता से धीरे से**) मेरी बातों का बुरा न मानना···!

गीता : कैसी बात करती हो !···सच तुम्हारे दृष्टिकोण में आज की भँवर में पड़ी हुई नारी के लिए···नये जीवन-दर्शन की ओर नये संकेत हैं···!

नीना : (**जाती हुई**) अच्छा नमस्ते···! (**प्रस्थान**)

पापा : (**कोच पर बैठते हुए**) आओ मेरे पास बैठो गीता !

गीता : (**खड़ी-खड़ी**) ठीक है···रीता आपके पास गई थी ?

पापा : हूँ···और तुम्हारा बचपना मुझे अच्छा नहीं लगा···!

गीता : क्यों ?

पापा : बात यह हुई कि मैं सुनीत के साथ अपने ड्राइंग रूम में बैठा था, तुम्हीं लोगों से सम्बन्धित घर-गृहस्थी की बातें चल रही थीं···अभी एक तमतमायी हुई रीता मेरे पास पहुँची और सुनीत के सामने तुम्हारा उलहना देकर बेचारी रोने लगी···मैं तो अजीब 'सिचुएशन' में पड़ गया···

गीता : रीता कहाँ है ? उसे भी ज़रा बुला लीजिए···!

पापा : सुनीत उसे लेकर ज़रा 'किंग्सवे' गया है···रीता बहुत परेशान थी···।

गीता : (**उदासी से**) 'किंग्सवे'···!

पापा : बस, अभी वे लौट ही रहे होंगे···

गीता : खैर···मैं तो उससे एक मामूली-सी बात पूछ रही थी···और···!

पापा : वो तो सब ठीक है···लेकिन तुम्हें तो सुनीत का ख़याल रखना चाहिए···वह तो मेहमान से भी बढ़कर है !

गीता : यह आप मुझसे कह रहे है ?

पापा : और किससे कहूँ ! ···ये अपने घर की बातें हैं···अपना समझ-बूझकर···आखिर ···और फिर तो···तुम दोनों···सगी बहन हो···एक तरह···!

गीता : आप कहना क्या चाहते हैं पापाजी ?

पापा : बस यही कि किसी भी तरह हमें सुनीत को नाखुश नहीं करना है ।

गीता : **(आवेश में)** और किसी भी तरह सुनीत की छाया इस बँगले में न आने पाए, ···यही मुझे आपसे कहना है !

[एकाएक डाक्टर पापा बढ़कर गीता के मुख पर अपना हाथ रख देते हैं ।]

पापा : **(डरकर)** चुप···नादान कहीं की ? तुम और ऐसी बात···? मुझे तुमसे सुनीत के प्रति ऐसी उम्मीद न थी···!

गीता : **(परेशान होकर)** उम्मीदों की चर्चा मत चलाइए पापा जी, मेरा सर चकरा रहा है !

पापा : ऐसी बात ?

गीता : जी हाँ···बिल्कुल सच कह रही हूँ ! और मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आप रीता को भी मना कर दीजिए···!

पापा : मैं किसी को भी मना नहीं कर सकता···तुम सब समझदार हो···सोचो, मैंने तुम्हें कभी मना किया था ?

गीता : लेकिन आपने क्यों नहीं मना किया···आप मना करते,···आपने तो दुनिया देखी है !

पापा : परेशान न हो बेटी···इट इज़ आल गुड !

गीता : नथिंग पापा ! ···सुनीत की छाया···तक ठीक नहीं···!

पापा : कैसी पागलों की तरह बातें कर रही हैं ?···तू मुझे जीने देगी कि नहीं···!

गीता : **(जैसे रो रही है)** और···और···।

[शेष शब्द जैसे उसके सूखते गले में जम जाते हैं ।]

पापा : कभी-कभी ज़मीन पर उतरकर बातें किया करो !

गीता : मैं सख्त ज़मीन पर हूँ···अभी मैं रीता को कुछ समझाना चाहती हूँ !

पापा : क्या समझाना है ! ···वह तुमसे शायद बात तक न करे !

गीता : वह सब कुछ सही ! फिर भी मैं गीता के कानों में सिर्फ़ एक बात डालना चाहती हूँ !

पापा : क्या बात है ?

गीता : कि सुनीत अच्छा आदमी नहीं···है, वह तुम्हें धोखा देगा···!

पापा : लेकिन रीता इसे कभी नहीं मान सकती···वह उसकी बहुत तारीफ़ करती

है ! ···पहले जितना तुम किया करती थी···!

गीता : तभी तो मैं पागल हो रही हूँ पापा ! कि जो बात मेरी ओर से ग़लत साबित हुई है वही एक दिन उसकी भी तरफ़ से टूटेगी···! और इसका नतीजा बेहद बुरा होगा···?

पापा : कुछ बुरा नहीं होगा !

गीता : आप कहाँ हैं पापा ? ···मेरी बात मानिए···!

पापा : मैं कभी नहीं मान सकता···सुनीत कितना अच्छा लड़का है; इतनी कम उम्र में असिस्टेन्ट सर्जन है···लाखों नवजवानों में एक···! ···और सोचो मैं एक रिटायर्ड सिविल सर्जन हूँ और···मेरे सामने दो सयानी लड़कियाँ हैं !

गीता : तो···!

पापा : तुममें से किसी की भी शादी उसके साथ हो जाए, मुझे खुशी है !

गीता : (**चीखकर**) पापा !

पापा : सुनीत और रीता···रीता और सुनीत···

गीता : (**पीड़ा से मानो रोकर**) पापा !

पापा : दोनों एक-दूसरे को पसन्द करते हैं···और···

[गीता सहसा बढ़कर मज़बूती से पापा को पकड़ लेती है और उनके मुँह को देखने लगती है ।]

पापा : (**गीता की पीठ पर हाथ फेरते हुए**) न जाने तुममें और सुनीत में क्यों इस तरह का झगड़ा हो गया ? ···तुम दोनों एक-दूसरे को कितना प्यार करते थे !

गीता : (**एकाएक पापा से दूर हटती हुई, क्रोध से**) मत इन बातों को बकिए पापा जी, नहीं तो···नहीं तो···!

[आवेश में काँपती हुई पीछे हटने लगती है ।]

पापा : (**उसकी ओर बढ़ते हुए**) गीता ! क्या हो गया तुम्हें···? सच, मुझे खुद विश्वास था कि एक दिन सुनीत के साथ तुम्हारी शादी होगी !

गीता : (**पीछे हटती हुई**) मेरी शादी कभी नहीं होगी ! ···कभी नहीं होगी !

पापा : (**चीखकर**) गीता !

[गीता पीछे मुड़कर जल्दी से अपने कमरे में चली जाती है और क्रोध से दरवाज़े को भीतर से बंद कर लेती है ।]

पापा : (**बंद दरवाज़े पर दस्तक देते हुए**) गीता ! गीता बेटी ! ···दरवाज़ा तो खोल !

[डाक्टर साहब उसी तरह पुकारते रह जाते हैं, पर भीतर से कोई आवाज़ नहीं आती । वे उदासी से पीछे लौटते हैं···और सर झुकाए हुए बायें दरवाज़े से चुपचाप चिन्तित भीतर चले जाते हैं । क्षण-भर के लिए कमरा सूना रहता है । सहसा

पृष्ठभूमि में सुनीत और रीता
कमरे में प्रवेश करते हैं ।]

सुनीत : (**प्रवेश करते ही**) तुम्हारे
रीता : (**हँसती हुई**) ख़ामोशी तो
सुनीत : लेकिन फिर भी···अच्छा···
पूछो क्यों ?
रीता : जी···बताइए !
सुनीत : एक तुम्हारी वर्षगाँठ···और
[दोनों हँसते हैं ।]
सुनीत : अच्छा···इसी खुशी में···
रीता : जी···जाने भी दीजिए···
सुनीत : उन्हें सोचने दो···दुनिया
हैं ! हम तो बस···डाक्टर
करते है···और तुम भी तो
रीता : (**हँसती हुई**) तभी देखिए
हुआ है !
सुनीत : 'थैंक्यू वेरीमच' ! (
बाहर टहलने गई क्या ?
रीता : हो सकता है···लेकिन
क्यों···?
सुनीत : हैं···नहीं···थीं···कभी !
रीता : और अब क्या बात हो गई
सुनीत : (**मस्ती से**) हटाओ
रीता : नहीं, देखिए टालिए न
सुनीत : क्या करोगी जानकर
लेकर उनसे अलग हुआ
रीता : मुझे भी बता दीजिए
सुनीत : वैसे गीता···मेरे
वंडरफ़ुल' ! लेकिन···
'फ़िज़ीशियन है'···!
रीता : जी···!
सुनीत : तो बस समझ लो
रीता : नहीं देखिए···यह
सुनीत : बता दूँ···लेकिन
रीता : जी, कभी नहीं

पृष्ठभूमि में सुनीत और रीता की सम्मिलित हँसी उठती है और दोनों बाहर से कमरे में प्रवेश करते हैं।]

सुनीत : (**प्रवेश करते ही**) तुम्हारे कमरे में आज बहुत खामोशी है रीता !

रीता : (**हँसती हुई**) खामोशी तो नहीं है !···देखिए हम लोग हँस रहे हैं !

सुनीत : लेकिन फिर भी···अच्छा···ठीक, आज मैं अपने बँगले में खुशियाँ मनाऊँगा···पूछो क्यों ?

रीता : जी···बताइए !

सुनीत : एक तुम्हारी वर्षगाँठ···और हमारा 'इंगेजमेन्ट' ! दोनों हाथ में चिराग···!

[दोनों हँसते हैं।]

सुनीत : अच्छा···इसी खुशी में···कम से कम रेडियो तो 'ऑन' कर दो !

रीता : जी···जाने भी दीजिए···गीता जी अभी सोचने लगेंगी कि···!

सुनीत : उन्हें सोचने दो···दुनिया में एक चौथाई आदमी सिर्फ़ इसीलिए बनाए गए हैं ! हम तो बस···डाक्टर आदमी···काटने-छाँटने···देखने-सुनने में विश्वास करते हैं···और तुम भी तो एम० एस-सी० बायोलोजी में हो···!

रीता : (**हँसती हुई**) तभी देखिए···मेंटलपीस पर आपकी तस्वीर पर फूल चढ़ाया हुआ है !

सुनीत : 'थैंक्यू वेरीमच' ! (**रुककर**)···तुम्हारी गीता जी शायद नीना के साथ कहीं बाहर टहलने गई क्या ?

रीता : हो सकता है···लेकिन मेरी गीता जी···आपकी भी तो···आपकी भी तो हैं···क्यों···?

सुनीत : हैं···नहीं···थीं···कभी !

रीता : और अब क्या बात हो गई ?

सुनीत : (**मस्ती से**) हटाओ इन बातों को···बोलो सेकेण्ड शो चलोगी ?

रीता : नहीं, देखिए टालिए नहीं···बाई गाड बता दीजिए···!

सुनीत : क्या करोगी जानकर···बस समझ लो कि···मैं एक बहुत ईमानदार पहलू को लेकर उनसे अलग हुआ हूँ !

रीता : मुझे भी बता दीजिए···!

सुनीत : वैसे गीता···मेरे और अपने प्रति···विचारों और भावों में···'शी इज़ वंडरफ़ुल' ! लेकिन···भाई डाक्टर आदमी के लिए यही चीज़ें तो नहीं हैं···वह तो 'फ़िज़ीशियन है'···!

रीता : जी···!

सुनीत : तो बस समझ लो···!

रीता : नहीं देखिए···यह तो बात पूरी नहीं हुई !

सुनीत : बता दूँ···लेकिन कभी गीता से कहना नहीं···उसे बिलकुल नहीं मालूम है !

रीता : जी, कभी नहीं कहूँगी···!

सुनीत : तुम्हें याद होगा···लास्ट इयर गीता सीरियसली टायफ़ायड से बीमार हुई थी न !

रीता : जी !

सुनीत : बस, उस बुरी बीमारी ने तो उसे बरबाद ही कर दिया ग़ौर से देखो···तब से उसकी दाईं आँख कुछ टेढ़ी हो गई है और उसमें 'सेक्स-अपील' तो कुछ रही ही नहीं !

रीता : (**जैसे चीख उठती है**) सच !

सुनीत : हाँ···ईश्वर की क़सम, मैं सच कहता हूँ ।

[सहसा दाईं ओर कमरे में कुछ गिरकर टूटने की आवाज़ आती है और उसी आवाज़ के साथ-साथ झटके से गीता का दरवाज़ा खुलता है और गीता आवेश में अपने टूटे शीशे को लिए हुए बाहर आती है ।]

गीता : (**क्रोध की आग में जलती हुई**) सड़ती हुई इन्सानियत के कीड़े ! ज़रा अपने ईश्वर से डरो···।

[इसके साथ ही साथ वह क्रोध से अपने टूटे शीशे को मेंटलपीस पर मारती है और सुनीत की तस्वीर टूट जाती है ।]

गीता : इस फूटती हुई तस्वीर से पूछो···सुनीत···तुम कितने झूठे हो !

[पृष्ठभूमि में डाक्टर पापा की घबड़ायी हुई आवाज़ 'गीता', 'गीता' पुकारती है, गीता आग्नेय दृष्टि से दोनों को देखती हुई भीतर जाने लगती है ।]

[धीरे-धीरे पर्दा गिरता है]

गीता सीरियसली टायफ़ायड से बीमार हुई

बरबाद ही कर दिया ग़ौर से देखो···तब से है और उसमें 'सेक्स-अपील' तो कुछ रही ही

ता हूँ।

र टूटने की आवाज़ आती है और उसी दरवाज़ा खुलता है और गीता आवेश में है।]

हुई इन्सानियत के कीड़े! ज़रा अपने

शीशे को मेंटलपीस पर मारती है और

··तुम कितने झूठे हो!

आवाज़ 'गीता', 'गीता' पुकारती है, बाहर जाने लगती है।]

है]

मड़वे का भोर

पात्र

दादू	:	परिवार के मालिक, उम्र प्रायः 55 वर्ष
माँ	:	मालकिन, उम्र प्रायः 48 वर्ष
कंचन	:	सीता की ममेरी बहन और उसकी एकमात्र सखी, उम्र 19 वर्ष
सोना	:	मझली बेटी, उम्र प्रायः 16 वर्ष
लाजो	:	छोटी लड़की, उम्र प्रायः 10 प्रायः 10 वर्ष
हीरा	:	एक युवक, उम्र प्रायः 22 वर्ष
अन्य	:	भीखी, पाड़े जी, जग्गी और सोहन

[निम्न मध्यम वर्ग में एक हिन्दू परिवार का चौड़ा-सा आँगन, इस आँगन में गत तीसरी रात को इस परिवार की सबसे बड़ी लड़की सीता की मंगल शादी रचाई गई थी। उस यह आँगन और इसकी दीवारें जीवन की यथासंभव सजावटों, खुशियों और मंगल-गीतों में रँग उठी थीं। लेकिन अभी कल ही इस आँगन से लड़की की विदाई हो जाने के कारण जैसे आज यह आँगन रो रहा है। घर का सम्पूर्ण वातावरण वीरान-सा है—चुप, खामोश जैसे घर की ज़िन्दगी अपने नशे के उतार में थककर चूर-चूर होकर सो गई है। आँगन में पूरब की ओर ब्याह का उजड़ा हुआ फूस का मड़वा खड़ा है। इसके नीचे ब्याह की मंगल वेदी और राख से पटा हुआ ब्याह का अग्नि-कुंड है; इसके किनारे-किनारे मिटे हुए हल्दी-चावल और आटे के खूबसूरत चौके अब भी सूखे फूलों और मुरझाई हुई दूबों और आम के पत्तों से पटे हैं। मड़वे में, मड़वे के चारों ओर, समूचे आँगन में फूटे कुल्हड़, सूखी पत्तलें, टूटे बंदनवारों और गृहस्थी के अन्य फुटकर सामान जैसे गंदे लोटे, लुढ़के हुए गिलास, जूठी थालियाँ और मक्खियों से भरे हुए बड़े परात, कठौते आदि दिखाई दे रहे हैं। इस तरह समूचे आँगन से कुछ अजीब तरह की कई खुशबुओं से मिली हुई एक विचित्र खुशबू आ रही है; जिसमें गिरे हुए मट्ठे और दही की खुशबू, बासी तरकारी और बरे की खुशबू; घी और गिरे हुए तेल की खुशबू वग़ैरह विशेष ढंग से शामिल हैं।

आँगन के पश्चिम की ओर ज़मीन पर धूल से पटी हुई एक लम्बी-चौड़ी जाजिम बिछी है उस पर बिना किसी भेद-विभेद के इस परिवार की स्त्रियाँ, जैसे माँ, कंचन, सोना, लाजो ब्याह की थकान से बुरी तरह टूटी हुई कई दिन के जागरण से नींद में बेहोश इधर-उधर अस्तव्यस्त सोई पड़ी हैं।

सुबह हो रही है। सूने आँगन में धीरे-धीरे भोर का प्रकाश फैल रहा है। घर के भीतर और बरामदों में अभी अँधेरा है लेकिन आँगन से दाईं ओर बरामदे में खुले हुए कोहबर के कमरे में अभी तक घी का एक चिराग़ धीमे-धीमे जल रहा है।

इस नाटक का पर्दा आँगन के इसी पश्चिमी भाग में उठता है जहाँ सीता की माँ, सोना, कंचन और लाजो इधर-उधर अस्तव्यस्त सोई हैं। मड़वा आदि सब का संकेत स्टेज के पूरब और पश्चिम की ओर है।

पर्दा उठने पर स्टेज पर खामोशी रहती है। क्षण भर के बाद बाहर दरवाज़े से भीखी—परिवार का सम्मानित नौकर आँगन की ओर आता है और बरामदे से ही दुलार-भरे शब्दों में पुकारने लगता है—]

भीखी : (**आता हुआ**) लाजो बेटी !···अरे लाजो ?···(**आँगन में उतरकर**) भई सुबह

ीड़ा-सा आँगन, इस आँगन में गत
ी सीता की मंगल शादी रचाई गई
ी यथासंभव सजावटों, खुशियों और
इस आँगन से लड़की की विदाई हो
ार का सम्पूर्ण वातावरण वीरान-
ने के उतार में थककर चूर-चूर
का उजड़ा हुआ फूस का मड़वा
से पटा हुआ ब्याह का अग्नि-
और आटे के खूबसूरत चौके
के पत्तों से पटे हैं। मड़वे में,
ी पत्तलें, टूटे बंदनवारों और
हुए गिलास, जूठी थालियाँ
दे रहे हैं। इस तरह समूचे
ई एक विचित्र खुशबू आ
ी तरकारी और बरे की
से शामिल हैं।
हुई एक लम्बी-चौड़ी
वार की स्त्रियाँ, जैसे
टूटी हुई कई दिन के
हैं।
फैल रहा है। घर
बाईं ओर बरामदे में
धीमे जल रहा है।
है जहाँ सीता की
ड़वा आदि सब
बाहर दरवाजे
और बरामदे
)भई सुबह

हो गई, अब तो जाग !

[पास आकर **खड़ा-खड़ा** सबकी नींद की बेहोशी पर मुस्कराता है, फिर धीरे से लाजो के पास बैठ जाता है और उसके अस्तव्यस्त कपड़ों को शरीर पर ठीक करने लगता है।]

भीखी : (**बिखरे हुए बालों से धूल झाड़ता हुआ**) अरे जाग तो मेरी बिल्लो रानी··· देख सुबह हो गई···देख-देख···खोल दे आँखें···मेरी सीता बिलइया !

[लाजो ऊँ···ऊँ करती हुई अँगड़ाई लेती है और फिर चुप हो जाती है।]

भीखी : (**दुलार से लाजो को उठाकर उसके सर को अपनी गोद में ले लेता है**) वाह ! वाह ! वाह ! उठ गई मेरी बिलइया ! वाह ! वाह ! !

लाजो : (**बिगड़ती हुई**) भीखी···चीखी···जा हम नहीं उठते···हाँ, नहीं तो···।

भीखी : (प्यार से) अरे मान जा, मेरी दुल्ली !

[लाजो क्षण भर के बाद आँखें मलती हुई भीखी की गोद के सहारे बैठ जाती है।]

भीखी : (**दुलार से**)···सीता दीदी की तरह एक दिन मेरी लाजो की भी शादी हो जाएगी और वह भी डोली में बैठकर··· ।

लाजो : (**बीच ही में बिगड़कर**) बक् जा ! ···हम तुमसे नहीं बोलते हाँ···!

भीखी : (**मनाता हुआ**) अच्छा···नहीं···नहीं···मान जा बिट्टी ! ···मैं तो तुमको वैसे ही बस जगा रहा था···अच्छा चुप हो जा···!

[लाजो रोने के बहाने ऊँ-ऊँ करती है।]

भीखी : अच्छा चुप हो जा ! ···तब तुझे मैं फिर कल वाला गाना सुनाऊँगा हाँ !

लाजो : (**प्रसन्नतापूर्ण कौतूहल से**) वही जो कल मड़वा हिलाते समय नाच वाली गा रही थी, वही न ! ···(**जिज्ञासा से**) भीखा दा ! ···वह नाच वाली औरत सीता दीदी के साथ चली गई न ?

भीखी : (**हँसकर**) पगली ! वह औरत नहीं थी···वह मर्द था, औरत बनके नाच रहा था !

लाजो : (**आश्चर्य से**) सच !

भीखी : हाँ और क्या (**रुककर**) मड़वे में कितने वियोग से गा रहा था। (**गाता हुआ**)

रोय रोय भेंटें राजा जनक जी,
बिदवा न करबें दुलारी को !
प्रान काढ़ि हम सब तजि देबै
लोक लाज सब न्यारे कर
आँखि ओट पै रानी न करबें,
डोलवा न देबें पियारी को
रोय रोय भेंटें राजा जनक जी,
बिदवा न करबें दुलारी को !

भीखी : (**गाकर चुप होता हुआ**) ओह ओ ! देख लिज्जी बेटी ! मैं गा भी चुका और अभी तक कोई न जागा (**रुककर**) अच्छा अब एक काम किया जाए···ला सोना और कंचन के ऊपर पानी बरसाया जाए ?

लाजो : और सोना दीदी पीटने लगी तो ?

भीखी : अरे ! चल हट ! ! डरपोकनी कहीं की···देख अभी मैं तमाशा करता हूँ !

[वह जैसे उठता है, सोना सहसा अँगड़ाई लेती है, मानो चुपके-चुपके सुन रही थी और वह पास में सोई कंचन को जगाती है ।]

सोना : दीदी ! ओ दीदी !···अरे कंचन दीदी ! !

भीखी : (**हँसता हुआ**) चोट्टी कहीं की ! देखा न···अब चुपके-चुपके सुन रही थी ।

सोना : (**अपनी व्यथा में भीखी को अनसुनी कर**) कंचन दीदी !

कंचन : (**जगकर**) क्या है ?

भीखी : (**बीच ही में**) अरे ! उठ के बैठो तो सही !

[कंचन थकी हुई उठ बैठती है और अपनी उदास आँखों से अपलक सोना की खामोश आँखों में देखने लगती है जिसमें एक ओर बिछुड़न की पीड़ा है, दूसरी ओर मुर्दा करने वाली थकान ।]

भीखी : (**खामोशी भंग करता हुआ**) अरे कंचन !

सोना : (**बीच ही में झुंझलाकर**) क्या कंचन-कंचन रट लगाए हुए है ?···पिछले पहर तो जाके नींद आई और सुबह ही सुबह आप गाने लगे··· !

लाजो : (**डरती हुई**) भीखी दादा को क्यों डाँटती हो ?···मैंने गाना गवाया है; (**भीखी से**) आओ ड्योढ़ी में चलें भीखी दादा !···इन लोगों को यहीं खूब सो लेने दो !

भीखी : (**हँसता हुआ**) नहीं, नहीं···सोना को खूब डाँटने दो···इन्हें भी सीता दीदी की तरह उस दिन न मालूम होगा, जब ये हम लोगों से विदा होंगी···सच, मैं तो बिल्कुल न रोऊँगा···खूब जी भर के हँसूंगा··· !

सोना : (**तेजी से**) देखो भीखी दादा !···अभी तुम पिट जाओगे !

भीखी : (**अपनी बात पूरी करता हुआ**) सुन लिया न लाजो !···राजकुमारी सोना को पगला भीखी उस दिन याद आएगा जब ये अपने घर पहुँचेंगी और वहाँ सुबह जल्दी न उठने के नाते इन पर नागन सास की फटकारें पड़ेंगी !

[एकाएक सोना की आँखें आँसुओं से भर जाती हैं और वह सर झुका लेती है ।]

कंचन : अच्छा भीखी !···भाग जाओ तुम यहाँ से···सुबह ही सुबह मुफ्त में रुला दिया मेरी सोना को !

[एकाएक थकान और पीड़ा से कराहती हुई माँ जागती है और सब हो चुप जाते हैं ।]

माँ : (**कराहकर उठते-उठते**) यह सब क्या हो रहा है भीखी ?

[सोना और कंचन धीरे से उठकर भीतर चली जाती है।]

भीखी : कुछ नहीं···बहू जी···ऐसे ही···!

[बैठी हुई सर थामकर पीड़ा से कराहने लगती है। भीखी लाजो के साथ बाहर जाने लगता है।]

माँ : (**थकी हुई वाणी से**) अरे भीखी !···घर की हालत तो ज़रा देख !···मड़वे में कितनी चीज़ें पटी हैं, लगता है रात में यहाँ कुत्ते आए थे···देख तो सही कितनी पूड़ियाँ और चावल बिखरे हैं, घर क्या है···बस···!

[कराहने लगती है।]

भीखी : (**देखता हुआ**) लगता है रात को पिछले खण्ड की भीतर वाली खिड़की नहीं बन्द की गई थी क्या !

माँ : (**पीड़ा से**) हाय ! क्या करती ! ···मुझे तो कल शाम ही से किसी चीज़ का होश ही नहीं रहा···लगता है मेरे बदन की हड्डियाँ चूर-चूर हो गई हैं !···(**पीड़ा से**) हाय ! मेरी सीता !

[सिसक कर रोने लगती है ।]

भीखी : (**समझाता हुआ**)···बहू जी ! दिल को रोकिए···नहीं तो सीता बेटी उतने ही वहाँ तड़पेगी !

माँ : (**याद करती हुई**) कितनी लायक़ थी मेरी बेटी !···अब तक पूरे आँगन में झाड़ू डाल चुकी होती···और सारे घर में गाती-गुनगुनाती फिरती···!

भीखी : ठीक कहती है ! जभी सीता बेटी को पाकर के शेख़ुपुरा वाले बहुत खुश हैं !···

माँ : इसी का तो संतोष है और अगर सच पूछा जाए तो वह सीता बेटी की क़िस्मत थी (**रुक कर**) सुना है हमारे समधीराम के चार गाँवों में सीर होती है !

भीखी : हाँ-हाँ, और क्या ?···उसके तो रबी और भदई दोनों अन्नों से बखार के बखार भरे रहते हैं !···और बहुत विमरई[1] भी चलती है !

माँ : जभी तो मेरा समधी दस थान सोने का गहना लाया था । सच, ···सीता बेटी की तरह तो आज तक मेरे कुल परिवार में किसी की शादी ही नहीं हुई···!

[चुप है, जैसे वह इसमें सहमत नहीं है, पर विवशत: चुप है।]

माँ : (**क्षण भर सोचने के बाद कराहती हुई**) लेकिन फिर भी भीखी, सीता की विदाई और उसकी याद मेरे कलेजे पर आग बनकर सुलग रही है !

भीखी : इसमें अपना क्या वश बहू जी ! लड़कियाँ इसीलिए पैदा होती हैं (**रुककर**) मैं सीता की पालकी के साथ रामनगर के चौराहे तक गया था; वह बार-बार बस आपको याद करके चीख़ रही थी।

---

1. बीज को सूद पर देने की एक ग्रामीण प्रणाली, सेर के सवा सेर।

माँ : (**सिसकती हुई**) फिर आखिरी बार मेरी बेटी ने क्या कहा ?

भीखो : कहा था कि माता जी से कह देना कि मुझे जल्द से जल्द बुला लेंगी !

माँ : हाँ, हाँ···जरूर !···भीखो, तुम अगले मंगल को ही उसका दिन लेकर शेखूपुरा चले जाना···मुझसे खुद ही नहीं रहा जाएगा !

[सहसा माँ जी का ध्यान आँगन में बिखरी हुई चीज़ों की ओर जाता है; विशेषकर जहाँ एक कुत्ता, न जाने कब से कोनेवाले परात में मुँह डाले कुछ खा रहा था।]

माँ : (**घबड़ाकर डाँटती हुई**) दत्त···दत्त···द···द ! लाजो···दौड़ मार कुत्ते को। (**कराहकर**) हाय दइया, घर क्या हो गया···।

[लाजो कुत्ते को दुरदुराती हुई पृष्ठभूमि में खो जाती है। माँ जी कमर पर हाथ रक्खे हुए धीरे-धीरे मड़वे की ओर बढ़ती है और दूर ही से एक परात को देखकर चिंता से वहीं बैठ जाती है।]

भीखो : (**बढ़कर**) क्या है बहू जी ?

माँ : (**दुख**) क्या बताऊँ; दैव का कोप हो गया और क्या, (**कराहती हुई**) हाय राम ! अभी तो मैं रात को कह रही थी कि मीठे बरे इत्ते जल्दी कहाँ खतम हो गए ! (**क्रोध से**) वह देखो मीठे बरे से परात भरी है और रात मेहमानों के सामने नाक कट गई ! हाय दइया !···आधे ही लोग रात बरे पाए और बाक़ी सारा का सारा यहाँ इस समय कुत्ते के खाने के लिए छुटा है !

भीखो : (**उसे एक बर्तन से ढकता हुआ**) रात को तो मारे थकान और नींद के किसी का होश ही ठिकाने न था।

माँ : हाय ! मैं किसी और को क्या दोष दूँ···जब मैं खुद ही कल शाम से मर गई··· (**मुड़कर इधर-उधर देखती हुई**) भीखो अब भी कुशल है···आँगन में बिखरी हुई सब चीज़ों को सँभाल ले···वह देख···अचार की कनस्तरी···मीठे की डलिया, वह देख दही का खोना उल्टा पड़ा है !···सब चीज़ों को सँभाल ले···कहाँ तक बताऊँ मुझसे तो खड़ा नहीं रहा जा रहा है···आह !

[कराहती हुई भीतर चली जाती है, भीखो इधर उधर कुछ बिखरी हुई चीज़ों को सम्हालता है। सामने पृष्ठभूमि में चीज़ों के उठाने-धरने की आवाज़ होती है। क्षण-भर के बाद ही भीतर से ग़म में डूबी हुई सोना धीरे-धीरे आँगन में भीखो के पास आती है।]

सोना : (**पास आकर पीड़ा से**) भीखो दादा !···लगातार पिछली चार रातों से जागने पर भी कल रात को मुझे नींद नहीं आई। मेरी जलती हुई आँखों में जैसे सीता दीदी रात भर चल रही थी !

भीखो : अरे ! जा रे पगली !···एक दिन तू भी इसी तरह अपने भीखो को रुलाएगी और क्या···बोल···और क्या ?

सोना : (**भरे कंठ से**) देखो भीखो !···इस समय दिल्लगी की बात मत करो ?

[भीखी गाने लगता है; जिससे सोना मुस्करा उठे ।]

रोय रोय भेंटैं राजा जनक जी,
बिदवा न करबैं दुलारी को !

सोना : (बीच ही में) इस पगले भीखी को देखो···हम अपनी दीदी की याद में तड़पें और इसे बार-बार गाना सूझ रहा है !

भीखी : अरे सोना तू क्या जाने ? ···हम लोग भीतर रोते हुए बाहर से गाते हैं ! सोच, किया ही क्या जाए···तू भी ऐसे ही करेगी न ?

सोना : (सिलसिला बदलती हुई) भीखी दादा···ज़रा बाहर जा के हीरा बाबू को देखना···वे अब तक जग गए होंगे !

भीखी : कौन हीरा ?

सोना : अरे ! वही रामपुर वाले ! ···गुलाबा जिया के देवर !

भीखी : ओह ! वे हीरा बाबू ? ···समझा; लेकिन उन्हें देखना क्या है ?

सोना : (चिन्ता से) देखना यही है कि अगर वे उठ गए हों···तो जल्दी उन्हें कुल्ला-दतून कराके भीतर भेज देना !

भीखी : वह तो होई जाएगा···इसमें जल्दी क्या है ! ज़रा मैं इस बिखरे हुए सामान को···!

सोना : नहीं···जल्दी बाहर जाओ···यह फिर हो जाएगा !

भीखी : आखिर बात क्या है ?

सोना : (चिढ़कर) बात क्या है, बस तुम तो हमेशा सर पर चढ़कर मुफ़्त में वकालत करने लगते हो ! (रुककर) मालूम है ! पिछली तीन रातों से उन्होंने खाना नहीं खाया है । हम लोग कह के थक गईं और सीता दीदी तो रो-रो के हार गईं !

भीखी : (आश्चर्य से) ओह ! ओ ! यह बात ?

सोना : समझे, और वे कल दोपहर ही को चले जा रहे थे !

[भीखी बाहर चला जाता है । सोना थकी हुई फिर नीचे उसी जाजम पर चिंता से बैठ जाती है और क्षण भर बाद कंचन भीतर से सोना के पास आती है ।]

कंचन : सोना ।

सोना : आओ दीदी !

[कंचन और सोना आमने-सामने बैठ जाती हैं । दोनों की थकी हुई आँखों में एक छिपी हुई पीड़ा और कुछ अदृश्य-बेनाम-सी चोट की छाया है जो बार-बार दोनों की पलकों में आँसू बनकर बरसती रहती है ।]

सोना : कंचन दीदी ! क्या करूँ बताओ···पिछली रात को जैसे सोना दीदी मेरी आँखों में तड़पती हुई रो रही थी !

कंचन : क्या मैं बताऊँ···मेरे भी तो दिल पर जैसे कोई चीज़ धीरे-धीरे सुलग रही है

और उसके धुएँ में मेरी सखी का पीला चेहरा जैसे अब भी किसी को उलाहना दे रहा है !

सोना : मुझे तो दीदी सच, आज रात भर इन सूनी-सूनी दीवारों से डर लग रहा था··· हाय ! शेखूपुरा में मेरी दुखिया सीता दीदी न जाने कैसी होंगी ?

कंचन : मैंने तो सच, रात को स्वप्न में देखा है सोना ! ···कि मेरी सखी शेखूपुरा में पहुँचते ही और भी सोने के गहनों से लाद दी गई और डोला से उतरते ही ससुर ने पचास रुपये के पैसे लुटाए और उसने एक सच्चे मोती लगी हुई सोने की बेंदी देकर सखी का मुँह देखा।

सोना : हाय ! मैंने तो दीदी का कोई स्वप्न भी नहीं देखा···और देखती भी क्या··· रात भर तो कलमुँही मेरी आँख भी न लगी।

कंचन : स्वप्न में मैंने एक बुरी बात और देखी सोना !

सोना : क्या ?

कंचन : जैसे ही मेरी सखी की पहली नज़र सखा पर पड़ी वह एकाएक चीख उठी और उसकी डूबती हुई आवाज़ से मेरी नींद भी टूट गई !

सोना : (एकाएक पीड़ा से) हाय राम ! ···मेरी दीदी को भगवान शांति दे ! कहाँ मेरी फूल-सी सीता दीदी और कहाँ चौड़े पत्थर की तरह से वे शेखूपुरा वाले···!

कंचन : (झुँझलाकर) धोखेबाज़ भगवान का नाम न ले सोना ! ···याद है न ! ··· पिछले सात वर्षों से मेरी सखी अपने रामपुर वाले के लिए निर्जल शिवरात्रि भूखी रहती थी, भगवान को जल चढ़ाती थी लेकिन सोचो, बेचारी को क्या मिला ?

सोना : (उपेक्षा से) न जाने कबके बैठ हुए थे···चालीस साल से ! (रुक जाती है) क्या कहूँ अपने दद्दा को ! ···जी कहता है कि···!

कंचन : ये सब दाढ़ी जरा पांडे ने किया है ! न जाने कब उसकी आँखें फूटेंगी !

सोना : रूपा महाराजिन तो नाउन काकी से कह रही थीं कि चौधरी ने पांडे की टेंट भी पूजी थी।

कंचन : च, च···हाय राम-राम ! ···किसी की जान जाए किसी का सौदा···वाह रे दुनिया !

[सहसा भीतर से माँ आती है और कमर पर हाथ रखकर दोनों के सामने खड़ी हो जाती है ।]

माँ : इस तरह चारों ओर हार-हार के बैठने से थोड़े काम चलेगा ! कितना काम चारों ओर छिटा हुआ है !

[कराहने लगती है।]

सोना : मुझसे आज कुछ नहीं हो सकेगा अम्माँ ! ···

माँ : हाय राम ! कैसे तुम लोगों का पार लगेगा ! कंचन तूने सुना···वो देख, मोटे बरे से भरे हुए परात में अभी कुत्ता मुँह डाल के चला गया !

[सहसा माता जी ने देखा कि कोई बिल्ली किसी मेटके में सर डाल रही है। वे सहसा उसे बिलबिलाती हुई दायीं ओर बढ़ती हैं और क्षण-भर के बाद फिर कराहती हुई लौटती है।]

माँ : (चिन्ता से थककर) भइया ! तुम लोग जानो···चाहे घर रहे या सत्यानास हो जाए···मैं तो जाकर अपनी खाट पर पड़ती हूँ···दहिजरा[1] इससे तो मौत अच्छी है।

कंचन : क्या हुआ फुआ जी ?

माँ : बेटी ! मेहमानों को रात घी परोसा गया और घी का मेटका अब तक मड़वे के पीछे पड़ा है (**बढ़ती हुई**) मैं अकेले कहाँ तक छाती फाड़ के मरूँ···भाड़ में जाए··· घर औ दुआर !

[कराहती हुई भीतर जाने लगती है।]

माँ : (**फिर रुककर**) हाथ जोड़ती हूँ, बैठी न रह सोना !···बैठने से कुछ होगा, ये मेहमान अभी तक दरवाज़े पर बैठे हैं···तो एक दिन में सब बिदा हो जाएँगे, तब चाहे रात-दिन सोती बैठती रहना !

कंचन : (**प्यार से मनाती हुई**) फुआ जी !···चलिए आप आराम कीजिए···अभी सब काम धीरे-धीरे हो जाएगा !

माँ : (**जाती हुई**) हाय ! मैं तो पागल हो गई बोलते-बोलते (**प्रस्थान**)

कंचन : (पुकारने लगती है) नाऊन !···ओ नाऊ !!···कहाइन बुआ !···ओ कहाइन बुआ !

[कोई नहीं बोलता]

सोना : हूँ ! बेचारी सब अभी अपने-अपने घर सोई होंगी कि सुबह ही सुबह उठके काम ही पर आ जाऊँगी ! सब एक हफ्ते से तो लगातार दिन-रात दौड़ रहे हैं !

कंचन : (**रुक कर**) हाय न जाने कैसा घर लगा है···मड़वा देखो सोना !···जैसे बेचारा उजड़कर रो रहा है।

[बैठ जाती है।]

सोना : (**बीच ही में**) हाय राम ! धीरे बोल कंचन !···अभी कोई सुन लेता तो गाँव भर में बात फैल जाती कि ये दो लड़कियाँ हरदम बस असगुन ही बोलती रहती हैं !···मालूम है !···रात को मेरे मुँह से इतना ही निकला कि 'कोहबर का घर कितना सूना लग रहा है' बस इतने में माता जी ने मेरा मुँह भींच लिया !

कंचन : इनको कौन क्या कहे ? (**रुक कर**) भीखी कहाँ है सोना ?

सोना : क्या बताऊँ ! कब का उसे बाहर भेजा और अब तक हीरा बाबू की कुछ खबर न दी !

---

1. दाढ़ीजार का बिगड़ा हुआ रूप।

कंचन : सोना ! ···तब तक तुम्हीं जाकर उन्हें बाहर ड्योढ़ी से छिपकर बुला लो···मैं तब तक उनके लिए ठंडा शर्बत बना लूं !

सोना : (उठती हुई) नमकीन और पेठा भी ले लेना···कंचन दीदी ! आज हीरा बाबू को किसी तरह जरूर खिलाया जाएगा !

[सोना तेज़ी से बाहर जाती है और कंचन भीतर। क्षण-भर के लिए स्टेज सूना रहता है। पश्चिम की ओर खपरैल की मुंडेर पर चढ़ते हुए सूरज की लाली फैलती है। पृष्ठभूमि में न जाने किधर से भीखी के धीरे-धीरे गाने की आवाज आती है—]

काहे बिनु सून अगनवाँ ये बाबा, काहे बिनु सून लखराव,
काहु बिनु सून दुअरवा ये बाबा, काहे बिनु पोखरा तोहार।
धिया बिनु सून अगनवाँ ये बेटी, कोइलरि बिनु लखराव,
पूत बिनु सून दुअरवा ये बेटी, हंस बिनु पोखरा हमार।

सोना : (सहसा बाहर से आँगन में आती हुई) अरे भीखी दादा ! ···रात-दिन गाते ही रहोगे कि आँगन की दशा भी देखोगे···!

भीखी : (गाना बन्द करके आँगन में आता हुआ) अच्छा जी; तो इसके माने मैं कुछ काम ही नहीं कर रहा हूँ ! तुम्हारी तरह मुझे बाहर दरवाज़े पर थोड़े झाँकने की फुर्सत है !

सोना : (बिगड़ कर) देखो मुझे गुस्सा न दिलाओ भीखी चीखी !

भीखी : हाँ भाई ! ···राजा साहब हैं न आप ! (प्यार से) अरे बेटी ! समधी के भात के दिन उत्तर वाले बरामदे में जो चावल छिट गया था न, याद है ! मैं उसी को इकट्ठा करके साफ़ कर रहा था !

सोना : बस वही काम रह गया है ?

भीखी : तुझे कुछ मालूम भी है कि भीखी का सर ही तोड़ना जानती है, तुझे मालूम होना चाहिए कि तेरे दद्दा की डेहरी में अब एक छटाँक भी अच्छा चावल नहीं रह गया। ब्याह के पागलपन में तो पूरी बरात को दद्दा ने महीन तुलसीराम चावल खिलाया है। मैं तभी मना कर रहा था कि अभी आपके घर कई दिनों तक मेहमान टिके रहेंगे। लेकिन दद्दा को तो बेटी का ब्याह और बारात का नशा था। कहते थे, 'भीखी ! ···रोज़-रोज़ समधी अपनी बारात लेकर किसी के दरवाज़े पर नहीं जाता और फिर शेखूपुरा के चौधरी की इज्जत भी तो निभानी है' (गिरी हुई वाणी से) बेटी ! ब्याह-शादी, वैर-प्रीति अपने बराबर वालों से करनी चाहिए··· यह नहीं कि झूठी शान में आकर स्वयं टुकड़े-टुकड़े हो जाय !

सोना : क्या किया जाय ! ···जो भाग्य में होता है···वही होता है !

भीखी : (सोना को पल भर देखता हुआ) हीरा बाबू अभी तक नहीं आए ?

सोना : (व्यंग्य से) हाँ क्यों नहीं···जो तूने उन्हें खूब बुला दिया है न ?

भीखी : सच बुलाया तो है ! ···वे आ ही रहे हैं ! (रुककर) सोना बेटी !

सोना : क्या है ?

भीखी : मैंने तो हीरा बाबू में अभी-अभी एक बहुत अ
कैसे आज उठते ही उठते बहुत खुश दिख रहे थे !

सोना : (बहुत प्रसन्नता से) सच !

भीखी : हाँ भाई ! ···सच···लगता है कि वे सब अपना

सोना : सच ! ···बहुत अच्छी बात हुई !!

भीखी : सोना बेटी···पियरीपुर के चौराहे पर जब मैं
पानी पिलाकर लौटने लगा, वह एकाएक मुझसे
आँखों में अजीब तरह की उदासी फैली थी। उसने
सोहाग की अँगूठी निकाली और हाथ जोड़कर डूबती
'मेरे भीखी दादा ! यही एक और कृपा करना'
समझा-बुझाकर मेरे हीरा को दे देना।'

सोना : (आश्चर्य से) तो ले ली तूने अँगूठी ?

भीखी : तुम्हीं बताओ मैं ऐसी हालत में क्या करता ! उस

सोना : तो हीरा बाबू को अँगूठी दे दी !

भीखी : कहाँ दी, वे लेते ही नहीं (निकालकर देता हुआ)
हूं; अँगूठी हीरा बाबू को जरूर दे देना···हम लोग
पूरी कर दे !

[सोना अँगूठी ले लेती है; और उसकी आँखें
उमड़ते हुए आँसुओं से अँगूठी बार-बार भी

भीखी : क्या किया जाए, इसमें हम लोगों का

[भीखी क्षण भर चुप रहने के बाद
तरह हतप्रभ खड़ी रहती है। क्षण
का गिलास और दूसरे हाथ में

कंचन : (आते ही आते) अरे सोना !
बोल ! ···क्या हो गया

सोना : (भरे कंठ से अँगूठी
उसने भीखी के हाथ

कंचन : (सहम कर
ने सुन लिया तो

सोना : तो क्या
दीदी पर

कंचन :

सोना :

...कहें बाहर ड्योढ़ी से छिपकर बुला लो···मैं
...ऊँ !
...ही ले लेना···कंचन दीदी ! आज हीरा बाबू
...!

...र कंचन भीतर। क्षण-भर के लिए स्टेज
...ैल की मुंडेर पर चढ़ते हुए सूरज की लाली
...र से भीखी के धीरे-धीरे गाने की आवाज

...ा, काहे बिनु सून लखराव,
..., काहे बिनु पोखरा तोहार।
..., कोइलरि बिनु लखराव,
...ंस बिनु पोखरा हमार।

...े भीखी दादा ! ···रात-दिन गाते ही

...च्छा जी; तो इसके माने मैं कुछ
...बाहर दरवाज़े पर थोड़े झाँकने की

...ी चीखी !
...र से) अरे बेटी ! समधी के भात
...या था न, याद है ! मैं उसी को

...सोना जानती है, तुझे मालूम
...ीक भी अच्छा चावल नहीं
...की दद्दा ने महीन तुलसीराम
...ी आपके घर कई दिनों तक
...और बारात का नशा था।
...ेकर किसी के दरवाज़े पर
...ो निभानी है' (गिरी हुई
...लों से करनी चाहिए···
...ह !
...ै !
...ों आए ?
...न ?
...बेटी !

सोना : क्या है ?

भीखी : मैंने तो हीरा बाबू में अभी-अभी एक बहुत अच्छी बात देखी है ! वे न जाने कैसे आज उठते ही उठते बहुत खुश दिख रहे थे !

सोना : (**बहुत प्रसन्नता से**) सच !

भीखी : हाँ भाई ! ···सच···लगता है कि वे सब अपना ग़म भूल गए।

सोना : सच ! ···बहुत अच्छी बात हुई ! !

भीखी : सोना बेटी···पिपरीपुर के चौराहे पर जब मैं सीता बेटी को आखिरी बार पानी पिलाकर लौटने लगा, वह एकाएक मुझसे चिपककर काँपने लगी। उसकी आँखों में अजीब तरह की उदासी फैली थी। उसने जल्दी से अपनी उँगली से सोहाग की अँगूठी निकाली और हाथ जोड़कर डूबती हुई आवाज़ में कहने लगी, 'मेरे भीखी दादा ! यही एक और कृपा करना···इस अँगूठी को किसी तरह समझा-बुझाकर मेरे हीरा को दे देना।'

सोना : (**आश्चर्य से**) तो ले ली तूने अँगूठी ?

भीखी : तुम्हीं बताओ मैं ऐसी हालत में क्या करता ! उसने मुझे विवश कर दिया।

सोना : तो हीरा बाबू को अँगूठी दे दी !

भीखी : कहाँ दी, वे लेते ही नहीं (**निकालकर देता हुआ**) ये लो मैं तुमसे हाथ जोड़ता हूँ; अँगूठी हीरा बाबू को जरूर दे देना···हम लोग सीता की कोई भी तो इच्छा पूरी कर दें !

[सोना अँगूठी ले लेती है; और उसकी आँखें उस पर झुक जाती हैं तथा उसके उमड़ते हुए आँसुओं से अँगूठी बार-बार भीगने लगती है।]

भीखी : क्या किया जाए, इसमें हम लोगों का कोई वश न था !

[भीखी क्षण भर चुप रहने के बाद फिर अपने काम पर चला जाता है। सोना उसी तरह हतप्रभ खड़ी रहती है। क्षण भर के बाद कंचन भीतर से एक हाथ में शर्बत का गिलास और दूसरे हाथ में नमकीन का प्लेट लेकर आती है।]

कंचन : (**आते ही आते**) अरे सोना ! ···तू रो रही है ! ···क्या बात है ? (**रखती हुई**) बोल ! ···क्या हो गया तुझे ?

सोना : (**भरे कंठ से अँगूठी दिखाती हुई**) यह देख···दीदी की सुहाग की अँगूठी ! उसने भीखी के हाथ इसे हीरा बाबू को भेंट किया है !

कंचन : (**सहम कर सब छिपाती हुई**) चुप···चुप सोना ! ···अगर इस बात को किसी ने सुन लिया तो···!

सोना : तो क्या हो जाएगा···अब कोई और कर ही क्या सकता है···जो होना था वह दीदी पर हो गया···लेकिन उसकी मुहब्बत पर कोई ताला थोड़े लगा सकता है !

कंचन : अच्छा···अच्छा ! जल्दी से अँगूठी को अपने आँचल में बाँध ले !

सोना : (**बाँधती हुई**) अगर दीदी का यह भेंट हीरा बाबू ले लेते तो कितना अच्छा

होता !···वह हारकर भी जीत जाती !

कंचन : मुझे सब मालूम है ! शादी के दिन मेरी सखी बार-बार काँपती आवाज़ से हीरा बाबू से यहाँ तक कह रही थी कि हीरा ! चलो कहीं भाग चलें ! मुझे यहाँ से कहीं निकाल ले चलो !

सोना : (**आश्चर्य से**) सच !

कंचन : हाँ, देखना कभी ये बातें मुँह से न निकलने पाएँ···! अब किसी से कहने से क्या फ़ायदा !

[सोना की आश्चर्यचकित आँखों में फिर आँसू भर जाते हैं।]

कंचन : (**बात पूरी करती हुई**) लेकिन हीरा बाबू पत्थर की तरह चुप थे और मेरी दुखिया सखी अपनी ओर से हीरा बाबू के लिए अन्त तक पागल थी कि जिस समय नाउन उसे शादी कराने के लिए मड़वे के नीचे दूल्हे के पास ले जाने वाली थी उसने झपटकर हीरा बाबू से यहाँ तक कहा था 'हीरा ! खड़े क्या देख रहे हो; क्यों नहीं सबसे ऊपर उठकर मेरी कुँआरी माँग में सेंदूर भर देते···!'

सोना : फिर !

कंचन : लेकिन हीरा बाबू फिर भी चुप थे और जब मंडप में सखी का सोहाग-दान हो रहा था···तब तक मैंने देखा था कि वह बार-बार सूने आँगन में अपने हीरा को देख रही थी !

[सहसा बाहर से बरामदे में किन्हीं दो के आने की आहट होती है, सोना और कंचन एकाएक चुप हो जाती हैं। लाजो हीरा की उँगली पकड़े हुए आँगन में आती है। हीरा प्रायः बीस वर्ष का खूबसूरत नौजवान है। उसके भरे हुए गोरे चेहरे का फूल जैसे मुरझा गया है लेकिन फिर भी उसके मुँह पर एक ताज़ी मुस्कराहट है जो आज भोर ही में फूटी है। इसकी गंभीर निगाहों में एक बार फिर से मुस्कराने का प्रयत्न चल रहा है लेकिन बार-बार जैसे विषाद और थकान की रेखाएँ बरबस इस पर दौड़ जाती हैं।]

अंजो : (**आँगन में** उतरती हुई) सोना दीदी ! ···देख हीरा बाबू को मैं मना लाई न ?

हीरा : (**प्यार से**) वाह रे मेरी लाजो ! ···वाह···तुझे मालूम था कि मैं रूठा हूँ !

[हँसने लगता है।]

लाजो : हाँ रूठे तो थे !

हीरा : तुझे कैसे मालूम ?

लाजो : (**भोलेपन से**) कल मैंने देखा था आपको, जब सीता दीदी कल मड़वे से बिदा हो रही थीं तब आप बँगले में छिपकर रो नहीं रहे थे !

हीरा : (**हँसने के प्रयास से**) वह कोई और था लाजो, सच !

[हीरा बनावटी ढंग से खिलखिलाकर हँस पड़ता है।
आरामकुर्सी लाकर आँगन में रख देती है।]

हीरा : (**बैठता हुआ**) वह तो कल की बात थी लिज्जी !
न ! देखो···!

सोना : (**प्यार से लाजो को पकड़कर**) अच्छा, अब जा
लगवा ला···जा मेरी बहुत अच्छी लाजो···!

[लाजो भीतर भाग जाती है।]

कंचन : (प्रसन्नता से) आज आपको इस तरह खुश देख

हीरा : मुझे भी।

[हीरा मुस्कराता हुआ क्षण भर तक अपलक सोना
पूरी नज़र उसकी नज़रों से मिलकर जैसे टकरा ज
शरमाकर नीचे देखने लगती है।]

कंचन : (**नमकीन की तश्तरी बढ़ाकर**) लीजिए, पहले नाश

हीरा : अभी कर लेता हूँ···जल्दी किस बात की !

सोना : (प्यार से) नहीं देखिए, अभी कर लीजिए !

हीरा : अच्छा भाई ! लो अभी किए लेता हूँ···! तुम लोग
कि मैं अपने से रूठा हूँ ! ···भाई, सोचो तो सही मैं क्या

सोना : तो आपने दो रातों से खाना क्यों नहीं खाया ?

हीरा : बीमारी में कहाँ खाना खाया जाता है !

सोना : (**आश्चर्य से**) बीमारी !

हीरा : हाँ···चाहे सीता को पत्र लिखकर पूछ लो, मुझे

कंचन, सोना : सच ! अरे ! हम लोगों को तो···!

कंचन : सोना ! जा तू थोड़ा गाय का दूध गरम

हीरा : (रोककर) ···नहीं-नहीं···कुछ नहीं
···सब चीज़ें खा लूँगा···तुम लोगों

[तीनों की सम्मिलित हँसी।]

हीरा : सोना ! अभी तुम
खाना खाऊँगा।

सोना : (प्रसन्नता

हीरा : हाँ-हाँ···

सोना :

हीरा : (

...ाती !

...ल मेरी सखी बार-बार कांपती आवाज़ से हीरा ...ीरा ! चलो कहीं भाग चलें ! मुझे यहाँ से कहीं

... न निकलने पाएँ···! अब किसी से कहने से

...र आँसू भर जाते हैं ।]

...ा बाबू पत्थर की तरह चुप थे और मेरी ...बू के लिए अन्त तक पागल थी कि जिस ...ड़वे के नीचे दूल्हे के पास ले जाने वाली ...हा था 'हीरा ! खड़े क्या देख रहे हो ; ...ाँग में सेंदूर भर देते···!'

...ब मंडप में सखी का सोहाग-दान हो ...र-बार सूने आँगन में अपने हीरा को

...े की आहट होती है, सोना और ...ी उँगली पकड़े हुए आँगन में आती ...है। उसके भरे हुए गोरे चेहरे का ...मुँह पर एक ताजी मुस्कराहट है ...ों में एक बार फिर से मुस्कराने ...और थकान की रेखाएँ बरबस

...ीरा बाबू को मैं मना लाई

...म था कि मैं रूठा हूँ !

...कल मड़वे से बिदा

[हीरा बनावटी ढंग से खिलखिलाकर हँस पड़ता है। सोना बढ़कर बरामदे से एक आरामकुर्सी लाकर आँगन में रख देती है।]

हीरा : (**बैठता हुआ**) वह तो कल की बात थी लिज्जी !···देखो मैं आज हँस रहा हूँ न ! देखो···!

सोना : (**प्यार से लाजो को पकड़कर**) अच्छा, अब जा तू दौड़कर तश्तरी में पान लगवा ला···जा मेरी बहुत अच्छी लाजो···!

[लाजो भीतर भाग जाती है।]

कंचन : (**प्रसन्नता से**) आज आपको इस तरह खुश देखकर बड़ा सुख मिला !

हीरा : मुझे भी।

[हीरा मुस्कराता हुआ क्षण भर तक अपलक सोना को देखने लगता है, सोना की पूरी नजर उसकी नजरों से मिलकर जैसे टकरा जाती है और सोना बुरी तरह शरमाकर नीचे देखने लगती है।]

कंचन : (**नमकीन की तश्तरी बढ़ाकर**) लीजिए, पहले नाश्ता कर लीजिए !

हीरा : अभी कर लेता हूँ···जल्दी किस बात की !

सोना : (**प्यार से**) नहीं देखिए, अभी कर लीजिए !

हीरा : अच्छा भाई ! लो अभी किए लेता हूँ···! तुम लोगों को पूरा-पूरा विश्वास है कि मैं अपने से रूठा हूँ !···भाई, सोचो तो सही मैं क्यों रूठूँगा !

सोना : तो आपने दो रातों से खाना क्यों नहीं खाया ?

हीरा : बीमारी में कहाँ खाना खाया जाता है !

सोना : (**आश्चर्य से**) बीमारी !

हीरा : हाँ···चाहे सीता को पत्र लिखकर पूछ लो, मुझे दोनों रात को बुखार था !

कंचन, सोना : सच ! अरे ! हम लोगों को तो···!

कंचन : सोना ! जा तू थोड़ा गाय का दूध गरम करके लेती आ !

हीरा : (**रोककर**)···नहीं-नहीं···कुछ नहीं···सब ठीक है ! अब मैं बिलकुल अच्छा हूँ ···सब चीज़ें खा लूँगा···तुम लोगों का सारा नाश्ता, सारा शर्बत !

[तीनों की सम्मिलित हँसी।]

हीरा : सोना ! अभी तुम जल्दी से खाना बनाओ···आज मैं तुम्हारे हाथों का भर पेट खाना खाऊँगा ! और तुमसे दिल भरके बातें करूँगा···!

सोना : (**प्रसन्नता से**) सच···देखिए···तब बात न काटिएगा···और···और···!

हीरा : हाँ-हाँ···बोलो···और क्या ?

सोना : आप अभी अपने गाँव नहीं जा सकते !

हीरा : (**प्रसन्नता से**) अच्छा नहीं जाऊँगा···तुम्हारे गाँव ज़िन्दगी भर रहूँगा···बोलो रक्खोगी ?

[हीरा-कंचन हँसते हैं, सोना शरमा जाती है ।]

कंचन : आज आपको देखकर बहुत खुशी हो रही है !

हीरा : तभी तो मुझे भी खुश होना पड़ा···देखो, मैं कितना खुश हूँ ।

सोना : (हिम्मत कर) आपको खुश होना पड़ा कि···!

हीरा : खुश होना पड़ा; यह कैसे ?

सोना : बता दूँ कंचन दीदी ?

हीरा : अरे !···क्या बात आ गई बताने की···!

सोना : (भोलेपन से) इस भोर में आपको खुश देखने के लिए मैं कल शाम को 'जोगी बीर' के थान पर गई थी !

कंचन : (हँसती हुई सोना को प्यार से धक्का देकर) हत् तेरे सोना की···!

[सब लोगों की सम्मिलित हँसी, लाजो तश्तरी में पान-इलायची लाती है और सोना को पकड़ा देती है।]

लाजो : माता जी कह रही हैं कि घर भर में सारा काम बिखरा पड़ा है, इसे कौन करेगा !

कंचन : हम सब करेंगी और कौन करेगा ! माता जी की तबीयत कैसी है ?

लाजो : बहुत खराब हो गई !

[बाहर जाने लगती है ।]

सोना : और तू बाहर कहाँ जा रही है ?

लाजो : लो टोक दिया न,···मैं माता जी के लिए देवतन बाबा से भभूत फुँकाने जा रही हूँ !

[चली जाती है ।]

सोना : (देती हुई) अच्छा अब नाश्ता कर लीजिए···।

हीरा : (तश्तरी लेकर खाता हुआ) तो सोना तू जोगी बीर के थान पर गई थी; जभी तो आज मैं एकाएक खुश हो गया भई, बड़ी ताक़त है तुम्हारे जोगी बीर बाबा में !

[दोनों हँसते हैं ।]

हीरा : पहले से अगर मुझे मालूम होता तो मैं भी अपनी सीता के लिए उन्हें अपनी पलकों में पूजता···! ख़ैर, हटाओ इन बातों को···!

कंचन : सब झूठ है !···मेरी सखी ने भी तो इस जोगी बीर बाबा को पूजा था और न जाने कितनों से मनौतियाँ मानी थीं लेकिन सब किस काम आए ?

हीरा : लेकिन सोना को तो अपने जोगी बीर बाबा पर पूरा विश्वास है !

कंचन : विश्वास नहीं ख़ाक है !···पिछली रात को आपके मन में ज़रूर कोई बात आई होगी···तभी आप स्वयं खुश हो गए हैं···और कौन आपको खुश कर सकता है ?

हीरा : (शर्बत पीता हुआ) तू ठीक कह रही है कंचन
बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ है ?

कंचन : कैसे ?···

हीरा : (शर्बत ख़त्म करके) रात के पिछले पहर में
आई, मैंने एकाएक स्वप्न में देखा कि उदास, पीली
सजी हुई मेरे पास आई है और अपने काँपते
सहला रही थी !···वह मौन थी···और अपल
थी और मैं भी उस अजीब सुहागन को देख रहा
सिंदूरी माँग, सुहाग बिन्दी, भीगी पलकों की
होंठों से लेकर दाएँ गाल तक छाई हुई उसकी ही
(एकाएक घबड़ाकर) अच्छा···कुछ नहीं···कुछ

सोना : (घबड़ाकर) अरे···आप हैरान क्यों हो गए ?

हीरा : (एकाएक उठकर) नहीं···चलो···अब···अब
जल्दी से खाना बनाओ···!

कंचन (बैठाती हुई) लेकिन आप तो बैठिए !

[हीरा बैठकर अपनी पिछली स्मृतियों की दुनिया

कंचन : (दुख से) देखिए आप फिर !···जाने दीजिए

हीरा : (जैसे एकाएक होश में आकर) अरे कुछ नहीं
जाने की बातें सोचने लगा !

सोना : वाह ! खूब बातें बदलते हैं···अंग्रेजी का कई

कंचन : (हँसती हुई) हाँ···सोचा कि हम लोग नि
जो बात बना दो !···कहाँ देख रहे थे मेरी स
लगे···वाह !

हीरा : अच्छा हाँ, मैं स्वप्न की बात कर रहा था
मेरे पास आई थी सोना !···उसकी भीगी प
माँग अब तक मेरी आँखों में है। उसने अं
कहा, "मेरे हीरा !···भगवान जाने तु
हुए तो समझ लो कि मैं इस संसार में

सोना : तो आपने क्या वादा किया ?

हीरा : (मुस्कराकर) देखो न, तभी तो
सीता ने मेरे दोनों हाथों को
कहा है !

कंचन : (जिज्ञासापूर्ण) कौन

हीरा : यह नहीं बताऊँगा !

सोना : (दुलार से)

ोना शरमा जाती है ।]

र बहुत खुशी हो रही है !

होना पड़ा···देखो, मैं कितना खुश हू .

ो खुश होना पड़ा कि···!

ैसे ?

गई बताने की···!

र में आपको खुश देखने के लिए मैं कल शाम को 'जोगी

ार से धक्का देकर) हत् तेरे सोना की···!

ँसी, लाजो तश्तरी में पान-इलायची लाती है और

कि घर भर में सारा काम बिखरा पड़ा है, इसे कौन

रेगा ! माता जी की तबीयत कैसी है ?

के लिए देवतन बाबा से भभूत फुँकाने जा रही

िए···।

ु जोगी बीर के थान पर गई थी; जभी

ाकत है तुम्हारे जोगी बीर बाबा में !

ी अपनी सीता के लिए उन्हें अपनी

···!

बीर बाबा को पूजा था और न

काम आए ?

विश्वास है !

में ज़रूर कोई बात

आपको खुश कर सकता

हीरा : (**शर्बत पीता हुआ**) तू ठीक कह रही है कंचन !···पिछली रात को मेरे मन में बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ है ?

कंचन : कैसे ?···

हीरा : (**शर्बत खत्म करके**) रात के पिछले पहर में जैसे ही मुझे कुछ क्षणों के लिए नींद आई, मैंने एकाएक स्वप्न में देखा कि उदास, पीली थकी हुई अपनी सुहाग की चूनरी सजी हुई मेरे पास आई है और अपने काँपते हुए ठण्डे हाथों से मेरे बालों को सहला रही थी !···वह मौन थी···और अपलक भीगी निगाहों से मुझे देख रही थी और मैं भी उस अजीब सुहागन को देख रहा था—गंभीर घूंघट के नीचे उसकी सिंदूरी माँग, सुहाग बिन्दी, भीगी पलकों की कोर में काजल-रेखा; सुर्ख उदास होंठों से लेकर दाएँ गाल तक छाई हुई उसकी हीर-कनी वाली नथुनी ! और-और (**एकाएक घबड़ाकर**) अच्छा···कुछ नहीं···कुछ नहीं सोना !

सोना : (**घबड़ाकर**) अरे···आप हैरान क्यों हो गए ?

हीरा : (**एकाएक उठकर**) नहीं···चलो···अब···अब घर का काम देखो सोना··· जल्दी से खाना बनाओ···!

कंचन (**बैठाती हुई**) लेकिन आप तो बैठिए !

[हीरा बैठकर अपनी पिछली स्मृतियों की दुनिया में खो जाता है ।]

कंचन : (**दुख से**) देखिए आप फिर !···जाने दीजिए सपने वाली इस बात को !

हीरा : (**जैसे एकाएक होश में आकर**) अरे कुछ नहीं भई !···कुछ नहीं···मैं तो घर जाने की बातें सोचने लगा !

सोना : वाह ! खूब बातें बदलते हैं···अंग्रेजी का कई दर्जा पास किया है न, तभी !

कंचन : (**हँसती हुई**) हाँ···सोचा कि हम लोग निरी गाँव वाली तो हैं; इनसे चाहे जो बात बना दो !···कहाँ देख रहे थे मेरी सखी का स्वप्न और कहाँ घर जाने लगे···वाह !

हीरा : अच्छा हाँ, मैं स्वप्न की बात कर रहा था न; हाँ सच मानो तुम्हारी सीता दीदी मेरे पास आई थी सोना !···उसकी भीगी पलकें; पीला चेहरा और उसकी सिंदूरी माँग अब तक मेरी आँखों में है। उसने अंत में अपनी काँपती हुई वाणी में मुझसे कहा, "मेरे हीरा !···भगवान जाने तुम्हें मेरी क़सम, जो अगर तुम कभी उदास हुए तो समझ लो कि मैं इस संसार में न रहूँगी !

सोना : तो आपने क्या वादा किया ?

हीरा : (**मुस्कराकर**) देखो न, तभी से तो मैं इतना खुश हूँ (**रुककर**) लेकिन स्वप्न में सीता ने मेरे दोनों हाथों को अपने सीने में छिपाकर एक काम और करने के लिए कहा है !

कंचन : (**जिज्ञासापूर्ण**) कौन काम ?

हीरा : यह नहीं बताऊँगा ?

सोना : (**दुलार से**) नहीं, देखिए बता दीजिए !

हीरा : भाई ! यह बात बताने लायक़ नहीं है !

सोना : नहीं ! राम की क़सम देखिए मुझे बता दीजिए···!

हीरा : क्यों कंचन बता दूँ !

कंचन : बता दीजिए न !

हीरा : लेकिन सच, कैसे बताऊँ···अच्छा मैं लिख के बता दूँगा !

सोना : राम की क़सम देखिए···!

हीरा : हाँ, हाँ, राम की क़सम···तुम्हारे जोगी बीर बाबा की क़सम !

[सब हँस पड़ते हैं ।]

सोना : (**कंचन को देखकर**) अच्छा हीरा बाबू ! आप मेरी एक बात मान लीजिएगा !

हीरा : एक बात नहीं; तुम्हारी सौ बातें मान लूँगा···(**रुककर**) मेरी ओर देखो सोना !

[सोना उसे देखते ही शर्म से लाल हो जाती है ।]

कंचन : हाँ, हीरा बाबू सोच लीजिए···आपने वचन दिया है···अब आपको बात ज़रूर माननी पड़ेगी !

हीरा : हाँ, भई ज़रूर, मान लूँगा···ज़रूर, कहो तो लिख के दे दूँ···और फिर सोना की बात···!

सोना : (**आँचल के छोर से अंगूठी खोलकर**) यह लीजिए सीता दीदी ने आपको यह अँगूठी भेंट की है !

हीरा : (**आश्चर्य से डरकर**) अरे यह क्या किया सीता ने ? ···यह तो उसके सुहाग की अँगूठी है ! यह यहाँ कैसे आई !

कंचन : रास्ते में जब भीखी दादा मेरी सखी को पहुँचाकर लौट रहा था, तब उसने उसके पाँव को पकड़कर अपनी यह अँगूठी को मेरे हीरा बाबू को ज़रूर दे देना ?

हीरा : (**अँगूठी लेकर**) लेकिन यह तो उसके सुहाग की अँगूठी है !

सोना : यह तो अपना-अपना विश्वास है; इस अँगूठी को आप ज़रूर लीजिए हीरा बाबू !···देखिए आपने मुझे वचन दिया है !

[हीरा सोना को अपलक देखता हुआ चुप है ।]

कंचन : आप क्या सोच रहे हैं ?

हीरा : मैं रात वाला अपना सपना सोच रहा हूँ !

सोना : (**हीरा के दायें हाथ को पकड़कर**) अच्छा लीजिए पहले यह अँगूठी पहन लीजिए ···और वह सपने वाली बात बता दीजिए !

हीरा : सच बता दूँ !

[भावविह्वल होकर सोना का दायें हाथ पकड़ लेता है ।]

हीरा : बता दूँ सोना !···सच कह दूँ !

सोना : (**हँसती हुई**) हाँ, हाँ, बताते क्यों नहीं !

हीरा : सोच लो बुरा तो नहीं मानोगे !

सोना : नहीं, कभी नहीं···

हीरा : और मेरी उस बात को भी मान लोगी !

सोना : जी,···आपकी एक बात नहीं सौ बात मान

हीरा : (**सहसा काँपते हुए हाथों से सीता की अँ**
हुआ) सोना ! तुम्हारी सीता दीदी ने यह क
अपने हाथों से सोना की कुँआरी उँगली में प

[अँगूठी सोना की उँगली में पहना उठती है
कर अपने दामन में छिपा लेती है और शर्म से

हीरा : (**गम्भीरता से**) मैं क्या करता···सीता क
सोना से पूछो···वह उससे खुश है कि नहीं···
इससे पूछ लो कंचन ! यह खुश है कि नहीं

कंचन : इससे बढ़कर और क्या खुशी की बात ही

[सोना दुल्हन की तरह शर्माती हुई जल्दी
क्षण-भर तक उस ओर देखता ही रह जाता
सोना अभी भीतर गई है, कंचन आश्चर्य-वि
देखती रहती है; एकाएक बाहर से आँगन
आती है; उनके साथ पांडेजी—घर के उपर
गुड़गुड़ाता हुआ हुक्का है और उपरोहित के

दादू : (**आँगन में उतरते हुए**) बिलकुल सही प
कभी नहीं भूल सकता ।

पाँड़े जी : नहीं दादू ! ई है कि आप भी कैसी बातें
थी ।

दादू : (**गुड़गुड़ाते हुए**) क्यों नहीं ! क्यों नहीं !

[कंचन दबे पाँव भीतर चली जाती है; **हीरा**
है ।]

दादू : (हीरा **को देखते ही**) अरे ! हीरा ! कु

हीरा : जी हाँ, सब हो गया ।

पाँड़े जी : (**अपनी पिछली बातों के सिल**
चौधरी आपके इस संबंध से बहुत प्र

दादू : यह तो सब आपकी कृपा है !
सुना है पाँड़े जी ! उनके

[हुक्का एक

हीरा : सोच लो बुरा तो नहीं मानोगे !

सोना : नहीं, कभी नहीं···

हीरा : और मेरी उस बात को भी मान लोगी !

सोना : जी,···आपकी एक बात नहीं सौ बात मान लूँगी !

हीरा : (**सहसा काँपते हुए हाथों से सीता की अँगूठी को सोना को उँगली में पहनाता हुआ**) सोना ! तुम्हारी सीता दीदी ने यह कहा था कि तुम इस सुहाग की अँगूठी को अपने हाथों से सोना की कुँआरी उँगली में पहना देना !···और···और···!

[अँगूठी सोना की उँगली में पहना उठती है और सोना अपने उस हाथ को खींचकर अपने दामन में छिपा लेती है और शर्म से सिकुड़कर गोल हो जाती है ।]

हीरा : (**गम्भीरता से**) मैं क्या करता···सीता की यही इच्छा थी···बोलो कंचन !···सोना से पूछो···वह उससे खुश है कि नहीं···मैंने कोई बुरा तो नहीं किया, जरा इससे पूछ लो कंचन ! यह खुश है कि नहीं !

कंचन : इससे बढ़कर और क्या खुशी की बात हो सकती है ।

[सोना दुल्हन की तरह शर्माती हुई जल्दी से उठकर भीतर भाग जाती है । हीरा क्षण-भर तक उस ओर देखता ही रह जाता है, जिस रास्ते से लज्जा से झुकी हुई सोना अभी भीतर गई है, कंचन आश्चर्य-मिश्रित प्रसन्नता से हीरा को अपलक देखती रहती है; एकाएक बाहर से आँगन की ओर आते हुए दादू की आवाज़ आती है; उनके साथ पांडेजी—घर के उपरोहित भी हैं । दादू के हाथ में छोटा-सा गुड़गुड़ाता हुआ हुक्का है और उपरोहित के साथ उनका पत्रा और लोटा दोनों हैं ।]

दादू : (**आँगन में उतरते हुए**) बिलकुल सही पांड़े जी ! मैं आपके इस एहसान को कभी नहीं भूल सकता ।

पांड़े जी : नहीं दादू ! ई है कि आप भी कैसी बातें करते हैं, सीता क्या मेरी बेटी नहीं थी ।

दादू : (**गुड़गुड़ाते हुए**) क्यों नहीं ! क्यों नहीं !

[कंचन दबे पाँव भीतर चली जाती है; हीरा वहीं बैठे-बैठे दोनों को देखता रहता है ।]

दादू : (**हीरा को देखते ही**) अरे ! हीरा ! कुछ जलपान हुआ कि नहीं ?

हीरा : जी हाँ, सब हो गया ।

पांड़े जी : (**अपनी पिछली बातों के सिलसिले में**) सच, ई है कि···शेखूपुरा वाला चौधरी आपके इस संबंध से बहुत प्रसन्न है ! ई है कि···।

दादू : यह तो सब आपकी कृपा है ! नहीं तो कहाँ मैं और कहाँ वे इतने बड़े ज़मींदार···सुना है पांड़े जी ! उनके यहाँ सोने-चाँदी की लेन-देन भी होती है !

[हुक्का एक जगह रख देते हैं ।]

पाँड़े जी : वो ई कि—क्या कहने ! इस समय उसके घर में कम-से-कम दस-पन्द्रह सेर सोने के गहने गिरवी मिलेंगे। ई है कि सच, वह बहुत बड़ा आदमी है। अरे ! दादू···सीता बेटी का भाग्य था बस···।

दादू : (**प्रसन्नता से**) बहुत सही !···पट्टीदार लोग अभी तो अजीब-अजीब बातें पैदा कर रहे हैं···कि लड़के की उमर ज्यादा थी···वर कन्या के योग्य नहीं था···वगैरह-वगैरह।

पाँड़े : अरे ! मारिए गोली ऐसी बातें करने वालों को···ई है कि दादू ? उन्हें क्या पता। शास्त्र कहता है कि रजस्वला कन्याः तीस वर्षः वरा' ई है कि चौदह साल की कन्या के लिए अगर तीस वर्ष का वर हो तो क्या बुरा···और फिर ई है कि "सर्वे गुणः कांचन माश्रयन्ति···"···!

दादू : बहुत ठीक···बहुत ठीक···!

पाँड़े : हाँ और क्या दादू ! ई है कि लड़की का घर तो टेंट देखकर ढूंढ़ा जाता है···पेट देखकर नहीं···! ई है कि···ज्यादा-कम उमर सब घर-गृहस्थी में खप जाती है !

दादू : (**थकान से कमर पर हाथ रखकर**) लेकिन इतनी बड़ी शादी से मैं चूर भी तो हो गया···घर की सारी तरावट सूख गई···फिर आपको तो सब मालूम ही है ! अगर सेंधुआ के चौधरी ने मुझे इतना सहारा न दिया होता तो सच, मेरी नाक कट गई होती !···

पाँड़े : नहीं-नहीं···ई है कि ऐसी क्या बात है ?···आपसे उन्हें मिलाने के पहले मैं सेंधुआ के चौधरी का मन आपकी ओर से पूरा-पूरा भर आया था···ई है कि अब भी आपको जितने रुपयों की जरूरत हो···वे अपने आप देने के लिए तैयार हैं। वे बहुत भक्त आदमी हैं !

दादू : हाँ-हाँ, क्या कहने···!

[बाहर दरवाज़े की चौखट से किसी की आवाज़ आती है 'बाबू, ओ बाबू !']

दादू : (**घबड़ाकर**) कौन है भाई ?

आवाज़ : आपका हलवाई।

दादू : अरे जग्गी ! चले आओ···भीतर आ जाओ···!

जग्गी : (**आँगन में आता हुआ**) जै राम जी की बाबू···पालागन पण्डित जी !

पाँड़े (**दादू के राम-राम के साथ**) जै हो···कल्याण हो···ई है कि···!

दादू : कैसे आए जग्गी ?

जग्गी : (**संकोच भरे शब्दों में आग्रहपूर्ण**) जी···जी यही कि मिठाई के दाम मिल जाते !

दादू : (**चिन्ता से**) दाम···अभी !

जग्गी : (**बनावटी दीनता से**) जी···ऐसी ही मजबूरी आ गई है ! बात यह है कि परसों ही तो रामकुबेर बाबू के यहाँ बरात आएगी और मुझे कल बीस सेर मिठाई और उतनी ही नमकीन बनानी है ! और इधर गाँठ में एक पैसा भी नहीं है !

क्या करूँ बाबू ! मजबूरी थी···वरना···क्या मैं
ज़रूर जानता हूँ मैंने भी तो अपनी दो लड़कियाँ बि

दादू : (**चिन्ता से**) फिर तो मैं तुम्हें क्या समझाऊँ !···

जग्गी : लेकिन मजबूरी है बाबू !

दादू : (**रुककर**) पाँड़े जी ! अगर भगवान लड़की दे···
जन्मते ही उसका गला दबा देने में कोई पाप नहीं

पाँड़े जी : (**बीच ही में**) च्···च्···हरेराम ! हरेराम
···राम राम ! कभी नहीं···ई है कि कन्या ही तो
बिना कन्या के पाँव पूजे कभी मुक्ति नहीं मिलती

दादू : चाहे जो हो···मैं तो थक गया ! न कमर में ता
···उधर सीता की माँ ने चारपाई पकड़ ली है,
सम्बन्धी बैठे हुए हैं !

पाँड़े : ई है कि घबड़ाइये नहीं···यही तो शादी का पि
है···(**रुककर**) जग्गी !···तुम्हारा कुल कितना

दादू : (**एक गन्दा कागज़ बढ़ाता हुआ**) यह हिसाब देख
हैं।

दादू : (**जैसे जगकर**) साठ रुपये !···बोलिए पाँड़े जी
दरवाज़े पर कितने रिश्तेदार बैठे हैं···सबकी बिदा
चौथे ही दिन शेखपुरा आदमी भी भेजना है···
माड़ियाँ भेजनी होंगी !

पाँड़े : ई है कि सब हो जाएगा दादू ! घबड़ाइये नहीं !

[सहसा भीतर से लाजो दौड़कर आती है।]

लाजो : (**दादू से लिपटकर**) घर में चलिए···

दादू : (**पीड़ा से**) भीखी कहाँ है ?

लाजो : भीतर काम कर रहा है !

दादू : (**मुफ्त में बिगड़कर**) भीतर क्या
हालत कि देखा नहीं जाता···और
कहीं का !

लाजो : (**डरी हुई**) इसीलिए तो
कह ही रहा था कि
जाएँगे !

[लाजो धीरे से

जग्गी : बाबू जी !
रामकुबेर को

इस समय उसके घर में कम-से-कम दस-पन्द्रह सेर
ई है कि सच, वह बहुत बड़ा आदमी है। अरे !
बस···।
···पट्टीदार लोग अभी तो अजीब-अजीब बातें पैदा
ज्यादा थी···वर कन्या के योग्य नहीं था···वगैरह-

करने वालों को···ई है कि दादू ? उन्हें क्या
या कन्याः तीस वर्षः वरा' ई है कि चौदह साल
का वर हो तो क्या बुरा···और फिर ई है कि
···!

का घर तो टेंट देखकर ढूंढ़ा जाता है···पेट
उमर सब घर-गृहस्थी में खप जाती है !
लेकिन इतनी बड़ी शादी से मैं चूर भी तो
···फिर आपको तो सब मालूम ही है !
रा न दिया होता तो सच, मेरी नाक कट

!···आपसे उन्हें मिलाने के पहले मैं
पूरा-पूरा भर आया था···ई है कि अब
अपने आप देने के लिए तैयार हैं। वे

आती है 'बाबू, ओ बाबू !']

स्वागत पण्डित जी !
ई है कि···!

मिठाई के दाम मिल

! बात यह है कि
बीस सेर मिठाई
पैसा भी नहीं है !

क्या करूँ बाबू ! मजबूरी थी···वरना···क्या मैं मड़वे का भोर नहीं जानता··· जरूर जानता हूँ मैंने भी तो अपनी दो लड़कियाँ बिदा की हैं !

दादू : (**चिन्ता से**) फिर तो मैं तुम्हें क्या समझाऊँ !···तुम्हें सब मालूम ही है !

जग्गी : लेकिन मजबूरी है बाबू !

दादू : (**रुककर**) पाँड़े जी ! अगर भगवान लड़की दे···तो खूब धन भी दे, नहीं तो जन्मते ही उसका गला दबा देने में कोई पाप नहीं !

पाँड़े जी : (**बीच ही में**) च्···च्···हरेराम ! हरेराम ! ई है कि दादू ! ऐसी बात ···राम राम ! कभी नहीं···ई है कि कन्या ही तो सृष्टि है···शास्त्र कहता है कि बिना कन्या के पाँव पूजे कभी मुक्ति नहीं मिलती !

दादू : चाहे जो हो···मैं तो थक गया ! न कमर में ताकत लग रही है न गाँठ में गरमी ···उधर सीता की माँ ने चारपाई पकड़ ली है, इधर अभी दरवाजे पर तमाम सम्बन्धी बैठे हुए हैं !

पाँड़े : ई है कि घबड़ाइये नहीं···यही तो शादी का पिछाड़ा है···सब पै यह बीतती है···(**रुककर**) जग्गी !···तुम्हारा कुल कितना रुपया हुआ ?

दादू : (**एक गन्दा कागज बढ़ाता हुआ**) यह हिसाब देख लीजिए···कुल 60 रुपये आते हैं।

दादू : (**जैसे जगकर**) साठ रुपये !···बोलिए पाँड़े जी ! अब कैसे काम चलेगा···अभी दरवाजे पर कितने रिश्तेदार बैठे हैं···सबकी बिदा-बिदाई करनी है, फिर आज के चौथे ही दिन शेखूपुरा आदमी भी भेजना है···कम-से-कम शर्माते हुए भी दो साड़ियाँ भेजनी होंगी !

पाँड़े : ई है कि सब हो जाएगा दादू ! घबड़ाइये नहीं !

[सहसा भीतर से लाजो दौड़कर आती है।]

लाजो : (**दादू से लिपटकर**) घर में चलिए···कई सामान चुक गया है।

दादू : (**पीड़ा से**) भीखी कहाँ है ?

लाजो : भीतर काम कर रहा है !

दादू : (**मुफ्त में बिगड़कर**) भीतर क्या काम कर रहा है···घर और आँगन की यह हालत कि देखा नहीं जाता···और वह भीतर न जाने क्या कर रहा है ! उल्लू कहीं का !

लाजो : (**डरी हुई**) इसीलिए तो भीखी दा डर के मारे आपके पास आया ही नहीं, वो कह ही रहा था कि लाजो तू ही जा···नहीं तो दादू मुझ पर नाहक में बिगड़ जाएँगे !

[लाजो धीरे से भीतर चली जाती है।]

जग्गी : दादू जी ! तो मेरे लिए क्या हुक्म है ! सच, इज्जत का मामला है, और आप रामकुबेर को जानते ही हैं, मेरे सर पर एक बाल भी न रखेंगे।

दादू : (**वेदनापूर्ण दृष्टि से**) पाँड़े जी ! अब बोलिए !

पाँड़े : ई है कि इसमें बोलना क्या है दादू ! (**निकालते हुए**) यह लीजिए साठ रुपये (**देता हुआ**) लीजिए···!

[दादू सर झुकाकर चुप है।]

पाँड़े : ये कौन-सी बड़ी बात है ! (**जग्गी को देता हुआ**) जग्गी ! ये लो अपने रुपये !

[जग्गी रुपये लेकर धीरे से बाहर जाता है।]

दादू : पाँड़े जी ! तो आपका भी मैं कर्ज़दार हुआ ?

पाँड़े : (**हँसकर**) ई है कि आप कैसी बातें करते हैं ! नहीं तो, मेरे पास रुपए कहाँ ?

दादू : (**जिज्ञासा से**) फिर ?

पाँड़े : वह सेंधुआ के चौधरी का रुपया है !

दादू : (**आश्चर्य से**) चौधरी के रुपये ?

पाँड़े : हाँ···और क्या ? ···ई है कि आज भोर ही में उधर से मैं आ रहा था तो चौधरी ने मुझे बुलाया और आपका सब कुशल-मंगल पूछा—शादी की लेन-देन, खर्च-वर्च की सब बातें···पूरे विस्तार में। लेकिन ई है कि जरा सेंधुआ के चौधरी की महानता तो देखो दादू ! ई है कि चलते समय उन्होंने मुझे फिर पाँच सौ रुपए दिए ! ···हाँ···और कहा कि पाँड़े जी ! अभी दादू चौधरी को जरूर रुपयों की जरूरत पड़ेगी। ई है कि शादी-विवाह का पिछाड़ा मशहूर है···बुरी तरह से आदमी चूर-चूर हो जाता है···लेन-देन···विदा-बिदाई···उधार-तौजा···इनाम-इकराम···! इसीलिए चौधरी ने मुझे आपकी सहायता में इतना रुपया फिर दिया···!

दादू : (**थके से**) मैं चौधरी से सच, कभी उऋण नहीं हो सकता पाँड़े जी !

पाँड़े : अरे ई है कि राम-राम कहिए दादू ! चौधरी राजा आदमी है राजा···बड़ा दिलेर है। वे आपके खानदान पर जाते हैं, ई है कि सुफल बाबा के दिन सोचते हैं; जब आपके दरवाजे पर दो घोड़े और तीस जोड़ी बैल बँधे रहते थे। ई है कि उन्हें आपके परिवार से बहुत श्रद्धा है। यह तो वक्त है···लेन-देन नहीं करता ? दादू ई है कि चौधरी के इन रुपयों की सहायता को आप किसी भी तरह कर्ज या ऋण न मानिएगा !

दादू : नहीं पाँड़े जी ! कैसी बात ! मैं चौधरी का एक-एक चुका दूँगा और ताज़िन्दगी अहसानमन्द तो रहूँगा ही !

पाँड़े : (**हैरानी से**) ओह ओ ! दादू !! ···आपको उन्हें रुपये चुकाने की कोई बात ही नहीं भाई ! इसे वे अपना घर समझते हैं।

[सहसा आँगन में 'कोई है ! कोई है भाई !' कहते हुए किसी का आना।]

दादू : अरे ! सोहन साहू।

सोहन : (**प्रवेश कर**) जै राम जी की···पा लागन पण्डित जी !

दादू : (**पंडित जी के आशीर्वाद के साथ ही साथ**)

पाँड़े : साहू जी ! कैसे चले आए सुबह ही सुबह ?

सोहन : (**झूठी हँसी से**) बस ऐसे ही, दादू के पास

गया था···घर में कुछ सौदा-पानी घट गया है

दादू : (**बीच ही में क्रोध से**) सोहन ! जरा अक़ल

खोपड़ी में आई ! ···ज़बान से निकाल ली !

हीरा : (**जो अभी तक बिलकुल मौन बैठा था**) कोई

दादू : खैर, यह तो ठीक है हीरा बेटा ! लेकिन स

ख़याल के तो नहीं !

पाँड़े : (**बीच ही में**) ई है कि साहु जी ! बात क्या

बात है न !

सोहन : (**डरा हुआ**) हाँ जी, और क्या हो सकता

गए !

पाँड़े : (**दोनों को संकेत कर आँगन से बाहर ले जा**

दादू ! वहीं इनका सब हिसाब हो जाएगा।

[तीनों बाहर जाते हैं, हीरा वहीं मौन बैठा र

पीछे कोहबर के कमरे में न जाने क्या देखता

पुकारता है—लेकिन इसके उत्तर में भीतर से

है।]

कंचन : (**आते ही**) क्या है हीरा बाबू ?

हीरा : कोहबर के घर का चिराग कैसे बुझ गया ?

कंचन : नहीं तो···अब दिन को क्या जलेगा, फिर

हीरा : (**गंभीरता से**) नहीं कंचन ! ···जब तक मैं

दीपक दिन-रात जलना चाहिए ! इसकी प

और उसका चमकता हुआ सोहाग देखने को मि

फिर से जला दो !

[कंचन जाती है।]

हीरा : (**उसे देखता हुआ**) मेरी सीता तू हमेशा खु

तरह काँपती हुई नहीं, इससे फूटती हुई रोशनी

[कंचन दीपक जलाकर वापस आ जाती है।]

हीरा : सोना कहाँ है ?

कंचन : (**प्रसन्नता से**) उनकी न पूछिए ! ···

मुझसे कहती थी कि कंचन दीदी ! हाय

कैसे जाऊँ !

) पाँड़े जी ! अब बोलिए !

ना क्या है दादू ! (निकालते हुए) यह लीजिए साठ रुपये
ए···!

है।)

है ! (जग्गी को देता हुआ) जग्गी ! ये लो अपने रुपये !

रे से बाहर जाता है।]

ी मैं कर्जदार हुआ ?

कैसी बातें करते हैं ! नहीं तो, मेरे पास रुपए कहाँ ?

रुपया है !

रुपये ?

कि आज भोर ही में उधर से मैं आ रहा था तो चौधरी
सब कुशल-मंगल पूछा—शादी की लेन-देन, खर्च-वर्च
में। लेकिन ई है कि जरा सेंधुआ के चौधरी की
कि चलते समय उन्होंने मुझे फिर पाँच सौ रुपए
पाँड़े जी ! अभी दादू चौधरी को जरूर रुपयों की
ब्याह का पिछाड़ा मशहूर है···बुरी तरह से आदमी
लेन-देन···बिदा-बिदाई···उधार-तौजा···इनाम-
ने मुझे आपकी सहायता में इतना रुपया फिर

ी उऋण नहीं हो सकता पाँड़े जी !

! चौधरी राजा आदमी है राजा···बड़ा दिलेर
ई है कि सुफल बाबा के दिन सोचते हैं; जब
जोड़ी बैल बँधे रहते थे। ई है कि उन्हें आपके
है···लेन-देन नहीं करता ? दादू ई है कि
आप किसी भी तरह कर्ज या ऋण न

एक-एक चुका दूंगा और ताजिन्दगी

उन्हें रुपये चुकाने की कोई बात ही

हुए किसी का आना।]

दादू : (**पंडित जी के आशीर्वाद के साथ ही साथ**) जै राम जी की···

पाँड़े : साहू जी ! कैसे चले आए सुबह ही सुबह ?

सोहन : (**झूठी हँसी से**) बस ऐसे ही, दादू के पास चला आया। अभी भीखी दुकान पर गया था···घर में कुछ सौदा-पानी घट गया है !

दादू : (**बीच ही में क्रोध से**) सोहन ! जरा अक़ल से काम लो···जो भी बात छोटी-सी खोपड़ी में आई !···ज़बान से निकाल ली ! मेरा कोई नात-बात नहीं देखते ?

हीरा : (**जो अभी तक बिलकुल मौन बैठा था**) कोई बात नहीं···यह तो मेरा घर है !

दादू : खैर, यह तो ठीक है हीरा बेटा ! लेकिन सब तो तुम्हारी तरह पढ़े-लिखे ऊँचे खयाल के तो नहीं !

पाँड़े : (**बीच ही में**) ई है कि साहु जी ! बात क्या है, बस रुपये पैसे की लेन-देन की बात है न !

सोहन : (**डरा हुआ**) हाँ जी, और क्या हो सकता है लेकिन दादू तो मुफ्त में बिगड़ गए !

पाँड़े : (**दोनों को संकेत कर आँगन से बाहर ले जाते हुए**) अच्छा चलो···बाहर चलें, दादू ! वहीं इनका सब हिसाब हो जाएगा।

[तीनों बाहर जाते हैं, हीरा वहीं मौन बैठा रह जाता है। क्षण भर के बाद उठकर पीछे कोहबर के कमरे में न जाने क्या देखता है और फिर 'सोना', 'सोना' दो बार पुकारता है—लेकिन इसके उत्तर में भीतर से कंचन दौड़ती हुई आँगन में आती है।]

कंचन : (**आते ही**) क्या है हीरा बाबू ?

हीरा : कोहबर के घर का चिराग कैसे बुझ गया ? उसे तो अभी जलना चाहिए न !

कंचन : नहीं तो···अब दिन को क्या जलेगा, फिर रात को जला दिया जाएगा !

हीरा : (**गंभीरता से**) नहीं कंचन !···जब तक मैं हूँ इस कोहबर के घर में घी का दीपक दिन-रात जलना चाहिए ! इसकी पवित्र लौ में मुझे सीता की लाल चुनरी और उसका चमकता हुआ सोहाग देखने को मिलता है। जाओ···उसमें घी डालकर फिर से जला दो !

[कंचन जाती है।]

हीरा : (**उसे देखता हुआ**) मेरी सीता तू हमेशा खुश रह, लेकिन दीपक की इस लौ की तरह काँपती हुई नहीं, इससे फूटती हुई रोशनी की तरह !

[कंचन दीपक जलाकर वापस आ जाती है।]

हीरा : सोना कहाँ है ?

कंचन : (**प्रसन्नता से**) उनकी न पूछिए !···वह तो मारे शर्म के अभी तक छिपी है ! मुझसे कहती थी कि कंचन दीदी ! हाय दइया ! तुम्हीं बताओ अब मैं उनके पास कैसे जाऊँ !

हीरा : मैंने कोई ग़लती तो नहीं की, कंचन ! सच बताओ···मुझसे कोई भूल तो नहीं हुई ?

कंचन : नहीं जी !···आप क्या बातें करते हैं···वह तो बहुत खुश है···मेरे साड़ी के पल्ले में बच्चों की तरह अपना मुँह छिपाकर मुझसे पूछ रही थी कि भला बताओ अब मैं उनका नाम कैसे लूँगी !

हीरा : ओह ! यह सोना भी कितनी भोली है !···सीता ही की तो बहन है !

कंचन : सच, सोना बहुत खुश है···मैंने देखा है कि उसकी लाज भरी आँखों में उसके दुल्हन का रूप, झुका हुआ शरमा रहा है ! वह बार-बार पूछती है कि देख कंचन दीदी ! मुझे हो क्या गया ?

हीरा : तब तू क्या कहती है ?

[कंचन शरमा जाती है।]

हीरा : शरमा गई !···अच्छा···!

कंचन : (आँखों में बिदा के आँसू लाकर) ईश्वर करे हीरा बाबू ! सोना आपकी सुहागन हो जाए···नहीं तो···।

हीरा : हाँ-हाँ, बोलो···नहीं तो क्या ?

कंचन : (दर्द से) नहीं तो बस हम लोगों की क़िस्मत···!

हीरा : (बढ़कर कंचन को देखता हुआ) नहीं कंचन !···ईश्वर तुम्हारी ज़िन्दगी में खुशी देगा। (रुककर) अच्छा एक बात बताओ···ये तुम्हारे उपरोहित पाँड़े जी कैसे आदमी हैं ?

कंचन : (घृणा से) बड़ा कलमुँहा है दाढ़ीजार ! इसी ने तो फाँस-फूँस के मेरी सलोनी सखी को शेख़ूपुरा में बन्द किया है !

हीरा : (आश्चर्य से) अच्छा ! ओह···! वैसे तो देखने में इस घर के सबसे बड़े हितैषी लगते हैं; कोई सेंधुआ के चौधरी हैं, उनसे दादू को बहुत रुपये-पैसों की सहायता करवा रहा है !

कंचन : पाजी···रँगा सियार है !

हीरा : (रुककर) अच्छा कंचन !···अब मैं बाहर चल रहा हूँ, तुम लोग घर का काम देखो···!

कंचन : (रोकती हुई) बैठिए जी आप तो···(प्यार से) कहिए तो सोना को बुला दूँ !

हीरा : अच्छा हाँ, बुला दो !

कंचन : कुछ इनाम दीजिए···इस समय सोना सुबह-सुबह वाली सोना थोड़े रह गई है···जो आपके पुकारते ही आँगन में बेतहाशा दौड़ आती थी; अब तो उसकी उँगली में आपने···!

हीरा : हाँ तो···?

कंचन : हाँ तो···अब दुल्हन दिखाने का इनाम दीजिए···!

हीरा : अच्छा बुला दो···मैं तुम्हें इसके लिए एक बहुत

कंचन : बताइए भी तो सही !

हीरा : सोना के डोले के साथ तुम्हारा भी डोला !

[कंचन लाज से 'बक्' करती हुई सोना को लाने
हीरा वहीं आँगन में टहलता रहता है और कभी-
चिराग़ को देखता है; क्षणभर के बाद बाहर से द
आते हैं। हीरा फिर एक जगह खड़ा रहकर इन ल

पाँड़े : (आते ही आते) दादू ! ई है कि किसी भी
पाएगी ! दोनों घर एक हैं···!

दादू : हाँ, हाँ पाँड़े जी ! यह तो मेरी किस्मत है !

पाँड़े : दादू सचमुच ई है कि आपकी क़िस्मत बहुत ऊँची
खोल के कह दूँ दादू ?

दादू : हाँ, हाँ ज़रूर क्यों नहीं !

पाँड़े : (इधर-उधर देखकर हाथ मलते हुए) ई है कि
सेंधुआ के चौधरी के बड़े लड़के से कर दीजिए !

हीरा : (एकाएक जैसे कोई स्वप्न में चीख़ उठता है) प

दादू : (घबड़ाकर) क्या है हीरा बाबू ? क्या बात है ?

हीरा : (जैसे ज़हर का घूँट पीता हुआ) नहीं, कुछ नहीं

दादू : आराम से कुर्सी पर बैठ जाइए, हीरा बाबू !

[हीरा उसी तरह खड़े-खड़े कोहबर के घर में जलते
मानो वह दीपक की लौ में अपनी सीता से कुछ क

पाँड़े : ई है कि दादू ! यह बहुत अच्छा सम्बन्ध रहेगा
ऐसा घर-वर ढूँढ़ने से न मिलेगा और सेंधुआ के

हीरा : (बीच ही में चीख़ उठता है) दादू !

दादू : (घबड़ाकर) क्या है हीरा ?

[हीरा काँपता हुआ चुप हो जाता है।]

पाँड़े : तो बोलिए दादू ! आपका क्या विचार

दादू : (गिरती हुई वाणी से) तो ठीक

[पृष्ठभूमि में वाद्ययन्त्र की तीखी
आह बनकर खो जाती है।]

पाँड़े : जै हो···कल्याण हो···
जितनी जल्दी उतरे

[हीरा की फटी

नहीं की, कंचन ! सच बताओ···मुझसे कोई भूल तो नहीं

या बातें करते हैं···वह तो बहुत खुश है···मेरे साड़ी के
अपना मुँह छिपाकर मुझसे पूछ रही थी कि भला बताओ
लूँगी !
कितनी भोली है ! ···सीता ही की तो बहन है !
है···मैंने देखा है कि उसकी लाज भरी आँखों में उसके
शरमा रहा है ! वह बार-बार पूछती है कि देख कंचन
?

!

कर) ईश्वर करे हीरा बाबू ! सोना आपकी सुहागन

?
गों की क़िस्मत···!
) नहीं कंचन ! ···ईश्वर तुम्हारी जिन्दगी में खुशी
बताओ···ये तुम्हारे उपरोहित पाँड़े जी कैसे

चार ! इसी ने तो फाँस-फूँस के मेरी सलोनी

हे तो देखने में इस घर के सबसे बड़े हितैषी
से दादू को बहुत रुपये-पैसों की सहायता

र चल रहा हूँ, तुम लोग घर का काम

से) कहिए तो सोना को बुला

वाली सोना थोड़े रह गई
थी; अब तो उसकी उँगली

हीरा : अच्छा बुला दो···मैं तुम्हें इसके लिए एक बहुत बड़ा इनाम दूँगा !

कंचन : बताइए भी तो सही !

हीरा : सोना के डोले के साथ तुम्हारा भी डोला !

[कंचन लाज से 'बक्' करती हुई सोना को लाने के लिए भीतर भाग जाती है। हीरा वहीं आँगन में टहलता रहता है और कभी-कभी कोहबर के घर में जलते हुए चिराग़ को देखता है; क्षणभर के बाद बाहर से दादू और पांडे जी फिर आँगन में आते हैं। हीरा फिर एक जगह खड़ा रहकर इन लोगों को सुनने लगता है।]

पाँड़े : (**आते ही आते**) दादू ! ई है कि किसी भी तरह आपकी इज्ज़त थोड़े जाने पाएगी ! दोनों घर एक हैं···!

दादू : हाँ, हाँ पाँड़े जी ! यह तो मेरी किस्मत है !

पाँड़े : दादू सचमुच ई है कि आपकी क़िस्मत बहुत ऊँची है ! एक बात आपसे साफ़-साफ़ खोल के कह दूँ दादू ?

दादू : हाँ, हाँ ज़रूर क्यों नहीं !

पाँड़े : (**इधर-उधर देखकर हाथ मलते हुए**) ई है कि अपनी सोना बिट्टी की शादी सेंधुआ के चौधरी के बड़े लड़के से कर दीजिए !

हीरा : (**एकाएक जैसे कोई स्वप्न में चीख उठता है**) पाँड़े जी !

दादू : (**घबड़ाकर**) क्या है हीरा बाबू ? क्या बात है ?

हीरा : (**जैसे ज़हर का घूँट पीता हुआ**) नहीं, कुछ नहीं !

दादू : आराम से कुर्सी पर बैठ जाइए, हीरा बाबू !

[हीरा उसी तरह खड़े-खड़े कोहबर के घर में जलते हुए चिराग़ को देखता रहता है मानो वह दीपक की लौ में अपनी सीता से कुछ कह रहा है।]

पाँड़े : ई है कि दादू ! यह बहुत अच्छा सम्बन्ध रहेगा···चट मँगनी पट ब्याह। जल्दी ऐसा घर-वर ढूँढ़ने से न मिलेगा और सेंधुआ के चौधरी तैयार भी हैं।

हीरा : (**बीच ही में चीख उठता है**) दादू !

दादू : (**घबड़ाकर**) क्या है हीरा ?

[हीरा काँपता हुआ चुप हो जाता है।]

पाँड़े : तो बोलिए दादू ! आपका क्या विचार है ? ···चौधरी तैयार हैं···।

दादू : (**गिरती हुई वाणी से**) तो ठीक है···इसमें मुझे क्या एतराज़ हो सकता है ?

[पृष्ठभूमि में वाद्ययन्त्र की तीखी झंकार; जिसमें हीरा की एक तड़पती हुई चीख़ आह बनकर खो जाती है।]

पाँड़े : जै हो···कल्याण हो···ई है कि शुभस्य शीघ्रम्···सयानी लड़की का भार सर से जितनी जल्दी उतरे उतना ही अच्छा···!

[हीरा की फटी आँखें भीतरी दरवाज़े के फाटक पर बिछी हुई हैं क्योंकि अभी इसी

दरवाज़े से मुस्कराती हुई कंचन के साथ उसकी दुल्हन-सी अनजान सोना आने वाली है···वह मौन देखता-देखता आवेश में स्थिर रूप से खड़ा हो जाता है फिर अपनी मुट्ठियों को भींचता हुआ अलग खड़ा हो जाता है।]

दादू : (**दर्द से**) पाँड़े जी ! ईश्वर किसी को लड़की न दे···सच, कलेजा फट जाता है !

पाँड़े : च ! च !···राम-राम···ऐसा नहीं···आपको ऐसा नहीं कहना चाहिए··· लड़कियाँ ही तो वसुधा हैं !

[सहसा बाहर से किसी की 'दादू ! ओ दादू !' पुकारने की आवाज़ आती है। दोनों जल्दी से बाहर चले जाते हैं; हीरा पागलों की तरह मुट्ठियों को भींचता हुआ आँगन में बुरी तरह चक्कर काटने लगता है। उधर मुस्कराती हुई कंचन, लज्जा और संकोच के भार से झुकी हुई सोना को साथ में लिए आँगन में आती है; बेसुध हीरा उन्हें बिलकुल नहीं देख पाता···वह घूमकर कोहबर के घर में जलते हुए दीपक को देख रहा है।]

कंचन : (**पास आते ही**) अब आप किस सपने में डूबे खड़े हैं हीरा बाबू !

हीरा : (**सहसा घूमकर, लेकिन जैसे उसे कुछ होश नहीं है**) क्यों, क्या बात है ?

कंचन : लीजिए यह आपकी सोना आ गई !

हीरा : (**आवेश में सोना के कन्धों को मजबूती से पकड़कर**) सोना !

[सोना कनखियों से, थोड़ा-सा सर उठाकर उसे देखती और फिर मुस्कराकर लज्जा से झुक जाती है।]

कंचन : (**घबड़ाकर**) हीरा बाबू ! क्या हो गया आपको ?···आप तो पसीने से तर हो रहे हैं !

हीरा : (**जल्दी से बहुत गम्भीरता और तेज़ी में**) कंचन, आज रात को तुम मेरी एक सहायता कर सकोगी ?

कंचन : (**घबड़ाकर**) क्या ?

हीरा : मैं आज रात को अँधेरे में सोना को यहाँ से भगा ले जाना चाहता हूँ !

[कंचन तथा शरमायी हुई सोना दोनों मूर्तिवत् हीरा को देखने लगती हैं।]

हीरा : जल्दी बोलो कंचन ?

कंचन : आखिर ऐसी क्या बात आ गई ?

हीरा : ऐसी बात ही आ गई है (**रुककर**) सोना !···चलो···आज रात को मैं तुझे अकेले यहाँ से भगा ले चलूँगा···!

[सोना डर से काँप कर कंचन से चिपक जाती है।]

हीरा : डर रही हो···सोना !···नहीं, डरो नहीं···हम लोगों का कोई बाल तक नहीं बाँका कर सकता !

कंचन : (**डरकर**) क्या बात है, मुझे भी कुछ बताइए !

हीरा : वह ज़बान पर लाने लायक बात नहीं है कंचन ! तु
करो···तुम पर तुम्हारी सखी सीता और सोना की

कंचन : बोल सोना !···आखिर तू क्या कहती है ?

सोना : (**काँपकर**) हाय दीदी ! मुझे तो डर लग रहा है

हीरा : तू सीता की बहन है सोना ! डरो नहीं···वह
कमज़ोर, डर रहा था···अब तू न डर सोना, नहीं त

सोना : (**पीड़ा से**) हाय राम ?···क्या हो गया इन्हें ?

हीरा : (**सोना की ओर बढ़कर**) मुझे माफ़ करना सोन
गया है···लेकिन मैं तुझसे हाथ जोड़ता हूँ कि तू ज
मैं सदा के लिए तुझे अपनी आँखों में छिपाकर
सकेगा !

कंचन : (**संकेत से**)···देखिए···ज़रा धीरे-धीरे बोलिए
लग रहा है !

हीरा : लेकिन इस डर में भयानक मौत छिपी है ! (**पुक**

[सोना कंचन को पकड़े हुए डरी हुई अपलक हीरा
है।]

हीरा : बोलो सोना !···क्या डरी-डरी सोच रही हो ?

सोना : (**भरे कंठ से**) राम की क़सम ! मैं कुछ नहीं समझ

हीरा : (**दर्द से**) तुम्हारी भी शादी तय हो गई सोना !

सोना : वह···(**और शरमा जाती है**)

[अनजानी और भोली कंचन मूर्तिवत हीरा को दे
बाहर से चिन्तित भीखी आँगन में आता है।]

हीरा : (**घबड़ाकर**) क्या है भीखी ?

भीखी : (**पीड़ा से**) शेखपुरा से आदमी आया
और···!

हीरा : बीमार ?

भीखी : हाँ, आदमी बता रहा है कि
में गिर गई थी···!

[हीरा पागलों की भाँति
वहीं खड़ी रह जाती है;
गिरता है।]

हुई कंचन के साथ उसकी दुल्हन-सी अनजान सोना आने वाली
देखता आवेश में स्थिर रूप से खड़ा हो जाता है फिर अपनी
अलग खड़ा हो जाता है।]

ईश्वर किसी को लड़की न दे···सच, कलेजा फट जाता है !
राम···ऐसा नहीं···आपको ऐसा नहीं कहना चाहिए···
है !

की 'दादू ! ओ दादू !' पुकारने की आवाज आती है। दोनों
हैं; हीरा पागलों की तरह मुट्ठियों को भींचता हुआ आँगन
टने लगता है। उधर मुस्कराती हुई कंचन, लज्जा और
ई सोना को साथ में लिए आँगन में आती है; बेसुध हीरा
ता···वह घूमकर कोहबर के घर में जलते हुए दीपक

किस सपने में डूबे खड़े हैं हीरा बाबू !
से उसे कुछ होश नहीं है) क्यों, क्या बात है ?
आ गई !
मजबूती से पकड़कर) सोना !
र उठाकर उसे देखती और फिर मुस्कराकर लज्जा

हो गया आपको ?···आप तो पसीने से तर हो

में) कंचन, आज रात को तुम मेरी एक

से भगा ले जाना चाहता हूँ !
हीरा को देखने लगती हैं।]

चलो···आज रात को मैं तुझे

का कोई बाल तक नहीं

हीरा : वह ज़बान पर लाने लायक बात नहीं है कंचन ! तुम जल्दी से इसमें मेरी सहायता करो···तुम पर तुम्हारी सखी सीता और सोना की क़सम !

कंचन : बोल सोना !···आखिर तू क्या कहती है ?

सोना : **(काँपकर)** हाय दीदी ! मुझे तो डर लग रहा है।

हीरा : तू सीता की बहन है सोना ! डरो नहीं···वह कितनी बहादुर थी···लेकिन मैं कमज़ोर, डर रहा था···अब तू न डर सोना, नहीं तो···!

सोना : **(पीड़ा से)** हाय राम ?···क्या हो गया इन्हें ?

हीरा : **(सोना की ओर बढ़कर)** मुझे माफ़ करना सोना···सच मुझे न जाने क्या हो गया है···लेकिन मैं तुझसे हाथ जोड़ता हूँ कि तू जल्दी से मेरे साथ भाग चल···मैं सदा के लिए तुझे अपनी आँखों में छिपाकर रक्खूँगा···हमें कोई नहीं ढूँढ़ सकेगा !

कंचन : **(संकेत से)**···देखिए···ज़रा धीरे-धीरे बोलिए···! हम लोगों को बहुत डर लग रहा है !

हीरा : लेकिन इस डर में भयानक मौत छिपी है ! **(पुकारकर)** सोना !

[सोना कंचन को पकड़े हुए डरी हुई अपलक हीरा को एक क्षण तक देखती रहती है।]

हीरा : बोलो सोना !···क्या डरी-डरी सोच रही हो ?

सोना : **(भरे कंठ से)** राम की क़सम ! मैं कुछ नहीं समझ पा रही हूँ ये क्या बातें हैं ?

हीरा : **(दर्द से)** तुम्हारी भी शादी तय हो गई सोना !···तू भी छिन गई !

सोना : धत्···**(और शरमा जाती है)**

[अनजानी और भोली कंचन मूर्तिवत हीरा को देखने लगती है; इतने ही में सहसा बाहर से चिन्तित भीखी आँगन में आता है।]

हीरा : **(घबड़ाकर)** क्या है भीखी ?

भीखी : **(पीड़ा से)** शेखूपुरा से आदमी आया है; सीता बेटी सख्त बीमार हो गई···और···!

हीरा : बीमार ?

भीखी : हाँ, आदमी बता रहा है कि आज ही रात के भोर में वह बेहोश होकर आँगन में गिर गई थी···!

[हीरा पागलों की भाँति बाहर भागता है और सोना-कंचन हतप्रभ पागलों की तरह वहीं खड़ी रह जाती हैं; पृष्ठभूमि में वाद्ययंत्र की करुण कराह के साथ-साथ पर्दा गिरता है।]

धुएँ के नीचे

पात्र

डाक्टर पाल : मनोविज्ञान से एक प्रसिद्ध डाक्टर
आदमी
सेठ
कम्पाउंडर

[आलीशान कोठी में नीचे डाक्टर पाल का कम
प्रसिद्ध कुछ बड़े-बड़े वैज्ञानिकों अ... नव-विज्ञा
एडलर, युंग आदि के चित्र लगे हैं। कमरे में बी
लगी है और उनकी दायीं ओर कम्पाउंडर की
पर कागज़, पेंसिल, कलम वगैरह आफ़िस टेबुल
रहे हैं और इस समय कम्पाउंडर डाक्टर के स्टेनो
करता है। डाक्टर साहब की मेज़ पर सामने पैड औ
और दायीं ओर फ़ोन रखा हुआ है। टेबुल के सा
गद्देदार कुर्सियाँ रक्खी हैं। कमरे में दायें-बायें दो
बरामदे में खुलते हैं। कमरे में गहरे रंग की मर्करी
का वातावरण बहुत ही गंभीर और शान्त है। प
मेज़ पर झुका हुआ कुछ तेज़ी से नोट कर रहा है
सेठ बैठा हुआ है।]

कम्पाउंडर : (एकाएक सर उठाकर सेठ को देखता,
आपकी रिपोर्ट तैयार कर ली और अब आप एडवां

सेठ : एडवांस फ़ीस···!

कम्पा : जी हाँ, सौ रुपये···कम से कम···क्योंकि इन
फ़ीस दस रुपये फ़ी मिनट होती है !

सेठ : जी ठीक है···मैं तैयार हूँ···बस जल्दी से

[सेठ सौ रुपये का नोट कम्पाउंडर की टे

कम्पाउंडर : (नोट सम्हालता हुआ)
वक्त हो गया है···।

[कम्पाउंडर नोट रखकर दायीं
घंटी बजती है और क्षण-भर के
ताज़ा व्यक्तित्व, बिल्कुल
गंभीर चाल और जैसे
अपनी जगह से उठकर
जगह पर बैठ जाते
कर अपनी जगह

[आलीशान कोठी में नीचे डाक्टर पाल का कमरा। कमरे की दीवारों में संसार-प्रसिद्ध कुछ बड़े-बड़े वैज्ञानिकों आ [illegible] नव-विज्ञान-शास्त्रियों जैसे न्यूटन, फ्रायड, एडलर, युंग आदि के चित्र लगे हैं। कमरे में बीचोबीच डाक्टर पाल की मेज़-कुर्सी लगी है और उनकी दायीं ओर कम्पाउंडर की मेज़-कुर्सी है। कम्पाउंडर की मेज पर कागज़, पेंसिल, कलम वगैरह आफ़िस टेबुल के सब सामान हैं; क्योंकि छः बज रहे हैं और इस समय कम्पाउंडर डाक्टर के स्टेनो और शार्टहैंड राइटर का काम करता है। डाक्टर साहब की मेज़ पर सामने पैड और कलम हैं, बायीं ओर स्टेथस्कोप और दायीं ओर फ़ोन रखा हुआ है। टेबुल के सामने एक लाइन में नम्बर से तीन गद्देदार कुर्सियां रक्खी हैं। कमरे में दायें-बायें दो पर्दे गिरे हुए दरवाज़े हैं जो बाहर बरामदे में खुलते हैं। कमरे में गहरे रंग की मर्करी-लाइट फैली है और समूचे कमरे का वातावरण बहुत ही गंभीर और शान्त है। पर्दा उठने पर कम्पाउंडर अपनी मेज़ पर झुका हुआ कुछ तेज़ी से नोट कर रहा है और सामने पहली कुर्सी पर एक सेठ बैठा हुआ है।]

कम्पाउंडर : (**एकाएक सर उठाकर सेठ को देखता हुआ**) जी, सेठ साहब! मैंने आपकी रिपोर्ट तैयार कर ली और अब आप एडवांस फ़ीस जमा कर दीजिए!

सेठ : एडवांस फ़ीस···!

कम्पा : जी हाँ, सौ रुपये···कम से कम···क्योंकि इन हालतों में 'साइको अनलाइज़िंग-फ़ीस दस रुपये फ़ी मिनट होती है!

सेठ : जी ठीक है···मैं तैयार हूँ···बस जल्दी से डाक्टर साहब को बुलाइए।

[सेठ सौ रुपये का नोट कम्पाउंडर की टेबुल पर रखता है।]

कम्पाउंडर : (**नोट सम्हालता हुआ**) जी···बस··· (**अपनी घड़ी देखता हुआ**) बस वक्त हो गया है···।

[कम्पाउंडर नोट रखकर दायीं ओर काल-बेल की स्विच दबा देता है पृष्ठभूमि में घंटी बजती है और क्षण-भर के बाद ही दायीं ओर से डाक्टर पाल का प्रवेश। ताज़ा व्यक्तित्व, बिल्कुल अपटूडेट, अवस्था कम-से-कम पेंतालीस वर्ष की होगी। गंभीर चाल और जैसे कुछ सोचती हुई तेज़ आँखें। कमरे में प्रवेश करते ही सेठ अपनी जगह से उठकर उनका अभिवादन करता है और फिर दोनों चुपचाप अपनी जगह पर बैठ जाते हैं। कम्पाउंडर सेठ की हालत की रिपोर्ट डाक्टर के सामने रख कर अपनी जगह पर बैठ जाता है।]

डाक्टर : (**रिपोर्ट पढ़कर, सामने सेठ को देखता हुआ**) जी,···तो आपको इसकी शिकायत है ?

सेठ : जी···जी डाक्टर साहब···!

डाक्टर : अच्छी बात है···देखिए, मैं आपसे कुछ सवाल करूँगा और उसके जवाब देते जाएँगे···लेकिन आपको अपने जवाबों में तीन बातों का कतई ध्यान रखना होगा। पहली बात आप अपने सारे जवाबों में सच्चे और ईमानदार होंगे···कोई किसी तरह का इनमें झूठ, छिपाव, बनावट नहीं। दूसरी बात; आप जवाब देते समय, किसी तरह की लज्जा, शरम वगैरह न करें और तीसकी बात, आपको मुझ पर पूरी आशा और विश्वास रखना होगा। मुझे इंसान ईश्वर से भी बढ़कर प्यारा है और उसकी कमजोरियाँ मुझे इंसान से भी प्यारी हैं; लेकिन याद रखिए, मैं इंसान की सारी अंदरूनी और मुश्किल बीमारियों का दुश्मन हूँ !

सेठ : (**प्रसन्नता से**) जी, यहीं तो आपकी महानता है और दुनिया आपको याद भी करती है !

डाक्टर : महानता क्या, यह तो हर आदमी का फ़र्ज़ है (**रुककर**) हाँ तो देखिए···मैं आपसे अब सवाल करूँगा और आप पूरी ईमानदारी से अपनी नंगी से नंगी शक्ल में मेरे सामने अपने जवाबों में आइए···!

सेठ : जी, आप पूरा विश्वास रखिए···!

डाक्टर : (**कम्पाउंडर से**) कम्पाउंडर साहब ! आप लिखना शुरू कीजिए···!

कम्पाउंडर : (**कागज़ और कलम के साथ तैयार**) जी, आप शुरू कीजिए···!

[और अपनी घड़ी देखकर डाक्टर और सेठ के सारे प्रश्नोत्तर 'शार्ट हैण्ड' में लिखने लगता है।]

डाक्टर : सेठ जी, इस समय आपकी उमर कितनी होगी ?

सेठ : (**सोचकर**) जी, बस यही बयालीस साल···!

डाक्टर : और आपकी बीवी की उमर क्या होगी ?

सेठ : जी···बीवी तो नहीं है···!

डाक्टर : आपने शादी ही नहीं की क्या ?

सेठ : जी···शादियाँ तो तीन कीं···लेकिन तीनों चल बसीं···!

डाक्टर : तीनों शादियाँ किस-किस उमर पर हुईं ?

सेठ : (**सोचता हुआ**) पहली शादी समझ लीजिए कि ठीक बाईस साल पर हुई, दूसरी तीस साल पर, और तीसरी पैंतीस वर्ष पर !

डाक्टर : और आपकी नामर्दगी कब से शुरू हुई ?

सेठ : जी···आज पाँच वर्ष हो गए !

डाक्टर : यानी तीसरी शादी से दो वर्ष बाद···!

सेठ : जी···और मैंने तब से इस बीमारी को दूर करने के लिए लाखों रुपया खर्च

किया होगा !

डाक्टर : ओह !···खैर···आप किस चीज़ का रोज़गार

सेठ : जी मैं तो फ़िल्म कंसर्न का मालिक हूँ और सोने-च
भी हूँ।

डाक्टर : इस समय आपके यहाँ अपना कौन-कौन है ?

सेठ : बस, मैं बिल्कुल अकेला हूँ···साथ नौकर-चाकर हैं

डाक्टर : मेरा मतलब···आपके घर में औरतें नहीं आतीं

सेठ : जी औरतें क्यों नहीं आतीं···औरतें तो बहुत-सी
साथ रहती हैं···लेकिन···हूँ···हूँ···लेकिन···!

डाक्टर : आपको औरतें लगती कैसी हैं ?

सेठ : बहुत प्यारी लगती हैं···पहले से भी ज्यादा···!

डाक्टर : पहले से भी ज्यादा ?···कैसे···

सेठ : जैसे समझ लीजिए डाक्टर साहब कि···जैसे···जैसे
मेरी पहली बीवी···!

डाक्टर : ओह !···अच्छा, आप इधर चौबीस घंटे में ि
हैं ?

सेठ : जी आपसे, क्या छिपाना···औरतों के साथ तो हरद

डाक्टर : कुछ निश्चित ही औरतों के साथ रहते हैं···कि

सेठ : जी नहीं···तमाम तरह की औरतों···और···लड़ी
अच्छी से अच्छी···अपीलिंग से अपीलिंग ! अपने
पड़ गई ! लेकिन···!

डाक्टर : लेकिन क्या ?

सेठ : बस···उन्हें देखता ही रह जाता हूँ···मैं उन्हें अप
पाता···बस काँपने लगता हूँ···आँखों में जलन के सा
समय मैं उन्हें अगर जल्दी से छोड़ न दूँ तो बस मेरा

[सहसा फ़ोन की घंटी बजती है; डाक्टर रिसीवर उ

डाक्टर : (फ़ोन पर) जी,···एस···डाक्टर पाल स्पीकिंग
···'यूरीन' के साथ 'ब्लड' !···'पस' भी···होरिबुल
कीजिए···मेरा तो ख्याल है कि ऐसी सूरत में
'पोटैशियम'···जी···क्या किया जाय···

[रिसीवर फ़ोन पर रख देता है।]

डाक्टर : (सेठ से) जी, आपकी

सेठ : पहली टाइफाइड के
छिपाना···

...सेठ को देखता हुआ) जी,···तो आपको इसकी

...।

...मैं आपसे कुछ सवाल करूँगा और उसके जवाब देते
...जवाबों में तीन बातों का कतई ध्यान रखना होगा।
...जवाबों में सच्चे और ईमानदार होंगे···कोई किसी
...बनावट नहीं। दूसरी बात; आप जवाब देते समय,
...तरह न करें और तीसरी बात, आपको मुझ पर
...होगा। मुझे इंसान ईश्वर से भी बढ़कर प्यारा है
...से भी प्यारी हैं; लेकिन याद रखिए, मैं इंसान
...बीमारियों का दुश्मन हूँ !

...की महानता है और दुनिया आपको याद भी

...का फ़र्ज़ है (रुककर) हाँ तो देखिए···मैं
...पूरी ईमानदारी से अपनी नंगी से नंगी शक्ल
...···!

...! आप लिखना शुरू कीजिए···!

...कार) जी, आप शुरू कीजिए···!

...सेठ के सारे प्रश्नोत्तर 'शार्ट हैण्ड' में लिखने

...होगी ?

...।

...थी···!

...बाईस साल पर हुई, दूसरी

..., लाखों रुपया खर्च
...।

किया होगा !

डाक्टर : ओह !···खैर···आप किस चीज़ का रोज़गार करते हैं ?

सेठ : जी मैं तो फ़िल्म कसर्न का मालिक हूँ और सोने-चाँदी के सट्टे-बाजार का ठेकेदार भी हूँ।

डाक्टर : इस समय आपके यहाँ अपना कौन-कौन है ?

सेठ : बस, मैं बिलकुल अकेला हूँ···साथ नौकर-चाकर हैं, बस !

डाक्टर : मेरा मतलब···आपके घर में औरतें नहीं आती-जातीं ?

सेठ : जी औरतें क्यों नहीं आतीं···औरतें तो बहुत-सी आती हैं···रात-रात भर मेरे साथ रहती हैं···लेकिन···हूँ···हूँ···लेकिन···!

डाक्टर : आपको औरतें लगती कैसी हैं ?

सेठ : बहुत प्यारी लगती हैं···पहले से भी ज्यादा···!

डाक्टर : पहले से भी ज्यादा ?···वैसे···

सेठ : जैसे समझ लीजिए डाक्टर साहब कि···जैसे···जैसे···बस समझ लीजिए कि जैसे मेरी पहली बीवी···!

डाक्टर : ओह !···अच्छा, आप इधर चौबीस घंटे में कितने घंटे औरतों के साथ रहते हैं ?

सेठ : जी आपसे, क्या छिपाना···औरतों के साथ तो हरदम रहता हूँ···

डाक्टर : कुछ निश्चित ही औरतों के साथ रहते हैं···कि···!

सेठ : जी नहीं···तमाम तरह की औरतों···और···लड़कियों के साथ, नयी से नयी···अच्छी से अच्छी···अपीलिंग से अपीलिंग ! अपने बाजार में जिस पर भी नज़र पड़ गई ! लेकिन···!

डाक्टर : लेकिन क्या ?

सेठ : बस···उन्हें देखता ही रह जाता हूँ···मैं उन्हें अपनी बाहुओं में कस तक नहीं पाता···बस काँपने लगता हूँ···आँखों में जलन के साथ आँसू आ जाते हैं और उस समय मैं उन्हें अगर जल्दी से छोड़ न दूँ तो बस मेरा हार्ट फ़ेल हो जाय···!

[सहसा फ़ोन की घंटी बजती है; डाक्टर रिसीवर उठाते हैं।]

डाक्टर : (फ़ोन पर) जी,···एस···डाक्टर पाल स्पीकिंग यस···जी मैं ही हूँ···ओह !···'यूरीन' के साथ 'ब्लड' !···'पस' भी···होरिबुल···देखिए···सिर्फ एक काम कीजिए···मेरा तो ख्याल है कि ऐसी सूरत में ईश्वर और समाज के नाम पर उसे 'पोटैशियम'···जी···क्या किया जाय···एक्सक्यूज़ मी···थैंक्यू···!

[रिसीवर फ़ोन पर रख देता है।]

डाक्टर : (सेठ से) जी, आपकी बीवियाँ किन-किन बीमारियों से मरी थीं ?

सेठ : पहली टाइफाइड से मरी थी···दूसरी शायद···हार्टट्रबुल से···और आप से क्या छिपाना···तीसरी ने स्यूसाइड कर लिया था !

डाक्टर : इन मौतों में किसका सदमा यानी (Shock) आप पर बहुत पड़ा !

सेठ : प्रैक्टिकली डाक्टर साहब ! किसी का भी नहीं पड़ा···।

डाक्टर : इस बात को फिर से सोच लीजिए···!

सेठ : जी,···मैं बिलकुल ठीक कह रहा हूँ डाक्टर साहब ! मैं कभी भी औरतों से भावना का सम्बन्ध नहीं रखता···तो मेरे ख़याल से शाक (Shock) का कोई प्रश्न ही नहीं उठता···!

डाक्टर : (हँसकर) जी, आप बिलकुल ठीक कहते हैं !···लेकिन फिर भी अजीब बात है !

सेठ : जी यही तो परेशानी है डाक्टर साहब ! और मैं पिछले पाँच वर्षों से लगातार दर-दर की खाक छानता फिरा हूँ···और अब आपकी शरण में आया हूँ। आपकी काबिलियत और इंसानियत की चर्चा चारों ओर है !···अगर आपके हाथों से मैं ठीक हो जाता हूँ, तो आप मुझसे जो कुछ भी माँगिएगा मैं आपको दे सकता हूँ। आपकी दया से मेरे पास किसी भी चीज़ की कमी नहीं है। दुनिया की सारी नियामतें मेरे पास हैं, चारों ओर से वे मुझको इशारा करती हैं···लेकिन डाक्टर साहब, मैं नियामतों के बीच में घिरा हुआ हरदम खामोश रहता हूँ।

डाक्टर : कोई बात नहीं···आप इतना घबड़ाते क्यों हैं ?

सेठ : आप घबड़ाने की बात कर रहे हैं डाक्टर साहब ! मैं आपको अपने दिल की बात बता रहा हूँ मैंने, बीसों मरतबा आत्महत्या करने की कोशिशें की हैं लेकिन नियामतों ने मेरा हाथ पकड़ लिया है !

डाक्टर : कोई बात नहीं···अब यह बताइए कि आप अक्सर किन-किन बीमारियों से बीमार पड़ते रहते हैं ?

सेठ : मुझको और कोई बीमारी ही नहीं डाक्टर साहब, यही तो और रोना है !

डाक्टर : और आप इसके पहले किसी भी बीमारी या मर्ज़ से बीमार पड़े थे ?

सेठ : जी,···मैं खाँसी-जुकाम, चोट-फोट के अलावा कभी बीमार ही नहीं पड़ा हूँ ?

डाक्टर : कभी नहीं ?

सेठ : जी···कभी नहीं !

डाक्टर : फिर से जरा आप सोच लीजिए, शायद कभी···कोई अन्दरूनी बीमारी या तकलीफ़ हुई हो···!

सेठ : (सोचता हुआ) जी, एक बार मुझे सिफ़लिस की शिकायत हो गई थी···लेकिन वह तो फ़ौरन ठीक हो गया था···!

डाक्टर : (खुशी से चीख पड़ता है) ओह ! दैट्स द प्वाइन्ट !···यह कब की बात है ?

सेठ : जी, यह तो बहुत पहले की बात है, मेरी पहली बीवी के मरने के एक ही वर्ष बाद !···लेकिन डाक्टर साहब, मैं फ़ौरन ठीक हो गया···बस शुरुआत ही तो थी···!

डाक्टर : नहीं साहब ! 'दिस इज़ मोस्ट फेटेल एण्ड प्वाइजनस डिज़ीज़' ! जड़ से खत्म

होने की इसकी अभी तक कोई दवा ही नहीं···मैंने ...
दवा की तलाश में रहता हूँ !

सेठ : तो ?

डाक्टर : ऐसी सूरत में मेरा तो निश्चित डिसीज़न है कि ...
कभी हुई हो उसे या तो हमेशा के लिए सेक्स का ...
तो 'इट इज़ मोस्ट हीनसक्राइम'···! और आपकी ...
इज़ बेरी गुड !

सेठ : (घबड़ाकर) डाक्टर साहब ! आप यह क्या कह रहे ...

डाक्टर : मैं आपकी दूसरी या तीसरी बेगुनाह बीवियों की ...

[सहसा बाहर बरामदे में 'डाक्टर साहब'···'डाक्टर ...
पुकारने लगता है।]

डाक्टर : (गंभीरता से) कम्पाउंडर साहब ! बाहर देखिए ...

कम्पाउंडर बाहर जाता है और क्षण-भर के बाद ही ...
पैंतीस वर्ष का एक आदमी आता है। इसके व्यक्तित्व ...
कि इसका दिल और दिमाग पीड़ा और अशान्ति से ...
बाह्य जगत से उसे छिपा रहा है। बेढंगी खाकी पेंट के ...
से पहनी हुई है।]

डाक्टर : (उन्हें देखते ही) क्या है ?

कम्पाउंडर : कुछ दिमागी बीमारी है !

आदमी : (हँसता हुआ) नहीं साहब जरा दम तो लेने दी...
बीमारी है।

कम्पाउंडर : (अपनी जगह पर बैठता हुआ) अच्छा तो ...
करानी है तो इधर आपके पहले आप सौ रुपये ...
फिर बातें कीजिए···!

आदमी : (आश्चर्य से) सौ रुपये···!

कम्पाउंडर : जी हाँ···दस रुपये फी मिनट के ...
कीजिए···नहीं तो···!

आदमी : (एक लम्बी हँसी के बाद) ...
शादी की भी···और मैं ...
बेरी सॉरी डाक्टर साहब···...

डाक्टर : (कम्पाउंडर से) ...

आदमी : (बीच ही में) ...

कम्पाउंडर : ...
फ़ौरन ...
नहीं तो ...

नकी

Shock) आप पर बहुत पड़ा !
नहीं पड़ा···।
!
टर साहब ! मैं कभी भी औरतों से
ल से शाक (Shock) का कोई प्रश्न
है !···लेकिन फिर भी अजीब बात
र मैं पिछले पांच वर्षों से लगातार
आपकी शरण में आया हूँ । आपकी
र है !···अगर आपके हाथों से मैं
गिएगा मैं आपको दे सकता हूँ ।
है। दुनिया की सारी नियामतें
ही हैं···लेकिन डाक्टर साहब, मैं
रहता हूँ ।
?
! मैं आपको अपने दिल की बात
कोशिशें की हैं लेकिन निया-
र किन-किन बीमारियों से
ही तो और रोना है !
बीमार पड़े थे ?
र ही नहीं पड़ा हूँ ?
अन्दरूनी बीमारी या
हो गई थी···लेकिन
यह कब की बात
के एक ही वर्ष
शुरुआत ही तो
!जड़ से खत्म

होने की इसकी अभी तक कोई दवा ही नहीं···मैंने खूब ढूंढ़ा है और हरदम इस दवा की तलाश में रहता हूँ !

सेठ : तो ?

डाक्टर : ऐसी सूरत में मेरा तो निश्चित डिसीज़न है कि जिसे भी यह बीमारी हो, या कभी हुई हो उसे या तो हमेशा के लिए सेक्स का ताल्लुक छोड़ देना चाहिए नहीं तो 'इट इज़ मोस्ट हीनसक्राइम'···! और आपकी नामर्दगी तो इस दिशा में, इट इज़ वेरी गुड !

सेठ : (घबड़ाकर) डाक्टर साहब ! आप यह क्या कह रहे हैं ?

डाक्टर : मैं आपकी दूसरी या तीसरी बेगुनाह बीवियों की मौत की सोच रहा हूँ !

[सहसा बाहर बरामदे में 'डाक्टर साहब'···'डाक्टर निगम पाल' नाम लेकर कोई पुकारने लगता है।]

डाक्टर : (गंभीरता से) कम्पाउंडर साहब ! बाहर देखिए···कौन पुकार रहा है ?

कम्पाउंडर बाहर जाता है और क्षण-भर के बाद ही उसके साथ अर्द्धविक्षिप्त-सा पैंतीस वर्ष का एक आदमी आता है। इसके व्यक्तित्व और वेशभूषा से लग रहा है कि इसका दिल और दिमाग पीड़ा और अशान्ति से विक्षिप्त है लेकिन यह अपने बाह्य जगत से उसे छिपा रहा है। बेढंगी खाकी पेंट के ऊपर मिलिट्री-बुशशर्ट करीने से पहनी हुई है।]

डाक्टर : (उन्हें देखते ही) क्या है ?

कम्पाउंडर : कुछ दिमागी बीमारी है !

आदमी : (हँसता हुआ) नहीं साहब ज़रा दम तो लेने दीजिए···मुझे दिल की भी बीमारी है ।

कम्पाउंडर : (अपनी जगह पर बैठता हुआ) अच्छा तो अगर आपको अपनी डाक्टरी करानी है तो इधर आपके पहले आप सौ रुपये एडवांस फ़ी जमा कर दीजिए···फिर बातें कीजिए···!

आदमी : (आश्चर्य से) सौ रुपये···!

कम्पाउंडर : जी हाँ···दस रुपये फी मिनट के हिसाब से यहाँ फ़ी लगती है···जल्दी कीजिए···नहीं तो···!

आदमी : (एक लम्बी हँसी के बाद) और उस दिन डाक्टर पाल ने लोमड़ी के साथ जो शादी की थी···और मैं चींटी पर चढ़कर बारात गया था···ओह !···आइ एम वेरी सॉरी डाक्टर साहब···आई वाज़ आउट आफ़ स्टेशन ऐट दैट टाइम···!

डाक्टर : (कम्पाउंडर से) इस आदमी के साथ कोई और है कि यह अकेले आया है ?

आदमी : (बीच ही में) जी मेरा पेंट भी मेरे साथ है···कहिए···!

कम्पाउंडर : (तेज़ी से) देखो जी···अगर तुम्हें अपने दिमाग की डाक्टरी करानी है तो फ़ौरन यहाँ सौ रुपये एडवांस फ़ी जमा करके नम्बर दो की कुर्सी पर बैठ जाओ···नहीं तो भाग जाओ यहाँ से !

आदमी : लेकिन मैं तुमको सौ रुपये एडवांस फ़ी तब दूँगा···जब तुम मुझे डाक्टर निगम पाल···साइकालोजिस्ट द ग्रेट के पास ले चलोगे···!

डाक्टर : जी मैं ही हूँ !···कहिए···!

आदमी : (प्रसन्नता से देखने लगता है) जी···आप ही डाक्टर निगम पाल हैं !··· मशहूर साइकोलोजिस्ट···!

डाक्टर : जी···मैं ही हूँ !···क्यों···क्या बात है ?

आदमी : क्यों कम्पाउंडर साहब ठीक है (संकेत कर) आप ही निगम पाल हैं; दिमाग़ी और अन्दरूनी बीमारियों के सबसे बड़े डाक्टर···!

कम्पाउंडर : हूँ···लेकिन बार-बार ये बकवास क्या कर रहे हो ?

आदमी : घबड़ाओ नहीं···मुझे इतमीनान कर लेने दो···तुम्हें सौ रुपये ही चाहिए न··· क्यों सेठ जी···ये ही डाक्टर निगम पाल हैं···द ग्रेट साइकोलोजिस्ट !

सेठ : जी हाँ।

[आदमी फ़ौरन पेंट की बायीं जेब से सौ रुपये का एक नोट निकालकर कम्पाउण्डर की टेबुल पर रख देता है और खड़े-खड़े अपलक डाक्टर की ओर देखने लगता है।]

कम्पाउंडर : नम्बर दो की कुर्सी पर बैठ जाओ···!

आदमी : जी ठीक है, मैं बैठता नहीं···!

सेठ : (बीच ही में) डाक्टर साहब ! मुझे क्या आज्ञा होती है ?

डाक्टर : जी !···आपके नर्वस सिस्टम में सिफ़लिस के जर्म्स हैं···इसका आपरेशन करना होगा···नो आल्टरनेटिव···!

[आदमी एकाएक जोर से हँसने लगता है।]

आदमी : नो आल्टरनेटिव···नो आल्टरनेटिव···!

डाक्टर : (तेज़ी में) क्या हँस रहा है तू ?

आदमी : हँसने ही के लिए तो मैंने तुझे सौ रुपये दिए हैं !

डाक्टर : (सेठ से) अच्छा सेठ जी ! तब तक रुकिए···मैं अभी इससे फ़ुर्सत पा लेता हूँ ···तब···(आदमी से)···हाँ जी !···देखिए···आप ईमानदारी से अपने को सँभालते हुए मेरे कुछ सवालों के जवाब दीजिए···नहीं तो समय बीत जाएगा और आपके रुपये बेकार जाएँगे···?

आदमी : जी···नहीं आप बेफ़िक्र रहिए···मैं कभी झूठ बोलता ही नहीं···।

डाक्टर : अच्छा तो बताइए···आपका क्या नाम है ?

आदमी : मेरा नाम···(सोचता हुआ) मेरा नाम···बिल्ली है !

डाक्टर : (आश्चर्य से) बिल्ली !

आदमी : जी हाँ···बचपन में मेरा नाम छिपकली था और जब मैं स्कूल में पढ़ता था तब मेरा नाम टाइगर पड़ा और जब मैं मिलिट्री में भर्ती हुआ तब मेरा नाम नरेश सिंह था···लेकिन इस समय मेरा कोई नाम नहीं है;
दीजिए···आप ही तो डाक्टर निगम पाल हैं न ?

डाक्टर : जी, मैं ही हूँ···तो आप मिलिट्री में हैं ?

आदमी : जी मैं मिलिट्री-हौल्दार था। पर यह बड़ी बुरी नौ
अपने घर लौटने की छुट्टी नहीं मिलती थी और मेरी
दुल्हन···हर सुबह और शाम को मेरे आने का रास्त
···आपको मालूम है मैंने क्या किया ?···मैं एक रात
अपने घर भाग आया हूँ !

डाक्टर : घर कहाँ है ?

आदमी : धुएँ में है जी ! तुम्हें नहीं मालूम ? अरे ! बड़े बे

[और सहसा वह अपनी जगह पर उछलता हुआ अप
पीटने लगता है और जोर-जोर से हँसता है···!

डाक्टर : यह क्या कर रहे हो ?

आदमी : जी, मैं दौड़ रहा हूँ···तुम्हें नहीं मालूम···मुझे बहुत
बिलकुल फ़ुर्सत नहीं···और हाँ···धुएँ में तुम्हारा दम
बेवकूफ़ हो ! मुझे तो बहुत जल्दी है !

डाक्टर : कहाँ जाना है ?

आदमी : कहीं भी तो नहीं···सच, कहीं नहीं।

[आदमी फिर अपने सर पर अपने हाथों से पंखा कर

डाक्टर : यह अपने हाथों से सर पर पंखा क्यों कर रहे

आदमी : कैसे डाक्टर और साइकोलोजिस्ट हो ?···
देखते नहीं मेरे सर पर धुएँ के बादल जो इकट्
बोझ में मैं दबा जा रहा हूँ···देखिए···
कीजिए···देखिए मेरे सर पर देखिए···क्या
का बोझ नहीं है !···बड़े क़िस्मतवर हैं

[सहसा फ़ोन की घंटी बजती है।]

डाक्टर : (रिसीवर उठाकर)···हलो !
फिर पागल हो गई ?···
'सोलीलोकीज़' को एक
बैडली इंगेज्ड···

[रिसीवर रख देते हैं
देखता रहता है।

डाक्टर : (

कवास फ़ी तब दूंगा···जब तुम मुझे डाक्टर निगम
के पास ले चलोगे···!

!

है) जी···आप ही डाक्टर निगम पाल हैं !···

क्या बात है ?

(संकेत कर) आप ही निगम पाल हैं; दिमागी
बड़े डाक्टर···!

बकवास क्या कर रहे हो ?

ल कर लेने दो···तुम्हें सौ रुपये ही चाहिए न···
पाल हैं···द ग्रेट साइकोलोजिस्ट !

सौ रुपये का एक नोट निकालकर कम्पाउण्डर
अपलक डाक्टर की ओर देखने लगता

···!

आशा होती है ?

लिस के जर्म्स हैं···इसका आपरेशन

!

मैं अभी इससे फ़ुर्सत पा लेता हूँ
प ईमानदारी से अपने को
तो समय बीत जाएगा और

ही नहीं···।

!

मैं स्कूल में पढ़ता था
ब मेरा नाम नरेश

सिंह था···लेकिन इस समय मेरा कोई नाम नहीं है; आप ही मेरा कुछ नाम रख दीजिए···आप ही तो डाक्टर निगम पाल हैं न ?

डाक्टर : जी, मैं ही हूँ···तो आप मिलिट्री में हैं ?

आदमी : जी मैं मिलिट्री-हौल्दार था। पर यह बड़ी बुरी नौकरी है; दो साल हो गए मुझे अपने घर लौटने की छुट्टी नहीं मिलती थी और मेरी दुल्हन···बिलकुल नयी-नवेली दुल्हन···हर सुबह और शाम को मेरे आने का रास्ता देखती; फिर डाक्टर साहब ···आपको मालूम है मैंने क्या किया ?···मैं एक रात को गधे पर चढ़कर चुपके से अपने घर भाग आया हूँ !

डाक्टर : घर कहाँ है ?

आदमी : धुएँ में है जी ! तुम्हें नहीं मालूम ? अरे ! बड़े बेवकूफ़ हो !

[और सहसा वह अपनी जगह पर उछलता हुआ अपने दोनों हाथों से अपना सर पीटने लगता है और जोर-जोर से हँसता है···!

डाक्टर : यह क्या कर रहे हो ?

आदमी : जी, मैं दौड़ रहा हूँ···तुम्हें नहीं मालूम···मुझे बहुत जल्दी है···यहाँ रुकने की बिलकुल फ़ुर्सत नहीं···और हाँ···धुएँ में तुम्हारा दम नहीं घुट रहा है ?···अजीब बेवकूफ़ हो ! मुझे तो बहुत जल्दी है !

डाक्टर : कहाँ जाना है ?

आदमी : कहीं भी तो नहीं···सच, कहीं नहीं।

[आदमी फिर अपने सर पर अपने हाथों से पंखा करने लगता है।]

डाक्टर : यह अपने हाथों से सर पर पंखा क्यों कर रहे हो ?

आदमी : कैसे डाक्टर और साइकोलोजिस्ट हो ? ··तुम्हारी आँखें फूट गई हैं क्या ?··· देखते नहीं मेरे सर पर धुएँ के बादल जो इकट्ठा होते जा रहे हैं···और उसी के बोझ में मैं दबा जा रहा हूँ···देखिए···डाक्टर साहब···मेरी गुस्ताखी माफ़ कीजिए···देखिए मेरे सर पर देखिए···क्या आपके सर पर किसी भी तरह के धुएँ का बोझ नहीं है !···बड़े क़िस्मतवर हैं आप डाक्टर साहब··!

[सहसा फ़ोन की घंटी बजती है।]

डाक्टर : (रिसीवर उठाकर)···हलो !···जी मैं ही हूँ···क्या हो गया ?···अरे सुशीला फिर पागल हो गई ?···अच्छा···एक काम कीजिए···उसकी तमाम बातों और 'सोलीलोकीज़' को एक काग़ज़ पर नोट करते जाइएगा···यस, सारी; आई एम बैडली इंगेज्ड···थैंक यू···!

[रिसीवर रख देते हैं; आदमी डाक्टर की ओर पीठ करके शून्य में न जाने क्या देखता रहता है।]

डाक्टर : (पुकारता हुए)···सुनो जी···तुम्हारी उमर क्या होगी ?

आदमी : बस लास्ट नाइट को ठीक चार बजे मेरा जन्म हुआ है ! आपको नहीं मालूम डाक्टर साहब ? अरे !··· (**हँसने लगता है**) ···आप ही डाक्टर निगम पाल हैं न ···ग्रेट साइकोलोजिस्ट ! (**सेठ से**) बोलिए सेठ जी; आप तो ख़ामोश हैं ! ···मैं डाक्टर साहब को ठीक पहचान रहा हूँ न ?

सेठ : जी आप बिलकुल ठीक पहचान रहे हैं !

आदमी : (**खुश होकर**) शाबास ! शाबास···!

डाक्टर : लास्ट नाइट को चार बजे तुम कहाँ थे ?

आदमी : मैं···मैं फूलों की सेज पर सोने जा रहा था···तब तक कोई परी आई और मुझे उठा ले गई···और अब मैं यहाँ चला आया···!

डाक्टर : यहाँ कैसे आए ?

आदमी : डाक्टर निगम पाल के पास···आप ही हैं न ?

डाक्टर : जी···अच्छा, तुम कितनी उमर में मिलिट्री में भर्ती हुए ?

आदमी : जब आपका जन्म हुआ···उससे ठीक छः महीने पहले···

डाक्टर : और तुम्हारी शादी कब हुई ?

आदमी : तुम्हारे जन्म से ठीक एक साल पहले···!

[डाक्टर चुप होकर क्षण भर के लिए चिन्ता करने लगता है; फिर अपने पैड में एक कागज़ फाड़कर आदमी के सामने बढ़ा देता है।]

डाक्टर : (**क़लम देता हुआ**) यह लीजिए···कागज़ और क़लम; और इस कागज़ पर जल्दी से कोई भी तस्वीर बनाइए···जो भी आपकी तबीयत हो···बिलकुल स्वतन्त्र और निडर होकर···!

[आदमी चुपचाप मेज़ पर झुका हुआ कुछ बनाता है।]

आदमी : (**कुछ क्षणों में समाप्त करके**) ये···लीजिए···तस्वीर बन गई !

डाक्टर : कम्पाउंडर साहब !···जरा तस्वीर तो देखिए···क्या बनाया है···और नोट भी कर लीजिए···!

कम्पाउंडर : (**तस्वीर लेकर**) सच···ये तो तस्वीर है !

डाक्टर : क्या बनाया है ?

कम्पाउंडर : बड़ी डरावनी तस्वीर है डाक्टर साहब···!

डाक्टर : आखिर क्या है ?

कम्पाउंडर : एक नंगी औरत की तस्वीर है···जिसकी खूबसूरत जाँघ को एक ऐसा कुत्ता खा रहा है जिसके शरीर में कीड़े पड़ गए हैं···! और दूर पर एक सिपाही अपनी आँखें बन्द किए खड़ा है।

डाक्टर : (**प्रसन्नता से चीख पड़ता है**) ओह ग्रैन्ड ! आई काट द प्वाइन्ट···!

[आदमी हँस पड़ता है।]

आदमी : (**हँसी बन्द करके**) यू रियली काट द प्वाइन्ट डाक्टर !···तूने···सच, मेरे सर

के धुएँ को देख लिया ?

डाक्टर : एस···आई कट योर डिज़ीज···!

आदमी : क्या है ?

डाक्टर : (**पूछता हुआ**) तो तुम्हें अपनी औरत से बहु

आदमी : जी बहुत प्यार !···समझिए कि एक गहरा है और समुन्दर की लहरें धुआँ बनकर बहुत ऊँ तरह जम जाती हैं और उस धुएँ की सतह पर मैं उसे ले जाकर पहला···सबसे पहला, प्यार क

डाक्टर : तो तुम्हारी औरत बहुत खूबसूरत है ?

आदमी : जी क्यों नहीं···सच बहुत खूबसूरत है; स्व

डाक्टर : तुम उसे यहाँ ला सकते हो ?

[आदमी सहसा तेज़ी से हँसने लगता है।]

डाक्टर : हँसी बंद करो !···बोलो···तुम उसे यहाँ

आदमी : और तुम बोलो···जल्दी से बताओ···तुम सकते हो ?··· (**हँसकर**) बोलो···सोचते क्या जिस्ट हो···हो न !···तब बोलो, ले सकते हो हो···! बोलो···डाक्टर निगम पाल ! तुम मेरे सकते हो ?···मैंने इसीलिए तुम्हें फीस दी चन्दा सितारों की सेज पर सोती थी; और (**हँसता है**) चन्दा; सितारों की सेज पर !

डाक्टर : ये चन्दा कौन है तुम्हारी ?

आदमी : यह एक फूल की क्यारी है···उस फूल की उसमें कीड़े लग गए···!

डाक्टर : (**खुशी से उछल पड़ता है**) ओह ! आई क कन्फर्म्ड···!' (**सेठ से**)···सेठ जी देखिए··· वही सेक्स की ही प्वाइजनेस बीमारी है··· निश्चित रूप से सिफ़लिस या गनोरिया

[आदमी हँस पड़ता है; लेकिन

आदमी : चुप बे डाक्टर ! दबाव कितना बढ़ता जा

[हँसने लगता है।]

डाक्टर : ये चन्दा कौन

आदमी : तुम्हें

डाक्टर : मैं क्या

ठीक चार बजे मेरा जन्म हुआ है ! आपको नहीं मालूम
··· (हँसने लगता है) ···आप ही डाक्टर निगम पाल हैं न
(सेठ से) बोलिए सेठ जी; आप तो खामोश हैं ! ···मैं
ान रहा हूँ न ?
ान रहे हैं !
! शाबास···!
े तुम कहाँ थे ?
सोने जा रहा था···तब तक कोई परी आई और मुझे
चला आया···!

आप ही हैं न ?
र में मिलिट्री में भर्ती हुए ?
ठीक छः महीने पहले···

े···!

चिन्ता करने लगता है; फिर अपने पैड से
ा देता है।]

कागज और कलम; और इस कागज पर
ी आपकी तबीयत हो···बिलकुल स्वतन्त्र

बनाता है।]

िए···तस्वीर बन गई !
देखिए···क्या बनाया है···और नोट

र है !

···!

सूरत जाँघ को एक ऐसा कुत्ता
ीर दूर पर एक सिपाही अपनी

ट द प्वाइन्ट···!

ुने···सच, मेरे सर

के धुएँ को देख लिया ?

डाक्टर : एस···आई कट योर डिजीज···!

आदमी : क्या है ?

डाक्टर : (**पूछता हुआ**) तो तुम्हें अपनी औरत से बहुत प्यार है !

आदमी : जी बहुत प्यार ! ···समझिए कि एक गहरा समुन्दर है, समुन्दर में आग लगी है और समुन्दर की लहरें धुआँ बनकर बहुत ऊँचाई तक आसमान में बादलों की तरह जम जाती हैं और उस धुएँ की सतह पर एक फूस की झोंपड़ी है; उसी में मैं उसे ले जाकर पहला···सबसे पहला, प्यार करना चाहता था···!

डाक्टर : तो तुम्हारी औरत बहुत खूबसूरत है ?

आदमी : जी क्यों नहीं···सच बहुत खूबसूरत है; स्वर्ग की परियों से भी बढ़कर···!

डाक्टर : तुम उसे यहाँ ला सकते हो ?

[आदमी सहसा तेज़ी से हँसने लगता है।]

डाक्टर : हँसी बंद करो ! ···बोलो···तुम उसे यहाँ ला सकते हो ?

आदमी : और तुम बोलो···जल्दी से बताओ···तुम मेरे सर का धुआँ अपने सर पर रख सकते हो ? ··· (**हँसकर**) बोलो···सोचते क्या हो···तुम तो बहुत बड़े साइकोलोजिस्ट हो···हो न ! ···तब बोलो, ले सकते हो ? ···तुम तो इंसानियत के डाक्टर हो···! बोलो···डाक्टर निगम पाल ! तुम मेरे सर का धुआ अपने सर पर उठा सकते हो ? ···मैंने इसीलिए तुम्हें फीस दी है···बोलो··· (**हँसने लगता है**) ···चन्दा सितारों की सेज पर सोती थी; और मैं उसकी चाँदनी में भीगने को था (**हँसता है**) चन्दा; सितारों की सेज पर !

डाक्टर : ये चन्दा कौन है तुम्हारी ?

आदमी : यह एक फूल की क्यारी है···उस फूल की क्यारी का नाम चन्दा है; लेकिन उसमें कीड़े लग गए···!

डाक्टर : (**खुशी से उछल पड़ता है**) ओह ! आई काट द प्वाइन्ट···'नाऊ इट इज़ कन्फर्म्ड···!' (**सेठ से**) ···सेठ जी देखिए···इस अधूरे पागलपन की भी जड़ में वही सेक्स की ही प्वाइजनेस बीमारी है···बेचारा मिलिट्री का आदमी···कहीं इसे निश्चित रूप से सिफ़लिस या गनोरिया मिल गई हैं।

[आदमी हँस पड़ता है; लेकिन दूसरे ही क्षण क्रोध से लाल हो जाता है।]

आदमी : चुप बे डाक्टर ! शैतान कहीं का···तुझे नहीं मालूम···मेरे सर पर धुएँ का दबाव कितना बढ़ता जा रहा है ! और सितारों की सेज पर मेरी चन्दा···!

[हँसने लगता है।]

डाक्टर : ये चन्दा कौन है ?

आदमी : तुम्हीं बताओ··· ये चन्दा कौन है ?

डाक्टर : मैं क्या जानूँ !

आदमी : दुनिया में तुम किसी चन्दा को जानते हो ?···सच-सच बताओ···!

डाक्टर : किसी चन्दा को क्यों नहीं जानता ?···एक चन्दा तो मेरी बड़ी लड़की—शान्ता की सहेली है ! (**प्रश्न से**) कहीं तूने उसे ही तो नहीं देख लिया? ···वह मेरी कोठी के पीछे ही रहती है···मैं उसे अपनी लड़की की तरह मानता हूँ···उस पर अगर तेरी ज़हरीली आँख पड़ी तो मैं तेरी आँखें फोड़वा दूंगा। मैं उसे अपनी लड़की की तरह मानता हूँ···उसका शौहर कहीं बाहर रहता है !

आदमी : (**सहसा पुकारने लगता है**) चन्दा !···चन्दा !···अरे चन्दा !

डाक्टर : यह क्या कर रहे हो ?

आदमी : (**हँसने लगता है**) मैं उसे सितारों की सेज से जगा रहा हूँ। अब सुबह हो गई न !···देखो···लेकिन मुझे नहीं···मेरे सर पर देखो···ज़हरीला धुआं पहाड़ बनता जा रहा है, और चन्दा···!

डाक्टर : (**प्रसन्नता से**) ओह ! आई काट द प्वाइन्ट !···यह चन्दा कौन है, जल्दी बताओ···!

आदमी : जो तुम्हारी लड़की की तरह है···है···न ?···

डाक्टर : हूँ···लेकिन इससे तुम्हारा मतलब ?

आदमी : मैं चन्दा से मुहब्बत करता हूँ !

डाक्टर : (**तेज़ी में**) शट अप !···नान्सेन्स···ज़्यादा अब बको मत !···मुझे तुम्हारी बीमारी मालूम हो गई !···तुम्हें कल सुबह सात बजे हास्पिटल आना होगा···तुम्हारा आपरेशन होगा···!

आदमी : आपरेशन···!

डाक्टर : हूँ; इस ज़हरीली बीमारी का इलाज केवल आपरेशन है···वरना यह कभी खत्म नहीं होती···किसी को नामर्द बनाती है, किसी को पागल और किसी को इसके कीड़े धीरे-धीरे राख का ढेर कर देते हैं···! मैं नहीं चाहता, मेरा मुल्क इन ज़हरीले कीड़ों से तबाह हो···यहाँ की बेगुनाह औरतें कीड़ों से खिलाड़ जाएँ··· (**सेठ से**) सेठ जी, आपका भी आपरेशन होगा (**कहते-कहते उठकर खड़ा होता है**) 'इट इज़ सोशल सिन एण्ड हीनस क्राइम···बोथ···आई कान्ट टालरेट इट' !

सेठ : (**घबड़ाकर**) नहीं डाक्टर साहब, मैं आपरेशन नहीं कराऊँगा··· (**उठकर**) धन्यवाद ···मैं वापस जा रहा हूँ···मुझे इसका इलाज नहीं कराना है !

डाक्टर : नहीं रुकिए !···मेरी बात सुनिए···आप जा नहीं सकते··· (**रुककर**) न जाने कैसे इन बीमारियों के मरीज़ जिन्दा रहना चाहते हैं। मैं तो समझता हूँ कि समाज की बेहतरी के लिए उन्हें स्युसाइड कर लेना चाहिए···!···कीड़ों की मौत··· अदरवाइज़ इट क्रियेट्स ए 'विशेष सर्किल'···!

[आदमी एकाएक बहुत ऊँचाई में हँसने लगता है।]

डाक्टर : हँसी नहीं···जी आदमी !···तुम लोगों का जबरन आपरेशन होगा···! बच नहीं सकते···!

[सेठ घबड़ाकर इधर-उधर देखने लगता है।]

आदमी : लेकिन मैं तो तेरी चन्दा से मुहब्बत करने आया
नहीं···!

डाक्टर : तूने उस चन्दा को देखा है···जो मेरी शान्ता की
आदमी : (**हँसता हुआ**) जी···जी···यही तो खूबी है···
चाहे तुम अभी शान्ता···अपनी शान्ता बेटी से पूछ ल

डाक्टर : (**तेज़ी से**) लेकिन उसका शौहर तुझे गोली मार

[आदमी एकाएक पीड़ा से चीख कर टेबुल पर झुक

आदमी : (**कराहता हुआ**) आह ! मुझे बचाओ डाक्टर !
घोटता जा रहा है···!···आह डाक्टर···!

डाक्टर : अच्छा···अब तुम अपने घर जाओ···कल सुब
जाओ···!

सेठ : (**जाता हुआ**) जी, मैं भी जा रहा हूँ !

आदमी : (**रोकता हुआ**)···रुको सेठ जी, सेठ !···मैं
थोड़ी देर और बैठ जाओ···!

[सेठ फिर बैठ जाता है।]

डाक्टर : आदमी···अब जाओ तुम···?

आदमी : लेकिन सच, जी मैं चन्दा से मुहब्बत करता हूँ
हो, इसका कोई रास्ता बताओ···

डाक्टर : फाँसी पर चढ़ा दिए जाओगे···उसकी शादी हो

आदमी : लेकिन चन्दा मेरी ही तो दुल्हन है··· (**हँसता है**)
तक नहीं बेवकूफ; मैं ही तो चन्दा को ब्याह करके
बेचारी दुल्हन चन्दा···अकेली···! और जब मि
···मुझे वहाँ से छुट्टी न मिली···तो मैं गधे पर
हूँ ! देखो, तुम किसी को ये बात बताना न
है···!

डाक्टर : तो तुम चन्दा के शौहर हो ?

आदमी : हाँ जी···और मैं अभी

डाक्टर : तो चन्दा कहाँ है ?

आदमी : पगली सितारों की
को कहा···लेकिन वह
बेखबर; उस पर
को···उसके

डाक्टर : (

चन्दा को जानते हो ?···सच-सच बताओ···!

नहीं जानता ?···एक चन्दा तो मेरी बड़ी लड़की—

से) कहीं तूने उसे ही तो नहीं देख लिया? ···वह मेरी

···मैं उसे अपनी लड़की की तरह मानता हूँ···उस पर

पड़ी तो मैं तेरी आँखें फोड़वा दूँगा। मैं उसे अपनी लड़की

का शौहर कहीं बाहर रहता है !

ता है) चन्दा !···चन्दा !···अरे चन्दा !

!

उसे सितारों की सेज से जगा रहा हूँ। अब सुबह हो गई

नहीं···मेरे सर पर देखो···जहरीला धुआँ पहाड़ बनता

!

! आई काट द प्वाइन्ट !···यह चन्दा कौन है, जल्दी

तरह है···है···न ?···

मतलब ?

हूँ !

सेन्स···ज्यादा अब बको मत !···मुझे तुम्हारी

कल सुबह सात बजे हास्पिटल आना होगा···

इलाज केवल आपरेशन है···वरना यह कभी

, बनाती है, किसी को पागल और किसी को

कर देते हैं···! मैं नहीं चाहता, मेरा मुल्क इन

की बेगुनाह औरतें कीड़ों से खिलाइ जाएँ···

न होगा (कहते-कहते उठकर खड़ा होता

इम···वोथ···आई कान्ट टालरेट इट' !

रेशन नहीं कराऊँगा···(उठकर) धन्यवाद

न नहीं कराना है !

प जा नहीं सकते···(रुककर) न जाने

रहे हैं। मैं तो समझता हूँ कि समाज

चाहिए···!···कीड़ों की मौत···

आपरेशन होगा···! बच

[सेठ घबड़ाकर इधर-उधर देखने लगता है।]

आदमी : लेकिन मैं तो तेरी चन्दा से मुहब्बत करने आया हूँ···! तू इसमें खुश है कि नहीं···!

डाक्टर : तूने उस चन्दा को देखा है···जो मेरी शान्ता की सहेली है।

आदमी : (**हँसता हुआ**) जी···जी···यही तो खूबी है···वह मुझसे मुहब्बत करती है··· चाहे तुम अभी शान्ता···अपनी शान्ता बेटी से पूछ लो···

डाक्टर : (**तेजी से**) लेकिन उसका शौहर तुझे गोली मार देगा···

[आदमी एकाएक पीड़ा से चीख कर टेबुल पर झुक जाता है।]

आदमी : (**कराहता हुआ**) आह ! मुझे बचाओ डाक्टर ! मेरे सर का धुआँ मेरा गला घोटता जा रहा है···! ···आह डाक्टर···!

डाक्टर : अच्छा···अब तुम अपने घर जाओ···कल सुबह तुम्हारा आपरेशन होगा··· जाओ···!

सेठ : (**जाता हुआ**) जो, मैं भी जा रहा हूँ !

आदमी : (**रोकता हुआ**)···रुको सेठ जी, सेठ !···मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूँ··· थोड़ी देर और बैठ जाओ···!

[सेठ फिर बैठ जाता है।]

डाक्टर : आदमी···अब जाओ तुम···?

आदमी : लेकिन सच, जी मैं चन्दा से मुहब्बत करता हूँ···डाक्टर तुम तो कितने महान हो, इसका कोई रास्ता बताओ···

डाक्टर : फाँसी पर चढ़ा दिए जाओगे···उसकी शादी हो गई है !

आदमी : लेकिन चन्दा मेरी ही तो दुल्हन है··· (**हँसता है**) चन्दा के शौहर को पहचानते तक नहीं बेवकूफ; मैं ही तो चन्दा को ब्याह करके मिलिट्री में चला गया था··· बेचारी दुल्हन चन्दा···अकेली···! और जब मिलिट्री में मुझे एक साल बीत गया ···मुझे वहाँ से छुट्टी न मिली···तो मैं गधे पर चढ़कर चुपके से यहाँ भाग आया हूँ ! देखो, तुम किसी को ये बात बताना नहीं··· इसीलिए मैंने तुझे सौ रुपये दिया है···!

डाक्टर : तो तुम चन्दा के शौहर हो ?

आदमी : हाँ जी···और मैं अभी कल ही शाम को तो उसके पास से आया हूँ !

डाक्टर : तो चन्दा कहाँ है ? ···वह तुम्हारे साथ क्यों नहीं आई !

आदमी : पगली सितारों की सेज पर सो गई !···मैंने उसे बहुत समझाया···बहुत रुकने को कहा···लेकिन वह चुपके से धुएँ के ऊपर सितारों की सेज पर सो गई···और बेखबर; उस पर कीड़े रेंगने लगे···और उसे खाने लगे···उसके कीमती होंठों को···उसके···!

डाक्टर : (**बीच ही में**) बकवास मत करो···जाओ अब अपने घर लौट जाओ···!

आदमी : कम्पाउंडर ! तूने लिखना क्यों बन्द कर दिया ?···तू पूरा रिपोर्ट लिखता चल···!

कम्पाउंडर : नहीं···अब तुम घर जाओ···तुम्हारी 'साइकोएनलिसिस' हो गई !

आदमी : नहीं···लिखते चलो···मैं अभी डाक्टर निगम पाल की 'साइकोएनलिसिस' कर रहा हूँ···! **(डाक्टर से)**···डाक्टर पाल ! तुम तो मानवता के बहुत बड़े डाक्टर हो···!

डाक्टर : तो तुम्हें कहना क्या है ?

आदमी : **(तेजी से)** तुम्हारी चन्दा बेटी तो सितारों की सेज पर सो गई और उसके मक्खन जैसे पाक और खूबसूरत जिस्म को कीड़े खाने लगे···और उन्हें पता तक नहीं···ओह !

डाक्टर : मत बको···नहीं तो पूरे पागल हो जाओगे !

आदमी : **(तेजी से हँस पड़ता है)** कीड़ों की जड़ !···मैं तुझसे सच कह रहा हूँ। मेरे सर पर धुएँ का बोझ बढ़ता जा रहा है, नहीं तो मैं अभी तुझे अपनी चन्दा को दिखा देता···मैं कल शाम को पूरे एक वर्ष के बाद **(कम्पाउंडर को डाँटता हुआ)** कम्पाउंडर ! लिखता चल, तू रिपोर्ट क्यों नहीं तैयार कर रहा है !···हाँ, कल शाम को पूरे एक वर्ष के बाद मैं अपनी दुलहन चन्दा के पास आया···हम दोनों हँसते रहे···रात के बारह बजे तक···चन्दा एकाएक रोने लगी···मैं खूबसूरत चाँद को दिखा-दिखाकर समझाता रहा, सुहागरात के सारे मान को निभाता रहा··· लेकिन वह दो बजे रात तक बार-बार डाक्टर पाल का नाम लेकर चीखती रही··· तुम्हीं तो डाक्टर पाल हो न ?···मैं···सच कहता हूँ···मैं अपनी चन्दा को बराबर अपनी काँपती बाहुओं में कस कर सो जाना चाहता था···वर्षों का कुँआरा प्यार मेरे दिल में समुन्दर की तरह तूफान पैदा कर रहा था; देखो···मैं चन्दा के प्यार का समुन्दर हूँ···मैं उसे रात को अपनी बाहुओं में सुला लेने के लिए बार-बार दौड़ रहा था···लेकिन वह चीखती हुई रात भर मुझसे दूर भागती रही···काँपती रही ···डाक्टर निगम पाल, द ग्रेट साइकोलोजिस्ट का नाम लेती रही···!

[डाक्टर एकाएक काँपने लगता है और पीछे मुड़कर दायीं ओर बढ़ने लगता है।]

आदमी : डाक्टर खबरदार, अपनी जगह पर खड़े रहो !

डाक्टर : **(क्रोध से)** कम्पाउंडर !···इस पागल को जल्दी यहाँ से बाहर निकालो··· और भीतर से बन्द कर लो दरवाज़ों···को···?

[कम्पाउंडर आगे बढ़ता है, सहसा आदमी हँसता हुआ अपनी दायीं पाकेट से पिस्तौल निकालता है कम्पाउंडर पीछे हट जाता है, डाक्टर पागल-सा लड़खड़ाने लगता है और फोन पर रिंग करने को होता है।]

आदमी : **(डाक्टर के सामने पिस्तौल तानकर)** खबरदार ! अगर अपनी जगह से हिले ! बिलकुल हिलो नहीं···तुम्हारा आपरेशन होगा···**(हँसता है)**···मैं कल

रात ही को···भोर में···तुम्हारी इस आलीशान को
और निराश होकर···जब मैं चन्दा के कमरे में लौ
आग लगी हुई है···चन्दा अपने ऊपर तेल छिड़कक
धुएँ से सारा आसमान काँप रहा है···हिलो नहीं···
की सेज पर सो गई···बिलकुल नंगी-मासूम जंगली
दिए हुए ज़हरीले कीड़े उसे फिर भी खा रहे थे···
···सामने खड़े रहो···मेरी आँखों में देखते हुए
(कम्पाउंडर से) नालायक कम्पाउंडर !···तेरी
लिखना होगा !···खैर···न लिखो···! धुआँ आस
···**(सेठ से)** सेठ जी, आप भी इसी ज़हरीले म
डाक्टर के साथ हो जाओ···तुम्हारा भी आपरेशन

[सेठ बेहोश होकर नीचे गिर पड़ता है।]

आदमी : **(हँस पड़ता है)** कमज़ोर कीड़े !···डाक्टर !
में एक बूँद आँसू तक नहीं···बोल···!

डाक्टर : **(काँपते हुए)** पिस्तौल को नीचे कर लो···!

आदमी : **(हँसता है)** शैतान !···एक दिन तू अपनी
अपने कीड़ों का शिकार बना देता···इसीलिए ते
क्यों डरता है ? तू तो डाक्टर है ? इससे तेरे कीड़े
तो स्वयं अपने खूबसूरत शरीर पर तेल छिड़क
आल्टरनेटिव'।

[डाक्टर चीख कर टेबुल पर झुक जाता है।]

आदमी : **(डाँटता हुआ)**···सीधी तरह, सामने खड़े र
बेटी की तरह थी···न···!···डाक्टर···मुझे···दे

[एकाएक हँसता है और तेजी से डाक्टर के सी
है। डाक्टर चीखता हुआ नीचे गिरता है। सेठ
भागते हैं और आदमी बहुत ऊँचाई पर

[पर्दा

ना क्यों बन्द कर दिया ?···तू पूरा रिपोर्ट लिखता

जाओ···तुम्हारी 'साइकोएनलिसिस' हो गई !
अभी डाक्टर निगम पाल की 'साइकोएनलिसिस' कर
डाक्टर पाल ! तुम तो मानवता के बहुत बड़े डाक्टर

बेटी तो सितारों की सेज पर सो गई और उसके
जिस्म को कीड़े खाने लगे···और उन्हें पता तक

हो जाओगे !
की जड़ !···मैं तुझसे सच कह रहा हूँ। मेरे सर
है, नहीं तो मैं अभी तुझे अपनी चन्दा को दिखा
वर्ष के बाद (कम्पाउंडर को डाँटता हुआ)
र्ट क्यों नहीं तैयार कर रहा है !···हाँ, कल
नी दुल्हन चन्दा के पास आया···हम दोनों
···चन्दा एकाएक रोने लगी···मैं खूबसूरत चाँद
गरात के सारे मान को निभाता रहा···
डाक्टर पाल का नाम लेकर चीखती रही···
''सच कहता हूँ···मैं अपनी चन्दा को बराबर
ना चाहता था···वर्षों का कुँआरा प्यार
कर रहा था; देखो···मैं चन्दा के प्यार
ओं में सुला लेने के लिए बार-बार दौड़
मुझसे दूर भागती रही···काँपती रही
का नाम लेती रही···!

दायीं ओर बढ़ने लगता है।]

यहाँ से बाहर निकालो···

अपनी दायीं पाकेट से
पागल-सा लड़खड़ाने

अपनी जगह से
है)···मैं कल

रात ही को···भोर में···तुम्हारी इस आलीशान कोठी का चक्कर लगाता रहा···और निराश होकर···जब मैं चन्दा के कमरे में लौटा···तो देखा कि···समुन्दर में आग लगी हुई है···चन्दा अपने ऊपर तेल छिड़ककर जल रही है···और ज़हरीले धुएँ से सारा आसमान काँप रहा है···हिलो नहीं···सुनो···और फिर चन्दा सितारों की सेज पर सो गई···बिलकुल नंगी-मासूम जंगली फूल की तरह···! और तुम्हारे दिए हुए ज़हरीले कीड़े उसे फिर भी खा रहे थे···(डाँटकर) दायें-बायें बढ़ो नहीं ···सामने खड़े रहो···मेरी आँखों में देखते हुए···! बस ठीक इसी तरह··· (कम्पाउंडर से) नालायक कम्पाउंडर !···तेरी क़लम क्यों बन्द है ?···सब लिखना होगा !···ख़ैर···न लिखो···! धुआँ आसमान की छाती पर खुद लिखेगा ···(सेठ से) सेठ जी, आप भी इसी ज़हरीले मर्ज़ के शिकार हैं···चलो तुम भी डाक्टर के साथ हो जाओ···तुम्हारा भी आपरेशन होगा···!

[सेठ बेहोश होकर नीचे गिर पड़ता है।]

आदमी : **(हँस पड़ता है)** कमज़ोर कीड़े !···डाक्टर !···चन्दा बेटी के लिए तेरी आँखों में एक बूँद आँसू तक नहीं···बोल···!

डाक्टर : **(काँपते हुए)** पिस्तौल को नीचे कर लो···!

आदमी : **(हँसता है)** शैतान !···एक दिन तू अपनी निजी लड़की शान्ता को भी इन्हीं अपने कीड़ों का शिकार बना देता···इसीलिए तेरा आपरेशन होगा···! इससे तू क्यों डरता है ? तू तो डाक्टर है ? इससे तेरे कीड़े मर जाएँगे **(हँसता है)** चन्दा ने तो स्वयं अपने खूबसूरत शरीर पर तेल छिड़क कर आग लगा दिया···'नो आल्टरनेटिव'।

[डाक्टर चीख़ कर टेबुल पर झुक जाता है।]

आदमी : **(डाँटता हुआ)** ···सीधी तरह, सामने खड़े रहो···हिलो नहीं···चन्दा तेरी बेटी की तरह थी···न···!···डाक्टर···मुझे···देख···!

[एकाएक हँसता है और तेजी से डाक्टर के सीने पर तीन लगातार फायर करता है। डाक्टर चीखता हुआ नीचे गिरता है। सेठ और कम्पाउंडर चिल्लाते हुए बाहर भागते हैं और आदमी बहुत ऊँचाई पर हँसता हुआ वहीं खड़ा रहता है।]

[पर्दा गिरता है।]

कैद से पहले

पात्र

सूबेदार सिंह
सागर
जमुना
सीता
गोरेलाल तथा एक भिखारी

[शहर के एक साधारण से मुहल्ले में सूबेदार सिंह
छोटा-सा—दो कमरों वाला क्वार्टर। दोनों क
बरामदे में खुलते हैं। सामने के खुले हुए दरवाज़े
बायीं ओर दूसरे कमरे का दरवाज़ा है; जो बंद है,
का पर्दा गिरा हुआ है।

पाँच बजे शाम का समय है और नाटक क
उठता है। सामने और बायें पर्दा गिरे हुए दरवाजे
बिछी हुई है, जिसके पायताने एक लोहे की पुरान
पर बरामदा इसी तरह बिलकुल सूना पड़ा है। स
भिखारी—जिसका दायाँ पैर निर्जीव हो गया है,
के बाहर रुक जाता है। एक क्षण खड़ा रहकर साम
फिर अपने दायें कंधे से लटके हुए एकतारा नि
लगता है; इस आवाज़ को सुनते ही जमुना कमरे से
के आड़ में खड़ी हो जाती है। भिखारी बहुत मीठे

समुझ-बूझ बन चरना रे हरना,
समुझ-बूझ बन चरना।
एक बन चरना दूसर बन चरना,
तिसरे बन में पाँव नहीं धरना,
समुझ-बूझ बन चरना।
वहि जंगल माँ अधिक बसत हैं,
डरिहैं जाल काढ़ि लेइहैं परना,
समुझ-बूझ बन चरना, रे हरना...।

भिखारी : (गीत समाप्त करके) *जै...हो, कल्याण*
फलो लक्ष्मी...जै हो...!

[सहसा भीतर से जमुना अपने सर-माथे
को सम्हालती हुई भीख लिए

जमुना : (भीख देती हुई

भिखारी : हाँ बेटी! मैं

जमुना : पाँव लागी बाबा

से पहले

सिंह

भिखारी

[शहर के एक साधारण से मुहल्ले में सूबेदार सिंह—पुलिस चौकी के दीवान का छोटा-सा—दो कमरों वाला क्वार्टर। दोनों कमरों के दरवाज़े सामने छोटे-से बरामदे में खुलते हैं। सामने के खुले हुए दरवाज़े पर टाट का मोटा पर्दा पड़ा है। बायीं ओर दूसरे कमरे का दरवाज़ा है; जो बंद है, फिर भी इस पर एक मोटे कपड़े का पर्दा गिरा हुआ है।

पाँच बजे शाम का समय है और नाटक का पर्दा इसी छोटे से बरामदे में उठता है। सामने और बायें पर्दा गिरे हुए दरवाज़े हैं। बरामदे में केवल एक खाट बिछी हुई है, जिसके पायताने एक लोहे की पुरानी कुर्सी पड़ी हुई है। पर्दा उठने पर बरामदा इसी तरह बिलकुल सूना पड़ा है। सहसा बायीं गली से मुड़कर एक भिखारी—जिसका दायाँ पैर निर्जीव हो गया है, बैसाखी के सहारे आकर बरामदे के बाहर रुक जाता है। एक क्षण खड़ा रहकर सामने दरवाज़े की ओर देखता है फिर अपने दायें कंधे से लटके हुए एकतारा निकालकर बायें हाथ से बजाने लगता है; इस आवाज को सुनते ही जमुना कमरे से सामने दरवाज़े पर आकर पर्दे के आड़ में खड़ी हो जाती है। भिखारी बहुत मीठे स्वर में गाता है—]

समुझ-बूझ बन चरना रे हरना,
समुझ-बूझ बन चरना।
एक बन चरना दूसर बन चरना,
तिसरे बन में पाँव नहीं धरना,
समुझ-बूझ बन चरना।
वहि जंगल माँ अधिक बसत हैं,
डरिहैं जाल काढ़ि लेइहैं परना,
समुझ-बूझ बन चरना, रे हरना···।

भिखारी : (गीत समाप्त करके) जै···हो, कल्याण हो मलकिन···दूधन् नहाओ···पूतन् फलो लक्ष्मी···जै हो···!

[सहसा भीतर से जमुना अपने सर-माथे को सावधानी से ढककर तथा अपने आँचल को सम्हालती हुई भीख लिए बाहर आती है।]

जमुना : (भीख देती हुई नम्रता से) बाबा ! आप ब्राह्मण हैं न ?

भिखारी : हाँ बेटी ! मैं ब्राह्मण हूँ···मिसिर।

जमुना : पाँव लागी बाबा !

भिखारी : जै हो बेटी !···तुम भी तो ब्राह्मण-बेटी हो न ?

[जमुना चुप है ।]

भिखारी : क्यों उदास हो गई बेटी ?

जमुना : कुछ नहीं बाबा ! आप भजन बहुत अच्छा गाते हैं।

भिखारी : गाता कहाँ हूँ, रोता हूँ बेटी !···अभी इस मुहल्ले में इसी तरह रोऊँगा··· फिर वापस जाऊँगा···यहाँ से तीन मील की दूरी पर मेरी कुटिया है।

[जमुना उदास, चुप है।]

भिखारी : तू ब्राह्मण-बेटी है न !

जमुना : हाँ बाबा ! मैं ब्राह्मण थी···लेकिन अब ठकुराइन हूँ ।

[उदास होकर शून्य में देखने लगती है। भिखारी धीरे-धीरे आगे बढ़ता हुआ सामने से दाईं गली में मुड़ जाता है। जमुना एकाएक कमरे में जाती है और भीतर से एक चिट्ठी लिए हुए बाहर आती है तथा दायीं ओर बढ़कर भिखारी को पुकारती है, भिखारी फिर बैसाखी से टेकता हुआ सामने आता है ।]

भिखारी : क्या है बेटी ?

जमुना : बाबा, मेरी यह चिट्ठी पढ़ दीजिए।

भिखारी : मैं पढ़ा-लिखा नहीं हूँ बेटी !

जमुना : बिलकुल नहीं ?

भिखारी : हाँ···बिलकुल नहीं बेटी !

[भिखारी, यह कहकर फिर उसी रास्ते लौट जाता है। जमुना उसी तरह उदास खड़ी रहती है। क्षण-भर के बाद सागर स्कूल से पढ़कर आता है। इसकी अवस्था अधिक से अधिक तेरह वर्ष की है लेकिन किशोर व्यक्तित्व में ही असमय गंभीरता और उदासी स्पष्ट है, सहज चंचलता और बचपने का जैसे नाम तक नहीं ।]

सागर : (**बरामदे में मुड़ते ही**) यह हाथ में क्या है माताजी ?

जमुना : वही चिट्ठी है बेटा !··· (**दुलार से**) पढ़ आए बेटा !

सागर : (**चिट्ठी देखता हुआ**) यह तो वही परसों वाली चिट्ठी है माताजी ?

जमुना : हाँ, वही है बेटा !···पढ़वाने लाई थी।

सागर : इसमें अब क्या पढ़वाना बाकी है। मैंने तो उसी दिन तुम्हें सब पढ़के सुना दिया था···क्यों ?

जमुना : फिर देख लो बेटा !···उसने आज ही की तारीख को आने के लिखा है न ! ···पढ़ो ?

सागर : हाँ, माताजी आज ही तो आने की तारीख है; आज चौदह तारीख है न !··· साफ तो लिखा है; 'पूज्य माताजी को बार-बार चरण छूना···मैं चौदह तारीख को शाम वाली गाड़ी से तुम्हारे पास पहुँच जाऊँगी—स्टेशन पर आना, सागर भइया को भी साथ लाना। तुम्हारी बेटी—सीता !"

जमुना : ठीक है बेटा !

सागर : सीता तुम्हारी सगी बेटी है माताजी ?

जमुना : हाँ, बेटा !

सागर : तब तुम उसे साथ क्यों नहीं रखतीं, अभी तक तो मै

[जमुना उदास और चुप है।]

सागर : वह मुझसे बड़ी होगी माताजी ?

जमुना : हाँ बेटा, वह तुमसे तीन-चार साल बड़ी है !

सागर : तीन-चार साल !···तब तो मैं उसे सीता दीदी कह

जमुना : जरूर कहना ! वह भी तो बिना तुम्हें देखे ही सागर

सागर : बड़ी अच्छी होगी सीता दीदी ! मैं उसके साथ-स खाऊँगा।

जमुना : खाना बेटा !

सागर : अब सीता दीदी हमेशा तुम्हारे पास ही रहेगी न !

जमुना : नहीं बेटा !···वह एक ही हफ्ते के लिए मेरे पास अ

सागर : फिर लौट जाएगी ?

जमुना : हाँ बेटा !

सागर : वह कहाँ रहती है ?

जमुना : अपने मामा के साथ—कटेहरी।

सागर : जहाँ से पिताजी तुम्हें ले आए हैं ?

[जमुना चुप हो जाती है।]

सागर : तब सीता दीदी को भी तुम अपने साथ क्यों नहीं स तुम बेचारी को वहाँ अकेले छोड़कर क्यों चली आईं

[जमुना की आँखें सहसा भर आती हैं और वह जल्दी सामने कमरे में चली जाती है। सागर वहीं हतप्रभ बाद जमुना अपने दायें हाथ में कटोरा लिए हुए वापस से किताबों का झोला लेकर उसे खाट पर बिठाती है।

जमुना : लो बेटा !···*हलुआ खालो*··· *(रुककर) बच्चे जब* हैं तब फौरन *खाने के लिए मार करने लगते हैं।* करते रहते हो। *कभी कुछ खाने के* क्या बेटा ?

सागर : (**हलुआ खाता हुआ**) चाहिए।

जमुना : कितने सीधे हो

ब्राह्मण-बेटी हो न ?

द बच्छा गाते हैं।

···अभी इस मुहल्ले में इसी तरह रोऊँगा···

ल की दूरी पर मेरी कुटिया है।

अब ठकुराइन हूँ।

भिखारी धीरे-धीरे आगे बढ़ता हुआ सामने

एक कमरे में जाती है और भीतर से एक

और बढ़कर भिखारी को पुकारती है,

जाता है।]

ता है। जमुना उसी तरह उदास

कर आता है। इसकी अवस्था

क्तित्व में ही असमय गंभीरता

वैसे नाम तक नहीं।]

है माताजी ?

सब पढ़के सुना दिया

ने के लिखा है न !

ठीक है न !···

चौदह तारीख

आना, सागर

भइया को भी साथ लाना। तुम्हारी बेटी—सीता !"

जमुना : ठीक है बेटा !

सागर : सीता तुम्हारी सगी बेटी है माताजी ?

जमुना : हाँ, बेटा !

सागर : तब तुम उसे साथ क्यों नहीं रखतीं, अभी तक तो मैंने उसे देखा भी नहीं।

[जमुना उदास और चुप है।]

सागर : वह मुझसे बड़ी होगी माताजी ?

जमुना : हाँ बेटा, वह तुमसे तीन-चार साल बड़ी है !

सागर : तीन-चार साल !···तब तो मैं उसे सीता दीदी कहूँगा···कहूँगा न !

जमुना : जरूर कहना ! वह भी तो बिना तुम्हें देखे ही सागर भइया कहती है।

सागर : बड़ी अच्छी होगी सीता दीदी ! मैं उसके साथ-साथ रहूँगा, खाना भी साथ खाऊँगा।

जमुना : खाना बेटा !

सागर : अब सीता दीदी हमेशा तुम्हारे पास ही रहेगी न !

जमुना : नहीं बेटा !···वह एक ही हफ्ते के लिए मेरे पास आ रही है।

सागर : फिर लौट जाएगी ?

जमुना : हाँ बेटा !

सागर : वह कहाँ रहती है ?

जमुना : अपने मामा के साथ—कटेहरी।

सागर : जहाँ से पिताजी तुम्हें ले आए हैं ?

[जमुना चुप हो जाती है।]

सागर : तब सीता दीदी को भी तुम अपने साथ क्यों नहीं लाईं ? बताओ माताजी !··· तुम बेचारी को वहाँ अकेले छोड़कर क्यों चली आईं ?

[जमुना की आँखें सहसा भर आती हैं और वह जल्दी से अपने को सम्हालती हुई सामने कमरे में चली जाती है। सागर वहीं हतप्रभ खड़ा रह जाता है। क्षणभर के बाद जमुना अपने दायें हाथ में कटोरा लिए हुए वापस आती है और सागर के हाथ से किताबों का झोला लेकर उसे खाट पर बिठाती है।]

जमुना : लो बेटा !···हलुआ खालो···(रुककर) बच्चे जब स्कूल से पढ़कर घर लौटते हैं तब फौरन खाने के लिए मार करने लगते हैं। तुम तो हो कि गंभीर बातें, सवाल करते रहते हो। कभी कुछ खाने के लिए भी नहीं माँगते। तुम्हें भूख नहीं लगती क्या बेटा ?

सागर : (हलुआ खाता हुआ) पिताजी ने बताया है कि बच्चों को बार-बार नहीं खाना चाहिए।

जमुना : कितने सीधे हो तुम ?···न कभी खाने-पीने के लिए ठुनकते हो, न किसी चीज़

के लिए ज़िद करते हो, न कभी रूठते हो, सच; तुम सागर ही हो बेटा ! कितना अच्छा नाम है !

सागर : यह नाम मेरी माताजी ने रक्खा था ।

जमुना : तुम्हें कैसे मालूम ?

सागर : मुझसे माताजी ने बताया था···जब वह बीमार पड़ी थी । डाक्टर मना करते थे फिर भी मेरी माँ चुपके से पिताजी से छिपकर, झूठ बोलकर मुझे अपने पास सुलाती थी और बहुत अच्छी-अच्छी बातें बताती थी !

जमुना : तुम्हें माताजी की याद बहुत आती होगी !

सागर : (**खाना समाप्त कर**) पहले बहुत आती थी—उसके मरने के बाद । मैं रात-दिन रोया करता था; लेकिन फिर पिताजी मुझे बहुत मारने-डाँटने लगे और याद कम होती गई । फिर तुम, मेरी नयी माताजी, आ गईं !···तुम भी मेरी माताजी हो न ! बोलो···! क्यों ?

जमुना : (**रुँधे गले से**) हाँ बेटा !

सागर : (**उठता हुआ**) माताजी ! चलिए अब स्टेशन चलें ! समय हो गया न !

जमुना : गाड़ी तो साढ़े छः बजे आती है बेटा !···चलेंगे···अभी तो पाँच बजे हैं ।

सागर : तो इससे क्या ?···हम लोग स्टेशन पर बैठे रहेंगे···कौन जाने आज गाड़ी जल्दी आ जाए···चलो चलें ।

जमुना : नहीं बेटा, अभी तो गाड़ी आने में बहुत देर है । सोचो रोज तो कितनी देर से गाड़ी आती है । नाले के पाट वाले पुल पर जब पहुँचती है; कितनी आवाज होती है ।

सागर : हाँ वही गाड़ी !···अभी तो आ जाएगी !

जमुना : उसी गाड़ी से मैं भी यहाँ आई थी ।

[उदास होकर शून्य में देखने लगती है ।]

सागर : चलिए माताजी, नहीं तो बाबूजी आ जाएँगे ।

जमुना : उन्हें आ जाने दो न !

सागर : (**डरकर**) नहीं, माताजी !···तब वे मुझे स्टेशन नहीं जाने देंगे ।

जमुना : क्यों, तू उनसे इतना डरता है बेटा !···क्या बात है ?···वे तो तुझे कभी मारते-पीटते भी नहीं ।

[चुप होकर जमुना को देखने लगता है ।]

जमुना : क्यों तू हमेशा इतना डरता है !···बोल !

सागर : मुझे उन्हें देखकर बहुत डर लगता है ।

जमुना : क्यों, ऐसी क्या बात है ?

[सागर खड़ा होकर जमुना के अंक का सहारा लेता है ।]

सागर : वे मेरी माता जी को बेहद मारते थे ।

जमुना : (**पीड़ा मिश्रित आश्चर्य से**) सच !

सागर : हाँ···बहुत पीटते थे, उसके हाथ-पैर बाँधकर
में खड़ा रखते थे । जब वे नाथनगर पुलिस-थाने
माता जी को उलटे टाँग दिया था और कमरे को

जमुना : (**जैसे रोती हुई**) और तुम कहाँ थे ?

सागर : मैं बाहर चौखट पर रो रहा था ।

जमुना : बड़े निर्दयी हैं !

सागर : (**डरकर**) माता जी, उनसे लेकिन कुछ कहि
न कहिएगा···चलिए···!

[जमुना सागर को सहारा दिए हुए मौन-उदास

सागर : चलिए माता जी !···स्टेशन चलिए···(**घूम**
सोच रही हो माँ ?

[जमुना वहीं कुर्सी पर बैठ जाती है और साग
रहती है ।]

सागर : गाड़ी पर सीता दीदी अकेली आएगी ?

जमुना : नहीं, उसके मामा साथ रहेंगे !

सागर : मामा !···(**प्रसन्नता से**) मामा !···तब तो
मैंने मामा को नहीं देखा है ! मेरी माता जी को जब
माँ रोती थी । मैं कहता था कि माँ, चलो मामा के
रोने लगती थीं और कहती थीं बेटा ! अगर
क्या···वे···! सच; अभी तक मैंने मामा को
को जानता हूँ···चन्दा मामा धाय आव,
भात लाओ और मेरे सागर को खिलाओ
खिलाते समय कहा करती थीं ।

जमुना : कितने प्यारे हो बेटा तुम !

सागर : पिताजी मुझसे ऐसा क्यों नहीं

जमुना : तुम तो उनके सामने बोलते
अब तो वह किसी को मारते-
भगवान की पूजा करने लगे

सागर : (**बात काटता हुआ**)
भी तो यहाँ सात दिन
दिन तक रहेंगे न ?

जमुना : नहीं बेटा···

कभी रूठते हो, सच; तुम सागर ही हो बेटा ! कितना

ने रखा था।

था···जब वह बीमार पड़ी थी। डाक्टर मना करते
पिताजी से छिपकर, झूठ बोलकर मुझे अपने पास
अच्छी बातें बताती थी !

हुत आती होंगी !

बहुत आती थी—उसके मरने के बाद। मैं रात-
र पिताजी मुझे बहुत मारने-डाँटने लगे और याद
भी माताजी, आ गईं !···तुम भी मेरी माताजी

ए अब स्टेशन चलें ! समय हो गया न !

बेटा !···चलेंगे···अभी तो पाँच बजे हैं।
शन पर बैठे रहेंगे···कौन जाने आज गाड़ी

बहुत देर है। सोचो रोज तो कितनी देर से
पर जब पहुँचती है; कितनी आवाज होती

सी !

।

स्टेशन नहीं जाने देंगे।
या बात है ?···वे तो तुझे कभी

सागर : वे मेरी माता जी को बेहद मारते थे।

जमुना : (**पीड़ा मिश्रित आश्चर्य से**) सच !

सागर : हाँ···बहुत पीटते थे, उसके हाथ-पैर बाँधकर पीटते थे। रात-रात भर आँगन में खड़ा रखते थे। जब वे नाथनगर पुलिस-थाने पर थे, एक बार उन्होंने मेरी माता जी को उलटे टाँग दिया था और कमरे को बाहर से बंद कर दिया था।

जमुना : (**जैसे रोती हुई**) और तुम कहाँ थे ?

सागर : मैं बाहर चौखट पर रो रहा था।

जमुना : बड़े निर्दयी हैं !

सागर : (**डरकर**) माता जी, उनसे लेकिन कुछ कहिएगा नहीं···हाथ जोड़ता हूँ; कुछ न कहिएगा···चलिए···!

[जमुना सागर को सहारा दिए हुए मौन-उदास खड़ी रहती है।]

सागर : चलिए माता जी !···स्टेशन चलिए···(**घूमकर जमुना को देखता हुआ**) क्या सोच रही हो माँ ?

[जमुना वहीं कुर्सी पर बैठ जाती है और सागर को अपने अंक के सहारे लिए रहती है।]

सागर : गाड़ी पर सीता दीदी अकेली आएगी ?

जमुना : नहीं, उसके मामा साथ रहेंगे !

सागर : मामा !···(**प्रसन्नता से**) मामा !···तब तो बहुत अच्छा रहेगा···अब तक मैंने मामा को नहीं देखा है ! मेरी माता जी को जब पिताजी बहुत मारते थे तब मेरी माँ रोती थी। मैं कहता था कि माँ, चलो मामा के यहाँ भाग चलें···तब माँ और रोने लगती थीं और कहती थी बेटा ! अगर आज तुम्हारे मामा जी ही होते तो क्या···वे···! सच; अभी तक मैंने मामा को नहीं देखा है···केवल चन्दा मामा को जानता हूँ···'चन्दा मामा धाय आव, धुपाय आव, सोने की कटोरिया में दूध-भात लाओ और मेरे सागर को खिलाय जाव···!' मेरी माता जी मुझे खाना खिलाते समय कहा करती थीं।

जमुना : कितने प्यारे हो बेटा तुम !

सागर : पिताजी मुझसे ऐसा क्यों नहीं कहते ?

जमुना : तुम तो उनके सामने बोलते ही नहीं, डर कर न जाने क्यों छिपे रहते हो !··· अब तो वह किसी को मारते-पीटते भी नहीं। अब तो वे बहुत सीधे हो गए हैं। भगवान की पूजा करने लगे हैं !

सागर : (**बात काटता हुआ**) मैं मामा जी से खूब बातें करूँगा; देखना खूब खेलूँगा, वे भी तो यहाँ सात दिन तक रहेंगे न ? (**जमुना उदास और चुप है**) बोलो···सात दिन तक रहेंगे न ?···बोलो !···

जमुना : नहीं बेटा···वे स्टेशन से ही फिर वापस चले जाएँगे।

सागर : वापस चले जाएँगे ? ··· (**आश्चर्य से**) क्यों ?
जमुना : (**पीड़ा से**) यूँ ही···!
सागर : नाराज हैं क्या ?
जमुना : नहीं बेटा, वे हमारे यहाँ का दाना-पानी नहीं खा-पी सकते !
सागर : यह क्यों ? ···तुम तो उनकी बहन हो न माँ !

[जमुना उदासी से उठकर दरवाज़े के सहारे खड़ी हो जाती है और शून्य में देखने लगती है ।]

सागर : चुप क्यों हो माँ ?
जमुना : वे ब्राह्मण हैं—और हम लोग ठाकुर हैं न···बेटा ! ···बस यही बात !

[सहसा बायीं गली में साइकिल की घंटी बजती है; जमुना तेज़ी से कमरे में भाग जाती है और सागर भी दरवाज़े पर पर्दे की आड़ में होता है । क्षण-भर के बाद सूबेदार सिंह दीवान का प्रवेश होता है—पुलिस दीवान की खाकी कमीज़—टोपी और सफेद पैजामा । पैर में न्यू-कट जूते और हाथ में फ़ाइल ।]

सूबेदार : (**प्रवेश करते ही**) बेटा सागर !

[सागर प्रवेश कर सामने खड़ा हो जाता है ।]

सूबेदार : (**फाइल देते हुए**) लो इसे भीतर रख आओ···।

[सागर बायें कमरे की ओर बढ़ता है; और कमरा बंद देखकर रुक जाता है । सूबेदार कमरे को खोलता है, सागर कमरे में जाता है और सूबेदार स्वयं बाहर की चारपाई पर थका-सा बैठ जाता है । क्षण-भर के बाद जमुना सामने कमरे के दरवाज़े पर आकर खड़ी हो जाती है ।]

जमुना : (**क्षण भर के बाद**) पानी पीने के लिए लाऊँ ?
सूबेदार : हाँ लाओ···।

[भीतर से जमुना कटोरे में हलुआ और गिलास का पानी लाती है और लोहे की कुर्सी खींचकर उस पर रख देती है । सूबेदार कुल्ला करता है और मौज से हलुआ खाने लगता है ।]

जमुना : (**दबी हुई आवाज़ में**) कितने बजे होंगे ?
सूबेदार : छः बज रहे हैं···क्यों···क्या बात है ?
जमुना : सीता आज ही आने वाली है न !
सूबेदार : (**प्रसन्नता से**) ओह ओ ! ···यह तो मैं भूल ही गया था···बड़ी खुशी की बात है···गाड़ी तो यहाँ ठीक साढ़े छः पर आ जाएगी···आधा घंटा है अभी ।

[सागर चुपचाप सामने खड़ा हो जाता है ।]

जमुना : मैं सागर को लेकर स्टेशन चली जाऊँगी···और···।

सूबेदार : क्या करेगा सागर जाकर···फिर उधर
पर आओगे···
सागर : (**डरता हुआ**) मैं उधर से पैदल चला आ
सूबेदार : नहीं, कोई जरूरत नहीं है ।

[सागर उदास हो जाता है ।]

जमुना : नहीं, जाने दीजिए···हम तीनों एक रिक्शे
गोद में ले लूँगी !
सूबेदार : सीता कितनी बड़ी है ? क्या उम्र होगी
जमुना : इसी फागुन में उसका सत्तरहवाँ साल ल
सूबेदार : (पानी पीकर, **प्रसन्नतापूर्ण जिज्ञासा**
लड़की···।
जमुना : (**दरवाज़े के सहारे खड़ी होकर**) उसकी
शुक्ल पक्ष में हो जाएगी !
सूबेदार : कौन कराएगा ?
जमुना : उसके मामा···और कौन ?
सूबेदार : (**आधा लेटकर**) लेकिन उसकी शादी हम
क्या चिन्ता···!
जमुना : हम कैसे करा सकते हैं, एक बहुत अच्छे सु
हो गई है !
सूबेदार : ब्राह्मण के घर ! ···क्या फ़ायदा होगा इस
हूँ, किसी दुर्भिक्ष के घर उसे बेच देंगे !
जमुना : नहीं, ऐसी बात नहीं, कभी नहीं···!
सूबेदार : मैं तो कहता हूँ कि जब वह तुम्हारी बे
हुई । अब तुम उसे यहीं रक्खो···मैं बहुत
के लड़के के साथ उसकी शादी कर दूँ
बस, क्यों किसी का एहसान लोगी !
जमुना : नहीं दीवान साहब, ऐसा नहीं;
अपने ही गोत्र में उसकी शादी हो
सूबेदार : क्या नरक-स्वर्ग की बातें तुम
इसकी हँसी-खुशी (**रुककर**)
ने देखा भी है कि इस जीव
जमुना ! ···सब कुछ यहीं
(**रुककर सागर को दे**

[सागर धीरे से बायें

सूबेदार : क्या करेगा सागर जाकर···फिर उधर से तुम तीन आदमी कैसे एक रिक्शे पर आओगे···

सागर : (**डरता हुआ**) मैं उधर से पैदल चला आऊँगा···।

सूबेदार : नहीं, कोई जरूरत नहीं है।

[सागर उदास हो जाता है।]

जमुना : नहीं, जाने दीजिए···हम तीनों एक रिक्शे पर आ जाएँगे···सागर को मैं अपनी गोद में ले लूँगी !

सूबेदार : सीता कितनी बड़ी है ? क्या उम्र होगी उसकी !

जमुना : इसी फागुन में उसका सत्तरहवाँ साल लगेगा···।

सूबेदार : (**पानी पीकर, प्रसन्नतापूर्ण जिज्ञासा से**) सत्तरहवाँ साल !···ओह ! पूरी लड़की···।

जमुना : (**दरवाज़े के सहारे खड़ी होकर**) उसकी शादी तै हो गई है; इसी बैसाख के शुक्ल पक्ष में हो जाएगी !

सूबेदार : कौन कराएगा ?

जमुना : उसके मामा···और कौन ?

सूबेदार : (**आधा लेटकर**)लेकिन उसकी शादी हम लोग भी तो करवा सकते हैं···इसकी क्या चिन्ता···!

जमुना : हम कैसे करा सकते हैं, एक बहुत अच्छे सुपात्र ब्राह्मण के घर उसकी शादी तै हो गई है !

सूबेदार : ब्राह्मण के घर !···क्या फ़ायदा होगा इसमें···मैं उसके मामा को खूब जानता हूँ, किसी दुर्भिक्ष के घर उसे बेच देंगे !

जमुना : नहीं, ऐसी बात नहीं, कभी नहीं···!

सूबेदार : मैं तो कहता हूँ कि जब वह तुम्हारी बेटी है, तब वह एक तरह से मेरी भी बेटी हुई। अब तुम उसे यहीं रक्खो···मैं बहुत जल्द किसी अच्छे घर में पढ़े-लिखे ठाकुर के लड़के के साथ उसकी शादी कर दूँगा···और हम-तुम उसका पाँव पूज देंगे···बस, क्यों किसी का एहसान लोगी !

जमुना : नहीं दीवान साहब, ऐसा नहीं; मैं उसका जीवन बहुत पवित्र देखना चाहती हूँ। अपने ही गोत्र में उसकी शादी होगी, नहीं तो मुझे सीधे नरक में जाना होगा।

सूबेदार : क्या नरक-स्वर्ग की बातें तुम भी सोचती हो जमुना···अरे ! ज़िन्दगी देखो···इसकी हँसी-खुशी (**रुककर**) चार दिन की चाँदनी फिर अँधेरी रात ! किसी भड़ुए ने देखा भी है कि इस जीवन के बाद क्या होता-जाता है। मैं तो कहता हूँ जमुना !···सब कुछ यहीं है···जब तक जियो तब तक पियो और मस्त रहो। (**रुककर सागर को देखकर**)···तू यहाँ क्या खड़ा है···जा भाग, खेल···!

[सागर धीरे से बायें कमरे में चला जाता है।]

हाँ मैं कह रहा था न, कि तुम अपने को देखो…तुम्हारी पूरी उमर पड़ी थी, इतनी अच्छी उमर…देह-दशा…सोचो, अगर तुम उसी तरह विधवा बन के बैठी रहती तो तुम्हारा कौन पार लगाता। (देखकर) अब अपने मुख को देखो और नरक की बात पर लात मारो !

[जमुना उदास खड़ी है, चुपचाप निश्चेष्ट।]

जमुना : (दीनता से) नहीं, मैं आपसे हाथ जोड़ती हूँ। मेरी बेटी को…!

सूबेदार : (बीच ही में) कोई बात नहीं, इसमें हाथ जोड़ने की कोई बात ! मैंने बस कहा; वैसे तुम्हारी मर्जी !…भई, बेटी तो वह तुम्हारी ही है !

जमुना : नहीं…धर्म के रूप में आपकी भी तो है !

सूबेदार : खैर…(रुककर) अच्छा, चलो स्टेशन चलें…वक्त हो गया, मैं तुम्हारे साथ चला चलूँगा…दो रिक्शे कर लेंगे !

[सागर कमरे से बाहर निकलता है।]

सागर : मैं भी चलूँगा माता जी !

जमुना : जी हाँ, मैं सागर को लेकर स्टेशन चली जाऊँगी…आपका जाना भी जरा ठीक नहीं है ! अभी हम लोग बहुत जल्द आ जाएँगे।

सूबेदार : खैर, जैसा भी हो…लेकिन सागर तो स्टेशन नहीं जाने पाएगा; बाजार में कुछ सौदा-पानी करना है और…और…बस, जाओ तुम।

[जमुना उदास नजरों से रुआँसे सागर को अपलक देखती है, फिर आगे बढ़कर उसे प्यार से थपथपाने लगती है।]

जमुना : अच्छा बेटा, तुम यहीं रहो…मैं अभी लौट आऊँगी।

[सागर रुआँसा चुप देखता ही रह जाता है; जमुना कमरे में जाकर चादर से अपने को ढक लेती है और बाहर चली जाती है।]

सूबेदार : सागर, मेरी फाइल तो लेते आओ।

सागर : (लाकर फाइल देता हुआ) लीजिए।

सूबेदार : (फाइल लेकर) जाओ बैठकर पढ़ो !

सागर : बाजार नहीं जाइएगा पिताजी ?

सूबेदार : नहीं, कोई जरूरत नहीं है…क्यों…?

सागर : आप ही ने तो माता जी से कहा था कि…(रुक जाता है) सीता दीदी की रसोई अलग बनेगी न !

सूबेदार : (आश्चर्य से) रसोई अलग बनेगी ?…अच्छा…(सोचने लगता है)…अच्छा…!

[सागर कमरे में चला जाता है। सूबेदार फाइल को उलटता हुआ सोचता रहता

है। कुछ क्षणों बाद गोरेलाल, मुहल्ले के एक कप
होता है।]

गोरेलाल : (आते ही आते) जैराम जी की दीवान साह

सूबेदार : (नम्रता से) आइए…आइए सेठ जी ! (कु
कुर्सी पर आइए (पुकार कर) सागर, लालटेन ज

[दोनों कुर्सी और चारपाई पर आमने-सामने बैठ
बाद जलती हुई लालटेन को स्टूल पर रख लौट ज

सूबेदार : कहिए सेठ जी !…आपने कैसे कष्ट किया ?

गोरेलाल : क्या बताया जाय दीवान साहब ! इस मुहल्ले
क्या है…क्या था अंग्रेजी राज्य !

सूबेदार : आखिर बात क्या है सेठ जी ! कुछ बतलाइए

गोरे : साहब ! व्यापार में जो घाटा-मुनाफा है; जितन
दूर रही ! उसे किसके सामने रोऊँ !… मैं यहाँ
अगर आपकी आज्ञा हो तो मैं इस मुहल्ले को छोड़

सूबेदार : आखिर बात तो कुछ बताइए…!

गोरेलाल : क्या बताऊँ !…पिछली रात को फिर मेरे
सुजाता बेटी का सर फूटते-फूटते रह गया। बोलिए

सूबेदार : (सोचते हुए, चिन्ता-प्रदर्शन से) बस, इसी मु
जो हलिमवा, रामभरोसवा और हितुआ वगैरह हैं
था; उन्हीं की ही इस बार भी शरारत होगी !

गोरेलाल : दीवान साहब !…वे जो थे, वे तो हैं ही…
पैदा हुआ है। अभी परसों की ही बात है कि
उतरकर गली के मोड़ की ओर बढ़ी; गुल
बाँधकर बेटी पर फेंका था। बेटी रोती हुई
दुकान पर था। मेरे पास खबर आई।
वह था ही नहीं; मैं उसके बाप से
जाने दो; लौंडे हैं संतोष कर

सूबेदार : सुजाता कितनी बड़ी हो

गोरेलाल : पूरी सयानी हो गई

सूबेदार : ओह ! सब…
सुसरी कितनी जल्दी
साले की, आप
मेरी आबरू !
कोई यूँ

गोरेलाल :

है। कुछ क्षणों बाद गोरेलाल, मुहल्ले के एक कपड़े के व्यापारी का बाहर से प्रवेश होता है।]

गोरेलाल : (**आते ही आते**) जैराम जी की दीवान साहब !

सूबेदार : (**नम्रता से**) आइए···आइए सेठ जी ! (**कुर्सी देकर**) आइए इधर बैठिए, कुर्सी पर आइए (**पुकार कर**) सागर, लालटेन जलाकर यहाँ स्टूल पर रख दो।

[दोनों कुर्सी और चारपाई पर आमने-सामने बैठ जाते हैं; सागर कुछ क्षणों के बाद जलती हुई लालटेन को स्टूल पर रख लौट जाता है।]

सूबेदार : कहिए सेठ जी !···आपने कैसे कष्ट किया ?

गोरेलाल : क्या बताया जाय दीवान साहब ! इस मुहल्ले में रहना मुश्किल हो गया है··· क्या है···क्या था अंग्रेजी राज्य !

सूबेदार : आखिर बात क्या है सेठ जी ! कुछ बतलाइए भी तो सही !

गोरे : साहब ! व्यापार में जो घाटा-मुनाफा है; जितनी विपत्तियाँ हैं उनकी बात तो दूर रही ! उसे किसके सामने रोऊँ !··· मैं यहाँ सिर्फ यही कहने आया हूँ कि अगर आपकी आज्ञा हो तो मैं इस मुहल्ले को छोड़ दूँ !

सूबेदार : आखिर बात तो कुछ बताइए···!

गोरेलाल : क्या बताऊँ !···पिछली रात को फिर मेरे आँगन में पत्थर फेंके गए हैं और सुजाता बेटी का सर फूटते-फूटते रह गया। बोलिए···!

सूबेदार : (**सोचते हुए, चिन्ता-प्रदर्शन से**) बस, इसी मुहल्ले के सब बदमाश लौंडे हैं। वे जो हलिमवा, रामभरोसवा और हितुआ वगैरह हैं न, जिन्हें उस बार मैंने पिटवाया था; उन्हीं की ही इस बार भी शरारत होगी !

गोरेलाल : दीवान साहब !···वे जो थे, वे तो हैं ही···इधर एक नया बदमाश गुलमुहम्मद पैदा हुआ है। अभी परसों की ही बात है कि सुजाता जैसे स्कूल की बैलगाड़ी से उतरकर गली के मोड़ की ओर बढ़ी; गुलमुहम्मद ने रूमाल में गेंदे के फूल को बाँधकर बेटी पर फेंका था। बेटी रोती हुई घर आई—माँ के पास। मैं तो पुलवाली दुकान पर था। मेरे पास खबर आई। मैं सीधे गुलमुहम्मद के घर गया। घर पर वह था ही नहीं; मैं उसके बाप से लड़ा, वह रोने लगा; फिर मैं चुप हो गया कि जाने दो; लौंडे हैं संतोष कर लो। लेकिन दूसरी ही रात को फिर यह नौबत···!

सूबेदार : सुजाता कितनी बड़ी हो गई अब ?

गोरेलाल : पूरी सयानी हो गई है साहब !···अट्ठारहवाँ है उसका !

सूबेदार : ओह ! सच···अरे !···मुझे पता ही नहीं···देखिए ये लड़कियाँ भी क्या हैं··· सुसरी कितनी जल्दी सयानी हो जाती हैं ! (**रुककर**) अच्छा, मैं खबर लूंगा उस साले की, आप घबड़ाइए नहीं सेठ साहब ! आपका घर मेरा घर, आपकी आबरू मेरी आबरू ! क्या समझा है सालों ने। मैं कल ठीक करता हूँ···देखिएगा। फिर कोई चूँ नहीं कर सकता !

गोरेलाल : जी, बस दीवान साहब, यही मेरी प्रार्थना है और साहब ! बस समझिये कि

आपकी वजह से मैं इस मुहल्ले में रुका हूँ; नहीं तो मैं कभी का थपई टोला चला गया होता···!

सूबेदार : नहीं, कोई बात नहीं। यह आपका घर है।

[सहसा पृष्ठभूमि में रेलगाड़ी के आने की आवाज़ उठती है; सागर कमरे से दौड़कर बरामदे से पुल की ओर शून्य में देखने लगता है।]

गोरेलाल : आपकी कृपा है···बस !

सूबेदार : सुजाता को अब मेरे घर-वर भी भेजिए। मेरी ठकुराइन उसे बहुत याद करती है—अच्छा रहेगा। (**एकाएक**) हाँ एक बात और, मैं तो भूल ही गया था। जमुना—मेरी ठकुराइन की लड़की अभी इसी गाड़ी से यहाँ आ रही है। यहाँ कुछ दिन रहेंगे—एक हफ्ते, दो हफ्ते। अब तो सुजाता को ज़रूर भेजिए ··अच्छा रहेगा, शाम-सुबह कभी···यह तो घर है। अच्छा रहेगा। ये लोग भी आपके घर जाएँगी। अच्छा रहेगा आपस की उठक-बैठक।

गोरेलाल : हाँ, हाँ, क्यों नहीं दीवान साहब ! क्यों नहीं···अवश्य-अवश्य। ये तो घर है। (**रुककर**) तो मुझे आज्ञा दीजिए।

[दोनों उठ पड़ते हैं।]

सूबेदार : आप निश्चिन्त रहिए सेठ जी ! मैं कल ही खबर लेता हूँ···और हाँ सुजाता बेटी को जरूर भेजिएगा···मेरी बेटी का भी मन बहलेगा और उसका भी · और आपस का मेलजोल भी तो···।

गोरेलाल : हाँ, हाँ, क्यों नहीं···क्यों नहीं·· ज़रूर···ज़रूर !

[अभिवादन के साथ गोरेलाल का प्रस्थान। सूबेदार बरामदे में घूमने लगता है और सागर अनन्त प्रतीक्षा की मुद्रा में एक ही स्थान पर खड़ा है।]

सूबेदार : सागर···तुझे खूब मालूम है कि जमुना ने सीता के भोजन का प्रबन्ध अलग किया है ?

सागर : जी हाँ, माता जी तो कहती थीं कि मैं अपनी बेटी को बेधरम नहीं होने दूँगी।

सूबेदार : अच्छा, तो हम लोग बेधरम हैं !···और खुद क्या हैं ! पूछा नहीं; बड़ी सत्यवन्ती बनती हैं···हुँ···।

सागर : मेरी तो माता जी हैं और वह मेरी सीता दीदी है। वह अलग खाना बनाएगी और मैं भी उसके साथ खाऊँगा। वह ब्राह्मण है न पिताजी !

सूबेदार : हाँ,···है तो, लेकिन कितनी बड़ी है वह; जो इतना टंट-घंट किया जाएगा !

[सहसा पृष्ठभूमि में रिक्शे की घंटी बजती है और बायीं गली से जमुना सीता को लिए हुए बरामदे की ओर बढ़ती हैं। सीता की भोली तरुणाई, स्वस्थ भरे हुए शरीर के अंग-प्रत्यंग पर कौमार्य की पवित्रता और रूप का सहज आकर्षण—

दोनों पक्ष अपनी सुन्दर सीमाओं पर हैं। इसके वे
गाँव का अल्हड़पन, स्वयं के प्रति पूर्ण अज्ञानता
अरुणाई—इन सब रेखाओं का जैसे मोहक-जाल
उसे लेकर बरामदे में पहुँचने को होती है, साग
कर लेता है। सीता अपूर्व स्नेह से उससे चिपक ज
सूबेदार पर पड़ती है।]

जमुना : (प्रसन्नता से) यही तुम्हारे पिताजी हैं सीता

[सीता श्रद्धा से हाथ जोड़ती है।]

सूबेदार : (**आशीर्वाद देकर, प्रसन्नता से**) आओ !···
तुम्हें देखने को जी चाह रहा था। और मुझे तो प
बड़ी हो—इतनी सयानी !

सागर : (**मचलता हुआ**) चलो···कमरे में चलो दीदी

सूबेदार : (**बात काटता हुआ**) बिल्कुल तुम्हें पड़ी है जमु
बड़ी आँखें; वही चम्पई रंग···वही···।

जमुना : (**बीच ही में**) बेटी अपने बाप को पड़ी है। उ
बिल्कुल उनके रूप की छाया इसे मिली है।

[सीता शर्माकर जमुना से चिपट जाती है; सागर उ
बाएँ कमरे में ले जाने के लिए बेकरार है।]

जमुना : (**ले जाती हुई**) चलो बेटी !···अन्दर···हाथ-

सूबेदार : हाँ ले जाओ···भीतर और एक लालटेन जला
कायदे से हाथ-मुँह धुलवा देना···जाओ···।

[तीनों सामने के कमरे से भीतर जाते हैं। सागर सी
अपने कंधे पर सँभाले हुए हैं।]

सूबेदार : (**सबको भीतर जाते हुए देखकर**) कितना

[कुछ क्षणों तक बरामदे में अकेला टहलता
सामने आकर खड़ा हो जाता है।]

सूबेदार : (**पुकारता हुआ**) जमुना !···

जमुना : (**भीतर से आती हुई**)

सूबेदार : सीता अपना खाना

जमुना : हाँ क्या किया जाय ?···

सूबेदार : हाँ, हाँ, वह
माँदी आयी होगी

जमुना : नहीं,

ूँ; नहीं तो मैं कभी का थपई टोला चला

र है।

ी आवाज उठती है; सागर कमरे से दौड़-

े लगता है।]

िए। मेरी ठकुराइन उसे बहुत याद करती

बात और, मैं तो भूल ही गया था।

ी इसी गाड़ी से यहाँ आ रही है। यहाँ

ब तो सुजाता को जरूर भेजिए ''अच्छा

। अच्छा रहेगा। ये लोग भी आपके घर

ठक।

क्यों नहीं'''अवश्य-अवश्य। ये तो घर

ी खबर लेता हूँ'''और हाँ सुजाता

न बहलेगा और उसका भी ''और

ाकर !

ेदार बरामदे में घूमने लगता है

पर खड़ा है।]

े भोजन का प्रबन्ध अलग

टी को बेधरम नहीं होने

ा है ! पूछा नहीं; बड़ी

अलग खाना बनाएगी

ंद किया जाएगा !

ी से जमुना सीता

ई, स्वस्थ भरे हुए

आकर्षण—

दोनों पक्ष अपनी सुन्दर सीमाओं पर हैं। इसके वेश-भूषा और बाह्य व्यक्तित्व पर गाँव का अल्हड़पन, स्वयं के प्रति पूर्ण अज्ञानता तथा लज्जा और जिज्ञासा की अरुणाई—इन सब रेखाओं का जैसे मोहक-जाल घिरा हुआ है। जमुना जैसे ही उसे लेकर बरामदे में पहुँचने को होती है, सागर बढ़कर सीता का चरण-स्पर्श कर लेता है। सीता अपूर्व स्नेह से उससे चिपक जाती है और उसकी जिज्ञासु दृष्टि सूबेदार पर पड़ती है।]

जमुना : (**प्रसन्नता से**) यही तुम्हारे पिताजी हैं सीता !

[सीता श्रद्धा से हाथ जोड़ती है।]

सूबेदार : (**आशीर्वाद देकर, प्रसन्नता से**) आओ !'''बड़ी खुशी की बात हुई। कब से तुम्हें देखने को जी चाह रहा था। और मुझे तो पता ही नहीं था कि तुम इतनी बड़ी हो—इतनी सयानी !

सागर : (**मचलता हुआ**) चलो'''कमरे में चलो दीदी ! यहाँ क्यों खड़ी हो ?

सूबेदार : (**बात काटता हुआ**) बिल्कुल तुम्हें पड़ी है जमुना !'''वही नाक'''वही बड़ी-बड़ी आँखें; वही चम्पई रंग'''वही'''।

जमुना : (**बीच ही में**) बेटी अपने बाप को पड़ी है। उनकी भी आँखें इसी तरह थीं। बिल्कुल उनके रूप की छाया इसे मिली है।

[सीता शर्माकर जमुना से चिपट जाती है; सागर उन्हें प्यार से संकेत करता हुआ बाएँ कमरे में ले जाने के लिए बेकरार है।]

जमुना : (**ले जाती हुई**) चलो बेटी !'''अन्दर'''हाथ-मुँह धोओ'''!

सूबेदार : हाँ ले जाओ'''भीतर और एक लालटेन जला लेना और पीछे आँगन में खूब कायदे से हाथ-मुँह धुलवा देना'''जाओ'''।

[तीनों सामने के कमरे से भीतर जाते हैं। सागर सीता के सामान की बड़ी गठरी अपने कंधे पर सँभाले हुए है।]

सूबेदार : (**सबको भीतर जाते हुए देखकर**) कितना अच्छा हुआ !

[कुछ क्षणों तक बरामदे में अकेला टहलता रहता है, फिर जलती हुई लालटेन के सामने आकर खड़ा हो जाता है।]

सूबेदार : (**पुकारता हुआ**) जमुना !'''ओ जमुना'''सागर की माँ !

जमुना : (**भीतर से आती हुई**) कहिए क्या है ?

सूबेदार : सीता अपना खाना अलग बनाएगी ?

जमुना : हाँ क्या किया जाय ?'''उसे तो'''

सूबेदार : हाँ, हाँ, वह तो ठीक है'''लेकिन बेचारी को तकलीफ होगी, रास्ते से थकी-माँदी आयी होगी और'''।

जमुना : नहीं, नहीं, ऐसी क्या बात ! मेरी बेटी तो थकना जानती ही नहीं। अपने मामा

के यहाँ चौका-बर्तन, कूटना-पीसना, बाहर-भीतर सब इसके हाथों है। चौबीस घंटे काम करने वाली है मेरी बेटी! **(सोचती हुई)** वे कहा करते थे कि मैं अपनी बेटी की शादी किसी ब्राह्मण-तालुकेदार के घर करूँगा, चाहे मैं बिक जाऊँ तो क्या ?

सूबेदार : तुम तो क्या से क्या बातें करने लगती हो जमुना ! छोड़ो भी उन बीती बातों को ! ···क्या फायदा उन्हें याद करके ! ···मैं कह रहा हूँ कि सीता को खाना बनाने में तकलीफ होगी। चाहे जो हो; वह फिर भी हमारी मेहमान है···।

जमुना : तो क्या हुआ ?

सूबेदार : ऐसा किया जाय कि आज पूड़ी बन जाय—पक्का खाना। हम सब लोग एक जगह खाना खाएँगे; बस ठीक है न !

जमुना : हाँ, ठीक ही है !

सूबेदार : बस, मैं बगल की दुकान से घी ले लेता हूँ और सब सामान तो है ही···!

जमुना : क्या आप बाजार नहीं गए थे !

सूबेदार : कहाँ जा सका; कुछ लोग यहाँ आ गए ! ···मैं अभी घी लेकर बहुत जल्द से आ रहा हूँ ! **(प्रस्थान)**

जमुना : **(पुकारकर)** बेटा सागर !

सागर : **(दौड़कर आता हुआ)** आया माता जी ! ···क्या है ?

जमुना : **(प्रसन्नता से)** कैसी है तुम्हारी दीदी···मिल लिया न !

सागर : बहुत अच्छी है, बहुत अच्छी, **(निकालता हुआ)** यह देखो माताजी, दीदी ने मुझे यह माल दिया है···इतनी···मिठाई···और भुजे···

सीता : **(कमरे से बाहर आती हुई)** माताजी ! ···मेरा सागर भइया बहुत अच्छा है।

[सागर को स्नेह से चिपका लेती है]

सागर : **(जिज्ञासा से)** मामाजी स्टेशन से लौट गए ?

सीता : नहीं भइया ! अभी स्टेशन पर हैं, आधी रात को जब इधर वाली गाड़ी आएगी ···तब उसी से वापस जाएँगे !

सागर : तब तक मामाजी यहीं आ जाते तो क्या होता···उन्हें क्यों नहीं ले आईं माताजी···! मैं मामा को भी देख लेता···!

जमुना : फिर देख लेना बेटा !

सागर : **(सोचता हुआ)** सीता दीदी कहाँ सोएगी माताजी !

जमुना : हम लोगों के साथ सोएगी···अब तक उस पलंग पर हम-तुम दो सोते थे, आज तीनों सोएँगे···माँ···बेटी···बेटा···और किस्से कहते-कहते सारी रात को भोर कर देंगे···।

सागर : **(प्रसन्नता से)** सच माताजी !

जमुना : हाँ, बेटा ! **(फिर सीता और सागर के साथ उसी चारपाई पर बैठ जाती है)** और गाँव के सब लोग कैसे हैं बेटी ?

सीता : सब अच्छे हैं···कलपा फुआ; रामदीन मामा तुम्हें बहुत याद करते हैं। अचल

मामा का किसी ने रबी का खलिहान ही फूंक
कहाइन थी न; जो सगरे पर भार जलाती थी··
में कूद कर मर गई।

जमुना : **(करुणा से)** आह ! राम-राम ! ···च्···

सीता : बेचारी को खाने को नहीं अटता था। उपव

जमुना : और पुरवा वाले कैसे हैं ?

सीता : मजे में ही हैं; बहुत बड़ी भागवत की कथा
थे !

[एकाएक बाहर से सूबेदार सिंह का घी लिए हुए
उठ जाते हैं। सागर और सीता सामने के कमरे
बर्तन लेती है और वह जैसे भीतर जाने लगती
रोक लेता है।

सूबेदार : आज बहुत खुश हो तुम ! ··· **(रुककर)** मैं
देता हुआ) ये लो थोड़ी-सी भाँग भी लेता आया
सब लोग पिएँगे।

जमुना : **(लेकर)** सब लोग ! लेकिन मेरी बेटी तो··

सूबेदार : **(बीच ही में)** वह न सही ! ···हम लोग
रसोई भी बने···और अभी छन[1] भी जाय···!

[जमुना अन्दर जाती है, सूबेदार चारपाई पर बैठ
में जाता है; लालटेन जलाता है, बिस्तर
आवाज होती है, क्षण भर के बाद वह कुछ सो
खड़ा हो जाता है और बार-बार दायें हाथ
लगता है।

सूबेदार : **(पुकारकर)** अरे ! ···सागर की माँ···

जमुना : **(बाहर आकर)** क्या है ?

सूबेदार : पास आ जाओ ! ··· **(पकड़कर)**
है ?

जमुना : मैं अपनी ही चारपाई पर उसे
थी बेटी को अपने से लगाकर सुला

सूबेदार : ऐसा क्यों करोगी ?···
तुम्हारी उस कमरे की चार

जमुना : **(बीच ही में)** नहीं,

1. भांग पीने का

...सना, बाहर-भीतर सब इसके हाथों है। चौबीस घंटे
...(सोचती हुई) वे कहा करते थे कि मैं अपनी बेटी की
...के घर करूँगा, चाहे मैं बिक जाऊँ तो क्या ?
...करने लगती हो जमुना ! छोड़ो भी उन बीती बातों
...करके !···मैं कह रहा हूँ कि सीता को खाना
...हो; वह फिर भी हमारी मेहमान है···।

...न जाय—पक्का खाना। हम सब लोग एक
...न !

...से लेता हूँ और सब सामान तो है ही···!

...आ गए !···मैं अभी घी लेकर बहुत जल्द से

...जी ! ···क्या है ?
...···मिल लिया न !
...हुआ) यह देखो माताजी, दीदी ने मुझे
...के···
...···मेरा सागर भइया बहुत अच्छा है।

...अब इधर वाली गाड़ी आएगी

...···उन्हें क्यों नहीं ले आई

...तुम दो सोते थे, आज
...सारी रात को भोर

...बैठ जाती है)

...है। चंचल

मामा का किसी ने रबी का खलिहान ही फूँक दिया था···और वह जो बिपती कहाइन थी न; जो सगरे पर भार जलाती थी···वह इसी माघ में उत्तर वाले कुएँ में कूद कर मर गई।

जमुना : (करुणा से) आह ! राम-राम !···च्···च्··· च्···क्यों क्या बात थी ?

सीता : बेचारी को खाने को नहीं अटता था। उपवास करते-करते···।

जमुना : और पुरवा वाले कैसे हैं ?

सीता : मजे में ही हैं; बहुत बड़ी भागवत की कथा हुई है। हजारों ब्राह्मण न्योते गए थे !

[एकाएक बाहर से सूबेदार सिंह का घी लिए हुए प्रवेश। सब लोग खाट से एकाएक उठ जाते हैं। सागर और सीता सामने के कमरे में चले जाते हैं; जमुना घी का बर्तन लेती है और वह जैसे भीतर जाने लगती है, सूबेदार उसे प्यार से खींचकर रोक लेता है।

सूबेदार : आज बहुत खुश हो तुम !···(रुककर) मैं भी बहुत खुश हूँ ! (निकालकर देता हुआ) ये लो थोड़ी-सी भाँग भी लेता आया हूँ। इसे खूब क़ायदे से बनाओ। सब लोग पिएँगे।

जमुना : (लेकर) सब लोग ! लेकिन मेरी बेटी तो···!

सूबेदार : (बीच ही में) वह न सही !···हम लोग तो पिएँगे···जाओ जल्दी···से रसोई भी बने···और अभी छन[1] भी जाय···!

[जमुना अन्दर जाती है, सूबेदार चारपाई पर बैठता है, फिर उठता है, दायें कमरे में जाता है; लालटेन जलाता है, बिस्तर बिछाने; उठाने-धरने की एकाएक आवाज़ होती है, क्षण भर के बाद वह कुछ सोचता हुआ बाहर लालटेन के सामने खड़ा हो जाता है और बार-बार दायें हाथ से सर के बालों को बिखेरने-सँवारने लगता है।

सूबेदार : (पुकारकर) अरे !···सागर की माँ···सुनो !

जमुना : (बाहर आकर) क्या है ?

सूबेदार : पास आ जाओ !···(पकड़कर) सुनो···सीता के सोने का क्या प्रबन्ध किया है ?

जमुना : मैं अपनी ही चारपाई पर उसे सुलाऊँगी। सच, मेरी तो सूनी गोद तरस गई थी बेटी को अपने से लगाकर सुलाने के लिए···मैं बेटी को लेकर साथ सोऊँगी।

सूबेदार : ऐसा क्यों करोगी ?···सीता को अब तकलीफ़ होगी, सयानी लड़की है। तुम्हारी उस कमरे की चारपाई भी चौड़ी नहीं है, (रुककर) सुनो ऐसा करेंगे !

जमुना : (बीच ही में) नहीं, कुछ नहीं···सब ठीक है। वह मेरे साथ सोएगी; इसकी

1. भाँग पीने को छानना कहते हैं।

भी क्या चिन्ता !

सूबेदार : सुनो तो, तुम्हें क्या मालूम, मेहमान है वह ।

जमुना : लेकिन वह मेरे साथ सोएगी !

सूबेदार : अच्छा भाई, वह तुम्हारे ही साथ सोएगी···लेकिन एक काम करो, तुम उसे लेकर मेरी चारपाई पर सोना···इस कमरे की खाट काफी चौड़ी और अच्छी है···!

जमुना : और आप ?

सूबेदार : मैं···एक और चारपाई उसी कमरे में डाल लेता हूँ और उसी पर सो जाऊँगा···!

जमुना : (**चिन्ता से**) और सागर !

सूबेदार : वह उस कमरे में तुम्हारी खाट पर सो जाएगा !

सागर : (**भीतर से सहसा निकल कर**) नहीं, नहीं, मैं अपनी दीदी के साथ सोऊँगा, मैं···अकेले इस कमरे में नहीं···!

सूबेदार : (**क्रोध में**) बको मत; जो कहूँ वही करो, नहीं तो सर तोड़ दूँगा···नालायक कहीं के !

सागर : क्यों सर तोड़ देंगे ?

[सूबेदार बढ़कर सागर को क्रोध और बल से एक झापड़ मारता है । सागर वहीं गिर पड़ता है; जमुना बढ़कर उसे उठाने लगती है, सीता दरवाजे से टिककर खड़ी हो जाती है ।]

सूबेदार : जमुना !···छोड़ो इस नालायक को···जाओ जल्दी से खाना तैयार करो और उसको जल्दी से छान दो···मैं बगल में दूधनाथ के यहाँ से एक चारपाई का प्रबन्ध करता हूँ । (**प्रस्थान**)

सीता : (**प्यार से सागर को अपने अंक से लगाकर**) कैसे हैं ये पिताजी !···मुझे बिल्कुल नहीं पसन्द आए ।

[सागर डरा हुआ, चुपचाप आँसुओं को पी रहा है ।]

जमुना : बड़े क्रोधी हैं···और जो बात एक भी बार इनके दिमाग में आ जाती है; उसे करके छोड़ते हैं···अजीब हैं ।

सीता : हम सब लोग, सागर भइया, इसी कमरे में सोएँगे···सोने दो माताजी को उस कमरे में ।

सागर : नहीं, माताजी भी हम लोगों के साथ सोएँगी, नहीं तो इस क्रोध में वे रात को अकेली माताजी को मारेंगे···यह जो भाँग लाए हैं···न···मैं डर रहा हूँ !

जमुना : क्यों बेटा !···नहीं, कोई ऐसी बात नहीं !

सागर : (**उठकर लालटेन की लौ देखता हुआ**) जब मेरी माँ बीमार पड़ी थी, तब एक बार मेरी मौसी माँ को देखने आई थीं; उस बार भी पिताजी ने इसी तरह क्रोध

दिखाया था, भाँग पी थी और रात को तेरी माँ ...

जमुना : लेकिन पीटा क्यों था ?

सागर : न जाने क्यों ?

[सहसा सूबेदार बाहर से एक चारपाई लाकर ...
लगता है । सीता और सागर कमरे में भाग जाते ...
है ।]

सूबेदार : (**कमरे से निकलकर**) बस, ठीक हो गया ! ...
माँ-बेटी मेरी चौड़ी खाट पर सोना (**रुककर**) सी...
न होन पाए !···मैं अभी सुक्खूमल और बिहा...
उसके लिए कल दो अच्छी साड़ियाँ और सो...
ऐसी लड़की को इन फटे-फुराने देहाती कप...
व्यवहार की बेइज़्ज़ती करनी है ।···सीता न जा...
जैसे मेरी ही बेटी हो; मेरी ही । (**रुककर**) ज...
उसे हम लोग सिनिमा भी दिखाएँगे ।

[जमुना चुपचाप कमरे में लौटने लगती है ।]

सूबेदार : (**रोक कर**) देखो ठकुराइन !···सुनो; मैं ...
भी लेता आऊँ···अच्छा रहेगा···पक्का खाने के ...

[अपने कमरे में जाता है और लौटता हुआ बाह...
कमरे में चली जाती है । कुछ क्षणों के लिए ...
केवल सागर बाहर-भीतर और बायें-दायें कमरे में ...
के बाद जमुना जिस तरह सीता बेटी को बाहर ...
उसे अपने साथ लिए हुए तेजी में कमरे से ...
पीछे चुपके से रो रहा है । सब बाहर निक...
अकेला लौटकर बरामदे में खड़ा-खड़ा आँसू ...
की घंटियाँ बजती हैं । सागर फिर सामने ...
हुई गठरी को लेकर बरामदे में आता है ।]

सागर : (**चिंता से**) सीता दीदी का तो यह ...

[बेचैनी से बरामदे में टहलने लगता ...
लौटता है ।]

सूबेदार : (**पुकार कर**) जमुना !···...
हैं सब लोग सागर ?

[सागर घबड़ाया हुआ चुप है ...

सूबेदार : (**क्रोध से**) बोलता ...

मूम, मेहमान है वह।

एगी !

रे ही साथ सोएगी···लेकिन एक काम करो, तुम उसे सोना···इस कमरे की खाट काफी चौड़ी और अच्छी

ाई उसी कमरे में डाल लेता हूँ और उसी पर सो

!

ाट पर सो जाएगा !

र) नहीं, नहीं, मैं अपनी दीदी के साथ सोऊँगा,

!

हूँ वही करो, नहीं तो सर तोड़ दूँगा···नालायक

बल से एक झापड़ मारता है। सागर वहीं ने लगती है, सीता दरवाजे से टिककर खड़ी

···जाओ जल्दी से खाना तैयार करो और नाथ के यहाँ से एक चारपाई का प्रबन्ध

) कैसे हैं ये पिताजी !···मुझे बिलकुल

है।]

के दिमाग में आ जाती है; उसे

···सोने दो माताजी को उस

इस क्रोध में वे रात को मैं डर रहा हूँ !

र पड़ी थी, तब एक इसी तरह क्रोध

दिखाया था, भाँग पी थी और रात को तेरी माँ को बहुत पीटा था ?

जमुना : लेकिन पीटा क्यों था ?

सागर : न जाने क्यों ?

[सहसा सूबेदार बाहर से एक चारपाई लाकर बरामदे से अपने कमरे में जाने लगता है। सीता और सागर कमरे में भाग जाते हैं, जमुना देखती हुई खड़ी रहती है।]

सूबेदार : (**कमरे से निकलकर**) बस, ठीक हो गया !···मैं इस खाट पर सोऊँगा। तुम माँ-बेटी मेरी चौड़ी खाट पर सोना (**रुककर**) सीता को किसी तरह भी तकलीफ न होने पाए !···मैं अभी सुक्खूमल और बिहारी से भी मिलकर आ रहा हूँ। उसके लिए कल दो अच्छी साड़ियाँ और सोने का बुन्दा लाऊँगा। राजकुमारी ऐसी लड़की को इन फटे-पुराने देहाती कपड़ों में रखना उसके रूप-रंग, चाल-व्यवहार की बेइज्जती करनी है।···सीता न जाने क्यों मुझे बहुत प्यारी लगी— जैसे मेरी ही बेटी हो; मेरी ही। (**रुककर**) जमुना ! क्या सोच रही हो, कल उसे हम लोग सिनिमा भी दिखाएँगे।

[जमुना चुपचाप कमरे में लौटने लगती है।]

सूबेदार : (**रोक कर**) देखो ठकुराइन !···सुनो; मैं चौराहे से कुछ मिठाई, दही वगैरह भी लेता आऊँ···अच्छा रहेगा···पक्का खाने के साथ···!

[अपने कमरे में जाता है और लौटता हुआ बाहर चला जाता है, जमुना सामने के कमरे में चली जाती है। कुछ क्षणों के लिए स्टेज सूना रहता है, इस बीच में केवल सागर बाहर-भीतर और बायें-दायें कमरे में दौड़ लगाता फिरता है। क्षणभर के बाद जमुना जिस तरह सीता बेटी को बाहर से कमरे में लाई थी; उसी तरह उसे अपने साथ लिए हुए तेजी में कमरे से बाहर निकलती है, सागर पीछे-पीछे चुपके से रो रहा है। सब बाहर निकल जाते हैं; क्षणभर के बाद सागर अकेला लौटकर बरामदे में खड़ा-खड़ा आँसू पोंछता रहता है, पृष्ठभूमि में रिक्शे की घंटियाँ बजती हैं। सागर फिर सामने के कमरे में जाता है और सीता की छुटी हुई गठरी को लेकर बरामदे में आता है।]

सागर : (**चिंता से**) सीता दीदी का तो यह सामान छुट ही गया···अब क्या होगा ?

[बेचैनी से बरामदे में टहलने लगता है, क्षण भर के बाद ही सूबेदार वापस लौटता है।]

सूबेदार : (**पुकार कर**) जमुना !···ओ सागर की माँ···सीता बेटी ! (**रुककर**) कहाँ हैं सब लोग सागर ?

[सागर घबड़ाया हुआ चुप है।]

सूबेदार : (**क्रोध से**) बोलता क्यों नहीं !···कहाँ हैं सब ?

सागर : (**डरा हुआ**) चले गए…!

[हाथ से दही का कुल्हड़ और मिठाई गिर जाती है और सूबेदार क्रोध से काँपने लगता है।]

सूबेदार : तो स्टेशन गए !

[बाहर बढ़ने लगता है, सागर दौड़कर पाँव से लिपट जाता है।]

सागर : (**याचना के स्वर में**) नहीं, मत जाओ…मत जाओ…।

[सूबेदार क्रोध से सागर को घसीटता हुआ बायें कमरे में डाल देता है और बाहर से किवाड़ बन्द कर देता है, इसी बीच एकाएक बरामदे में जमुना आती है और सूबेदार की दृष्टि में पड़कर सहम जाती है।]

सूबेदार : (**गम्भीरता से**) यह छुटी हुई गठरी लेने आई हो !

[जमुना डरी हुई और चुप है।]

सूबेदार : मुझसे चाल चलती हो ! तूने मेरी नाक काट ली !…उसे यूँही स्टेशन भेज दिया ?…वह बेटी !…मेहमान…क्या सोचेगी; अच्छा, (**मुड़ता हुआ**) मैं स्टेशन जा रहा हूँ।

[जमुना बढ़कर उसे रोकती है, शक्तियों का प्रयोग होता है, बायीं ओर बन्द किवाड़ के पीछे सागर, रोता हुआ किवाड़ पर धक्के दे रहा है और क्षण ही भर के बाद सूबेदार क्रोध और शक्ति से जमुना को ढकेलता हुआ सामने के कमरे में प्रवेश करता है और बाहर से किवाड़ बन्द करने लगता है।]

जमुना : (**भीतर से बन्द, चिल्लाती हुई**) भाग जा बेटी ! चली जा ! मेरी बेटी सीता ! …सीता…सीता !

[स्टेज की रोशनी काली पड़ती जा रही है, दोनों बन्द किवाड़ों के पीछे सागर और जमुना चीख रहे हैं, स्टेज सूना है। क्षणभर के बाद वही लँगड़ा भिखारी बैसाखी के सहारे आता है, बरामदे के बाहर रुक जाता है और आगे बढ़ता हुआ जमुना के बन्द किवाड़ को खोलने लगता है; और धीरे-धीरे पर्दा गिरता है।]

मम्मी ठकुराइ

पात्र

नीता
बहादुर
अजय
मम्मी
मुंशीजी
ठकुराइन
प्रोफ़ेसर साहब
खन्ना बाबू
टिकिट बाबू
मूंगफलीवाला
चौधरी क़यामत हुसैन

…!

…और मिठाई गिर जाती है और सूबेदार क्रोध से काँपने

…र दौड़कर पाँव से लिपट जाता है ।]

…नहीं, मत जाओ…मत जाओ…।

…घसीटता हुआ बायें कमरे में डाल देता है और बाहर … इसी बीच एकाएक बरामदे में जमुना आती है और … सहम जाती है ।]

…हुई गठरी लेने आई हो !

…]

…तूने मेरी नाक काट ली !…उसे यूँही स्टेशन …मान…क्या सोचेगी; अच्छा, (मुड़ता हुआ) मैं

…का प्रयोग होता है, बायीं ओर बन्द किवाड़ … धक्के दे रहा है और क्षण ही भर के बाद … को ढकेलता हुआ सामने के कमरे में प्रवेश …ने लगता है ।]

…बेटी ! चली जा ! मेरी बेटी सीता !

…है, दोनों बन्द किवाड़ों के पीछे सागर … क्षणभर के बाद वही लँगड़ा भिखारी … जाता है और आगे बढ़ता हुआ …और धीरे-धीरे पर्दा गिरता है ।]

मम्मी ठकुराइन

पात्र

नीता
बहादुर
अजय
मम्मी
मुंशीजी
ठकुराइन
प्रोफ़ेसर साहब
खन्ना बाबू
टिकिट बाबू
मूँगफलीवाला
चौधरी क़यामत हुसैन

[मंच पर आमने-सामने, अर्थात् बायें-दायें कोनों पर क्रमशः मम्मी और ठकुराइन के घरों के दरवाज़े दीख पड़ रहे हैं। मम्मी के दरवाज़े पर परदा झूल रहा है। ठकुराइन के खुले दरवाज़े पर एक खाट बिछी है, एक खड़ी है।

दोनों [illegible] के बीच में गली है, जो दूर तक दिखाई पड़ती है। अन्त में एक म्युनिसिपल [illegible] पोस्ट, जिसमें लालटेन जलकर बुझ चुकी है। शेष गली में सदा नीली [illegible]नी—दूसरे दृश्य में और भी हलकी रोशनी, उस पर धुएँ के फैलने का संकेत।

रानी मम्मी की साहबज़ादी नीता, बारह साल की होनहार लड़की, तलवार पहनती है, बालों में सदा दो चोटियाँ रखती है; बड़ी तेज़ बोलने वाली है, भगवान् बचाए! बहादुर ठकुराइन का मँझला लड़का है, दस वर्ष का, नेकर पर सदा कुरता अथवा बनियान ही पहनता है। अजी, बड़ा क्रोधी है, बड़ी-बड़ी आँखों से जैसे सदा घूरता रहता है। अजय मम्मी का मँझला लड़का, अवस्था में यह भी प्रायः बहादुर का समवयस्क है, पर यह उससे कमज़ोर है, छोटा है पर इससे क्या, अजय के फ़ैशन और लाड़-प्यार के आगे सब झूठे हैं। बड़ा ही तेज, चंचल और प्यारा दीखता है। मम्मी तो माँ ही हैं अजय की। इनकी न पूछिए, डर लगता है इनके नाज़-नखरे से, सदा जैसे असन्तुष्ट-अप्रसन्न रहती हैं। अवस्था चालीस से ऊपर ही है, पर अब भी यह एम० ए० फ़ाइनल ज़रूर करेंगी। पतली हो जाने के लिए दवा कराने की सोचती हैं।

मुंशीजी! आय···हाय, दायीं लालटेन बुझते-बुझते रह गई है। अभी हाल ही आपरेशन कराके लौटे हैं, दायीं आँख पर हरी पट्टी। अवस्था पचास साल, हाथ में छड़ी—धोती पर बुढ़िया शेरवानी। ठकुराइन साहब! अजी, नमस्ते! देखिए आप बहुत मुसकराती हैं। मैं टिकिट बाबू से कह दूँगा, हाँ। अजी, कोई डर है उनका, ठकुराइन एक बालिश्त बड़ी हैं। प्यार से भी एक घूँसा अगर किसी को मार दें तो, राम क़सम गंगाजल। पर हँसती कितना हैं, गोरी-चिट्टी और स्वस्थ! सीधे पल्ले का आँचल जैसे कभी माथ से उतरता ही नहीं। हाय राम···कड़े···छड़े···कंगन···बाली, भरे हाथ की चूड़ियाँ, क्या ग़ज़ब करती हो ठकुराइन!

प्रोफ़ेसर साहब! अजी, इनक़लाब ज़िन्दाबाद। हाँ···हाँ···बोलिए···बोलिए···मम्मी बाज़ार गई हैं, आपके लिए सूट सिलाने। पैण्ट कसी रखिए, चश्मा न उतारिए···हाँ पढ़ाइए अब। सही कहते हैं आप प्रोफ़ेसर साहब···तेरी दुनिया में सब कुछ है, मगर प्यार नहीं। प्यार के मतलब इश्क़ तन्हाई।

अहा हा! खन्ना बाबू! कितने हसीन आदमी थे यार तुम, लेकिन भाई इतने मोटे क्यों होते जा रहे हो? अमें, अपनी भाभी से पूछो [illegible] बैंक की नौकरी, इधर सिर पै घर की भरी टोकरी [illegible] हें हें हें ऽऽऽ?

ओ हो टिकिट बाबू! जै राम जी की! ज़रा [illegible] ड्यूटी है ड्यूटी। सफ़ेद पैण्ट और काला कोट, [illegible] ठाकुर साहब! अजी टिकिट बाबू कहो, भड़काओ [illegible] हाँ। अच्छा-अच्छा चुप रहो भाई, इधर देखो अब [illegible] एक शाम, जो रात बन रही है।

क्षण-भर के लिए मंच सूना है, पृष्ठभूमि में [illegible] गली में रोते हुए अजय का प्रवेश; बहादुर पी[illegible] है।]

नीता : (अपने दरवाज़े से निकलती है, ग़ुस्से से [illegible] सामने आकर तन जाती है, जैसे अभी पी[illegible] मारा तुमने?

[बहादुर हँस के रह जाता है।]

नीता : बत्तमीज़ कहीं के! ज़रा भी अक़्ल [illegible] हो? ···आने दो पापा को।

बहादुर : जब दौड़ नहीं पाते तो यह [illegible]

नीता : तू कहीं का लाट साहब है [illegible]

बहादुर : (ग़ुस्से से) हट्ट! [illegible]

नीता : इसकी पैण्ट और क़मीज़ [illegible]

बहादुर : गाँठ में ज़ोर नहीं, [illegible] पें···पें।

[उसी क्षण अजय [illegible] उसके गाल पर [illegible] होती है, पर [illegible] निकलती है [illegible]

मम्मी : बस··· [illegible]

बहादुर [illegible]

नीता : [illegible]

मोटे क्यों होते जा रहे हो ? अमें, अपनी भाभी से पूछो न । बहुत तंग करती हैं। बैंक की नौकरी, इधर सिर पै घर की भरी टोकरी। पर कोई बात नहीं, खैर ! हें हें हें ऽ ऽ ऽ ?

ओ हो टिकिट बाबू ! जै राम जी की ! जरा जल्दी में हूँ, फिर मिलूँगा··· ड्यूटी है ड्यूटी। सफ़ेद पैण्ट और काला कोट, माशाल्लाह, कभी धुला डालिए ठाकुर साहब ! अजी टिकिट बाबू कहो, भड़काओ नहीं मुझे, ताव आ जाता है, हाँ। अच्छा-अच्छा चुप रहो भाई, इधर देखो अब परदा उठ रहा है। मार्च की एक शाम, जो रात बन रही है।

क्षण-भर के लिए मंच सूना है, पृष्ठभूमि में लड़कों का कोलाहल। फिर सामने गली में रोते हुए अजय का प्रवेश; बहादुर पीछे है, जो ताली पीट-पीटकर हँस रहा है।]

नीता : (**अपने दरवाजे से निकलती है, गुस्से से लाल**) बत्तमीज़ कहीं के ! (**बहादुर के सामने जाकर तन जाती है, जैसे अभी पीट देगी**) किसने मारा अजय को ? क्यों मारा तुमने ?

[बहादुर हँस के रह जाता है।]

नीता : बत्तमीज कहीं के ! जरा भी अक़ल नहीं। अजय रो रहा है और तुम हँस रहे हो ?···आने दो पापा को।

बहादुर : जब दौड़ नहीं पाते तो यह हम लोगों के संग खेलते क्यों हैं ?

नीता : तू कहीं का लाट साहब है क्या ?

बहादुर : (**गुस्से से**) हइय ! मुझसे बहुत टिर्र-पिर्र मत कीजियो, हाँ !

नीता : इसकी पैण्ट और कमीज़ क्यों खराब कर दीं ?

बहादुर : गाँठ में जोर नहीं, खेलने आते हैं ! भकाभक गिरते हैं और ऊपर से···पें··· पें···पें।

[उसी क्षण अजय रोते-रोते सहसा बहादुर के ऊपर थूक देता है, बहादुर धड़ाक से उसके गाल पर एक चाँटा जमा देता है। नीता बहादुर को कई बार मारने को होती है, पर बहादुर उसके हाथों को पकड़-पकड़ लेता है, उसी हंगामे में मम्मी निकलती हैं।]

मम्मी : बस···बस, खबरदार (**बीच में आकर बहादुर को अलग कर देती हैं**) क्यों बहादुर, तेरी यह मजाल !···ओ हो · माई गॉड ! ! मैं तो डेढ़ ही महीने में ऊब गई इस मुहल्ले से, तंग आ गई इस गली और पड़ोस से।

नीता : मम्मी ! अजय की कमीज़ और पैण्ट की हालत देखिए।

मम्मी : मैं पागल हो जाऊँगी इस पड़ोस में। यह सारे नये धुले कपड़े ! इतनी धुलाई-सिलाई; ये सब क्या जानें !

अजय : मम्मी देखिए, बहादुर ने मुझे इतनी जोर से मारा है कि···। बत्तमीज कहीं का !

मम्मी : बत्तमीज़ तू है ! मैंने तुझसे लाख बार मना किया है, तू इन लौण्डों के संग कुछ न खेल, पर तू है कि···।

नीता : मम्मी ! यह बहादुर गन्दी-गन्दी बातें बोलता है।

मम्मी : आने दो आज तुम्हारे पापा को ! आज कोई फ़ैसला होके रहेगा। (**अपने दरवाज़े पर आकर**) तमाशा बना दिया है ! गली-पड़ोस का दिया हुआ नहीं खाती मैं ! किसकी मजाल है, जो मेरे बच्चों को पीटे।

नीता : ये लौण्डे हमारी दीवार पर गन्दी-गन्दी बातें लिखते हैं मम्मी !

मम्मी : जो न हो जाए सब कम है इस क़सबे में, (**रुककर**) इतने दिनों तक जयपुर में रही, मजाल क्या बच्चे कभी रोए हों या मुझे तेज़ बोलना पड़ा हो। लेकिन यहाँ मैं चीख़-चीख़कर पागल हो जाऊँगी।

नीता : कैसा घूर रहा है बैठा-बैठा यह बहादुर।

मम्मी : मैं ख़ूब जानती हूँ यहाँ रहने का नतीजा। आने दो प्रोफ़ेसर सतसंगी को। वह रहें अकेले यहाँ। यही बड़ी प्यारी थी इस टुटपुँजिये कॉलेज की नौकरी, जो जयपुर के इतने शानदार कॉलेज को छोड़कर इस गन्दे क़सबे में आए।

अजय : (**बीच ही में मुँह बनाकर**) मम्मी, मैं चुपचाप दौड़ रहा था। बहादुर ने पीछे से लंगी मारकर मुझे गिरा दिया।

नीता : और अभी इसने ऊपर से मारा भी।

मम्मी : (**आवेश में**) क्यों रे बहादुर ! इधर तो आ। क्यों मारा तूने अजय को ?

बहादुर : इसने थूका जो है मेरे ऊपर।

अजय, नीता : (**एक स्वर में**) नहीं, नहीं, झूठ है मम्मी, बिलकुल झूठ।

अजय : मम्मी ! यह बड़ा चार सौ बीस है।

मम्मी : चुप रह अजय !···क्यों बहादुर ? तूने अजय को लंगी मारकर क्यों गिराया ?

बहादुर : (**गुस्से में**) बुलाऊँ सारे लड़कों को !

अजय : मम्मी ! यहाँ के सब लड़के झूट्ठे हैं।

नीता : सब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। एक गिरोह है इनका मम्मी !

बहादुर : बस, देवता तो तुम्हीं लोग हो।

मम्मी : (**डाँट के स्वर में**) चुप रह ! तमीज़ से बातें करना सीख !

[तभी अपने दरवाज़े से ठकुराइन का प्रवेश, आँचल में गीले हाथ पोंछती हुई।]

ठकुराइन : क्या है रे बहादुर ? चल, घर में चल।

मम्मी : (**जैसे अपने-आपसे**) क़िस्मत फूट गई यहाँ आकर। दुनिया में बहुत लड़के हैं, लेकिन यहाँ के सबसे निराले है। बाप रे बाप, इतनी बुरी-बुरी आदतें ! उफ़ ! मैं तो पक गई।

ठकुराइन : हमारी वजह से ?

मम्मी : पता नहीं कैसे लोग हैं यहाँ के ! कैसी तहज़ीब है उनकी, और उनके बच्चों की।

1

बहादुर : (**सहसा**) बस सिर्फ़ आप ही लोग लाट साहब के न

ठकुराइन : (**गुस्से से झटककर**) चुप···चुप रहता है कि
खड़ा है ? मैं कहूँ कि क्या बात है, मैं तो चौके में थ
बहादुर ! तू क्यों खेलता है मम्मी के बच्चे के संग ?

बहादुर : कौन जाता है बुलाने इनके बच्चों को। अजय, नि
अपने-आप घुस आते हैं हममें !

मम्मी : (**गुस्से में**) तुम्हारा मतलब है कि मैं अपने दरव
दूँ !

[गली में मुंशीजी आते दीख पड़ते हैं।]

ठकुराइन : अरे···रे···सुनो तो बहू !

मुंशीजी : (आकर) हे जी ठकुराइन, पहले मेरी बात तो सुन

[ठकुराइन माथा ढँककर दरवाज़े पर खड़ी होती हैं।]

अजय की मम्मी, तुम भी सुनो।···जे बात यह है कि इस
यहाँ खेल ही नहीं रहे थे। वहाँ बाग़ में खेल रहे थे, इम
बच्चे ख़ुद वहाँ गए।

मम्मी : (ताव में) जी, आपसे कौन पूछ रहा है ? औरतों
वाले आप कौन होते हैं ? जब यहाँ के मरदों को इतनी
न ऐसे हों ?

मुंशीजी : अरे···जा, जा ! बड़ी तमीज़दार आई है ! न

मम्मी : चलो घर में चलो, देखूँगी मैं, हाँ !

[बच्चों सहित प्रस्थान। भीतर से दरवाज़ा

मुंशीजी : बड़ी देखी साहबी ख़ूनवालों की !···
न करो बहू। ज़रा भी दबीं तो ये हावी हो

ठकुराइन : (हँसती हैं) बड़ा ग़ुस्सा है मम्मी
ऊपर से है, उतना भीतर से नहीं

मुंशीजी : तो भीतर से तो ग

ठकुराइन : (हँसकर) हाँ,
जाती हूँ। गली-मुहल्ले
चुप हो जाते हैं। प

बहादुर : (ताव में)

ठकुराइन : चुप र

बहादुर : क्यों

ठकुराइन :

ने तुझसे लाख बार मना किया है, तू इन लौण्डों के संग कुछ
···।
र गन्दी-गन्दी बातें बोलता है।
म्हारे पापा को ! आज कोई फ़ैसला होके रहेगा। (अपने
तमाशा बना दिया है ! गली-पड़ोस का दिया हुआ नहीं खाती
है, जो मेरे बच्चों को पीटे।
ीवार पर गन्दी-गन्दी बातें लिखते हैं मम्मी !
ब कम है इस क़सबे में, (रुककर) इतने दिनों तक जयपुर में
चे कभी रोए हों या मुझे तेज़ बोलना पड़ा हो। लेकिन यहाँ
ल हो जाऊँगी।
ठा-बैठा यह बहादुर।
यहाँ रहने का नतीजा। आने दो प्रोफ़ेसर सतसंगी को। वह
बड़ी प्यारी थी इस टुटपुँजिये कॉलेज की नौकरी, जो
र कॉलेज को छोड़कर इस गन्दे क़सबे में आए।
ाकर) मम्मी, मैं चुपचाप दौड़ रहा था। बहादुर ने पीछे
गिरा दिया।
से मारा भी।
बहादुर ! इधर तो आ। क्यों मारा तूने अजय को ?
ऊपर।
नहीं, नहीं, झूठ है मम्मी, बिलकुल झूठ।
बीस है।
बहादुर ? तूने अजय को लंगी मारकर क्यों गिराया ?
ड़कों को !
झूठे हैं।
टे हैं। एक गिरोह है इनका मम्मी !
।
मीज़ से बातें करना सीख !
प्रवेश, आँचल में गीले हाथ पोंछती हुई।]
स।
यहाँ आकर। दुनिया में बहुत लड़के हैं,
प, इतनी बुरी-बुरी आदतें ! उफ़ ! मैं
नकी, और उनके बच्चों की।
1

बहादुर : (**सहसा**) बस सिर्फ़ आप ही लोग लाट साहब के नाती हैं।

ठकुराइन : (**ग़ुस्से से झटककर**) चुप···चुप रहता है कि नहीं। यहाँ लड़ने के लिए खड़ा है ? मैं कहूँ कि क्या बात है, मैं तो चौके में थी। (**हँस पड़ती हैं**) क्यों रे बहादुर ! तू क्यों खेलता है मम्मी के बच्चे के संग ?

बहादुर : कौन जाता है बुलाने इनके बच्चों को। अजय, विजय, नीता, गीता सब तो अपने-आप घुस आते हैं हममें !

मम्मी : (**ग़ुस्से में**) तुम्हारा मतलब है कि मैं अपने दरवाज़े पर बच्चों को न टहलने दूँ !

[गली में मुंशीजी आते दीख पड़ते हैं।]

ठकुराइन : अरे···रे···सुनो तो बहू !

मुंशीजी : (**आकर**) हे जी ठकुराइन, पहले मेरी बात तो सुनो जी !

[ठकुराइन माथा ढँककर दरवाज़े पर खड़ी होती हैं।]

अजय की मम्मी, तुम भी सुनो।···जे बात यह है कि इस गली के सारे लड़के तो यहाँ खेल ही नहीं रहे थे। वहाँ बाग़ में खेल रहे थे, इमली के नीचू और आपके बच्चे खुद वहाँ गए।

मम्मी : (**ताव में**) जी, आपसे कौन पूछ रहा है ? औरतों के बीच में ख़ामख़ाह बोलने वाले आप कौन होते हैं ? जब यहाँ के मरदों को इतनी तमीज़ नहीं तो ये बच्चे क्यों न ऐसे हों ?

मुंशीजी : अरे···जा, जा ! बड़ी तमीज़दार आई है ! नयी नाइन, बाँस का नहना !

मम्मी : चलो घर में चलो, देखूँगी मैं, हाँ !

[बच्चों सहित प्रस्थान। भीतर से दरवाज़ा बन्द होता है।]

मुंशीजी : बड़ी देखी साहबी ख़ूनवालों की !···सुनो बहादुर की माँ। इनसे ज़रा दबा न करो बहू। ज़रा भी दबीं तो ये हावी हो जाएँगे, हाँ।

ठकुराइन : (**हँसती हैं**) बड़ा ग़ुस्सा है मम्मी को ? लेकिन जितना यह ग़ुस्सा, झुंझलाहट ऊपर से है, उतना भीतर से नहीं है मुंशीजी !

मुंशीजी : तो भीतर से तो गऊ हैं ?

ठकुराइन : (**हँसकर**) हाँ, बच्चों को लेकर जब यह बोलने लगती हैं तो सच मैं घबड़ा जाती हूँ। गली-मुहल्ले के, घर-घर के बच्चे हैं, आपस में खेलते हैं, गिरते-रोते हैं, चुप हो जाते हैं। पर उनके माँ-बाप कभी कोई बात कान पर नहीं लेते।

बहादुर : (**ताव में**) अपने बच्चों को घर में क्यों नहीं बन्द रखतीं ?

ठकुराइन : चुप रह रे ! तूफ़ान करेगा क्या ?···जा भाग यहाँ से···। चल अन्दर।

बहादुर : क्यों जाऊँ ? मैं नहीं जाता, अपने दरवाज़े से !

ठकुराइन : मैं कहती हूँ अन्दर जा न !

बहादुर : मैं नहीं जाता ! किसी के बाप का डर पड़ा है कि मैं यहाँ से भागूँ ! नहीं जाता···!

ठकुराइन : तेरा नाश्ता ठंडा हो रहा है रे !

[ठकुराइन को हँसी आ जाती है, तब बहादुर भीतर जाता है।]

मुंशीजी : ठीक ही कहता है। आखिर अपने घर से भाग कर कहाँ जाए ? शिव··· शिव···। तुम तो घर में रहती हो बहू, मैं सारा दिन अपनी बैठक से देखता रहता हूँ···! हाय···हाय···अजय···विजय, गीता···नीता। बच्चे हैं कि तुर्कों की फ़ौज है।

ठकुराइन : ज़रा धीरे बोलो मुंशीजी ! ···नहीं तो अजय की मम्मी···।

मुंशीजी : ठकुराइन ! यह मम्मी क्या बला है ?

ठकुराइन : बच्चे माँ को मम्मी कहते हैं और प्रोफ़ेसर साहब को पापा कहते हैं।

मुंशीजी : (हँसी आ जाती है) पापा और मम्मी ! राजा कहें क़िस्सा, रानी खायँ मूँगफली।

ठकुराइन : प्रोफ़ेसर साहब आ रहे हैं मुंशीजी !

[ठकुराइन दरवाज़े में चली जाती हैं, मुंशीजी थैली में से बीड़ी निकालकर दागने लगते हैं। प्रोफ़ेसर सतसंगी अपने घर के दरवाज़े पर दस्तक देते हैं।]

प्रोफ़ेसर : बेबी···बेबी···अजय···ओ नीता !

[बन्द किवाड़ें खुलती हैं, नीता दिखाई पड़ती है।]

प्रोफ़ेसर : अरे ! इस उमस में तुम लोग इस तरह कमरा बन्द करके पड़े हो ?

नीता : लगता है आज आँधी आएगी पापा !

प्रोफ़ेसर : मम्मी कहाँ है ?

नीता : उन्हें बहुत ज़ोर का सिरदर्द हो रहा है।

प्रोफ़ेसर : अरे !

[नीता के संग भीतर प्रवेश।]

मुंशीजी : बहू ! सुना है मम्मीजी की छोटी बहन आयी हैं।

ठकुराइन : हाँ, आयी तो हैं ?

मुंशीजी : वह तो शायद बड़े अखलाक़ की हैं, परदे में रहती हैं, इनकी तरह डगर-डगर नहीं घूमतीं।

ठकुराइन : बच्चा होने वाला है, कमज़ोर बहुत हैं; डॉक्टरनी ने बहुत चलना-फिरना मना किया है।

मुंशीजी : ओ हो ! अभी वह मिडवाइफ़ बहुत चक्कर लगाती है।

ठकुराइन : कितनी उमस है आज ! परसों की तरह फिर तूफ़ान आएगा क्या ?

मुंशीजी : आँधी आएगी बहू !

ठकुराइन : पानी भी बरसेगा, ऐसा लगता है।

[अपने दरवाज़े से निकलकर मम्मी बड़ी तेज़ी से बाह[illegible] प्रोफ़ेसर सतसंगी जैसे मम्मी का पीछा करते हुए आते [illegible] जाती हैं, मुंशीजी गली में मुड़ जाते हैं।]

प्रोफ़ेसर : (पुकारते आते हैं) सुनती हो···अजी सुनो, अजय [illegible]

[भीतर से अजय और नीता का प्रवेश।]

प्रोफ़ेसर : (बिगड़कर) तुम्हारी मौसीजी के पास कौन है [illegible] तुम जाओ···जाओ मौसीजी के पास रहो। (रुककर) [illegible] कहाँ गई ?

अजय : पापा, मुझे बहादुर ने मारा है।

नीता : और उलटे बहादुर की माँ, मम्मी से लड़ने को [illegible]

अजय : पापा, वह जो खूसट बुड्ढा, मुंशी है न ? वह भी [illegible]

प्रोफ़ेसर : (झल्लाते हुए) अच्छा···अच्छा ! जाओ [illegible]

अजय : पापा, सारे लड़के हम लोगों को तंग करते हैं [illegible] गन्दी आदतें सिखाते हैं।

प्रोफ़ेसर : मैं कहता हूँ, पहले मम्मी को जाकर देखो [illegible] नहीं जातीं ?

[नीता भीतर लौट जाती है।]

प्रोफ़ेसर : अजय, जाओ मम्मी को देखो ?

[उसी क्षण मम्मी प्रविष्ट होती हैं।]

मम्मी : क्या करोगे मम्मी का ? मम्मी [illegible]

प्रोफ़ेसर : सुनो तो !

[मम्मी के सामने खड़े हो जाते [illegible]

प्रोफ़ेसर : बहादुर ने आज [illegible] थी ?

मम्मी : मेरा सिर न चाटो [illegible]

प्रोफ़ेसर : आखिर बात [illegible]

मम्मी : हट जाओ मेरे [illegible]

प्रोफ़ेसर : '[illegible]

[मम्मी [illegible]

अजय : [illegible]

किसी के बाप का डर पड़ा है कि मैं यहाँ से भागूँ ! नहीं

डा हो रहा है रे !

आ जाती है, तब बहादुर भीतर जाता है।]

ा है। आखिर अपने घर से भाग कर कहाँ जाए? शिव···
र में रहती हो वह, मैं सारा दिन अपनी बैठक से देखता रहता
···अजय···विजय, गीता···नीता। बच्चे हैं कि तुर्कों की

लो मुंशीजी !···नहीं तो अजय की मम्मी···।
मम्मी क्या बला है ?
म्मी कहते हैं और प्रोफ़ेसर साहब को पापा कहते हैं।
है) पापा और मम्मी ! राजा कहें क़िस्सा, रानी खायें

आ रहे हैं मुंशीजी !

ली जाती हैं, मुंशीजी थैली में से बीड़ी निकालकर दागने
गी अपने घर के दरवाज़े पर दस्तक देते हैं।]

···ओ नीता !

ता दिखाई पड़ती है।]

लोग इस तरह कमरा बन्द करके पड़े हो ?
पापा !

रहा है।

बहन आयी है।

परदे में रहती है, इनकी तरह डगर-डगर

; डॉक्टरनी ने बहुत चलना-फिरना

कराती है।
तूफ़ान आएगा क्या ?

ठकुराइन : पानी भी बरसेगा, ऐसा लगता है।

[अपने दरवाज़े से निकलकर मम्मी बड़ी तेज़ी से बाहर मुड़ती है, क्षण-भर बाद प्रोफ़ेसर सतसंगी जैसे मम्मी का पीछा करते हुए आते हैं। ठकुराइन अन्दर चली जाती हैं, मुंशीजी गली में मुड़ जाते हैं।]

प्रोफ़ेसर : **(पुकारते आते हैं)** सुनती हो···अजी सुनो, अजय की माँ !

[भीतर से अजय और नीता का प्रवेश।]

प्रोफ़ेसर : **(बिगड़कर)** तुम्हारी मौसीजी के पास कौन है? चलो अन्दर ! नीता तुम जाओ···जाओ मौसीजी के पास रहो। **(रुककर)** अजय, देखो तुम्हारी मम्मी कहाँ गई ?

अजय : पापा, मुझे बहादुर ने मारा है।

नीता : और उलटे बहादुर की माँ, मम्मी से लड़ने को आमादा थीं।

अजय : पापा, वह जो खूसट बुड्ढा, मुंशी है न ? वह भी लड़ने लगा उन्हीं की ओर से।

प्रोफ़ेसर : **(झल्लाते हुए)** अच्छा···अच्छा ! जाओ तुम मम्मी को देखो।

अजय : पापा, सारे लड़के हम लोगों को तंग करते हैं। बुरी-बुरी बातें करते हैं। गन्दी-गन्दी आदतें सिखाते हैं।

प्रोफ़ेसर : मैं कहता हूँ, पहले मम्मी को जाकर देखो।···नीता, तुम मौसी के पास क्यों नहीं जाती ?

[नीता भीतर लौट जाती है।]

प्रोफ़ेसर : अजय, जाओ मम्मी को देखो ?

[उसी क्षण मम्मी प्रविष्ट होती हैं।]

मम्मी : क्या करोगे मम्मी का ? मम्मी तो खुद पागल हो गई !

प्रोफ़ेसर : सुनो तो !

[मम्मी के सामने खड़े हो जाते हैं।]

प्रोफ़ेसर : बहादुर ने आज फिर बच्चों को पीटा है ?···उसकी माँ तुमसे लड़ रही थी ?

मम्मी : मेरा सिर न चाटो ! उन्हीं से पूछो जाकर।

प्रोफ़ेसर : आखिर बात क्या हुई ? मैं भी तो जानूँ।

मम्मी : हट जाओ मेरे सामने से ! दर्द के मारे मेरा सिर यूँ ही फट रहा है।

प्रोफ़ेसर : 'इक्जरशन' पड़ गया तुम पर लगता है !

[मम्मी गुस्से में तनी भीतर चली जाती हैं।]

अजय : पापा, मम्मी मौसीजी के लिए भभूत लेने गई थीं। बहरैइची जमादार है न पापा।

प्रोफ़ेसर : हाँ···हाँ !

[तभी अपने दरवाज़े से बहादुर निकलता है।]

प्रोफ़ेसर : क्यों जी बहादुर ! तुमने आज फिर अजय को पीटा है ?

बहादुर : मैं नहीं बोलता आप लोगों से। जाइए जो करना है कर लीजिए मेरा।

प्रोफ़ेसर : तमीज़ से बातें करना सीखो !

मम्मी : (भीतर से निकलती हुई) उस पर क्यों लाल-पीले होते हो ? अपना सिर क्यों नहीं पीटते, जो यहाँ आ बसे। तुम्हें तो ठाट से कॉलिज की नौकरी करनी है न। मरना तो मुझको है इस सड़े मुहल्ले में ! गली में आ बसे हैं, जैसे और कहीं कोई ठिकाना न था।

प्रोफ़ेसर : पर डियर मेरी बात तो सुनो !

मम्मी : तुम रहो यहाँ, मैं कल ही बच्चों को लेकर मेरठ चली जाऊँगी। जब तक वहाँ मेरे माँ-बाप हैं, समझूँगी कि तब तक···।

प्रोफ़ेसर : मैं अभी पूछता हूँ बहादुर की माँ से ! इन्हें पता नहीं कि हमारी पोजीशन क्या है !

मम्मी : खूब जानते हैं हमारी पोजीशन। जिस दिन तुमने मुझे यहाँ ला बसा दिया, उसी वक़्त हमारी पोजीशन जाहिर हो गई। सारी आदतें बच्चों की खराब हो गईं। गन्दगी-पसन्द हो गए बच्चे। सदा रोनी सूरतें बना कर घूमने लगे। पढ़ने-लिखने से जी चुराने लगे। (रुककर) जयपुर से आज यहाँ कोई हमसे मिलने आए, तो वह इन बच्चों को पहचान नहीं सकता कि ये वही बच्चे हैं। (रो पड़ती है) मेरी क़िस्मत फूट गई !

प्रोफ़ेसर : (बिगड़ जाते हैं) क्या समझ रखा है इन लोगों ने हमें। क्यों बहादुर ! ··· चलो, इधर तो आओ···सुनो मेरी बात।

बहादुर : सुन तो रहा हूँ !

[एकाएक भीतर से ठकुराइन निकलती हैं।]

ठकुराइन : क्यों रे बहादुर ! तू फिर यहाँ आ गया ?

बहादुर : फिर कहाँ जाऊँ ? कोई डर पड़ा है इन लोगों का क्या ? क्यों जाऊँ मैं यहाँ से। यह मेरा दरवाज़ा है, किसी के बाप का साझा नहीं है इसमें।

[ठकुराइन बहादुर के सिर पर तमाचा मार देती हैं।]

ठकुराइन : फिर बोलेगा ? मारते-मारते तेरी···।

बहादुर : (क्रोध में) बोलूँगा···बोलूँगा···हज़ार बार बोलूँगा, हाँ।

ठकुराइन : लगता है इन लोगों के मारे घर ही छोड़ना पड़ेगा। जैसे दुनिया में इन्हीं को बाल-बच्चे हैं। यही शरीफ़ हैं; इन्हीं को सारी तमीज़ है जो बीवी की ओर से लड़ने आए हैं।

प्रोफ़ेसर : सुनो जी ठकुराइन ! हमें तुम लोगों की तरह लड़ने की आदत नहीं। मैं सिर्फ़

यह कहना चाहता हूँ कि अपने बच्चों को समझा दो। और खुद समझ लो कि हमें तुम लोगों से कोई सरोकार नहीं।

ठकुराइन : कौन रखता है सरोकार ! दरवाज़े के सामने तुम्हारा घर न पड़ता तो मैं उधर ताकती तक नहीं। जितनी ही इनकी इज़्ज़त करो, उतनी ही···।

[गली में से मुंशीजी निकलते हैं।]

मुंशीजी : मैंने तो पहले ही कहा था वह तुमसे !

प्रोफ़ेसर : जी, तुम कौन हो बीच में बोलने वाले ?

मुंशीजी : जी, मैं एक आदमी हूँ।

मम्मी : लेकिन आसार नहीं हैं आदमी के !

मुंशीजी : अजी, औरत के तो आसार हैं, कि वह भी नहीं।

प्रोफ़ेसर : यही है तुम्हारी तमीज़ ?

मुंशीजी : क्या ?···सुनो मास्टर साहब। ज़रा क़ायदे से पेश आया करो मुझसे, वरना ताले लगवा दूँगा घर में, हाँ ! मैं टिकिट बाबू नहीं !

प्रोफ़ेसर : तेरी यह मजाल !

[गली में से खन्ना बाबू का प्रवेश।]

खन्ना : (**पेट पर हाथ फेरते हुए, यह इनकी आदत है, और साथ-ही-साथ हँसते भी रहते हैं**) क्या है मुंशीजी ? जैरामजी की प्रोफ़ेसर साहब ?

मम्मी : इन्हें देखकर तो मेरा सिर और फटने लगा।

[मम्मी भीतर चली जाती हैं।]

खन्ना : हम लोगों की सूरत ही ऐसी है, क्या बताएँ मुंशीजी ! (**रुककर**) क्या बात है मास्टर साहब ?

प्रोफ़ेसर : आपसे मतलब ?

खन्ना : क्यों नहीं मास्टर साहब ! हम पड़ोसी जो हैं !···मुंशीजी, बहादुर, ज़रा अदब लिहाज़ रखा करो मास्टर साहब के घर का ! बड़े भाग्य से तो यह हमारे मुहल्ले में आए।

प्रोफ़ेसर : बको मत ! मैं सबकी शरारतें समझता हूँ। मैं अभी जाता हूँ चेयरमैन साहब के पास। अजय, ज़रा मेरी छड़ी और टार्च तो लाना ! (**अजय का प्रस्थान**) क्या समझ रखा है इन लोगों ने ?

खन्ना : हम तो मास्टर साहब आपकी बड़ी इज़्ज़त करते हैं—इलिम क़सम। पूछ लीजिए मुहल्ले-भर में। यक़ीन न हो तो मेरी बीवी से पूछ लीजिए।

प्रोफ़ेसर : तुम लोगों की यह मजाल। सारी दुपहरी तुम लोग हमारे घर का मज़ाक बनाते हो ?···कोई कहता है, मास्टर साहब ने प्रेम विवाह किया है। कोई कहता है, मास्टर ससुर के रुपये से पढ़े हैं। कोई कहता है, मैंने अपने माँ-बाप को छोड़ दिया है। कोई कहता है, रात को मुझे नींद नहीं आती और मैं शराब पीता हूँ।

मुंशीजी : नहीं जी, मैं तो जानता हूँ आप शाइरी करते हैं।

खन्ना : बुरी बात है मुंशीजी !

[उसी समय एक ओर से चौधरी क़यामत हुसेन आते हैं।]

चौधरी : (आते-आते) राम···राम ! क्या जाने ये लोग किसी पढ़े-लिखे विद्वान को ! क्या जाने क़दरदानी ?

खन्ना : चौधरी, मूँगफली के क्या भाव हैं ?

चौधरी : मुहल्ले के लोग तो बस सदा दूसरों के लिए ऐसे हो रहते हैं। कहीं कुछ मिल जाए, ढूँढ़ते ही रहते हैं।

प्रोफ़ेसर : (पुकारकर) अजय ! क्या करने लगा भीतर ?

अजय : (छड़ी टार्च लिए दौड़ा आता है) लीजिए पापाजी ?

प्रोफ़ेसर : मैं जानता हूँ ऐसे लोगों की दवा। (जाते-जाते) अजय, अन्दर चलो, मैं अभी आया। (प्रस्थान)

[अजय भीतर चला जाता है।]

चौधरी : तभी तो कोई शरीफ़ इस मुहल्ले में टिक नहीं पाता।

मुंशीजी : अजी, बड़े शरीफ़ के शहज़ादे देखे। तुम क्या जानो चौधरी क़यामत हुसेन। तुम तो दिन-रात तम्बाकू की दूकान पर बैठे रहते हो। ये लोग जब से यहाँ आए हैं, हमारी गन्दी गली हो गई !

खन्ना : चुप···चुप···चुप ! अरे, मम्मी की छोटी बहन आई हैं, क्या कहेंगी ?

चौधरी : कौन समझाए मुंशीजी को ! अरे मुहल्ले में एक पढ़ा-लिखा विद्वान् है तो यहाँ रोशनी है, वरना अँधेरा है।

मुंशीजी : भइया, ले जाओ यह चिराग़ अपनी दूकान पर ! ···मार के गली गन्दी कर दी इन लोगों ने।

खन्ना : इतने-इतने मुर्गी के अण्डे। जहाँ देखो, वहीं अण्डे के छिलके।

मुंशीजी : अजी, इन लोगों की वजह से गली के कुछ लौंडे भी अण्डा खाने लगे।

खन्ना : और वह गोश्त वाला ! जो यहाँ भरी खँचिया लिए आने लगा। हद हो गई, कभी नहीं हुआ था ऐसा यहाँ।

ठकुराइन : (जो अब तक किवाड़ के पास खड़ी थीं, बढ़कर) और वह रोज़ ठीक मेरे दरवाज़े के सामने खँचिया खोलकर बैठता है।

मुंशीजी : छी छी छी ! कभी नहीं हुआ ऐसा। मजाल क्या कभी चिकवा-कसाई यहाँ आया हो।

ठकुराइन : एक-एक बोटी गोश्त के लिए बच्चे लड़ते हैं आपस में, बाहर ला-लाकर खाते हैं।

खन्ना : और ये जो कुत्ते-बिल्लियाँ हैं, पूछो न इनकी, गोश्त की हड्डियों को इधर-उधर बिखेरते रहते हैं नालायक।

ठकुराइन : और कौए जो हैं, एक दिन भगतिन बुआ के आँगन में हड्डियाँ गिरा आए।

...ा हूँ आप शाइरी करते हैं।

...धरी क़यामत हुसेन आते हैं।]

...राम ! क्या जाने ये लोग किसी पढ़े-लिखे विद्वान

...भाव है ?

...दा दूसरों के लिए ऐसे ही रहते हैं। कहीं कुछ मिल

...ा करने लगा भीतर ?

...है) लीजिए पापाजी ?

...बा। (जाते-जाते) अजय, अन्दर चलो, मैं अभी

... में टिक नहीं पाता।

...। तुम क्या जानो चौधरी क़यामत हुसेन।

...र बैठे रहते हो। ये लोग जब से यहाँ आए

...छोटी बहन आई हैं, क्या कहेंगी ?

...ले में एक पढ़ा-लिखा विद्वान् है तो यहाँ

...न पर !···मार के गली गन्दी कर दी

...ीं अण्डे के छिलके।

... लौंडे भी अण्डा खाने लगे।

...िया लिए आने लगा। हद हो गई,

...कर) और वह रोज़ ठीक मेरे

...ा कभी चिकवा-कसाई यहाँ

...आपस में, बाहर ला-लाकर

... की हड्डियों को इधर-

...हड्डियाँ गिरा आए।

दो दिनों तक उपवास किया उन्होंने।

मुंशीजी : सुना चौधरी क़यामत हुसेन !

चौधरी : अजी छोटी-छोटी बातों का क्या झगड़ा। शरीफ आदमी के लिए कुछ सह लेना बुरी बात थोड़े ही है।

ठकुराइन : देखो क्या बम्ब लेकर आते हैं मास्टर साहब ! चेयरमैन साहब के यहाँ फ़रियाद लेकर गए हैं।

मुंशीजी : अजी बहू, रखो फ़रियाद। जैसे मास्टर साहब, उससे दूना चेयरमैन साहब। वह देखो न गली की म्युनिस्पिल लाइट। ससुरी जैसे सदा बुझी रहती है। सारा तेल बेच खाते हैं। सब शराबी-कबाबी। ऊपर से रामराम, भीतर से कसाई का काम। (रुककर) चेयरमैन साहब ने ही तो मास्टर साहब को यहाँ ला बसाया है।

ठकुराइन : चेयरमैन साहब का घर है, जिसे चाहें उसे बसाएँ।

मुंशीजी : अजी बहू तू का जाने है ! यह घर था अनोखेलाल पटवर्धनदास के भतीजे गोवर्धनदास के लड़के मिठाईलाल का। उस बेचारे को चुंगी के एक मुक़दमे में फाँसकर चेयरमैन साहब ने इस मकान को अपनी रखैल औरत के नाम लिखा लिया।

खन्ना : म्युनिस्पैलिटी ज़िन्दाबाद। तभी तो मैं कहूँ कि चेयरमैन साहब के इतने घर क्यों हैं ? हर सड़क, हर गली में चेयरमैन साहब का घर। कहीं लौंडों के नाम, कहीं बहुओं के नाम।

मुंशीजी : और कहीं रखैलों के नाम !

बहादुर : (**जो अब तक चारपाई पर चुपचाप बैठा था**) ज़रा धीरे-धीरे बोलो बाबा !

खन्ना : अरे दरवाज़ा तो बन्द है मास्टर साहब का !

बहादुर : (**उठकर जैसे दिखाता हुआ**) लेकिन सब खिड़कियों में छिपे बैठे हैं। नीता दरवाज़े में खड़ी होगी।

ठकुराइन : सबके सब चेयरमैन साहब के यहाँ पहुँच जाते हैं।

मुंशीजी : अजी, कौन परवाई करता है ! आकर खड़े न हो जाएँ चेयरमैन साहब, सात पुश्त की हुलिया जानता हूँ; उधेड़कर रख दूँगा।

चौधरी : लेकिन फ़ायदा क्या इन बातों से ! ज़रा मुहब्बत से काम लो न !

[गली की ओर जाने लगते हैं।]

खन्ना : चले चौधरी क़यामत हुसेन ?

चौधरी : हाँ भई, पता नहीं क्यों, कमर में दर्द हो रहा है। (**प्रस्थान**)

खन्ना : अरे ! मास्टर साहब तो लौटे आ रहे हैं।···वह आ गए।

मुंशीजी : चेयरमैन साहब भी संग हैं ?

खन्ना : अजी, वह क्या आएगा, कहीं पिए पड़ा होगा।

[**प्रोफ़ेसर सतसंगी का प्रवेश**]

प्रोफ़ेसर : घबड़ाओ नहीं, कल होगा इसका फ़ैसला।

खन्ना : चेयरमैन साहब मुक़दमे के सिलसिले में कहीं बाहर गए होंगे भाई।

[प्रोफ़ेसर साहब घर में जाते हैं।]

प्रोफ़ेसर : (**तुरन्त भीतर से आवाज़ आती है**) तुम लोग खिड़कियों पर क्यों बैठते हो ! पलंग पर बैठो, कुरसियों पर बैठो···यह क्या तमाशा है !

[अजय प्रोफ़ेसर का हाथ पकड़े बाहर आता है।]

अजय : पापा ! वह देखिए, जो खड़े हैं न ! वे सब कह रहे थे कि हम लोग मास्टर साहब को पीटेंगे।

नीता : (**सहसा बाहर निकलकर**) बहादुर की माँ गाली बक रही थीं।

प्रोफ़ेसर : क्यों ? तुम लोग गाली दे रहे थे ? क्यों बहादुर की माँ ! मैं एक-एक को हथकड़ी पहनवा के छोड़ूँगा, हाँ !

ठकुराइन : सुना !···देखा न मुंशीजी, सुना खन्ना बाबू ? यह है पानी में आग।

मुंशीजी : ग़ज़ब के छोकड़े हैं भइया !

खन्ना : कमाल है।

बहादुर : झुट्ठे कहीं के।

[तेज़ी से मम्मी का प्रवेश]

मम्मी : किन देहातियों के मुँह लगे हो ? चलो अन्दर चलो।

प्रोफ़ेसर : चलो आता हूँ।

मम्मी : चलो, सरला बुला रही है। तबीयत ठीक नहीं है उसकी।

[प्रोफ़ेसर, अजय और मम्मी का प्रस्थान।]

मुंशीजी : यह सरला कौन ?

खन्ना : मास्टर साहब की पत्नी। बच्चा होने वाला है।

मुंशीजी : ओ हो !···अच्छा चलूँगा बहू !

[गली में बढ़कर एक ओर मुड़ जाते हैं।]

खन्ना : टिकिट बाबू अब तक नहीं आए, एक घण्टा रात बीत गई होगी।

ठकुराइन : आज पता नहीं कहाँ देर कर दी, आ जाना चाहिए था अब तक।

खन्ना : आओ बहादुर, चलो हमारे घर चलो।

ठकुराइन : हाँ, ले जाओ इसे !

[खन्ना के संग बहादुर जाता है। गली सूनी हो जाती है, ठकुराइन भीतर चली जाती हैं। कुछ क्षणों बाद गली में एक मूँगफली बेचने वाला निकलता है। बाहर से टिकिट बाबू आते हैं और सीधे अपने घर में जाने लगते हैं।]

मूँगफलीवाला : जैरामजी की टिकिट बाबू !

…, कल होगा इसका फ़ैसला।
… मुक़दमे के सिलसिले में कहीं बाहर गए होंगे भाई।
… में जाते हैं।]

… से आवाज़ आती है) तुम लोग खिड़कियों पर क्यों बैठते … कुरसियों पर बैठो…यह क्या तमाशा है!

… हाथ पकड़े बाहर आता है।]

…, जो खड़े हैं न! वे सब कह रहे थे कि हम लोग मास्टर …

… कर) बहादुर की माँ गाली बक रही थीं।
… गाली दे रहे थे? क्यों बहादुर की माँ! मैं एक-एक को … गा, हाँ!
… जी, सुना खन्ना बाबू? यह है पानी में आग।
… ना!

… हो? चलो अन्दर चलो।

… यत ठीक नहीं है उसकी।

… स्थान।]

… ने वाला है।

… रात बीत गई होगी।
… ना चाहिए था अब तक।

… आती है, ठकुराइन भीतर चली … वाला निकलता है। बाहर … ते हैं।]

टिकिट बाबू : जैराम…जैराम!

[टिकिट बाबू का प्रस्थान।]

मूंगफलीवाला : (आवाज देने लगता है) ताजी भूनी मूंगफली। चिनियाँ बादाम, जाड़े का मेवा है। खरी भूंजी मूंगफली है। चार आने की पौआ है। बालू की भूनी है। ताजी मूंगफली है।

[भीतर से दौड़ता हुआ अजय निकलता है।]

अजय : मूंगफली वाले! चलो इधर आओ।…बड़े बत्तमीज हो, जल्दी क्यों नहीं आते?

मूंगफलीवाला : लीजिए हुजूर, आ गया, बिगड़िए नहीं। अभी बहुत कम उमर है आपकी। बहुत गुस्सा करने से ज़ुकाम हो जाएगा।

अजय : बात मत करो!

मूंगफलीवाला : (मूंगफली देता हुआ) जल्दी कीजिए जल्दी हाँ,…पैसे दीजिए पैसे, तूफ़ान आने वाला है, आँधी और पानी…।

[पैसा लेकर चल देता है, उसकी आवाज़ अभी गली में सुनाई पड़ रही है। अजय अपने घर में जाकर भीतर से दरवाज़ा बन्द कर लेता है। कुछ क्षणों बाद अपने दरवाज़े से टिकिट बाबू का प्रवेश।]

टिकिट बाबू : (आवेश में) कौन है वह शरीफ़ज़ादा! ज़रा बाहर आकर मुझे अपना मुँह तो दिखाए। यह दूध का धुला घर में क्यों बैठा है?

[बन्द दरवाज़ों की साँकल बजाते हैं।]

टिकिट बाबू : तहज़ीब के पिल्ले! घर में से निकलता क्यों नहीं? निकल घर में से! मँगवा हथकड़ी-बेड़ी हमारे लिए!

[दरवाज़ा खुलता है, प्रोफ़ेसर का प्रवेश।]

प्रोफ़ेसर : (निकलकर) क्यों हद किए डाल रहे हैं आप? आखिर आपकी मंशा क्या है?

टिकिट बाबू : मैं तुम्हारे हाथ से हथकड़ी पहनने आया हूँ।

प्रोफ़ेसर : कुछ ध्यान रखकर बातें किया करो। अजय की मौसी आयी हुई है, उसकी तबीयत खराब है। क्या कहेगी वह? हमारी न सही, मेहमान की तो इज्ज़त करो।

टिकिट बाबू : मेरी बात का जवाब दो पहले, बीच में मेहमान मत लाओ। (रुककर) दुनिया के शरीफ़ज़ादे तुम्हारे ही बीवी-बच्चे हैं? तुम्हारे ही बीवी-बच्चे तुम्हें प्यारे हैं? मेरे नहीं क्या?

प्रोफ़ेसर : भाई यह कौन कह रहा है?

टिकिट बाबू : ट्यूशन करके जो धुलाए घूमते हो, ज़रा टीमटाम से रह लेते हो, चार-छह रकाबी-प्लेट्स हैं तुम्हारे पास, इसीलिए तुम बड़े शरीफ़ज़ादे हो गए। (रुककर) मेरे दरवाज़े के सामने खुले मैदान में तुम लोग मच्छरदानी लगा कर सोते हो—और हम परदे में रहते हैं, तभी हम गन्दे हैं, तुम शरीफ़ हो ! हम नाख्वांदा हैं। बत्तमीज़ हैं।

[भीतर से ठकुराइन का प्रवेश।]

ठकुराइन : अच्छा···अच्छा चलो। बहुत हो गया।···मास्टर बाबू जाओ अपने घर में।

प्रोफ़ेसर : तुम जैसे लोगों से बात करना भी गुनाह है।

[प्रोफ़ेसर अन्दर चले जाते हैं।]

टिकिट बाबू : रहना हो तो मुहल्ले में क़ायदे से रहो, वरना रास्ते न बन्द कर दूँ तो ठाकुर छैलबिहारी सिंह नाम नहीं।

ठकुराइन : अच्छा, अब चुप रहो।

[गली में मुंशीजी आते हुए दिखाई देते हैं।]

ठकुराइन : चलो, अब नहीं कुछ बोलेंगे मास्टर साहब।

मुंशीजी : जैरामजी की टिकिट बाबू !

टिकिट बाबू : राम-राम मुंशीजी, (रुककर) बड़े तहज़ीबदार बन के आए हैं।

मुंशीजी : तहज़ीबदार ही नहीं ठाकुर साहब ? अप-टू-डेट, शरीफ़।

[गली में से खन्ना बाबू और बहादुर का प्रवेश।]

खन्ना : बड़ा शोरगुल मचा टिकिट बाबू !···अरे अन्दर चलकर बैठो, आँधी-पानी आने वाला है। चलो भीतर बैठें न !

टिकिट बाबू : अजी, अब मैं यहीं बाहर ही रहा करूँगा। सोना-खाना सब यहीं करूँगा।

[सब हँस पड़ते हैं।]

मुंशीजी : जी हाँ, तभी तो हम लोग तहज़ीबदार कहलाएँगे।

खन्ना : तहज़ीबदार ही नहीं—अप-टू-डेट, शरीफ़ !

मुंशीजी : बच्चों से कह दो बहू, तुम लोगों को भी वे पापा और मम्मी कहा करें। क्यों रे बहादुर ?

[बहादुर भाग कर भीतर चला जाता है।]

खन्ना : क्या कमाई करते हो टिकिट बाबू ! अरे घर में दो-चार कप-प्याले, काँटे-छुरी, चम्मच तो रख लो अब !

टिकिट बाबू : मार सारे मुहल्ले का सत्यानास कर दिया।

मुंशीजी : मम्मी जो बी० ए० पास हैं।

खन्ना : अजी मुंशीजी, तुम्हें क्या पता ! एम० ए० का

मुंशीजी : चाहे जो पास हों, मुहल्ले की कुछ लड़कियाँ
साड़ियाँ ज़रूर पहनने लगीं।

खन्ना : और फ़िल्मी गाने जो गाने लगीं। मास्टर साह
हैं जी।

ठकुराइन : अच्छा चलो अब अपने-अपने घर। आसमान

खन्ना : आय हाय···आँधी-पानी ! क्या बज रहे हैं टि

टिकिट बाबू : पौने नौ के क़रीब हो रहे हैं।

[भीतर से प्रोफ़ेसर साहब निकलते हैं।]

प्रोफ़ेसर : आप लोगों से प्रार्थना है कि आप यहाँ शोर
तबीयत अच्छी नहीं है।

[प्रोफ़ेसर साहब अपने घर में जाते हैं।]

खन्ना : मुंशीजी, चलो चलें ! नहीं अभी मम्मी निकलेंगी

मुंशीजी : अजी बहुत देखी है···।

[खन्ना के संग गली में प्रस्थान, टिकिट बाबू के संग
क्षण-भर बाद गली में दही-रबड़ी वाले की आवाज़
दरवाज़े से निकलता है।]

अजय : (आवाज़ देता है) दही-रबड़ी वाले ! चलो

[नीता भी निकलती है।]

नीता : मम्मी ! मैं भी लूँगी रबड़ी।

अजय : पापाजी, मैं दही लूँगा।

नीता : क्यों शोर करते हो ? तुमने तो सुबह

अजय : तुमने भी तो चाट खाई थी।

प्रोफ़ेसर : (तेज़ी से निकलकर) मत
तुम्हारी मौसी की तबीयत ख़राब

नीता : पापा, यही अजय शोर क

अजय : मैं दही लूँगा पापाजी

मम्मी : (प्रवेश कर) हाय
ये, बाज़ार की
खोंचेवाले, फेरी

प्रोफ़ेसर : यहाँ
ही नहीं

ए घूमते हो, ज़रा टीमटाम से रह लेते हो, चार-
पास, इसीलिए तुम बड़े शरीफ़ज़ादे हो गए।
ले खुले मैदान में तुम लोग मच्छरदानी लगा कर
हैं, तभी हम गन्दे हैं, तुम शरीफ़ हो ! हम

हो गया ।···मास्टर बाबू जाओ अपने

भी गुनाह है ।

दे से रहो, वरना रास्ते न बन्द कर दूँ तो

।]

साहब ।

हबीबदार बन के आए हैं ।
न्ट-डेट, शरीफ़ ।

।]

र चलकर बैठो, आँधी-पानी आने

गा । सोना-खाना सब यहीं

।

र मम्मी कहा करें । क्यों

प्याले, काँटे-छुरी,

मुंशीजी : मम्मी जो बी० ए० पास हैं।

खन्ना : अजी मुंशीजी, तुम्हें क्या पता ! एम० ए० का पहला साल भी पास किया है।

मुंशीजी : चाहे जो पास हों, मुहल्ले की कुछ लड़कियाँ इनकी देखा-देखी उलटे पल्ले की साड़ियाँ ज़रूर पहनने लगीं ।

खन्ना : और फ़िल्मी गाने जो गाने लगीं। मास्टर साहब का रेडियो तो सिलोन रेडियो है जी।

ठकुराइन : अच्छा चलो अब अपने-अपने घर। आसमान की तरफ़ तो देखो।

खन्ना : आय हाय···आँधी-पानी ! क्या बज रहे हैं टिकिट बाबू ?

टिकिट बाबू : पौने नौ के क़रीब हो रहे हैं।

[भीतर से प्रोफ़ेसर साहब निकलते हैं।]

प्रोफ़ेसर : आप लोगों से प्रार्थना है कि आप यहाँ शोर न करें, अजय की मौसी की तबीयत अच्छी नहीं है।

[प्रोफ़ेसर साहब अपने घर में जाते हैं।]

खन्ना : मुंशीजी, चलो चलें ! नहीं अभी मम्मी निकलेंगी !

मुंशीजी : अजी बहुत देखी है···।

[खन्ना के संग गली में प्रस्थान, टिकिट बाबू के संग ठकुराइन अपने घर में जाना। क्षण-भर बाद गली में दही-रबड़ी वाले की आवाज़ उठती है। अजय तेज़ी से अपने दरवाज़े से निकलता है।]

अजय : (**आवाज़ देता है**) दही-रबड़ी वाले ! चलो इधर आओ।

[नीता भी निकलती है।]

नीता : मम्मी ! मैं भी लूँगी रबड़ी ।

अजय : पापाजी, मैं दही लूँगा।

नीता : क्यों शोर करते हो ? तुमने तो सुबह दही-बड़ा खरीदा था ।

अजय : तुमने भी तो चाट खाई थी।

प्रोफ़ेसर : (**तेज़ी से निकलकर**) मत शोर करो ! शरम नहीं आती तुम लोगों को, तुम्हारी मौसी की तबीयत खराब है और तुम लोग···।

नीता : पापा, यही अजय शोर करता है ।

अजय : मैं दही लूँगा पापाजी !

मम्मी : (**प्रवेश कर**) हाय ! कितने भुक्खड़ हो गए मेरे बच्चे यहाँ आकर। जयपुर में थे, बाज़ार की चीज का नाम तक नहीं लेते थे। कभी जानते भी न थे कि ये खोंचेवाले, फेरीवाले क्या होते हैं।

प्रोफ़ेसर : यहाँ तो उसकी आवाज़ सुनते ही चीखने लगते हैं, जैसे कभी कुछ खाया-पिया ही नहीं।

मम्मी : क्या कहूँ मैं ? शाम को तो मैंने इनके लिए गजक और मूँगफली खरीद दी थी ! क्यों अजय ?···नीता···।

[फिर दही-रबड़ीवाले की आवाज़ ।]

अजय : देखिए मम्मी ! बहादुर मुझे मुँह बना-बनाकर चिढ़ा रहा है। मुझे पैसे दो मम्मी ! मैं दही लूँगा, हाँ ! (**पुकार उठता है**) ओ दही-रबड़ीवाले !

प्रोफ़ेसर : (**गुस्से में अजय को एक चपत देकर**) नालायक़ कहीं के ! तुम लोगों को तो बन्द कर दें कहीं; जहाँ हवा-पानी भी न मिले।

[अजय रोता है।]

मम्मी : अभी इस जेलख़ाने में बन्द करने से जी नहीं भरा क्या ? हाय मेरी क़िस्मत फूट गयी। (**अजय को चिपका लेती है**) रोओ नहीं बेटे ! तुम्हारी मौसी की तबीयत ठीक होते ही हम लोग यहाँ से मेरठ चले जायेंगे। करें अपना राज्य यह अकेले यहाँ !

प्रोफ़ेसर : चली जाओ न मेरठ !

मम्मी : अच्छा लड़ो नहीं मुझसे !

[फिर गली में दही-रबड़ीवाले की आवाज़ ।]

प्रोफ़ेसर : (**गुस्से से बढ़कर**) सुनो जी दही-रबड़ीवाले ! मत आया करो इधर ! कोई अक़्ल न तमीज़ ! रात के नौ बज रहे हैं, इस समय यह यहाँ पों-पों करने चले हैं। (**डाँटते हुए**) चले जाओ यहाँ से अगर अपनी ख़ैरियत चाहो।

[दही-रबड़ीवाले की आवाज़ गली में दूर चली जाती है।]

प्रोफ़ेसर : ख़बरदार···अब कभी जो इधर आया !

अजय : मम्मी दही-रबड़ी ! (**मचलकर रोता है**) दही-रबड़ी !

[आँधी आ जाती है; एक ओर से मूँगफलीवाला तेज़ी से भागता हुआ गली में जाने लगता है।]

मूँगफलीवाला : (**आवाज़ देता हुआ**) आँधी···पानी···! आ गयी, आँधी आ गयी आँधी ! (**प्रस्थान**)

[प्रोफ़ेसर साहब का परिवार भीतर भागता है। भीतर से दरवाज़ा बन्द होता है। आँधी के संग तेज़ वर्षा। ठकुराइन तेज़ी से आकर अपने दरवाज़े की चारपाइयों को भीतर ले जाती हैं ! कुछ क्षणों बाद अपने दरवाज़े से मम्मी निकलती हैं। इधर-उधर देखती हैं और एकाएक दौड़कर ठकुराइन के दरवाज़े पर आती हैं।]

मम्मी : ठकुराइन ! ओ जी ठकुराइन ! बहादुर की माँ !

[ठकुराइन का प्रवेश।]

ठकुराइन : क्या है बहू ?

मम्मी : जरा चलकर संभाल लो, अजय की मौसी की तबी

ठकुराइन : हाँ···हाँ···चलो !

[भीतर से टिकिट बाबू की आवाज़ आती है।]

ठकुराइन : चलो मैं आ रही हूँ, अभी आयी !

[मम्मी का प्रस्थान, ठकुराइन भीतर लौटती है, फिर
को होती है, टिकट बाबू का प्रवेश।]

टिकिट बाबू : कहाँ जा रही हो इस तूफ़ान में ?

ठकुराइन : टोक दिया न ! बड़ी बुरी आदत है तुम्हारी

टिकिट बाबू : वह तो है ही, लेकिन इस आफ़त में जा र

ठकुराइन : अजय की मौसी की तबीयत बहुत खराब हो
है। ज़रा देखने जा रही हूँ।

टिकिट बाबू : इसी को गँवार औरत कहते हैं। तभी तो
जैसी औरतों को घास तक नहीं डालते !

ठकुराइन : अजी चुप रहो तुम ! तुम मर्दों को क्या मतल
का मामला है।

टिकिट बाबू : है तो मामला तुम लोगों का। पर वह न क
तुम्हारे सिर का बाल नोंचा !

ठकुराइन : क्या बकते हो जी ! मम्मी एकदम से खराब
शकुन्तला बेटी जब बीमार हो गई थी। तुम तो ड्यू
भर मम्मी बैठी रहती थीं शकुन्तला के सिरहाने !

टिकिट बाबू : तो जाओ तुम भी बैठो न !

ठकुराइन : मम्मी खुद शकुन्तला को लेकर मुरादाबाद अ
पता किसके भीतर क्या है ! तुम तो बाहर-ही-बा

[चली जाती हैं, मम्मी के घर में प्रवेश, टिकि
भर बाद ठकुराइन अपने संग अजय नीता को
लगती है।]

टिकिट बाबू : अब यह क्या है ?

ठकुराइन : चुप रहो जी ! (

आवाज़ : (भीतर से) आयी

ठकुराइन : ले संभाल इन

[बहादुर का प्रवे

ठकुराइन : बहादुर

ो तो मैंने इनके लिए गजक और मूंगफली खरीद दी
ा…।

ावाज़ ।]

ुझे मुंह बना-बनाकर चिढ़ा रहा है। मुझे पैसे दो
(पुकार उठता है) ओ दही-रबड़ीवाले !
पत देकर) नालायक़ कहीं के ! तुम लोगों को तो
ी भी न मिले।

ले से जी नहीं भरा क्या ? हाय मेरी क़िस्मत फूट
) रोओ नहीं बेटे ! तुम्हारी मौसी की तबीयत
रठ चले जायेंगे। करें अपना राज्य यह अकेले

ाब।]

ड़ीवाले ! मत आया करो इधर ! कोई
इस समय यह यहाँ पों-पों करने चले हैं।
नी ख़ैरियत चाहो।

ी जाती है।]

ी-रबड़ी !

ला तेज़ी से भागता हुआ गली में

…! आ गयी, आँधी आ गयी

र से दरवाज़ा बन्द होना
े दरवाज़े की चारपाइयों
मम्मी निकलती हैं।
ाज़े पर आती हैं।]

ठकुराइन : क्या है बहू ?

मम्मी : ज़रा चलकर सँभाल लो, अजय की मौसी की तबीयत बहुत ख़राब हो रही है।

ठकुराइन : हाँ…हाँ…चलो !

[भीतर से टिकिट बाबू की आवाज़ आती है।]

ठकुराइन : चलो मैं आ रही हूँ, अभी आयी !

[मम्मी का प्रस्थान, ठकुराइन भीतर लौटती है, फिर बाहर निकलकर जैसे ही बढ़ने को होती है, टिकट बाबू का प्रवेश।]

टिकिट बाबू : कहाँ जा रही हो इस तूफ़ान में ?

ठकुराइन : टोक दिया न ! बड़ी बुरी आदत है तुम्हारी।

टिकिट बाबू : वह तो है ही, लेकिन इस आफ़त में जा कहाँ रही हो ?

ठकुराइन : अजय की मौसी की तबीयत बहुत ख़राब हो गई है। दर्द से बेहोश हो रही है। ज़रा देखने जा रही हूँ।

टिकिट बाबू : इसी को गँवार औरत कहते हैं। तभी तो अजय के पापा और मम्मी तुम-जैसी औरतों को घास तक नहीं डालते !

ठकुराइन : अजी चुप रहो तुम ! तुम मर्दों को क्या मतलब इन बातों से। यह हम लोगों का मामला है।

टिकिट बाबू : है तो मामला तुम लोगों का। पर यह न कहना कि अजय की मम्मी ने तुम्हारे सिर का बाल नोंचा !

ठकुराइन : क्या बकते हो जी ! मम्मी एकदम से ख़राब ही हैं क्या। याद है, अपनी शकुन्तला बेटी जब बीमार हो गई थी। तुम तो ड्यूटी पर बाहर गए थे। रात-रात भर मम्मी बैठी रहती थीं शकुन्तला के सिरहाने !

टिकिट बाबू : तो जाओ तुम भी बैठो न !

ठकुराइन : मम्मी ख़ुद शकुन्तला को लेकर मुरादाबाद अस्पताल में गई थीं ? तुम्हें क्या पता किसके भीतर क्या है ! तुम तो बाहर-ही-बाहर देखते हो न !

[चली जाती हैं, मम्मी के घर में प्रवेश, टिकिट बाबू चुप खड़े रह जाते हैं ? क्षण-भर बाद ठकुराइन अपने संग अजय नीता को लिए आती है और अपने घर में जाने लगती है।]

टिकिट बाबू : अब यह क्या है ? क्या तूफ़ान है यह ?

ठकुराइन : चुप रहो जी ! (**पुकारती है**) शकुन्तला !

आवाज़ : (**भीतर से**) आयी अम्मा !

ठकुराइन : ले सँभाल इन बच्चों को !

[बहादुर का प्रवेश।]

ठकुराइन : बहादुर ! ले जा इन्हें अपने संग भीतर ! भूखे हैं, इन्हें खाना खिला

शकुन्तला !

बहादुर : चलो अजय, नीता चलो ! एक संग खाना खाएँगे।

[बहादुर के संग अजय-नीता का प्रस्थान।]

टिकिट बाबू : पागल तो नहीं हो गई तुम ?

ठकुराइन : पागल होंगे तुम ! जाओ अन्दर बच्चों को खाना खिलाओ ! मैं अभी आयी। पता है ? अजय की मौसी को बच्चा होने वाला है ! (**हँसती है, फिर जैसे गा पड़ती है**) 'जनमे हैं कुअँर कन्हैया, अवध में बाजे बधैया।'

[दौड़ी हुई अजय के घर में भाग जाती है। टिकिट बाबू खड़े रह जाते हैं। कुछ क्षणों बाद भीतर से बहादुर दौड़ आता है।]

बहादुर : बाबूजी···बाबूजी ! अजय और नीता को मैंने सारी दही-रबड़ी दे दी···। चलिए आप भी रोटी खा लीजिए।

टिकिट बाबू : वे लोग खाना खा रहे हैं ?

बहादुर : जी हाँ, खाना खा रहे हैं।

टिकिट बाबू : जाओ, तुम भी खा लो उनके संग।

[बहादुर अन्दर भाग जाता है। टिकिट बाबू फिर अकेले खड़े रह जाते हैं। कुछ देर के उपरान्त हँसती हुई प्रसन्न मन ठकुराइन निकलती हैं।]

ठकुराइन : सुना जी, बच्चा पैदा हुआ है अजय की मौसी को !

टिकिट बाबू : अच्छा···!

ठकुराइन : (**पुकारती हुई अपने घर में जाती हैं**) शकुन्तला ! ला तो ढोलक कहाँ है···।

[अन्दर से ढोलक लिए भागती है और मम्मी के घर में अदृश्य हो जाती है। और कुछ क्षणों बाद ढोलक पर यह गीत उभरता है—]

जनमे हैं कुअँर कन्हैया, अवध में बाजे बधैया।
ऊँचे चढ़ि के धगरिन पुकारे
कोई हैं नार छिनैया, अवध में बाजे बधैया।
दसरथ के चार बेटा हुए हैं
केकर होला बड़ैया, अवध में बाजे बधैया।
राम से लछमन, भरत शत्रुघन
रामा के होला बड़ैया, अवध में बाजे बधैया।

[इसी संगीत पर धीरे-धीरे परदा गिरता है।]

दूसरा दृश्य

[फिर वहीं, उसी स्थिति में परदा उठता है। रात
पर सिर झुकाए ठकुराइन बैठी हुई है—चुप चिनि
मुंशीजी आते हैं।]

मुंशीजी : ठकुराइन !···बहादुर की माँ !···ओ ब
नहीं ? मम्मी के घर से फिर कुछ हुआ है क्या ?
बताओ न !

[ठकुराइन बिना कुछ बोले चुपचाप अन्दर चली

मुंशीजी : अरे ! क्या बात हुई ? (**गली की ओर आवा**
खन्ना बाबू !

[चौधरी क़यामत हुसेन निकलते हैं।]

चौधरी : किसे पुकार रहे हैं मुंशीजी ?

मुंशीजी : कोई है ही नहीं यहाँ !

चौधरी : खन्ना बाबू सो गए होंगे कि···।

मुंशीजी : ठकुराइन चुपचाप यहाँ बैठी थीं। जैसे लगा
चाहा, वह घर में चली गयीं, कुछ बताया नहीं, पता

चौधरी : कुछ होगा मुंशी जी ! घर-गृहस्थी है, पता
रहता है !

[आगे बढ़ने लगते हैं।]

मुंशीजी : दूकान जा रहे हो चौधरी ?

चौधरी : नहीं ज़रा स्टेशन की ओर जा रहा हूँ।

[कुछ क्षणों बाद सामने से टिकिट बाबू और
जाता है।]

मुंशीजी : राम-राम टिकिट बाबू !

टिकट बाबू : राम-राम मुंशीजी।

मुंशीजी : ड्यूटी से लौट आए

टिकिट बाबू : छुट्टी लेकर

मुंशीजी : बात क्या है ?

टिकिट बाबू :
मौसी !

मुंशीजी : जी हाँ,

टिकिट बाबू :

सो ! एक संग खाना खाएँगे।

ा का प्रस्थान।]

ी गई तुम ?

ओ अन्दर बच्चों को खाना खिलाओ ! मैं अभी आयी।

को बच्चा होने वाला है ! (**हँसती है, फिर जैसे गा**

कन्हैया, अवध में बाजे बधैया।'

में भाग जाती है। टिकिट बाबू खड़े रह जाते हैं।
दुर दौड़ आता है।]

म और नीता को मैंने सारी दही-रबड़ी दे दी···।
लिए।

हे हैं ?

उनके संग।

टिकट बाबू फिर अकेले खड़े रह जाते हैं। कल देर
ठकुराइन निकलती हैं।]

जय की मौसी को !

ी हैं) शकुन्तला ! ला तो ढोलक कहाँ

म्मी के घर में अदृश्य हो जाती है। और
ा है—]

बधैया।

बधैया।

ा।

ा।

दूसरा दृश्य

[फिर वहीं, उसी स्थिति में परदा उठता है। रात के नौ बजे का समय है चारपाई पर सिर झुकाए ठकुराइन बैठी हुई है—चुप चिन्तित, जैसे रो रही हो, गली में मुंशीजी आते हैं।]

मुंशीजी : ठकुराइन !···बहादुर की माँ !···ओ बहू ! क्या बात है, बोलती क्यों नहीं ? मम्मी के घर से फिर कुछ हुआ है क्या ?···बोलो, क्या बात है ? मुझे बताओ न !

[ठकुराइन बिना कुछ बोले चुपचाप अन्दर चली जाती है।]

मुंशीजी : अरे ! क्या बात हुई ? (**गली की ओर आवाज़ देते हैं**) खन्ना बाबू ! ओ जी खन्ना बाबू !

[चौधरी क़यामत हुसेन निकलते हैं।]

चौधरी : किसे पुकार रहे हैं मुंशीजी ?

मुंशीजी : कोई है ही नहीं यहाँ !

चौधरी : खन्ना बाबू सो गए होंगे कि···।

मुंशीजी : ठकुराइन चुपचाप यहाँ बैठी थीं। जैसे लगा कि रो रही थीं। मैंने बुलाना चाहा, वह घर में चली गयीं, कुछ बताया नहीं, पता नहीं क्या बात है।

चौधरी : कुछ होगा मुंशी जी ! घर-गृहस्थी है, पता नहीं क्या-क्या कहाँ-कहाँ होता रहता है !

[आगे बढ़ने लगते हैं।]

मुंशीजी : दूकान जा रहे हो चौधरी ?

चौधरी : नहीं ज़रा स्टेशन की ओर जा रहा हूँ।

[कुछ क्षणों बाद सामने से टिकिट बाबू और बहादुर का प्रवेश, बहादुर भीतर जाता है।]

मुंशीजी : राम-राम टिकिट बाबू !

टिकट बाबू : राम-राम मुंशीजी।

मुंशीजी : ड्यूटी से लौट आए क्या ? क्या बात है बहादुर ?

टिकिट बाबू : छुट्टी लेकर आ रहा हूँ मुंशीजी ! बहादुर मुझे बुलाने गया था।

मुंशीजी : बात क्या है ? शुभ तो है न ?

टिकिट बाबू : शुभ तो नहीं है मुंशीजी ! मम्मी की छोटी बहन आयी थीं न, अजय की मौसी !

मुंशीजी : जी हाँ, जिन्हें अभी परसों रात को बच्चा पैदा हुआ है।

टिकिट बाबू : जी हाँ, आज सुबह उसका स्वर्गवास हो गया।

मुंशीजी : (**दुःख से**) च···च···च···च राम राम···राम ! ओ हो बड़ा बुरा हुआ !

[दरवाज़े पर आ ठकुराइन निःशब्द रो रही हैं ।]

टिकिट बाबू : बहुत कमज़ोर था बच्चा । अपने पूरे दिन के पहले ही हो गया था। शायद आठ ही महीने में !

मुंशीजी : सब ईश्वर की माया है टिकिट बाबू, और कुछ नहीं । जिसे चाहे जिलाए, जिसे चाहे मारे ! (**रुककर**) लेकिन यह बहादुर की माँ इस तरह क्यों रो रही हैं ?

टिकिट बाबू : कुछ न पूछिए मुंशीजी ! यहाँ तो ग़ज़ब की बात पैदा कर दी लोगों ने !

मुंशीजी : (**आश्चर्य से**) अच्छा ! अरे !!

टिकिट बाबू : मम्मी का कहना है कि ठकुराइन ने बच्चे पर जादू कर दिया, तभी वह चटपट मर गया । और मास्टर साहब—प्रोफ़ेसर सतसंगी का कहना है कि ठकुराइन ने गन्दे हाथों से बच्चे को छुआ था; उसे सेप्टिक या 'टिटनेस' हो गया।

मुंशीजी : आहा···आ···! ग़ज़ब हो गया यह तो !

टिकिट बाबू : इस गँवार औरत को यही दण्ड चाहिए। मान-न-मान मैं तेरा मेहमान ! ठीक कहा है लोमड़ी चली सगुन दिखावै, आपन सर कुत्तन से नोचवावै। (**रुककर**) खड़ी रोती क्या हो ? जाओ प्रीति दिखा आओ न ! मम्मी···मम्मी···मम्मी बड़ी अच्छी हैं । ढोलक लेकर और मंगल-सोहर गा आओ न !

मुंशीजी : वहू का क्या दोष इसमें टिकिट बाबू !

टिकिट बाबू : अब पता लगा कि नहीं वे लोग क्या हैं और तुम क्या हो ?

ठकुराइन : (**रुँधे कण्ठ से**) आज मैं जादू-टोनावाली हो गई !

टिकिट बाबू : अरे ! प्रीतिका कुछ तो दण्ड भोगोगी न !

मुंशीजी : टिकिट बाबू ! बड़े अजीब हैं ये लोग ! बड़ा बुरा हुआ !

टिकिट बाबू : इस गँवार औरत की वजह से आज मेरी गरदन नप गयी मुंशीजी ! बारहाँ मना किया इसे, लेकिन उस आँधी-तूफ़ान में भी यह न रुकी ! सारी रात दौड़ती भागती रही। और अब बैठकर रो रही है। (**चिढ़कर**) जैसे तेरे रोने का असर उन पर पड़ेगा ही । अरे वे आदमी नहीं, नासूर हैं नासूर !

[अपने दरवाज़े से प्रोफ़ेसर का प्रवेश ।]

प्रोफ़ेसर : क्या कहा ! ज़रा ज़बान सँभालकर बोलो ! कोई तमीज है कि नहीं। हमारे ऊपर इतनी बड़ी आफ़त पड़ी और तुम मुझे खरी-खोटी सुनाने खड़े हो !

टिकिट बाबू : जी हाँ मास्टर साहब, आप लोगों ने तो हम पर फूल बरसा दिये ! हम सीधे हैं, तभी तुम्हारी नज़रों में हम गन्दे और बत्तमीज हैं । जादू-टोना डालते हैं हम। लेकिन एक बार फिर से सोच लो मास्टर साहब अपनी ज़िन्दगी के बारे में, जो तुम जी रहे हो, वह तुम्हारी ज़िन्दगी नहीं है, नक़ल है, नाटक है, दिखावा है।

[प्रोफ़ेसर साहब घर में लौट चुके हैं ।]

मुंशीजी : छोड़ो ठाकुर साहब ! सिर मत धुनो भाई ! जब
गया तो···छोड़ो ! चुप रहो ठकुराइन···भूल जाओ
ये लोग नहीं !

[उसी क्षण मूँगफली वाला गली में से आवाज़ देता है

मूँगफलीवाला : ताज़ी भुनी मूँगफली ! चिनिया बदाम ।
का मेवा ! बालू की भुनी !

अजय : (**तेज़ी से निकलकर**) चलो इधर मूँगफलीवाले !

मूँगफलीवाला : लीजिए···लीजिए सरकार !

[अजय मूँगफली लेने लगता है, तभी धीरे से बहादुर

बहादुर : मुझे भी देना मूँगफलीवाले ! (**रुककर**) अबे
देता ?

टिकिट बाबू : इधर तो आ बहादुर ! क्यों कहा बत्तमीज

[एक चाँटे की मार, ठकुराइन दौड़कर पकड़ लेती है

ठकुराइन : खबरदार, जो अब मेरे बेटे को मारा !

टिकिट बाबू : अजय की नक़ल करेगा तू ? खाल उधेड़कर

मुंशीजी : राम···राम ! छोड़िए भी टिकिट बाबू !

टिकिट बाबू : कहाँ मिला तुझे यह पैसा ? किसने दिया ?

ठकुराइन : मैंने दिया···मैंने दिया ।

बहादुर : यह इकन्नी मुझे रास्ते में पड़ी मिली ।

[अजय और मूँगफलीवाले का चुपके से प्रस्थान ।]

टिकिट बाबू : पड़ी मिली है ! यह झूठ ।

[मारने लगते हैं, माँ और मुंशीजी रक्षा करते हैं ।]

बहादुर : आपकी पैण्ट से चुराई है ।

टिकिट बाबू : यह झूठ और चोरी !

[मारने दौड़ते हैं, माँ बहादुर को घर में

टिकिट बाबू : मेरे बच्चे कितने भी गन्दे,
चोरी करें, झूठ बोलें, मैं इन्हें
संग। (**रुककर**) मुंशीजी !
को !

मुंशीजी : ईश्वर बचाए

…च…च राम राम…राम ! ओ हो बड़ा बुरा हुआ !

न निःशब्द रो रही हैं ।]

बच्चा । अपने पूरे दिन के पहले ही हो गया था।

है टिकिट बाबू, और कुछ नहीं । जिसे चाहे जिलाए, जिसे
किन यह बहादुर की माँ इस तरह क्यों रो रही हैं ?
जी ! यहाँ तो ग़ज़ब की बात पैदा कर दी लोगों ने !
अरे !!
कि ठकुराइन ने बच्चे पर जादू कर दिया, तभी वह
र साहब—प्रोफ़ेसर सतसंगी का कहना है कि
को छुआ था; उसे सेप्टिक या 'टिटनेस' हो गया।
गया वह तो !
ही दण्ड चाहिए। मान-न-मान मैं तेरा मेहमान !
दिखावें, आपन सर कुत्तन से नोचवावें । (रुककर)
दिखा आओ न ! मम्मी…मम्मी…मम्मी बड़ी
सोहर गा आओ न !
बाबू !
या क्या है और तुम क्या हो ?
वाली हो गई !
योगी न !
! बड़ा बुरा हुआ !
मेरी गरदन नप गयी मुंशीजी ! बारहाँ
भी यह न रुकी ! सारी रात दौड़ती
(बिढ़कर) जैसे तेरे रोने का असर
है नासूर !

कोई तमीज है कि नहीं । हमारे
टी सुनाने खड़े हो !
पर फूल बरसा दिये ! हम
है । जादू-टोना डालते हैं
नी जिन्दगी के बारे मे.
है, नाटक है, दिखावा

[प्रोफ़ेसर साहब घर में लौट चुके हैं ।]

मुंशीजी : छोड़ो ठाकुर साहब ! सिर मत धुनो भाई ! जब तीर ही कमान से निकल गया तो…छोड़ो ! चुप रहो ठकुराइन…भूल जाओ भूल ! रोने से पसीजने वाले ये लोग नहीं !

[उसी क्षण मूँगफली वाला गली में से आवाज़ देता है ।]

मूँगफलीवाला : ताज़ी भुनी मूँगफली ! चिनिया बदाम । खरी भुनी मूँगफली ! मौसम का मेवा ! बालू की भुनी !

अजय : **(तेज़ी से निकलकर)** चलो इधर मूँगफलीवाले !

मूँगफलीवाला : लीजिए…लीजिए सरकार !

[अजय मूँगफली लेने लगता है, तभी धीरे से बहादुर का प्रवेश ।]

बहादुर : मुझे भी देना मूँगफलीवाले ! (**रुककर**) अबे बत्तमीज़, जल्दी क्यों नहीं देता ?

टिकिट बाबू : इधर तो आ बहादुर ! क्यों कहा बत्तमीज़ तूने ?

[एक चाँटे की मार, ठकुराइन दौड़कर पकड़ लेती हैं ।]

ठकुराइन : ख़बरदार, जो अब मेरे बेटे को मारा !

टिकिट बाबू : अजय की नक़ल करेगा तू ? खाल उधेड़कर रख दूँगा !

मुंशीजी : राम…राम ! छोड़िए भी टिकिट बाबू !

टिकिट बाबू : कहाँ मिला तुझे यह पैसा ? किसने दिया ? सच…सच बता ।

ठकुराइन : मैंने दिया…मैंने दिया ।

बहादुर : यह इकन्नी मुझे रास्ते में पड़ी मिली ।

[अजय और मूँगफलीवाले का चुपके से प्रस्थान ।]

टिकिट बाबू : पड़ी मिली है ! यह झूठ ।

[मारने लगते हैं, माँ और मुंशीजी रक्षा करते हैं ।]

बहादुर : आपकी पैण्ट से चुराई है ।

टिकिट बाबू : यह झूठ और चोरी !

[मारने दौड़ते हैं, माँ बहादुर को घर में खींच ले जाती हैं ।]

टिकिट बाबू : मेरे बच्चे कितने भी गन्दे, बत्तमीज़ लड़ाकू हों, मुझे मंजूर है, लेकिन ये चोरी करें, झूठ बोलें, मैं इन्हें ज़िन्दा नहीं रहने दूँगा । मारके मर जाऊँगा इन्हीं के संग । (**रुककर**) मुंशीजी ! मुझे पता है झूठ, चोरी के कीड़े कहाँ मिले हैं मेरे बच्चे को !

मुंशीजी : ईश्वर बचाए इन लोगों से !

टिकिट बाबू : अब मैं यहाँ एक क्षण नहीं रह सकता मुंशीजी ! छोड़ दे रहा हूँ यह जगह !

मुंशीजी : क्या बच्चों की तरह बात करते हो ठाकुर साहब ! ऐसे कोई छोड़कर भागता है ! हिम्मत से काम लो।

टिकिट बाबू : मेरे पास इतनी हिम्मत नहीं ! **(रुककर)** अच्छा नमस्ते मुंशीजी ! **(अन्दर प्रस्थान)**

मुंशीजी : लेकिन अभी ऐसा न करना ठाकुर साहब ! मैं राय दूँगा तुम्हें ! सुबह आऊँगी हाँ !

[गली में प्रस्थान। कुछ क्षणों के बाद भीतर से ठकुराइन निकलती हैं।]

ठकुराइन : **(मम्मी के बन्द दरवाज़े पर दस्तक)** अजय की मम्मी !···खोलो बहू !

मम्मी : कौन ? **(दरवाजा खोलकर बाहर आती हैं)** ठकुराइन ! क्या है ?···बोलो ! बोलो न ! क्या है ?···बोलो ठकुराइन !

ठकुराइन : हम लोग जा रहे हैं यहाँ से।

मम्मी : नहीं···नहीं···ऐसा नहीं ठकुराइन जीजी !

ठकुराइन : हमारी भूल-चूक माफ़ करना बहू !

[मम्मी चुप हैं, आँचल से आँखें पोंछती हैं।]

ठकुराइन : हम लोग रेलवे क्वार्टर में जा रहे हैं बहू ! आना, भेंट होगी ! **(रो पड़ती हैं)** जरूर आना !

[दोनों खड़ी निःशब्द रो रही हैं, भीतर से टिकिट बाबू का प्रवेश।]

टिकिट बाबू : अभी पेट नहीं भरा तुम्हारा ?···चलो इधर !

[ठकुराइन के संग खिंची हुई मम्मी भी चली आती हैं, तभी घर के भीतर से प्रोफ़ेसर का आना।]

प्रोफ़ेसर : वहाँ क्या कर रही हो ? चलो इधर !

[दोनों औरतें चुप खड़ी एक-दूसरे को देख रही हैं, प्रोफ़ेसर और टिकिट बाबू अपने-दरवाज़े पर खड़े हैं; तेज़ी से परदा गिरता है।]

दो मन चाँद

पात्र

उत्पल
रूपधन
बाबूजी
सरोज
दो आदमी
मालिक दादा
चौकीदार

यहां एक क्षण नहीं रह सकता मुंशीजी ! छोड़ दे रहा हूँ यह

ी तरह बात करते हो ठाकुर साहब ! ऐसे कोई छोड़कर भागता
म लो।

इतनी हिम्मत नहीं ! (रुककर) अच्छा नमस्ते मुंशीजी !

न करना ठाकुर साहब ! मैं राय दूंगा तुम्हें ! सुबह आऊँगी

कुछ क्षणों के बाद भीतर से ठकुराइन निकलती हैं।]

दरवाजे पर दस्तक) अजय की मम्मी ! ···खोलो बहू !
खोलकर बाहर आती हैं) ठकुराइन ! क्या है ? ···बोलो !
बोलो ठकुराइन !
वहां से।
ठकुराइन जीजी !
करना बहू !
पोंछती है।]
जा रहे हैं बहू ! आना, भेंट होगी ! (रो पड़ती

भीतर से टिकिट बाबू का प्रवेश।]
ा ? ···चलो इधर !
ी भी चली आती हैं, तभी घर के भीतर से

!

ती हैं, प्रोफेसर और टिकिट बाबू अपने-
।]

दो मन चाँदनी

पात्र

उत्पल
रूपधन
बाबूजी
सरोज
दो आदमी
मालिक दादा
चौकीदार

[स्थान : पार्क। पूरे चाँद की रात का पहला पहर, अर्थात् यही नौ-सवा नौ बजे रात का समय। दृश्य में दो बेंचें दिखाई पड़ रही हैं। पहली बेंच बीचो-बीच है, दूसरी पीछे दायीं ओर। बायीं ओर पुष्प-भरा कुंज जैसा कुछ दिखाई दे रहा है।

पीछे की बेंच पर दो आदमी बिलकुल फैलकर बैठे है और लगातार बीड़ी पी रहे हैं और आपस में कुछ भेद-भरी बातें करते जा रहे हैं।

बीच की बेंच पर एक नवयुवक सज्जन, मुँह ऊपर किए हुए एकाग्र दृष्टि से चन्द्रमा देख रहे हैं, समस्त सुध-बुध जैसे खोए हुए।

थोड़ी देर बाद एक बाबूजी, अपनी पत्नी के संग पार्क में टहलते हुए प्रविष्ट होते हैं।]

बाबूजी : (बीच की बेंच की ओर बढ़ते हुए) आओ सरोज, यहाँ बैठें। देखता हूँ तुम किस तरह जल्दी थक जाती हो। चलो, बैठो। कितनी अच्छी चाँदनी है आज! अक्तूबर की चाँदनी!

सरोज : वहाँ कहाँ बैठोगे ? जगह कहाँ है ?

बाबूजी : तुम इधर तो आओ पहले! बाबूजी एक किनारे खिसक जाएँगे, तमाम जगह निकल आएगी।

[सरोज पति के पास आ जाती है। बाबूजी बेंच के पास आकर उस पर बैठे हुए सज्जन का मुह देखते हैं।]

सरोज : (परेशान होकर) क्या देख रहे हैं इस तरह आप ?

बाबूजी : मैं देख रहा हूँ कि यह सज्जन इस तरह क्या देख रहे हैं ?

सरोज : आपको क्या मतलब ? आपको बैठना हो तो बैठिए, नहीं तो चलिए। मैं इस तरह खड़ी नहीं रहूँगी। कहाँ आ गए आप !

बाबूजी : (बैठे हुए सज्जन को पुकारते हुए) महाशयजी ! महाशयजी ! सुनिए साहब ! जरा एक तरफ़ हो जाइए। सुनिए···सुनते हैं कि नहीं ? **(सरोज से)** यह तो सुन ही नहीं रहे हैं ! **(फिर पुकारते हुए)** सुनते हैं कि नहीं साहब ! अरे, सुनिए साहब ! हमारी ओर देखिए, ज़रा एक तरफ़ हो जाइए ! हम 'फ़ेमिली' के साथ हैं ! **(सरोज से)** यह तो अजीब आदमी हैं ! सुनते ही नहीं ! बहरे तो नहीं हैं ! मुँह खोले हुए न जाने क्या ऊपर कर रहे हैं !

[दूसरी बेंच का पहला आदमी बोलता है।]

पहला आदमी : अजी साहब, यह बहरे नहीं हैं। चाँदनी खा रहे हैं, चाँदनी !

दूसरा आदमी : खा नहीं रहे हैं, पी रहे हैं पी ! (
जी, उसी के इलाज में यह चाँदनी खा रहे हैं

बाबूजी : (आश्चर्य से) चाँदनी खा रहे हैं !

सरोज : (आश्चर्य से) चाँदनी पी रहे हैं !

बाबूजी : पर कब तक चाँदनी खाएँगे यह ? (पुक
जाइए, हम लोग भी बैठना चाहते हैं ! अरे,

सरोज : चलिए, चलें यहाँ से।

बाबूजी : आओ बैठ जाओ। तुम उधर बैठ जाओ

सरोज : और बीच में यह···। मैं इस तरह नहीं बै

बाबूजी : बैठ भी जाओ, किया क्या जाए। यह सुन
तुम उधर बैठ जाओ।

सरोज : इनकी बायीं ओर !···मैं जा रही हूँ घर
रही थी, उधर चलिए, वहाँ लॉन में बैठेंगे।

बाबूजी : कहीं घास पर बैठने लायक नहीं है, बा
तभी देखो न, कितने कीड़े उड़ रहे हैं।

[दूसरी बेंच के दोनों आदमी सहसा हँसते हैं।

पहला आदमी : बाबूजी, आप कहते हैं कि कीड़े उ
चिड़िया के बच्चे की तरह मुँह खोले हुए हैं—
चाँदनी के साथ सबका जायका ठीक है !

दूसरा आदमी : बाबू साहब, आप लोग यहाँ आ जा
आ जाइए न !

सरोज : (धीरे से) मैं वहाँ नहीं जाऊँगी।

[पृष्ठभूमि से कोई पुकारता आ रहा है—]

पुकार : उत्तू ! ओ उत्तू ! उत्पलकुमार !

रूपधन : (प्रवेश कर) उत्पल ! ओ हो, यहाँ बै
भई ? (पास आकर) उत्पल, यह
अरे, मुँह बन्द कर ले यार, कीड़े
संकल्प पाकर, निराश यह लोगों
बैठा है ? आप लोगों को

बाबूजी : हम लोग तो यहाँ
चाहते थे, पर यह
ध्यान रखें ! यह
चाहिए।

रूपधन : आइए बैठि

रात का पहला पहर, अर्थात् यही नौ-सवा नौ बजे
ें दिखाई पड़ रही हैं। पहली बेंच बीचो-बीच है,
ओर पुष्प-भरा कुंज जैसा कुछ दिखाई दे रहा है।
मी बिलकुल फैलकर बैठे है और लगातार बीड़ी
-भरी बातें करते जा रहे हैं।
क सज्जन, मुँह ऊपर किए हुए एकाग्र दृष्टि से
से खोए हुए।
अपनी पत्नी के संग पार्क में टहलते हुए प्रविष्ट
) आओ सरोज, यहाँ बैठें। देखता हूँ तुम
बैठो। कितनी अच्छी चाँदनी है आज !
क किनारे खिसक जाएँगे, तमाम जगह
बेंच के पास आकर उस पर बैठे हुए
आप ?
देख रहे हैं ?
बैठिए, नहीं तो चलिए। मैं इस
महाशयजी ! सुनिए साहब !
? (सरोज से) यह तो सुन
नहीं साहब ! अरे, सुनिए
! हम 'फ़ैमिली' के साथ
! बहरे तो नहीं हैं !
चाँदनी !

दूसरा आदमी : खा नहीं रहे हैं, पी रहे हैं पी ! (**हँस पड़ता है**) कोई बीमारी हो गई है जी, उसी के इलाज में यह चाँदनी खा रहे हैं।

बाबूजी : (**आश्चर्य से**) चाँदनी खा रहे हैं !

सरोज : (**आश्चर्य से**) चाँदनी पी रहे हैं !

बाबूजी : पर कब तक चाँदनी खाएँगे यह ? (**पुकारते हुए**) हे महाशयजी, ज़रा खिसक जाइए, हम लोग भी बैठना चाहते हैं ! अरे, जैसे सुनते ही नहीं !

सरोज : चलिए, चलें यहाँ से।

बाबूजी : आओ बैठ जाओ। तुम उधर बैठ जाओ, मैं इधर बैठ जाता हूँ।

सरोज : और बीच में यह···। मैं इस तरह नहीं बैठती।

बाबूजी : बैठ भी जाओ, किया क्या जाए। यह सुनते ही नहीं। (**बायीं ओर बैठते हुए**) तुम उधर बैठ जाओ।

सरोज : इनकी बायीं ओर !···मैं जा रही हूँ घर। आए भी तो आज कहाँ ! मैं कह रही थी, उधर चलिए, वहाँ लॉन में बैठेंगे।

बाबूजी : कहीं घास पर बैठने लायक नहीं है, बारिश हुई है न, सब गीला हो गया है। तभी देखो न, कितने कीड़े उड़ रहे हैं।

[दूसरी बेंच के दोनों आदमी सहसा हँसते हैं।]

पहला आदमी : बाबूजी, आप कहते हैं कि कीड़े उड़ रहे हैं ! महाशयजी को देखिए न, चिड़िया के बच्चे की तरह मुँह खोले हुए हैं—कितने कीड़े-मकोड़े आते-जाते रहें, चाँदनी के साथ सबका जायका ठीक है !

दूसरा आदमी : बाबू साहब, आप लोग यहाँ आ जाइए। आइए बैठिए, हम लोग चलेंगे। आ जाइए न !

सरोज : (**धीरे से**) मैं वहाँ नहीं जाऊँगी।

[पृष्ठभूमि से कोई पुकारता आ रहा है—]

पुकार : उत्तू ! ओ उत्तू ! उत्पलकुमार !

रूपधन : (**प्रवेश कर**) उत्पल ! ओ हो, यहाँ बैठा है ? अरे उत्तू, यह क्या कर रहा है भई ? (**पास आकर**) उत्पल, यह क्या कर रहा है ? ऊपर क्या देख रहा है ? अरे, मुँह बन्द कर ले यार, कीड़े उड़ रहे हैं कीड़े ! (**उत्पल को निर्विकार दृढ़ संकल्प पाकर, निराश वह लोगों से बातें करने लगता है**) कब से यह यहाँ इस तरह बैठा है ? आप लोगों को पता है ?

बाबूजी : हम लोग तो यहाँ अभी आए। यहाँ बेंच पर हम लोग कुछ क्षणों के लिए बैठना चाहते थे, पर यह सुनते ही नहीं। इन्हें चाहिए कि यह सार्वजनिक अधिकारों का ध्यान रखें ! यह बेंच सबके लिए है। इन्हें किनारे बैठकर योगाभ्यास करना चाहिए।

रूपधन : आइए बैठिए, मैं अभी इन्हें खिसकाता हूँ। (**यह कहते-कहते उत्पल कुमार को**

एक किनारे खींच देता है) आइए, तशरीफ़ रखिए।

[पति-पत्नी दायीं ओर बैठते हैं, दूसरी बेंच के आदमी बहुत तेज़ी से हँसते हैं।]

बाबूजी : आप इनके दोस्त हैं ?

रूपधन : जी हाँ, हम लोग एक संग पढ़ते हैं। **(उत्पल से)** उत्तू ! चल, घर चलें। बड़ी देर हो गई है यार ! एक बहुत ज़रूरी बात तुझसे बतानी है। मालिक दादा तुझसे मिलना चाहते हैं। अपने संग ज्योत्स्ना को भी ले आए थे।

बाबूजी : इनकी तबीयत ठीक है न ?

रूपधन : जी हाँ, बिलकुल ठीक है।

बाबूजी : मेरे कहने का मतलब **(सिर का संकेत करके भाव प्रकट करते हैं।)**

रूपधन : जी हाँ, बिलकुल ठीक है। बी० ए० फ़ाइनल में ये पढ़ते हैं। इनके पिताजी, ध्यानचन्द्र अग्रवाल, एडवोकेट का नाम आपने सुना होगा ?

बाबूजी : जी हाँ, बिलकुल ! इतने प्रसिद्ध आदमी को कौन नहीं जानेगा ? तो यह अग्रवाल साहब के लड़के हैं ?

रूपधन : जी हाँ, सबसे छोटे लड़के हैं यह। **(उत्पल से)** उत्पल ! ओ उत्पल ! उठता है कि नहीं ? भई, देर हो रही है। सब लोग तुझे ढूंढ़ रहे हैं।

बाबूजी : ये लोग बताते हैं कि यह चाँदनी पी रहे हैं !

रूपधन : जी हाँ, ऐसे ही एक बात हो गई है इनके जीवन में।

बाबूजी : अच्छा ! कोई बहुत आदर्श बात घटी होगी, क्योंकि मुझे मालूम है, अग्रवाल साहब के परिवार में तो एक-से-एक प्रसिद्ध लोग हैं। एडवोकेट साहब स्वयं कितने बड़े दानी पुरुष हैं ! उनके बड़े भाई साहब विश्वविद्यालय में हैं। छोटे भाई साहब सुना है, साधु हो गए हैं। कितना उज्ज्वल इतिहास है इस परिवार का ! एक-से-एक विद्वान्, दानी, महात्मा और दर्शनीय पुरुष !

रूपधन : उत्पल ! ओ उत्पल ! अरे, अब बहुत हो गया यार ! अब बस भी करो !

बाबूजी : कितने दृढ़ संकल्प के व्यक्ति यह भी हैं ! योगियों की भाँति, मैं देख रहा हूँ, यह कब से ध्यान लगाए चन्द्रमा को अपलक देख रहे हैं ! औरों के लिए यह कर सकना असम्भव है। साधारण बात नहीं है यह। कौन आजकल यह करता है।

रूपधन : बात यह है कि हमारे संग एक लड़की पढ़ती है, ज्योत्स्ना चक्रवर्ती ! उसी से इनका प्रेम हो गया है।

[सब लोग अवाक्-से देखते ही रह जाते हैं।

सरोज : **(उठती हुई)** उठिए, चलिए यहाँ से। मैं यहाँ नहीं बैठूंगी। चलिए, अब घर चलिए न !

[दूसरी बेंच के आदमी अत्यधिक जागरूक हो जाते हैं।]

पहला आदमी : ज्योत्स्ना चक्रवर्ती···वह मालिक दादा, जिसके बीड़ी के कारखाने हैं !

रूपधन : हाँ, वही। पर तुमसे क्या मतलब ? दूसरों की
रुचि क्यों ?

[सहसा उत्पल कुमार का ध्यान भंग होता है। मुं

रूपधन : आप लोग क्या समझेंगे ? सार्वजनिक स्था
हँसना !

उत्पल : **(जैसे स्वप्न में डूबे हुए)** आप लोग क्यों विघ्
को कोई कष्ट तो नहीं हो रहा है ? या कभी
माँगता हूँ।

रूपधन : महाराज, घर चलिए अब ! मैं कब से ढूंढ़ रह
पर आए थे—ज्योत्स्ना को भी संग लाए थे।

उत्पल : ज्योत्स्ना को भी ! ज्योत्स्ना···ज्योत्स्ना···तु
तल तक तू बिछी हुई है। अहह, कितनी स्वर्गिक
ज्योत्स्ना ! तेरे मधुमय चरणों पर मेरा सब कु
रूपी मेरा हृदय, केवल उत्सर्ग देने हेतु असंख्य त

बाबूजी : सरोज ! उठो, चलो चलें। क्या देख रहे हो

सरोज : ज़रा-सी देर बैठिए न !

रूपधन : अच्छा, चलो अब, सब प्रतीक्षा में हैं।

उत्पल : प्रतीक्षा में ! ज्योत्स्ना और प्रतीक्षा ! प्रेमपा

[भावावेश में गाने लगते हैं—]

ओ चाँद, चोखेर जलेर लाग्लो
जोयार दुखेर
हलो कानाय कानाय कानाकानि
एइ पारे ओ
आमार तरी छिलो चेनार
बाँधन ताहार
तारे हावाय-हावाय
कोन्

[दूसरी बेंच के दोनों आदमी
तीन बार कुछ झाँक कर
कर फिर चन्द्रमा को

बाबूजी : **(उठते हुए)**
बच्चे हमारी प्रती

सरोज : वह
से बैठें।

ता है) आइए, तशरीफ़ रखिए।

ीर बैठते हैं, दूसरी बेंच के आदमी बहुत तेज़ी से हँसते हैं।]

त हैं ?

ग एक संग पढ़ते हैं। (उत्पल से) उत्तू ! चल, घर चलें। बड़ी ! एक बहुत जरूरी बात तुझसे बतानी है। मालिक दादा तुझसे पने संग ज्योत्स्ना को भी ले आए थे।

ठीक है न ?

ठीक है।

तलब (सिर का संकेत करके भाव प्रकट करते हैं।)

ठीक है। बी० ए० फ़ाइनल में ये पढ़ते हैं। इनके पिताजी, एडवोकेट का नाम आपने सुना होगा ?

! इतने प्रसिद्ध आदमी को कौन नहीं जानेगा ? तो यह के हैं ?

लड़के हैं यह। (उत्पल से) उत्पल ! ओ उत्पल ! उठता र हो रही है। सब लोग तुझे ढूंढ़ रहे हैं।

कि यह चाँदनी पी रहे हैं !

बात हो गई है इनके जीवन में।

आदर्श बात घटी होगी, क्योंकि मुझे मालूम है, अग्रवाल एक-से-एक प्रसिद्ध लोग हैं। एडवोकेट साहब स्वयं कितने बड़े भाई साहब विश्वविद्यालय में हैं। छोटे भाई साहब कितना उज्ज्वल इतिहास है इस परिवार का ! एक-से- और दर्शनीय पुरुष !

रे, अब बहुत हो गया यार ! अब बस भी करो !

यह भी है ! योगियों की भाँति, मैं देख रहा हूँ, को अपलक देख रहे हैं ! औरों के लिए यह कर नहीं है यह। कौन आजकल यह करता है।

लड़की पढ़ती है, ज्योत्स्ना चक्रवर्ती ! उसी से

हैं।

मैं यहाँ नहीं बैठूँगी। चलिए, अब घर

ते हैं।]

जिनके बीड़ी के कारखाने

रूपधन : हाँ, वही। पर तुमसे क्या मतलब ? दूसरों की बातों में आप लोगों को इतनी रुचि क्यों ?

[सहसा उत्पल कुमार का ध्यान भंग होता है। मुँह पोंछते हुए आँख खोलते हैं।]

रूपधन : आप लोग क्या समझेंगे ? सार्वजनिक स्थान पर लगातार बीड़ी पीना और हँसना !

उत्पल : (**जैसे स्वप्न में डूबे हुए**) आप लोग क्यों विघ्न डाल रहे हैं ? मुझसे आप लोगों को कोई कष्ट तो नहीं हो रहा है ? या कभी हुआ है ? मैं आप लोगों से क्षमा माँगता हूँ।

रूपधन : महाराज, घर चलिए अब ! मैं कब से ढूंढ़ रहा हूँ आपको ! मालिक दादा घर पर आए थे—ज्योत्स्ना को भी संग लाए थे।

उत्पल : ज्योत्स्ना को भी ! ज्योत्स्ना...ज्योत्स्ना...तुम सर्वत्र हो ! अवनि से अम्बर तल तक तू बिछी हुई है। अहह, कितनी स्वर्गिक शांति है तुझमें ! अमृतमय रसमय ज्योत्स्ना ! तेरे मधुमय चरणों पर मेरा सब कुछ न्योछावर है। तेरे लिए, सागर रूपी मेरा हृदय, केवल उत्सर्ग देने हेतु असंख्य तरंगों के बीच समर्पित है।

बाबूजी : सरोज ! उठो, चलो चलें। क्या देख रहे हो ? चलो उठो !

सरोज : ज़रा-सी देर बैठिए न !

रूपधन : अच्छा, चलो अब, सब प्रतीक्षा में हैं।

उत्पल : प्रतीक्षा में ! ज्योत्स्ना और प्रतीक्षा ! प्रेमपाश अद्भुत है !

[भावावेश में गाने लगते हैं—]

ओ चाँद, चोखेर जलेर लाग्लो
जोयार दुखेर पारावारे,
हलो कानाय कानाय कानाकानि
एइ पारे ओइ पारे,
आमार तरी छिलो चेनारकूले
बाँधन ताहार गेलो खुले,
तारे हावाय-हावाय निये गेलो
कोन् अचेनार धारे !

[दूसरी बेंच के दोनों आदमी उठकर एक ओर चले जाते हैं। इधर-उधर से दो-तीन बार कुछ झाँक कर देखते हैं, फिर अदृश्य हो जाते हैं। उत्पल गीत समाप्त कर फिर चन्द्रमा को देखने में लगता है।]

बाबूजी : (**उठते हुए**) सरोज, उठो अब ! घर पहुँचने में बहुत देर हो जाएगी। चारों बच्चे हमारी प्रतीक्षा कर रहे होंगे।

सरोज : वह देखो, वह बेंच बिलकुल खाली हो गई। चलो वहाँ कुछ देर आराम से बैठें।

बाबूजी : जैसी तुम्हारी इच्छा । वैसे देर हो जाएगी ।

सरोज : थोड़ी देर कुछ शान्ति से बैठें । चलो उठो ।

[पति-पत्नी दूसरी बेंच पर आराम से बैठते हैं ।]

रूपधन : उत्पल ! अब यहां क्या कर रहे हो ? मैंने कहा न, तुम्हें जल्दी से घर पहुँचना है ।

उत्पल : मेरे जीवन में कोई जल्दी नहीं है । दौड़-धूप, संघर्ष, आशा-निराशा तुम्हारे जीवन के अंग हैं, मेरे जीवन में इनका समावेश नहीं । मैं चिर-विरह, चिर-शान्ति और चिर-मिलन का पथिक हूँ—प्रतीक्षा और आत्म-साधना ही मेरे जीवन का अमृत पाथेय है ।

रूपधन : चाँदनी से अभी जी नहीं भरा क्या ?

उत्पल : कभी नहीं, कभी नहीं ! देखो रूपधन, तुम ऐसी बातें मुझसे कभी न किया करो । मुझे आन्तरिक कष्ट होता है ऐसे भौतिकवादी प्रश्नों से । भला सोचो तो सही, चकोर कभी चन्द्र से अपना जी भर पाता है ! चकोर का चन्द्र देखना एक शाश्वत कार्य है, जिसकी कभी समाप्ति नहीं, कभी अन्त नहीं ।

रूपधन : सो तो सब ठीक है । पर इस समय तुम्हें मेरे संग घर चलना है । (**रुककर**) अरे, वहाँ ज्योत्स्ना आई है, ज्योत्स्ना, शरीर और रूपवाली, शोभा और सुन्दरता वाली । साक्षात् आई है, साक्षात् !

उत्पल : यहाँ भी साक्षात् खड़ी है । आओ दिखाऊँ तुम्हें । (**आकाश की ओर दिखाता हुआ**) देखो वह ज्योत्स्ना ।

[पृथ्वी पर चारों ओर दिखाता हुआ ।)

देखो सर्वत्र, ज्योत्स्ना ही ज्योत्स्ना ?

रूपधन : मुझे तो कुछ नहीं दीखता !

उत्पल : प्रेम की आँखों से देखो ।

रूपधन : वे आँखें मेरे पास नहीं हैं । चलते हो कि नहीं ? मैं जाता हूँ ।

उत्पल : अवश्य जाओ ।

रूपधन : तुम यहाँ क्या करोगे, क्या मैं जान सकता हूँ ?

उत्पल : तुम मेरे अनन्य मित्र हो, बात यह है कि, मैं अभी इस स्वर्गिक चाँदनी में और···

रूपधन : कितनी देर से तो यहाँ बैठे-बैठे चाँदनी का सेवन कर रहे थे !

उत्पल : अभी तो केवल एक ही मन देख सका है । सोचो भला, एक मन से इस चाँदनी का भार क्या हलका होगा ! एक मन मेरे लिए, एक मन ज्योत्स्ना के लिए । समझे, रूपधन ! मुझे दो मन की अपेक्षा है ।

रूपधन : अच्छा भइया उत्तू, मैं तो चला ! मुझसे वे लोग पूछेंगे तो मैं बता दूंगा कि··· बता दूंगा कि···

उत्पल : क्या ?

रूपधन : कि तुम दो मन चाँदनी खाकर लौटोगे !

उत्पल : छी छी छी ! कैसी भाषा का प्रयोग करते
चाँदनी केवल उपासना भाव है । यह ऐसा मो
कर सकता । जो केवल अनुभूति में लायी जा सक

रूपधन : (**जाते-जाते**) मैं कहे जाता हूँ, लोग तुम्हें
ठीक उसी रास्ते पर चल रहे हो ।

उत्पल : कहें, लोग अवश्य मुझे पागल कहें ! मुझे
मीरा की भाँति हूँ ।

रूपधन : क्या कहा, क्या कहा ? अपने-आपको तुम
होश में आओ उत्पल !

उत्पल : मैं होश में हूँ ।

रूपधन : अच्छा, एक बात सुन लो, तब तो तुम चलो
पिता मालिक दादा तुम्हारे पापा के पास इस
तुम्हारी शादी करना चाहते हैं ।

उत्पल : क्या कहा ? ज्योत्स्ना से मेरा विवाह ! ज्
हँसो) हमारा सम्बन्ध विवाह से ऊपर का है ।
जिसे न समाज देख सकता है, न जिसे मृत्यु स
है ? क्या यह हमारे प्रेम से बड़ा है ? कभी न
करता है । उसे छोटा बनाता है । रूपधन, समझ
छुआ है उसे वस्तु से क्या मोह ?

रूपधन : अच्छा बाबा, मैं चला ।

[रूपधन का प्रस्थान ।]

उत्पल : (**अपने-आप में**) **ज्योत्स्ना ! ज्योत्स्ना !**

[कहते-कहते **वह पुनः मुँह ऊपर किए**

बाबूजी : (**दूसरी बेंच से**)

उत्पल : (**मुद्रा**

ज्योत्स्ना—

प्राप्त होता है

हम लोग

। कैसे देर हो जाएगी ।
से बैठें । चलो उठो ।

र आराम से बैठते हैं ।]

या कर रहे हो ? मैंने कहा न, तुम्हें जल्दी से घर

ी नहीं है । दौड़-धूप, संघर्ष, आशा-निराशा तुम्हारे
में इनका समावेश नहीं । मैं चिर-विरह, चिर-शान्ति
हूँ—प्रतीक्षा और आत्म-साधना ही मेरे जीवन का

रा क्या ?

खो रूपधन, तुम ऐसी बातें मुझसे कभी न किया
ा है ऐसे भौतिकवादी प्रश्नों से । भला सोचो तो
जी भर पाता है ! चकोर का चन्द्र देखना एक
प्ति नहीं, कभी अन्त नहीं ।
समय तुम्हें मेरे संग घर चलना है । (रुककर)
ना, शरीर और रूपवाली, शोभा और सुन्दरता

दिखाऊँ तुम्हें । (आकाश की ओर दिखाता

? मैं जाता हूँ ।

?

भी इस स्वर्गिक चाँदनी में

कर रहे थे !
ा, एक मन से इस चाँदनी
मन ज्योत्स्ना के लिए ।

ो मैं बता दूंगा कि···

उत्पल : क्या ?

रूपधन : कि तुम दो मन चाँदनी खाकर लौटोगे !

उत्पल : छी छी छी ! कैसी भाषा का प्रयोग करते हो तुम ! कोई चाँदनी खाता है । चाँदनी केवल उपासना भाव है । यह ऐसा सौन्दर्य है, जिसे कोई स्पर्श तक नहीं कर सकता । जो केवल अनुभूति में लायी जा सकती है ।

रूपधन : (**जाते-जाते**) मैं कहे जाता हूँ, लोग तुम्हें पागल कहने लगेंगे, पागल ! तुम ठीक उसी रास्ते पर चल रहे हो ।

उत्पल : कहें, लोग अवश्य मुझे पागल कहें ! मुझे डर किसका है ? मैं तो राधा और मीरा की भाँति हूँ ।

रूपधन : क्या कहा, क्या कहा ? अपने-आपको तुम औरत की उपमा देते हो ? अरे, होश में आओ उत्पल !

उत्पल : मैं होश में हूँ ।

रूपधन : अच्छा, एक बात सुन लो, तब तो तुम चलोगे घर ! (**रुककर**) ज्योत्स्ना के पिता मालिक दादा तुम्हारे पापा के पास इसलिए आए हैं कि वह ज्योत्स्ना से तुम्हारी शादी करना चाहते हैं ।

उत्पल : क्या कहा ? ज्योत्स्ना से मेरा विवाह ! ज्योत्स्ना और उत्पल ! (**दार्शनिक हँसी**) हमारा सम्बन्ध विवाह से ऊपर का है । हम दोनों उस महाराग में बँधे हैं, जिसे न समाज देख सकता है, न जिसे मृत्यु समाप्त कर सकती है । विवाह क्या है ? क्या यह हमारे प्रेम से बड़ा है ? कभी नहीं । विवाह तो प्रेम को कलंकित करता है । उसे छोटा बनाता है । रूपधन, समझने की कोशिश करो, जिसने भाव छुआ है उसे वस्तु से क्या मोह ?

रूपधन : अच्छा बाबा, मैं चला ।

[रूपधन का प्रस्थान ।]

उत्पल : (**अपने-आप में**) ज्योत्स्ना ! ज्योत्स्ना !

[कहते-कहते वह पुनः मुँह ऊपर किए हुए चाँदनी का सेवन करने लगता है ।]

बाबूजी : (**दूसरी बेंच से**) सुनिए महाशयजी, विघ्न के लिए क्षमा कीजिए !

उत्पल : (**मुद्रा त्यागते हुए**) विघ्न की कोई बात नहीं । बात यह है कि मैं और मेरी ज्योत्स्ना—दोनों को यह पूनम की रात, जबकि यह कलाधर अपनी सम्पूर्णता को प्राप्त होता है, इसकी रूपराशि को अपलक निहारते रहना, अत्यधिक प्रिय है । हम लोग पिछले दो वर्षों से सदा इस निर्मल चाँदनी का युगल हृदय और युगल नयन से स्पर्श करते रहे हैं । पर अब निर्मम और अज्ञानी समाज ने मेरी ज्योत्स्ना को घर में बन्द कर रखना चाहा है ! पर उसे क्या मालूम, मेरी ज्योत्स्ना को कौन बाँध सकता है ? जो स्वभाव से, मूल से और जन्म से मुक्त है, स्वतन्त्र है, अबाध है, उसे कौन-सी शक्ति बाँध सकती है ! वह हर क्षण मेरे संग है । ज्योतिर्मय, सुन्दरमय···!

[अपलक ऊपर देखने लगते हैं।]

बाबूजी : सुनिए तो, मैं जो पूछना चाहता था वह तो रह ही गया !

उत्पल : पूछिए, जल्दी कीजिए। अभय होकर प्रश्न कीजिए।

बाबूजी : जब ज्योत्स्ना के माँ-बाप···

उत्पल : (**बीच ही में**) आप 'ज्योत्स्ना' मत कहिए। इस तरह कहने का आपको कोई अधिकार नहीं ! आप कहिए, 'सुश्री कुमारी ज्योत्स्ना जी !

बाबूजी : वही वही ! जब उनके माँ-बाप अपनी पुत्री···

उत्पल : (**पुनः रोकते हुए**) अपनी 'प्रिय पुत्री' कहिए।

बाबूजी : जी हाँ, वही अपनी प्रिय पुत्री से आपका विवाह करना चाहते हैं, तो फिर अब क्या है ? प्रेम का विवाह में बदल जाना, बड़ी अमूल्य और महान् घटना है। (**अपनी पत्नी की ओर संकेत कर**) हम दोनों में भी पहले प्रेम हुआ है, फिर विवाह।

उत्पल : अच्छा !

बाबूजी : प्रेम का विकास विवाह में हो जाना, भारतीय प्रेम-मर्यादा के अनुकूल ही है।

उत्पल : आपके कितने बाल-बच्चे हैं ?

बाबूजी : अभी चार हैं।

उत्पल : अब सोचिए, आपकी क्या परेशानी है ! प्रिय नन्हे-मुन्नों को घर छोड़कर आप दोनों अपनी-अपनी जान छुड़ाकर यहाँ आए होंगे !

सरोज : (**बीच ही में**) चलिए, उठिए, अब घर चलिए ! बहुत देर हो गई। बच्चे रास्ता देख रहे होंगे।

उत्पल : देखिए दुर्दशा ! विवाह ने एकान्त प्रेम को नष्ट करके टुकड़े-टुकड़े कर दिए। प्रेमिका माँ बन गई, प्रेम वात्सल्य में बदल गया और वात्सल्य के भी चार भाग हो गए—चारों बच्चों के नाम अलग-अलग ! फिर देखिए, आपका प्रेम परेशानियों में फँस गया—बीमारी, दवा, पढ़ाई, खाना, कपड़ा, दफ्तर ! (**रुककर**) अब देखिए, बाबूजी आपका प्रेम कह रहा है कि थोड़ी देर अभी और यहाँ चाँदनी में बैठें ! माँजी का प्रेम कह रहा है कि, नहीं घर चलो, बच्चे रो रहे होंगे ! (**रुककर**) तो मेरे कहने का मतलब यह कि, क्रूर विवाह ने कोमल प्रेम का गला घोंट दिया न ! (**रुककर**) मैंने इस विषय पर बहुत अध्ययन और विवेचन किया है—चारों ओर से आँकड़े एकत्रित किए हैं, तब मैं इस निष्कर्ष पर आया हूँ। ज्योत्स्ना···ज्योत्स्ना···ज्योत्स्ना···

[फिर उसी भाँति चाँदनी में मुँह खोले खड़े हो जाते हैं।]

सरोज : फिर भी मैं कहूँगी, कि आप शादी अवश्य कर लें। यह आपका परम सौभाग्य है कि वह लड़की जिससे आपका इतना प्रेम है, वह आपको प्राप्त भी हो रही है। नहीं तो कहाँ ऐसा सम्भव होता है !

उत्पल : क्या कहा माँजी आपने ?

गते हैं।]

छना चाहता था वह तो रह ही गया !

ए। अभय होकर प्रश्न कीजिए।

आप···

ज्योत्स्ना' मत कहिए। इस तरह कहने का आपको कोई

हिए, 'सुश्री कुमारी ज्योत्स्ना जी !

के माँ-बाप अपनी पुत्री···

नी 'प्रिय पुत्री' कहिए।

य पुत्री से आपका विवाह करना चाहते हैं, तो फिर अब

में बदल जाना, बड़ी अमूल्य और महान् घटना है।

कर) हम दोनों में भी पहले प्रेम हुआ है, फिर

जाना, भारतीय प्रेम-मर्यादा के अनुकूल ही है।

नी है ! प्रिय नन्हे-मुन्नों को घर छोड़कर आप

हाँ आए होंगे !

घर चलिए ! बहुत देर हो गई। बच्चे रास्ता

प्रेम को नष्ट करके टुकड़े-टुकड़े कर दिए।

ल गया और वात्सल्य के भी चार भाग हो

! फिर देखिए, आपका प्रेम परेशानियों

ाना, कपड़ा, दफ़्तर ! (रुककर) अब

थोड़ी देर अभी और यहाँ चाँदनी में

घर चलो, बच्चे रो रहे होंगे !

र विवाह ने कोमल प्रेम का गला

अध्ययन और विवेचन किया

मैं इस निष्कर्ष पर आया हूँ।

।]

यह आपका परम सौभाग्य

प्राप्त भी हो रही है।

सरोज : आप मुझे माँजी क्यों कहते हैं ? मुझे अच्छा नहीं लगता !

उत्पल : ज्योत्स्ना के अतिरिक्त मुझे संसार की समस्त स्त्रियाँ बहनजी और माँजी के ही स्वरूप में दीखती हैं।

बाबूजी : यह तो बहुत अच्छा है ! यही भारतीय दृष्टिकोण भी है।

सरोज : चलिए, अब चला जाए !

बाबूजी : चला जाए, अच्छा चलो !

[दोनों चलने लगते हैं।]

उत्पल : (**सहसा**) बाबूजी, माँजी, नमस्ते !

सरोज : (**रुककर**) देखिए, इन्हें, मना कर दीजिए, यह मुझे माँजी न कहा करें !

[बाबूजी साग्रह सरोज को आगे बढ़ा देते हैं—दोनों का प्रस्थान। उत्पल फिर उसी भाँति चाँदनी में डूब जाते हैं। कुछ ही क्षणों बाद पृष्ठभूमि से बाँसुरी का एक सुन्दर राग उभरता है और सारे वातावरण को जैसे मोहक संगीत से भर देता है। थोड़ी देर बाद, उसी सुन्दर वातावरण में, कुंज की ओर से एक अवगुण्ठनवती स्त्री का प्रवेश, धीरे-धीरे चलती हुई और अपने सारे तन को घूँघट में छिपाए हुए आगे बढ़ती है।]

उत्पल : (**चूड़ियों की आवाज़ और आहट सुनते ही चौंककर**) अरे ! ज्योत्स्ना ! ज्योत्स्ना ! बादलों ने आज तुम्हें क्यों ढक रखा है ? घूंघट हटाओ ! मेरे समीप आ जाओ !

[अवगुण्ठनवती एक पत्र निकाल कर उत्पल को देती है। उत्पल पत्र को सिर-आँखों से स्पर्श करके पढ़ने लगता है।]

उत्पल : (**अपने-आप में पढ़ते-पढ़ते**) ज्योत्स्ना ! मेरी हृदयेश्वरी ! यह क्या लिखा है तुमने ? तुम विवाह के लिए इतनी उत्सुक हो ! मेरा तुम्हारा विवाह जन्म-जन्मान्तर में हुआ है। तुम मेरी अनादि, शाश्वत परिणीता हो। तुम्हारे माथे का सुहाग मैं युगों से हूँ। तुम मेरे हृदय की लाजवन्ती, गंगा-जमुना सदा से हो। इस जन्म में, पूर्व जन्म में और भविष्य में भी सदा। पर यदि तुम्हारा आग्रह है कि समाज की दृष्टि में भी तुम मेरी सुहागिन कहलाओ, तो मुझे क्या कहना है ! तुम्हारे भाव मेरे भाव हैं। ओहो, तभी तुम आज दुल्हन के रूप में मेरे पास आयी हो !

[अवगुण्ठनवती एक अँगूठी निकालकर उत्पल को देती है।]

उत्पल : लाओ, सुहाग का यह अमर चिह्न तुम अपने हाथों से मेरी अनामिका में पहना दो। (**रुककर अपनी अँगूठी निकालते हुए**) किन्तु पहले मेरी भेंट स्वीकार करो। (**देते हुए**) लो, पहन लो अपनी अनामिका में।

[अवगुण्ठनवती उत्पल की अँगूठी लेकर अपनी अँगूठी उत्पल को दे देती है। कुछ क्षणों उत्पल आँख मूंदे, हाथ जोड़े आकाश की ओर देखता है।]

उत्पल : यह तो हुआ सुहाग-चिह्न। इस क्षण मुझे कोई आभूषण भेंट करना चाहिए। क्या दूँ यहाँ ? बोलो ज्योत्स्ना क्या है ? क्या है मेरे पास तुम्हारे योग्य ?

[अवगुण्ठनवती सहसा उत्पल के चरण स्पर्श करती है। उत्पल लजाकर एक ओर हट जाता है।]

उत्पल : इसकी क्या आवश्यकता थी हृदयेश्वरी ! (**रुककर**) सुनो, स्वीकार करो मेरी यह तुच्छ भेंट (**हाथ की घड़ी निकालकर देता हुआ**) लो स्वीकार करो। यह प्रतीक है, हमारे चिरन्तन प्रेम का (**रुककर फिर सोचते हुए**) एक छोटी-सी वस्तु और, (**पाकेट से फाउण्टेनपेन निकालकर देते हुए**) यह लेखनी है। यह प्रतीक है हमारे रसमय, वाणीमय और आनन्दमय दाम्पत्य प्रेम का। मैं इसी लेखनी से तुम्हें पिछले दस वर्षों से प्रेम-पत्र लिखता आ रहा हूँ। सुनो ज्योत्स्ना, अब तो रसमय वाणी से, अपनी स्वर्गिक छवि एवं रूपराशि से मुझे कृतकृत्य करो।

[अवगुण्ठनवती पुनः उत्पल के चरण स्पर्श करना चाहती है। उत्पल इधर-उधर हटता है।]

उत्पल : नहीं-नहीं, मेरी हृदयेश्वरी ! मेरी पूजा ! मेरी देवि ! हम दोनों परस्पर समान हैं। तुम मेरे लिए उतनी ही पूज्य हो जितना मैं तुम्हारे लिए (**अवगुण्ठनवती श्रद्धानत हाथ जोड़े हुए जाने लगती है**) जा रही हो तुम ! ऐसा क्यों ? समय नहीं है क्या ? ओ हो, सब घर पर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं ! सबको सूचित करना है तुम्हें ! अच्छा हृदय-देवि, विदा, मिलन के लिए विदा ! मैं भी तुम्हारे संग चलूँ ? (**अवगुण्ठनवती हाथ से मना करती हुई अदृश्य हो जाती है। पृष्ठभूमि की बाँसुरी का संगीत थम जाता है**) ओ हो हो ! लज्जा और स्त्रीत्व की गरिमा के भार से तुम झुकी जा रही हो। जाओ, कोई बात नहीं। मैं तुम्हारे लिए, तुम्हारे पूरे मन के लिए हृदय में चाँदनी भर रहा हूँ। जाओ देवि, हमारी यह शुभ घड़ी अमर हो ! सत्य, शिव और सुन्दर हो ! ज्योत्स्ना···ज्योत्स्ना···।

[कहते-कहते पुनः उसी भाँति चाँदनी में मुख खोले चुप हो जाते हैं। कुछ ही क्षणों बाद मालिक दादा का प्रवेश।]

मालिक दादा : उत्पल बाबू ! ओ उत्पल बाबू ! ओ बाबा रे बाबा, मैं तो थक गया ! उत्पल बाबू ! (**पास आकर उत्पल को देखते ही**) ओ बाबा रे बाबा, आप उत्पल बाबू हैं ! हाँ हैं तो ! मेरी ओर देखो बाबू, ऊपर आप क्या देख रहा है ? मैं आया हूँ मैं, ज्योत्स्ना का पिता···

उत्पल : (**सहसा तन्द्रा टूटते ही**) मालिक दादा ! (**झुककर चरण स्पर्श करते हैं**) आपने यहाँ आने का कष्ट किया ? हमारा···

मालिक दादा : आप यह सब क्या कर रहा है ? घर क
न ! सब तुम्हारा रास्ता देख रहा है। आपके पि
—ज्योत्स्ना भी है ! हमने निर्णय किया, आज
दे। सो कर दिया हमने।

उत्पल : बड़ी कृपा आपकी (**चरण स्पर्श करके**) ज्योत्

मालिक दादा : हाँ, अच्छा !

उत्पल : जी हाँ, मेरी ज्योत्स्ना यहाँ दुल्हन की भाँति आ
मयी, लज्जा के भार से दबी हुई !

मालिक दादा : (**सहसा आश्चर्यचकित**) अयं, क्या कह

उत्पल : जी हाँ, अभी-अभी गई है।

मालिक दादा : अयं ! नहीं-नहीं बाबा ! असम्भव···अ
नहीं सकता ! मेरा माथा ठीक है !

उत्पल : आप विश्वास कीजिए, वह यहाँ आई थी। मेरी

मालिक दादा : क्या ?

उत्पल : हम लोगों का शुभ विवाह इस पूनम की

मालिक दादा : क्या कहा ? (**बिलकुल हतप्रभ हो**)
बाबा ? हम बेहोश हो जाएगा अभी !

उत्पल : (**अंगूठी दिखाता हुआ**) यह देखिए,
पहनाकर गई है।

मालिक दादा : (**अंगूठी देखते ही**) न बाबा
माथा ठीक है बाबू !

उत्पल : दुनिया के लिए यह पीतल की
रत्न है। हृदय-रत्न ! यह मेरे
हुआ।

मालिक दादा : नहीं···नहीं···नहीं !
असम्भव···असम्भव !
ओ माँ···ओ माँ !

उत्पल : आप जा रहे हैं ?

मालिक दादा : तुम
गम्भीर बात है।
वहाँ लोग
माथा
गम्भीर

[उत्पल
एक

की अँगूठी लेकर अपनी अँगूठी उत्पल को दे देती है। कुछ
हाथ जोड़े आकाश की ओर देखता है।]

चिह्न। इस क्षण मुझे कोई आभूषण भेंट करना चाहिए।
ोत्स्ना क्या है? क्या है मेरे पास तुम्हारे योग्य?

त्पल के चरण स्पर्श करती है। उत्पल लजाकर एक ओर

थी हृदयेश्वरी! (**रुककर**) सुनो, स्वीकार करो मेरी
ी **निकालकर देता हुआ**) लो स्वीकार करो। यह
का (**रुककर फिर सोचते हुए**) एक छोटी-सी वस्तु
निकालकर देते हुए) यह लेखनी है। यह प्रतीक है
आनन्दमय दाम्पत्य प्रेम का। मैं इसी लेखनी से
पत्र लिखता आ रहा हूँ। सुनो ज्योत्स्ना, अब तो
छवि एवं रूपराशि से मुझे कृतकृत्य करो।

रण स्पर्श करना चाहती है। उत्पल इधर-उधर

ी पूजा! मेरी देवि! हम दोनों परस्पर समान
हो जितना मैं तुम्हारे लिए (**अवगुण्ठनवती**
) आ रही हो तुम! ऐसा क्यों? समय नहीं
प्रतीक्षा कर रहे हैं! सबको सूचित करना
के लिए विदा! मैं भी तुम्हारे संग
ी हुई अदृश्य हो जाती है। पृष्ठभूमि की
! लज्जा और स्त्रीत्व की गरिमा के
बात नहीं। मैं तुम्हारे लिए, तुम्हारे
आओ देवि, हमारी यह शुभ घड़ी
ना···ज्योत्स्ना···।

चुप हो जाते हैं। कुछ ही क्षणों

रे बाबा, मैं तो थक गया!
बाबा रे बाबा, आप उत्पल
देख रहा है? मैं आया

स्पर्श करते हैं)

मालिक दादा : आप यह सब क्या कर रहा है? घर क्यों नहीं आया? अपने घर चलो न! सब तुम्हारा रास्ता देख रहा है। आपके पिताजी हैं—माँ हैं—हम लोग हैं—ज्योत्स्ना भी है! हमने निर्णय किया, आज हम अपनी अनुमति तुम्हें दे ही दे। सो कर दिया हमने।

उत्पल : बड़ी कृपा आपकी (**चरण स्पर्श करके**) ज्योत्स्ना अभी यहाँ आई थी।

मालिक दादा : हाँ, अच्छा!

उत्पल : जी हाँ, मेरी ज्योत्स्ना यहाँ दुल्हन की भाँति आई थी! अवगुण्ठनवती, लावण्यमयी, लज्जा के भार से दबी हुई!

मालिक दादा : (**सहसा आश्चर्यचकित**) अयं, क्या कहा? ज्योत्स्ना यहाँ आई थी!

उत्पल : जी हाँ, अभी-अभी गई है।

मालिक दादा : अयं! नहीं-नहीं बाबा! असम्भव···असम्भव! ऐसा माफ़िक कभी होने नहीं सकता! मेरा माथा ठीक है!

उत्पल : आप विश्वास कीजिए, वह यहाँ आई थी। मेरी वह लाजवन्ती!

मालिक दादा : क्या?

उत्पल : हम लोगों का शुभ विवाह इस पूनम की पवित्रतम चाँदनी में हो गया।

मालिक दादा : क्या कहा? (**बिलकुल हतप्रभ हो**) क्या कहा? आप क्या कहता है बाबा? हम बेहोश हो जाएगा अभी! हमारा माथा घूमने लगा।

उत्पल : (**अँगूठी दिखाता हुआ**) यह देखिए, हमारे सुहाग की अँगूठी! ज्योत्स्ना मुझे पहनाकर गई है।

मालिक दादा : (**अँगूठी देखते ही**) न बाबा न! यह पीतल की अँगूठी! तुम्हारा माथा ठीक है बाबू!

उत्पल : दुनिया के लिए यह पीतल की अँगूठी हो सकती है, पर मेरे लिए यह अमूल्य रत्न है। हृदय-रत्न! यह मेरे लिए स्वर्गिक सम्पत्ति है—ज्योत्स्ना का दिया हुआ।

मालिक दादा : नहीं···नहीं···नहीं! बाबा तुम पागल हो गया क्या? असम्भव···असम्भव···असम्भव! ओ बाबा, तुम इस माफ़िक हँसता है! नहीं नहीं नहीं! ओ माँ···ओ माँ!

उत्पल : आप जा रहे हैं?

मालिक दादा : तुम पागल हो गया बाबा, मैं अभी खबर देता हूँ तुम्हारे घर! यह बहुत गम्भीर बात है। ज्योत्स्ना तो मेरे संग थी अभी। इस वक़्त तुम्हारे घर में है वह। वहाँ लोग उसका संगीत सुन रहे हैं। तुम क्या बकते हो उत्पल बाबू! तुम्हारा माथा जरूर खराब हो गया है! कोई गोलमाल जरूर है। मैं अभी जाता हूँ—बड़ी गम्भीर बात है!

[उत्पल फिर चाँदनी में मुख खोले चुप हो जाता है। मालिक दादा जाते-जाते पुनः एक बार लौटते हैं।]

मालिक दादा : (**उत्पल को आश्चर्यचकित निहारते हुए**) ज़रूर गोलमाल है ! माथा ख़राब है ! ओ माँ ! ओ माँ ! पागल है पागल ! ऐसा माफ़िक बोलता है ! माथा ख़राब हो गया ! ऐसा माफ़िक क्या करता है ? गज़ब रे गज़ब !

[कहते-कहते अदृश्य हो जाते हैं। उत्पल उभी भाँति चाँदनी में मुख खोले खड़ा है। कुछ क्षणों बाद वही दोनों आदमी प्रविष्ट होते हैं। पहले आदमी के होंठों पर सिगरेट है, दायें हाथ में बाँसुरी है। दूसरा आदमी चुप है। पिछली बेंच पर बैठते-बैठते दोनों हँस पड़ते हैं।]

पहला आदमी : बाबूजी की शादी हुई, हम लोगों को कुछ मिठाई मिलनी चाहिए।

दूसरा आदमी : अमें, पहले बाबूजी को दो मन चाँदनी पीने का 'कोटा' तो पूरा कर लेने दो।

पहला आदमी : अभी दो मन पूरा नहीं हुआ ?

दूसरा आदमी : दो-चार सेर और बाक़ी है !

[दोनों हँसते हैं।]

पहला आदमी : बाबूजी बहुत अच्छे आदमी हैं।

दूसरा आदमी : बबुआ हैं बबुआ !

पहला आदमी : बाबूजी, अब घर जाइए, बहुत देर हो गई···वह देखिए चौकीदार आ रहा है। दस बजे के बाद वह यहाँ किसी को नहीं रहने देता।

दूसरा आदमी : उठो चलो, अपन लोग तो निकल चलो !

[चौकीदार का प्रवेश। उसके आते ही दोनों आदमी वहाँ से जाने लगते हैं।]

चौकीदार : तुम लोग फिर यहाँ आने लगे ! सीधे से चले जाओ अब।

दूसरा आदमी : नहीं-नहीं, आज हम टेढ़े-मेढ़े क़दमों से जाएँगे !

[टेढ़े-मेढ़े क़दमों से जाने लगता है।]

पहला आदमी : अभी पूरा दस कहाँ बजा ! आज तो हमारे पास भी घड़ी है ! देखते नहीं, अभी तीन मिनट बाक़ी है दस बजने में !

चौकीदार : जाओ···जाओ ! बड़ा घड़ी वाला आया !

[दोनों हँसते हुए निकल जाते हैं। चौकीदार उत्पल के समीप जाता है और उन्हें देखता ही रह जाता है।]

चौकीदार : बाबू साहब ! ओ बाबू साहब ! जागिए अब, आँख खोलिए। दस बज गए। घर जाइए घर। दस बजे के बाद यहाँ रहने का 'आर्डर' नहीं है। रोज कोई-न-कोई 'केस' हो जाता है। लोग मानते ही नहीं (**हारकर झकझोरता है**) ओ बाबू साहब ! बाबू साहब !

उत्पल : (**जागकर**) क्या है ?

चौकीदार : अब जाइए यहाँ से।

उत्पल : दो मिनट और। थोड़ा-सा बाक़ी रह गया

चौकीदार : नहीं, बिलकुल नहीं ! यहाँ मेरी नौकरी

खेल सूझा है ! चलिए यहाँ से !

[उत्पल का हाथ पकड़कर चौकीदार एक ओर

भी चाँदनी में खुला है।]

दूसरा आदमी : (**सहसा प्रविष्ट हो**) हाँ हाँ हाँ, खी

पहला आदमी : खींचो नहीं—सारी चाँदनी छलक

चौकीदार : तुम लोग अभी गए नहीं !

[पीछे से, दौड़ता हुआ रूपधन आता है।]

रूपधन : (**दृश्य देखते ही**) यह क्या है ? क्यों खीं

[दोनों आदमी तेज़ी से भागते हैं। रूपधन उत

रूपधन : यह क्या कर डाला तुमने ? मालिक दाद

से चिल्ला-चिल्लाकर कह रहे थे, तुम पागल

ख़राब है ! अब ज्योत्स्ना सदा के लिए तुम्हा

उत्पल : (**प्रकृतिस्थ हो**) क्या कहा ? अब बोलो, दो

क्या बात है ?

रूपधन : तुम्हारा सिर, और क्या ?

उत्पल : आमार सिर ! (**गा उठता है—**)

ओ चाँद, चोखेर जलेर लागलो

हलो कानाय कानाय कानाकानि

चौकीदार : बाहर चलो बाहर। चलो बाहर

रूपधन : चल तो रहे हैं !

[चौकीदार दोनों को बाहर कर

की हँसी आती है। परदा

…आश्चर्यचकित निहारते हुए) जरूर गोलमाल है ! माथा …ओ माँ ! पागल है पागल ! ऐसा माफ़िक बोलता है ! माथा …माफ़िक क्या करता है ? गजब रे गजब !

…जाते हैं। उत्पल उसी भाँति चाँदनी में मुख खोले खड़ा …दोनों आदमी प्रविष्ट होते हैं । पहले आदमी के होंठों पर …बाँसुरी है। दूसरा आदमी चुप है । पिछली बेंच पर बैठते- …]

…री हुई, हम लोगों को कुछ मिठाई मिलनी चाहिए ।
…भी को दो मन चाँदनी पीने का 'कोटा' तो पूरा कर लेने

…नहीं हुआ ?
…बाक़ी है !

…आदमी हैं ।

…ए, बहुत देर हो गई···वह देखिए चौकीदार आ …किसी को नहीं रहने देता ।
…तो निकल चलो !

…ही दोनों आदमी वहाँ से जाने लगते हैं ।]

…! सीधे से चले जाओ अब ।
…कदमों से जाएँगे !

…ब तो हमारे पास भी घड़ी है ! देखते …!
…ा !

…उत्पल के समीप जाता है और उन्हें

…, आँख खोलिए । दस बज गए । …र्डर' नहीं है। रोज कोई-न- …कर झकझोरता है) ओ बाबू

उत्पल : दो मिनट और । थोड़ा-सा बाक़ी रह गया है ।

चौकीदार : नहीं, बिलकुल नहीं ! यहाँ मेरी नौकरी चली जाएगी और आप लोगों को खेल सूझा है ! चलिए यहाँ से !

[उत्पल का हाथ पकड़कर चौकीदार एक ओर खींचता है । उत्पल का मुख अब भी चाँदनी में खुला है ।]

दूसरा आदमी : (सहसा प्रविष्ट हो) हाँ हाँ हाँ, खींचो नहीं !

पहला आदमी : खींचो नहीं—सारी चाँदनी छलक जाएगी भाई···!

चौकीदार : तुम लोग अभी गए नहीं !

[पीछे से, दौड़ता हुआ रूपधन आता है ।]

रूपधन : (दृश्य देखते ही) यह क्या है ? क्यों खींच रहे हो ?

[दोनों आदमी तेज़ी से भागते हैं । रूपधन उत्पल की ओर बढ़ता है ।

रूपधन : यह क्या कर डाला तुमने ? मालिक दादा से क्या-क्या कह दिया ? वह क्रोध से चिल्ला-चिल्लाकर कह रहे थे, तुम पागल हो गए हो पागल ! तुम्हारा माथा खराब है ! अब ज्योत्स्ना सदा के लिए तुम्हारे हाथ से गई !

उत्पल : (प्रकृतिस्थ हो) क्या कहा ? अब बोलो, दोनों मन अब पूरा हो गया । बोलो क्या बात है ?

रूपधन : तुम्हारा सिर, और क्या ?

उत्पल : आमार सिर ! (गा उठता है—)

ओ चाँद, चोखेर जलेर लागलो जोयार दुखेर पारावारे
हलो कानाय कानाय कानाकानि एइ पारे ओइ पारे ।

चौकीदार : बाहर चलो बाहर । चलो बाहर !

रूपधन : चल तो रहे हैं !

[चौकीदार दोनों को बाहर करने लगता है । सहसा पृष्ठभूमि से दोनों आदमियों की हँसी आती है । परदा गिरता है ।]

सुबह से पहले

पात्र

डॉ० हरीनाथ
अनुपम
इन्दर
कुली
जमादार और कुछ मुसाफ़िर

[रात के बारह बजे हैं। किसी जंकशन स्टेशन
फ़रवरी के प्रारम्भिक दिन हैं। कमरे की रोशनी बुझ
हुई रोशनी की छाया से स्पष्ट है कि वेटिंगरूम भ
बिखरकर सो रहे हैं।

पृष्ठभूमि में प्लेटफ़ार्म पर कोई ट्रेन रुकती
वरण भर जाता है।

जब कोलाहल थम जाता है तब वेटिंगरूम

उस धुँधलके में हम पाते हैं कि किसी कुली
पति-पत्नी और उनके सामने सर की पगड़ी ठीक
दार खड़ा है।]

जमादार : हुज़ूर ! बिलकुल जगह नहीं है ! सच मानि
कुली : पहले मुसाफ़िर पहचानो जमादार !···इनाम
जमादार : चुप रहो जी !
हरीनाथ : (**खिसियाहट की हँसी से**) भई लड़ो नहीं !
को जगह चाहिए !···रोशनी तो करो···ज़रा दे
जमादार : (**बढ़ता है**) हुज़ूर, सब सो रहे हैं !

[लाइट-ऑन कर देता है। रंगमंच पर प्रकाश फै
और सबकी नज़रें जगह तलाश रही हैं और कुछ
फिर भी जिज्ञासा की दृष्टि से आगन्तुकों को देखते
लेते हैं।]

हरीनाथ : आओ···इधर ओ कुली···लाओ यहाँ सामान
यहाँ आ जाओ !

[कुली के पीछे-पीछे अनुपम बढ़ती है। कुली
है, उसी क्षण मोटी आवाज़ वाला एक मुसा

मुसाफ़िर : (सिर उठाकर) कुली की दुम
का ! देखता नहीं, वह मुसाफ़िर
पटक रहा है !

[इन्दर, बीमार मुसाफ़िर
देने लगता है।]

बह से पहले

पात्र

- डॉ० हरीनाथ
- अनुपम
- इन्दर
- कुली
- कुछ मुसाफ़िर

[रात के बारह बजे हैं। किसी जंकशन स्टेशन का सेकेण्ड क्लास वेटिंगरूम। फ़रवरी के प्रारम्भिक दिन हैं। कमरे की रोशनी बुझी हुई है और प्लेटफ़ार्म से आती हुई रोशनी की छाया से स्पष्ट है कि वेटिंगरूम भरा हुआ है। लोग चारों ओर बिखरकर सो रहे हैं।

पृष्ठभूमि में प्लेटफ़ार्म पर कोई ट्रेन रुकती है और कोलाहल से सारा वातावरण भर जाता है।

जब कोलाहल थम जाता है तब वेटिंगरूम वाले मंच पर परदा उठता है।

उस धुंधलके में हम पाते हैं कि किसी कुली के दायें-बायें दो लोग खड़े हैं—पति-पत्नी और उनके सामने सर की पगड़ी ठीक करता हुआ वेटिंगरूम का जमादार खड़ा है।]

जमादार : हुज़ूर! बिलकुल जगह नहीं है! सच मानिए, कहीं भी जगह नहीं।

कुली : पहले मुसाफ़िर पहचानो जमादार!···इनाम मिलेगा जी!

जमादार : चुप रहो जी!

हरीनाथ : (**खिसियाहट की हंसी से**) भई लड़ो नहीं! जमादार साहब, मुझे बस बैठने को जगह चाहिए!···रोशनी तो करो···ज़रा देखूं तो!

जमादार : (**बढ़ता है**) हुज़ूर, सब सो रहे हैं!

[लाइट-ऑन कर देता है। रंगमंच पर प्रकाश फैल जाता है। सब खड़े दीखते हैं और सबकी नज़रें जगह तलाश रही हैं और कुछ अधसोए हुए लोग झुंझलाई हुई, फिर भी जिज्ञासा की दृष्टि से आगन्तुकों को देखते हैं और मोटे ओढ़नों से सिर ढक लेते हैं।]

हरीनाथ : आओ···इधर ओ कुली···लाओ यहाँ सामान रखो! आ जाओ अनुपम···यहाँ आ जाओ!

[कुली के पीछे-पीछे अनुपम बढ़ती है। कुली ज्यों ही 'होल्डाल' वग़ैरह उतारता है, उसी क्षण मोटी आवाज़ वाला एक मुसाफ़िर झुंझला उठता है।]

मुसाफ़िर : (**सिर उठाकर**) कुली की दुम! तेरा भेजा खराब है क्या? बत्तमीज़ कहीं का! देखता नहीं, वह मुसाफ़िर बीमार पड़ा है और उसी के सिर पै तू सामान पटक रहा है!

[इन्दर, बीमार मुसाफ़िर कराहकर सिर खोलता है और एक तरफ़ खिसककर जगह देने लगता है।]

इन्दर : नहीं···नहीं···बहुत जगह है ! आइए आप लोग ! आइए···इधर बहुत जगह है।

हरीनाथ : (**चापलूसी के स्वर में**) जी, आपको बहुत तकलीफ़ हुई। आपका बहुत-बहुत शुक्रिया !

[कुली फ़र्श पर होल्डाल खोल देता है, अनुपम अपनी सफ़ेद कश्मीरी शाल में लिपटी हुई निस्पन्द खड़ी है।]

कुली : हुज़ूर ! अपना सामान गिन लीजिए।

हरीनाथ : ठीक है, ठीक है !

कुली : तो फ़ैज़ाबाद आप 'लोकल' से जाएँगे ?

हरीनाथ : 'लोकल' से पहले 'मेल' भी तो जाती है ?

कुली : जाती तो है, पर इन दिनों उस पर बड़ी भीड़ रहती है···। (**रुककर**) तो हुज़ूर, मैं आपको 'लोकल' पर चढ़ाने आ जाऊँगा !

[कुली चला जाता है। जो मुसाफ़िर कुली पर बरस पड़ा था, वह खर्राटे भरने लगा है। डॉ० हरीनाथ उसकी ओर देखकर मुसकरा पड़ते हैं।]

हरीनाथ : (**एकाएक जैसे होश में हो जाए**) अरे ! तुम इस तरह क्यों खड़ी हो ? बैठो-बैठो···बैठ जाओ न !···बिस्तर पर आराम से बैठ जाओ !

[अनुपम यन्त्रवत् बैठ जाती है। बीमार यात्री पीड़ा से खाँसने लगता है।]

हरीनाथ : (**झुककर तत्परता से**) क्या तकलीफ़ है आपको ? ज़रा मुझे अपना हाथ तो दीजिए, (**बीमार की कलाई थामते ही**) ओफ़ ओ ! आपको तो बहुत तेज़ बुखार है ! सिर-दर्द भी होगा।···यह कब से है ? बताइए···बोलिए न ? भाई, मैं मेडिकल डॉक्टर की हैसियत से पूछ रहा हूँ !

इन्दर : (**अनिच्छा से उठा हुआ हाथ अपनी ओर खींच लेता है**) कोई खास बात नहीं !

हरीनाथ : खास बात क्यों नहीं।

[इन्दर सिर ढके चुप है।]

हरीनाथ : कहाँ जाना है आपको ?

इन्दर : जाना तो कलकत्ता तक है !

हरीनाथ : (**घबड़ाकर जैसे**) ओ माई गाड ! कलकत्ता तक !! (**रुककर**) नहीं, नहीं, ऐसी हालत में आप कहीं नहीं जा सकते ! यू काण्ट मूव !

इन्दर : आप आराम कीजिए डॉक्टर साहब, मेरे लिए परेशान न होइए !

हरीनाथ : परेशान क्या, यह तो धर्म की बात है।

इन्दर : (**पीड़ा से करवट बदल कर**) कहाँ-कहाँ कितना धर्म आप निभाएँगे !

[सब चुप रह जाते हैं।]

हरीनाथ : (**सहसा**) अरे अनू ! क्या गुमसुम बैठी हो ?
ही !···(**स्वयं ढूंढ़ने लगते हैं**) 'टिफ़िन कॅरियर' कह

['टिफ़िन कॅरियर' अनुपम के सामने रख देते हैं।]

हरीनाथ : खोलो इसे ! तब तक मैं ज़रा बाथरूम हो आ

[साबुन-तौलिया लेकर बाहर चले जाते हैं। अनुपम कु
की ओर ताकती रहती है। इन्दर को फिर खाँसी उठ
उठ पड़ती है। जैसे उससे बैठा न रहा गया हो औ
दृष्टि बाँध लेती है—उदास, निर्लक्ष्य। तभी डॉ० ह

हरीनाथ : जाओ तुम भी हाथ-मुँह धो लो !

अनुपम : आप भोजन कीजिए !

हरीनाथ : तुम ?

अनुपम : मुझे क़तई भूख नहीं !

हरीनाथ : ज़रा भी नहीं ?

[अनुपम सिर हिला देती है।]

हरीनाथ : साथ भी न दोगी ?

अनुपम : बिलकुल ही इच्छा नहीं; न जाने कैसा जी हो रह

हरीनाथ : सफ़र का नाम ही बुरा है।

[डॉ० हरीनाथ भोजन करने लगते हैं। अनुपम चुप है
से कभी मरीज़ को देखती है, कभी बाहर के प्लेटफ़ॉर्म
हुए बल्ब को और कभी अपनी घड़ी को। इन्दर को
समाप्त कर वह दर्द से कराह उठता है।]

हरीनाथ : (**रहस्यपूर्ण स्वर से**) निमोनिया है···सफ़र

[अनुपम चुप है।]

हरीनाथ : निमोनिया···(**रुककर**) इंजेक्शन
हालत है !···(**रुककर**) 'कम्प्लीट

अनुपम : (**जैसे एकाएक उसके मुँ**

[हरीनाथ चुप हैं, भोजन

अनुपम : साढ़े बारह बज

हरीनाथ : क्या है ?···
बस, चुपचाप ले

अनुपम : एक बात

हरीनाथ : (**सहसा**) अरे अनू ! क्या गुमसुम बैठी हो ? कुछ खाओ-पियोगी कि यूँ ही !···(**स्वयं ढूंढ़ने लगते हैं**) 'टिफ़िन कैरियर' कहाँ है ?

['टिफ़िन कैरियर' अनुपम के सामने रख देते हैं।]

हरीनाथ : खोलो इसे ! तब तक मैं ज़रा बाथरूम हो आऊँ।

[साबुन-तौलिया लेकर बाहर चले जाते हैं। अनुपम कुछ क्षणों तक अपलक बीमार की ओर ताकती रहती है। इन्दर को फिर खाँसी उठती है और अनुपम बेचैनी से उठ पड़ती है। जैसे उससे बैठा न रहा गया हो और बाहर प्लेटफ़ार्म की ओर दृष्टि बाँध लेती है—उदास, निर्लक्ष्य। तभी डॉ० हरीनाथ लौटते हैं।]

हरीनाथ : जाओ तुम भी हाथ-मुंह धो लो !
अनुपम : आप भोजन कीजिए !
हरीनाथ : तुम ?
अनुपम : मुझे क़तई भूख नहीं !
हरीनाथ : ज़रा भी नहीं ?

[अनुपम सिर हिला देती है।]

हरीनाथ : साथ भी न दोगी ?
अनुपम : बिलकुल ही इच्छा नहीं; न जाने कैसा जी हो रहा है !
हरीनाथ : सफ़र का नाम ही बुरा है।

[डॉ० हरीनाथ भोजन करने लगते हैं। अनुपम चुप है, लेकिन वह अजीब उदासी से कभी मरीज़ को देखती है, कभी बाहर के प्लेटफ़ॉर्म को, कभी दीवार के जलते हुए बल्ब को और कभी अपनी घड़ी को। इन्दर को खाँसी आती है और खाँसी समाप्त कर वह दर्द से कराह उठता है।]

हरीनाथ : (**रहस्यपूर्ण स्वर से**) निमोनिया है···सफ़र और निमोनिया !

[अनुपम चुप है।]

हरीनाथ : निमोनिया···(**रुककर**) इंजेक्शन चाहिए ! सफ़र और निमोनिया, अजीब हालत है !···(**रुककर**) 'कम्पलीट रेस्ट एण्ड मेडिकल एड।'
अनुपम : (**जैसे एकाएक उसके मुख से निकल गया**) और आप डॉक्टर हैं !

[हरीनाथ चुप हैं, भोजन समाप्त कर रहे हैं।]

अनुपम : साढ़े बारह बज रहे हैं।
हरीनाथ : क्या है ?···क्या सोच रही हो ?···बोलो, कैसा तुम्हारा जी हो रहा है ?··· बस, चुपचाप लेट जाओ···लिहाफ़ निकाल लो !
अनुपम : एक बात कहूँ।

हरीनाथ : (**खाना समाप्त कर**) जरूर, बोलो···बोलो।

अनुपम : अगर आप चाहें तो मरीज़ को इंजेक्शन लग सकता है।

[हरीनाथ अनुपम को देखते रह जाते हैं।]

हरीनाथ : बाहर सड़क के पार ही एक केमिस्ट की दूकान है, वहाँ से इंजेक्शन···लग जाए।

हरीनाथ : सच···मैं जरूर चाहूँगा कि इंजेक्शन लग जाए। (**तौलिया में हाथ-मुंह पोंछते हुए**) ऐसा क्यों न करें, इस बीमार यात्री को अपने संग फ़ैज़ाबाद ले चलें!

[अनुपम चुप है।]

हरीनाथ : अभी इंजेक्शन भी लग जाए। फिर आराम से हम 'लोकल ट्रेन' पकड़ सकते हैं। दो ही घण्टे का सफ़र है। यात्री को अपने संग ले चलें। यहाँ यूँ छोड़ना ठीक नहीं···और मेरे 'प्रोफ़ेशन' का यही धर्म है।

[अनुपम प्रसन्नता से डॉक्टर का मुँह ताक रही है।]

हरीनाथ : और हम सुबह से पहले पहुँच भी जाएँगे।

अनुपम : तो जाइए, आप इंजेक्शन के लिए देखिए!

हरीनाथ : जा रहा हूँ!

[डॉक्टर का प्रस्थान। अनुपम खड़ी होती है। इधर-उधर देखकर कमरे के दरवाज़े तक जाती है। उसी बीच इन्दर पर खाँसी का बहुत तेज़ दौरा आता है। वह उठने-सा लगता है। तभी अनुपम दौड़कर उसके पास आ जाती है।]

अनुपम : (**उसे सँभालती हुई**) उठो नहीं···बस···बस···लेट जाओ···मूँद लो आँखें। घबड़ाओ नहीं। अभी खाँसी थम जाएगी। आँखें मूँदे रहो···ऐसे ही पड़े रहो।

[खाँसी समाप्त हो जाती है।]

इन्दर : (**पीड़ा को जैसे जीता हुआ**) ओफ़! यह क्यों हुआ?

अनुपम : क्या?···बोलो नहीं।

इन्दर : तुम भाग जाओ यहाँ से! जाओ तुम अपनी जगह बैठो! भागो यहाँ से।

[अनुपम निःशब्द रो पड़ती है।]

इन्दर : तिसपर मुझसे कहती हो—आँखें मूँदे रहो!

[अनुपम चुप है।]

इन्दर : पिम्मी कहीं की!

अनुपम : (**रुँधे कण्ठ से**) तुमने भी पहचान लिया?

इन्दर : आँख नहीं फूटी है।

अनुपम : अब भी···आज भी उसी तरह बोलोगे?···(**स्नेह से**) ऐसे नहीं बोलते

इन्दर।···क्यों इस तरह बीमार पड़ गए?

इन्दर : तुम क्यों यहाँ इस तरह मिल गयीं?

अनुपम : कब से तबीयत खराब है?

इन्दर : तुम्हारे डॉक्टर साहब कहाँ हैं? सो गए क्या?

अनुपम : कहाँ जा रहे हो?···क्या करते हो आजकल?

इन्दर : मूर्ख हो तुम!

अनुपम : (**मुसकरा देती है**) हूँ तो!···सच···सच

कलकत्ता नहीं जा पाओगे···मेरे संग चलोगे!

जाओ, मैं भी कुछ नहीं बताऊँगी!

इन्दर : पूछ कौन रहा है?

अनुपम : चार वर्ष हो गए, एक पत्र तक न लिखा

···क्यों बोलो। कैसे हो तुम? और क्या

झट-झट बताओ न!

[इन्दर चुप पड़ा है।]

अनुपम : तुम कहीं भी, कैसे भी मिल तो गए

थे? कुछ बोलो इन्दर! अब तो बोलो,

आराम से! (**रुककर**) सोओ···

इन्दर : (**बीच ही में**) बको मत!

नहीं।

[कराहकर चुप हो जाता है।

इन्दर : पागल कहीं की?

अनुपम : बुलाना है तो

जाती है) फिर

गऊघाट पर,

इन्दर : पागल!

अनुपम : तुम्हें

इन्दर : क्या

अनुपम : भागो

करो···

इन्दर : (

कर) ज़रूर, बोलो···बोलो।
तो मरीज़ को इंजेक्शन लग सकता है।
देखते रह जाते हैं।]
र ही एक केमिस्ट की दूकान है, वहाँ से इंजेक्शन···लग

हूँगा कि इजेक्शन लग जाए। (तौलिया में हाथ-मुँह
करें, इस बीमार यात्री को अपने संग फ़ैज़ाबाद ले चलें!

जाए। फिर आराम से हम 'लोकल ट्रेन' पकड़ सकते
है। यात्री को अपने संग ले चलें। यहाँ यूँ छोड़ना ठीक
का यही धर्म है।
का मुँह ताक रही है।]
पहुँच भी जाएँगे।
के लिए देखिए!

बड़ी होती है। इधर-उधर देखकर कमरे के दरवाज़े
र पर खाँसी का बहुत तेज़ दौरा आता है। वह उठने-
ड़कर उसके पास आ जाती है।]

हीं···बस···बस···लेट जाओ···मूँद लो आँखें।
एगी। आँखें मूँदे रहो···ऐसे ही पड़े रहो।

यह क्यों हुआ?

नी जगह बैठो! भागो यहाँ से।

) ऐसे नहीं बोलते

इन्दर।···क्यों इस तरह बीमार पड़ गए?

इन्दर : तुम क्यों यहाँ इस तरह मिल गयीं?

अनुपम : कब से तबीयत खराब है?

इन्दर : तुम्हारे डॉक्टर साहब कहाँ हैं? सो गए क्या?

अनुपम : कहाँ जा रहे हो?···क्या करते हो आजकल?

इन्दर : मूर्ख हो तुम!

अनुपम : (**मुसकरा देती है**) हूँ तो!···सच···सच बताओ, कहाँ जा रहे हो? अब तुम कलकत्ता नहीं जा पाओगे···मेरे संग चलोगे! फ़ैज़ाबाद हूँ आजकल! (**रुककर**) जाओ, मैं भी कुछ नहीं बताऊँगी!

इन्दर : पूछ कौन रहा है?

अनुपम : चार वर्ष हो गए, एक पत्र तक न लिखा। सोचा होगा, पिम्मी मर गई। क्यों···क्यों बोलो। कैसे हो तुम? और क्या हाल-चाल है? सच बताते क्यों नहीं? झट-झट बताओ न!

[इन्दर चुप पड़ा है।]

अनुपम : तुम कहीं भी, कैसे भी मिल तो गए—सौभाग्य है मेरा। कलकत्ता कैसे जा रहे थे? कुछ बोलो इन्दर! अब तो बोलो, अच्छा नहीं, नहीं···तुम न बोलो···सो जाओ आराम से! (**रुककर**) सोओ···अभी तुम्हें इंजेक्शन लगेगा···डॉक्टर साहब···।

इन्दर : (**बीच ही में**) बको मत! जाओ अपनी जगह! यह वेटिंगरूम है—अस्पताल नहीं।

[कराहकर चुप हो जाता है। अनुपम निःशब्द रो रही है।]

इन्दर : पागल कहीं की? क्यों मिलीं तुम?···सुनो अनुपम!

अनुपम : बुलाना है तो पिम्मी कहकर पुकारो न!···यह अनुपम कौन है? (**चुप हो जाती है**) फिर अनुपम कहोगे तो उसी तरह लड़ाई हो जाएगी—बनारस के गऊघाट पर, याद है न! खूब गिरे थे तुम।

इन्दर : पागल!

अनुपम : तुम्हें कितनी बार खत दिया था···बुला भेजा था···झूठे कहीं के।

इन्दर : क्या चाहती हो? भाग जाऊँ यहाँ से?

अनुपम : भागो न! देखूँ कैसे भागते हो···बड़े आए। (**रुककर**) लाओ माथा इधर करो···लाओ न!

इन्दर : (**चिढ़कर**) यह वेटिंगरूम है, पागल तो नहीं हो गई!

अनुपम : ओ हो···तो तुम्हें क्या हो गया? तुम्हें क्यों! बड़े चिढ़ने वाले आए···तभी सिर में तेल भी तो डाला होता!

इन्दर : चुप भी रहो!

अनुपम : तो क्या हो गया?

इन्दर : पता नहीं !

अनुपम : तुम मेरे साथ चलोगे···खूब मिले। इसको भाग्य कहते हैं।

इन्दर : दुर्भाग्य नहीं ? इससे बड़ा दुर्भाग्य···।

अनुपम : (**मुँह पर हाथ रख देती है**) चुप रहो जी; बस, तुम मेरे संग चलोगे। (**रुककर**) तुम मुझसे न बोलना, चार वर्ष, कैसे कहाँ गए, क्या-क्या हुआ, कुछ न बताना। बस, जल्दी से अच्छे हो जाना, फिर चले जाना।

इन्दर : ऐसे···और तुम्हारे घर···।

[खाँसी आ जाती है।]

अनुपम : मुझे सब पता है इन्दर। तुम मुझसे क्या छिपोगे। सब पता है मुझे। क्यों नहीं ख़त देते—क्यों सारे के सारे हिन्दुस्तान का चक्कर लगाते-फिरते हो, घर नहीं रहते, नौकरी नहीं करते, कहीं जमकर रहते नहीं—सब जानती हूँ मैं। तुम्हारा सब जानती हूँ; हाँ तुम मेरा नहीं जानते।

इन्दर : क्यों मिली तुम यहाँ ? मैं तो तुमसे नहीं बोलने गया···।

अनुपम : तुम पुरुष हो। (**रुककर**) समझो, ऐसे ही मिलना बदा था—या यूँ कहो, तुम्हारे दर्शन के लिए पथ स्वयं मुड़ गया···।

[इन्दर चुप है।]

अनुपम : कुसुम जिया के ख़त मेरे पास आते रहे हैं। सुशीला आजकल रायबरेली में अध्यापिका है। अकसर भेंट होती है। एक बार तो तुम उससे मिल लेते। वह जी जाती ! ···अच्छा, ऐसा करेंगे, फ़ैज़ाबाद पहुँचते ही—कल सुबह उसे तार दे देंगे।

इन्दर : (**झुँझला उठता है**) मैं मर जाऊँगा तब जी भरकर तार दे लेना···मुझ पर दया दिखाने चली हो। जानवर हूँ क्या ?

अनुपम : (**सम्हालती हुई**) नहीं-नहीं, इन्दर ! (**कण्ठ रुँध जाता है**) अच्छा, अब कुछ न कहूँगी···माफ़ करो मुझे। बस, अच्छे हो जाओ तुम।

इन्दर : अच्छा नहीं, ख़ाक हो जाऊँ (**कराहता है, फिर जैसे पीड़ा घूँटकर**) अपनी सीमाएँ जानो···पता है, भारतवर्ष की हिन्दू पत्नी हो तुम। पति को पता चल जाए कि मेरी पत्नी का यह मित्र मेरे विवाह के पहले का है, तो पति का माथा ठनक जाए।

अनुपम : (**प्यार से हँस पड़ती है**) ऐसे नहीं हैं डॉक्टर साहब। तुम कभी मिले ही नहीं—नहीं तो देखते। अभी तुम्हें देखते ही करुणा से भर गए। तुम्हें घर ले चलने का प्रस्ताव उन्हीं का है, स्वभाव से ही यह ऐसे हैं। देख लेना, वह तुम्हें घर ले जाकर छोड़ेंगे।···बड़ी मानवता है उनमें···और तुम्हें तो···।

इन्दर : (**व्यंग्य से**) बड़ी मानवता ! तुम्हारी तरह दुनिया पागल नहीं।

अनुपम : अच्छा, लड़ो नहीं। तुम मेरी मानोगे···मानोगे तुम !

[डॉ० हरीनाथ का प्रवेश—इंजेक्शन का पूरा साम

हरीनाथ : (**आते ही**) तुम बैठी हो···ठीक किया।
मुश्किल से वह कैमिस्ट तैयार हुआ, बड़ी बातें बन

इन्दर : यह सब कर रहे हैं आप लोग ? क्या ज़रूरत थ

हरीनाथ : तुम क्या जानोगे,···डॉक्टर जानता है। वह
अनू।

[डॉक्टर हरीनाथ इंजेक्शन लगाता है।]

इन्दर : (**पीड़ा से**) लेकिन आपको मुझसे पूरे पैसे लेने

हरीनाथ : अच्छा बाबा, बोलो नहीं; तुम्हें मेरे घर चल
ठीक होकर सफ़र करना। मेरा घर बिलकुल पास
से चलेंगे—बस, मुश्किल से दो घण्टे का सफ़र है।

इन्दर : नहीं डॉक्टर साहब, बहुत-बहुत शुक्रिया।

हरीनाथ : नहीं, नहीं, मेरे संग चलना होगा—'आई का

इन्दर : (**पीड़ा से**) नहीं, ऐसे नहीं डॉक्टर साहब ! 'आ
बिलीव मी डॉक्टर, आई काण्ट।

अनुपम : (**जिसकी चुप्पी एकाएक टूट जाती है**) चुप रह
समझ-बूझकर बोलना चाहिए।

हरीनाथ : (**आश्चर्यमिश्रित प्रसन्नता से**) ओ हो !
क्या ?

अनुपम : अभी कुछ न पूछिए—फिर बताऊँगी। आ
लौटा आइए।

हरीनाथ : आई-सी। (प्रस्थान)

इन्दर : अनुपम !

अनुपम : नहीं पिम्मी कहो, तब बोलूँगी हाँ

इन्दर : मैं चाहता भी नहीं—
होता।

अनुपम : (**प्यार से सँभाल**
कितना गरम है तुम्हें

[अपनी शाल
है।]

अनुपम : सो
···तुम
मैं

···खूब मिले। इसको भाग्य कहते हैं।

ड़ा दुर्भाग्य···।

ती है) चुप रहो जी; बस, तुम मेरे संग चलोगे। (रुक-
ना, चार वर्ष, कैसे कहाँ गए, क्या-क्या हुआ, कुछ न
हो जाना, फिर चले जाना।

···।

मुझसे क्या छिपोगे। सब पता है मुझे। क्यों नहीं
हिन्दुस्तान का चक्कर लगाते-फिरते हो, घर नहीं
कर रहते नहीं—सब जानती हूँ मैं। तुम्हारा
जानते।

से नहीं बोलने गया···;

ो, ऐसे ही मिलना बदा था—या यूँ कहो,
ना···।

रहे हैं। सुशीला आजकल रायबरेली में
बार तो तुम उससे मिल लेते। वह जी
पहुँचते ही—कल सुबह उसे तार दे

जी भरकर तार दे लेना···मुझ पर

खिंच जाता है) अच्छा, अब कुछ न
तुम।

र जैसे पीड़ा घूँटकर) अपनी
ो तुम। पति को पता चल जाए
ा है, तो पति का माथा ठनक

। तुम कभी मिले ही नहीं
ए। तुम्हें घर ले चलने का
वह तुम्हें घर ले जाकर

नहीं।

[डॉ० हरीनाथ का प्रवेश—इंजेक्शन का पूरा सामान संग ला रहे हैं।]

हरीनाथ : (**आते ही**) तुम बैठी हो···ठीक किया। बैठो-बैठो (**पास आकर**) बहुत मुश्किल से वह कैमिस्ट तैयार हुआ, बड़ी बातें बना रहा था।

इन्दर : यह सब कर रहे हैं आप लोग? क्या ज़रूरत थी इन बातों की।

हरीनाथ : तुम क्या जानोगे,···डॉक्टर जानता है। वह इसीलिए बना है।···बाँह खोलो अनू।

[डॉक्टर हरीनाथ इंजेक्शन लगाता है।]

इन्दर : (**पीड़ा से**) लेकिन आपको मुझसे पूरे पैसे लेने होंगे।

हरीनाथ : अच्छा बाबा, बोलो नहीं; तुम्हें मेरे घर चलना होगा। 'बैड निमोनिया'—ठीक होकर सफ़र करना। मेरा घर बिलकुल पास है। आराम से सोओ। 'लोकल' से चलेंगे—बस, मुश्किल से दो घण्टे का सफ़र है।

इन्दर : नहीं डॉक्टर साहब, बहुत-बहुत शुक्रिया।

हरीनाथ : नहीं, नहीं, मेरे संग चलना होगा—'आई काण्ट लीव यू'।

इन्दर : (**पीड़ा से**) नहीं, ऐसे नहीं डॉक्टर साहब! 'आई काण्ट एफ़ोर्ड' आई काण्ट। बिलीव मी डॉक्टर, आई काण्ट।

अनुपम : (**जिसकी चुप्पी एकाएक टूट जाती है**) चुप रहोगे कि···बड़े पैसे देने चले हैं। समझ-बूझकर बोलना चाहिए।

हरीनाथ : (**आश्चर्यमिश्रित प्रसन्नता से**) ओ हो! आप लोग आपस में परिचित हैं क्या?

अनुपम : अभी कुछ न पूछिए—फिर बताऊँगी। आप जाइए, झट कैमिस्ट का सामान लौटा आइए।

हरीनाथ : आई-सी। (**प्रस्थान**)

इन्दर : अनुपम!

अनुपम : नहीं पिम्मी कहो, तब बोलूँगी हाँ!

इन्दर : मैं चाहता भी नहीं—लेकिन जो तुम चाहती हो, वह झूठ है—ऐसे नहीं होता।

अनुपम : (**प्यार से सँभाल लेती है**) अच्छा, बोलो नहीं। सो जाओ। आँखें बन्द करो। कितना गरम है तुम्हारा माथा—सो जाओ।

[अपनी शाल उसके ऊपर डाल देती है—और उसे सिर से पैर तक ढँक देती है।]

अनुपम : सो जाओ···गाड़ी के समय जगा लूँगी। फिर साथ चलेंगे (**रुककर**) सो जाओ···तुम मेरे साथ चलोगे।···ऐसा सोचो इन्दर! तुम मेरे घर नहीं चल रहे हो···मैं तुम्हारे घर चल रही हूँ—तुम मुझे ले चल रहे हो···सो जाओ···।

[धीरे-धीरे स्टेज की सारी रोशनी जाने लगती है—उसी बीच डॉक्टर हरीनाथ लौटते हैं।]

हरीनाथ : (**पास आकर, मरीज़ को देखते हुए**) अच्छा···अपना शाल ओढ़ा दिया ! तुम्हारा शाल ओढ़े हैं ?

अनुपम : ज़रूरत थी। ठण्ड लग रही थी।

हरीनाथ : अच्छा किया···सोने दो···गरमी आ जाएगी।

[एकाएक स्टेज अँधेरा हो जाता है—क्षणिक अन्तराल के बाद जब रोशनी लौटती है, तब स्पष्ट होता है कि डॉ० हरीनाथ और इन्दर आदि सब सो रहे हैं—केवल अनुपम बैठी है। पृष्ठभूमि में गाड़ी आने की सूचना होती है। वेटिंगरूम के अनेक यात्री बाहर जाने लगते हैं। कुली आता है, 'मेल', 'मेल' की आवाज़ देता है।]

अनुपम : जाओ···हम लोग 'लोकल' से जाएँगे।

[तभी हड़बड़ाकर डॉ० हरीनाथ उठते हैं।

हरीनाथ : नहीं, नहीं···कुली इधर आओ ! हम 'मेल' से ही जाएँगे !···उठो अनू··· चलो कुली !

अनुपम : 'मेल' से चलेंगे ?

हरीनाथ : हाँ···जल्दी पहुँच जाएँगे···सुबह से पहले।

[अनुपम इन्दर को जगाने बढ़ती है।]

हरीनाथ : (**घबड़ाकर**) अरे···रे···यह क्या ? नहीं···नहीं···न ! मरीज़ को सोने दो ! जगाओ नहीं ! उसे 'रेस्ट' चाहिए ! 'कम्पलीट रेस्ट···रेस्ट !'

अनुपम : (**आश्चर्य से**) जगाऊँ नहीं ? क्या कह रहे हैं आप ? यह घर कैसे जाएँगे ? ···बिना जगाए ?

हरीनाथ : (**जल्दी-जल्दी कुली के संग सामान ठीक करवाते हुए**) मरीज़ के लिए आराम सबसे ज़रूरी है ! निमोनिया में आराम बड़ी चीज़ है—दवा क्या है ? रास्ते में तकलीफ़ होगी इसे ! और 'एक्सपोज़' हो जाने का डर है।

[अनुपम ठगी-सी रह जाती है।]

हरीनाथ : खड़ी क्या हो ! (**कुली के सिर पर सामान उठवाकर**) छोड़ो भी इन बातों को ! क्या रखा है···।

अनुपम : यह विश्वासघात है !

[कुली आगे बढ़ता है, पृष्ठभूमि में प्लेटफ़ॉर्म पर गाड़ी आती है। अनुपम ठगी-सी, इन्दर को देखती खड़ी है।

हरीनाथ : चलो अनू ! (**तेज़ी में**) चलती हो कि···चलो न !

अनुपम : (**रुँधे कण्ठ से**) आपको ऐसा ही करना था तो इसे घर ले चलने के लिए क्यों

कहा ? (**रो पड़ती है**) अपने धर्म निभाने की सम

[स्वर सिसकियों में पिघल जाते हैं।]

हरीनाथ : (**उसे बढ़ाते हुए**) चलो जल्दी !

अनुपम : आप तो 'लोकल' से जा रहे थे···यह तो 'मेल

हरीनाथ : मेल हो या बेमेल, हमें अभी चलना है—
पहले पहुँच जाएँगे !

अनुपम : और यह !

[अनुपम करुण दृष्टि से इन्दर को देखती रहती
डॉ० हरीनाथ के संग जैसे खिचती हुई बाहर चली
क्षण-भर बाद डॉक्टर हरीनाथ तेज़ी से
शाल उठने लगते हैं; वेटिंगरूम का जमादार
क्षण तेज़ी से परदा गिरता है।]

सारी रोशनी जाने लगती है—उसी बीच डॉक्टर हरीनाथ

मरीज को देखते हुए) अच्छा···अपना शाल ओढ़ा दिया !
है ?
लग रही थी ।
सोने दो···गरमी आ जाएगी ।

हो जाता है—क्षणिक अन्तराल के बाद जब रोशनी लौटती
कि डॉ० हरीनाथ और इन्दर आदि सब सो रहे हैं—केवल
मि में गाड़ी आने की सूचना होती है । वेटिंगरूम के अनेक
ते हैं । कुली आता है, 'मेल', 'मेल' की आवाज़ देता है ।]

'लोकल' से जाएँगे ।

हरीनाथ उठते हैं ।

ी इधर आओ ! हम 'मेल' से ही जाएँगे !···उठो अनू···

एँगे···सुबह से पहले ।

ड़ती है ।]

···यह क्या ? नहीं···नहीं···न ! मरीज़ को सोने
ट' चाहिए ! 'कम्पलीट रेस्ट···रेस्ट !'
? क्या कह रहे हैं आप ? यह घर कैसे जाएँगे ?

सामान ठीक करवाते हुए) मरीज़ के लिए आराम
आराम बड़ी चीज़ है—दवा क्या है ? रास्ते में
हो जाने का डर है ।

सामान उठवाकर) छोड़ो भी इन बातों

गाड़ी आती है । अनुपम ठगी-सी,

म !
र ले चलने के लिए क्यों

कहा ? (**रो पड़ती है**) अपने धर्म निभाने की सभ्यता क्यों प्रकट की ?

[स्वर सिसकियों में पिघल जाते हैं ।]

हरीनाथ : (**उसे बढ़ाते हुए**) चलो जल्दी !

अनुपम : आप तो 'लोकल' से जा रहे थे···यह तो 'मेल' है !

हरीनाथ : मेल हो या बेमेल, हमें अभी चलना है—चलो जल्दी···चलो ! सुबह से पहले पहुँच जाएँगे !

अनुपम : और यह !

[अनुपम करुण दृष्टि से इन्दर को देखती रहती है; घूम-घूमकर देखती है और डॉ० हरीनाथ के संग जैसे खिंचती हुई बाहर चली जाती है ।

क्षण-भर बाद डॉक्टर हरीनाथ तेज़ी से फिर प्रवेश करके इन्दर के ऊपर से शाल उठाने लगते हैं; वेटिंगरूम का जमादार झुककर सलाम मारता है और उसी क्षण तेज़ी से परदा गिरता है ।]

औलादी का बेटा

पात्र

दसिया
हरिया
भीखी
मेहमान
एक जमादार

[इलाहाबाद के कटरा मुहल्ले के एक किनारे,
टिन, घास-फूस और खपरैल से ढका हुआ
पिछवारे का पता कोई अजनबी इसलिए नहीं
है और बार-बार उसी गिरावट पर किसी-न-कि
हो जाने से बचाया गया है; यही प्रकृति है उस

इस तरह वास्तव में घर क्या है, एक छोटा
आँगन में घास-फूस के छप्पर का एक बरामदा
दरवाजे पर टिन का ओसार। आँगन के पि
ओर से बाहर आने-जाने का खुला रास्ता है।

परदा इसी छोटे-से आँगन में उठता है
बिलकुल गठरी बना हुआ बेहोश-सा पड़ा
पास हुक्के में पानी डाल रही है। एकाए
आवाज़ फूटती है।]

जमादार : (जैसे आवेश में) दसिया !
प्रविष्ट हो) दसिया !

दसिया : (हुक्का छोड़कर उठती हुई)

जमादार : ओ-ओ नहीं तेरा सिर !
और साहब की कोठी वाली
है, पानी नहीं बहा है और
की ओर बह रहा है

दसिया : साहब, मेरे

जमादार : तो क्यूँ
कर लिया है
पड़ी है

दसिया : (

जमादार

...ौलादी का बेटा

पात्र

दसिया
हरिया
भीखी
मेहमान
जमादार

[इलाहाबाद के कटरा मुहल्ले के एक किनारे, भंगी टोला। मई की एक सुबह। टिन, घास-फूस और खपरैल से ढका हुआ एक छोटा-सा घर, जिसके अगवारे-पिछवारे का पता कोई अजनबी इसलिए नहीं लगा सकता कि घर कई बार गिरा है और बार-बार उसी गिरावट पर किसी-न-किसी उद्योग से उसको पूर्णतः नष्ट हो जाने से बचाया गया है; यही प्रकृति है उस घर की !

इस तरह वास्तव में घर क्या है, एक छोटा-सा कच्चा गन्दा आँगन मात्र है। आँगन में घास-फूस के छप्पर का एक बरामदा है, फिर बाहर का दरवाज़ा और दरवाज़े पर टिन का ओसार। आँगन के पिछवारे का हिस्सा टूटा है और दायीं ओर से बाहर आने-जाने का खुला रास्ता है।

परदा इसी छोटे-से आँगन में उठता है। भीखी बुढ़िया खाट पर कथरी ओढ़े, बिलकुल गठरी बना हुआ बेहोश-सा पड़ा है। उसकी माँ दसिया भरी बाल्टी के पास हुक्के में पानी डाल रही है। एकाएक दायीं ओर से जमादार साहब की आवाज़ फूटती है।]

जमादार : (**जैसे आवेश में**) दसिया ! ओ रे दसिया ! सुनती है रे ! (**आँगन में प्रविष्ट हो**) दसिया !

दसिया : (**हुक्का छोड़कर उठती हुई**) हाँ साहेब ! ओ···ओ जो···रहा न !

जमादार : ओ-ओ नहीं तेरा सिर ! कल से वह डाट वाली सड़क नहीं बुहारी गई न ! और साहब की कोठी वाली सड़क की नाली कितनी गन्दी पड़ी है। दो दिन हुए हैं, पानी नहीं बहा है और पटी हुई नाली से सारा गन्दा पानी उफन-उफनकर पार्क की ओर बह रहा है।

दसिया : साहब, मेरे यहाँ कल से मेहमान आ गए हैं।

जमादार : तो उन्हें लेकर मैं चाटूँ क्या ? (**क्रोध से**) नौकरी तो जाएगी ही, वह तो तै कर लिया है मैंने, लेकिन इससे पहले पक्का घर भी देखना पड़ेगा, किस घमण्ड में पड़ी है तू ?···तेरे मेहमान···!

दसिया : (**बीच ही में**) नहीं···नहीं ! साहेब बाबू ! ज़रा आहिस्ते से बोलो हुज़ूर ! मैं पाँव पड़ती हूँ, बस आज गाली न दो ··मेहमान सिर पै बैठे हैं !

जमादार : सिर पै हों, चाहे कूड़े में हों ! (**लौटने लगता है**) अभी पता चलेगा ! तब रोना नानी के नाम ! कर ले खूब मेहमानबाज़ी ! (**जाते-जाते**) कामचोर कहीं की ! घर बैठे-बैठे पगार चाहिए। (**प्रस्थान**)

दसिया : (**भीखी को जगाती हुई**) भिखिया ! ओ रे भिखिया ! जागता है कि नहीं रे !

उठ···उठ··· ! ग़ज़ब हो गया रे ! जमादार तक शिकायत हो गई। वह आया था, दाँत पीस कर रह गया है !

भीखी : (करवट लेता है) ऊँ···ऊँ···sss···जा···जा, मैं नहीं जागता।

दसिया : क्यों नहीं जागेगा ? मुद्दई ! उठ, नहीं तो अभी डालती हूँ खौलता हुआ पानी तेरे कलेजे में !

भीखी : पानी नहीं, आग डाल दे आग ! जगाने चली है ! रात क्यों नहीं जगाया जब खाना तैयार हुआ था ! सब गटर-गटर खा लिया न ? अकेला मैं ही था उपवास करने के लिए !

दसिया : अच्छा उठ ! मैं तेरे लिए कहीं से कुछ माँग लाती हूँ ! उठ जा बेटे ! नहीं तो जमादार ग़ज़ब कर डालेगा !

भीखी : (गुस्से में) ग़ज़ब नहीं, मर जाए साला वह ! तुम सब मर जाओ, लेकिन मैं उठूँगा नहीं, हाँ !

दसिया : (गुस्से में आकर मार बैठती है) क्यों नहीं उठेगा रे दाढ़ीजार ! देखती हूँ तू कैसे नहीं उठता ! (पुकारती है) हिरिया ! ओ री हिरिया !

हिरिया : (दूर से) का है रे माई !

दसिया : दौड़ के ला तो एक लोटा गरम पानी ! छोड़ दे इस शैतान के ऊपर ! मर जाए दहिजरा जलभुन के !

भीखी : हाँ-हाँ ! गरम पानी के संग थोड़ा नमक और छुरी भी लेती आना, नाश्ता कर लेना तुम लोग !

दसिया : (पराजित स्वर में) तो नहीं उठेगा आज तू ! न उठ ! भूँज ले मैं जब तक जिन्दा हूँ ! (**रो पड़ती है।**)

भीखी : (आधा उठकर) जा, जा ! तिरिया-चरित्तर दिखा आ अपने मेहमानों को ! थाली-थाली-भर खाना, सहनकी भर नाश्ता उन मुए मेहमानों को ! हुक्के पर हुक्का उन पेट्टुओं को ! सारा खाना खिला दिया उन्हें, और रात मैं बिना पानी पिए ही सो गया ! तब तो मुझे जगाने नहीं आई थी ! जो खाए वह काम करे !

हिरिया : (प्रवेश कर) तो तू यह समझ रहा है कि रात हम लोगों ने खाना खाया है ? सिर्फ़ तू ही भूखा सो गया है ? हम लोगों को तो दो रात हो गई···।

दसिया : चुप रह रे ! तेरी भी अकल मारी गई क्या इसी के संग ?

भीखी : (गुस्से में) मैं कहता हूँ, दूर हो जाओ तुम लोग मेरी आँखों के सामने से ! (रुककर) चोट्टी कहीं की !

हिरिया : देख ले माई, सुन ले इस पाजी को ! (रुककर) जैसे अकेले इसी ने रात उपवास किया है !

दसिया : अच्छा तू ही चुप हो जा ! हट चल यहाँ से ? आज इसी की टिकठी निकलेगी यहाँ से !

हिरिया : तू तो शाम ही से सारी रात सोता भी रहा ! माई कहाँ-कहाँ दौड़ी है तब

आटा ले आई है। उतनी रात को मैं पेड़ पर च
गीली लकड़ी और वह टूटा-सा चूल्हा ! तुझे क्य
भरपेट खाना चाहिए ! अकेले तेरी ही तो जान

भीखी : हट जा मेरे सामने से ! औलादी की···।

[उसी क्षण भीखी को दसिया तड़ातड़ मारने ल

दसिया : और दे गाली ! दे गाली अपने बाप क
गाली ! दे···और दे !

हिरिया : (बीच में आकर बचाने लगती है) बस···ब
माई, मत मार अब !

दसिया : (रुककर फूलती साँसों में) काट डालूँगी
तूने ? तू जनमते ही क्यों नहीं मरा ? काट के र

भीखी : और मेरा कीमा बनाकर आज दिन में मेहमा

[सहसा बाहर से मेहमान की आवाज़ आती है।

आवाज : औलादी बहू ! अरे ज़रा सुनो तो !

हिरिया : दौड़ माई ! मेहमान बुला रहे हैं तुझे !

दसिया : आयी !

[बाहर चली जाती है।]

हिरिया : तो इसी तरह तू सोया ही रहेगा ?
चार बँगलों की टहल और ये दोनों
तकेंगे ! लगा-लगाया काम-धन्धा

भीखी : छूट जाए, मेरी बला से !

दसिया : (लौटकर आती हुई) हि
खँचिया-झाड़ू लेकर पि
कब तक इसी तरह मरा
नहीं।

[हिरिया का प्रस्थान

भीखी : उपवास करके
सिर रगड़ कर
असली खून न

दसिया : (
नहीं मार
है, बेक

आटा ले आई है। उतनी रात को मैं पेड़ पर चढ़ी थी लकड़ी तोड़ने ! वह गीली-गीली लकड़ी और वह टूटा-सा चूल्हा ! तुझे क्या पता, तुझे तो बस दोनों वक़्त भरपेट खाना चाहिए ! अकेले तेरी ही तो जान है !

भीखो : हट जा मेरे सामने से ! औलादी की···।

[उसी क्षण भीखो को दसिया तड़ातड़ मारने लगती है।]

दसिया : और दे गाली ! दे गाली अपने बाप का नाम लेकर, और दे हिरिया को गाली ! दे···और दे !

हिरिया : (**बीच में आकर बचाने लगती है**) बस···बस अब नहीं ! अब नहीं ? बस··· माई, मत मार अब !

दसिया : (**रुककर फूलती सांसों में**) काट डालूंगी बोटी-बोटी तेरी, क्या समझा है तूने ? तू जनमते ही क्यों नहीं मरा ? काट के रख दूंगी, समझ रखना, हाँ।

भीखो : और मेरा कीमा बनाकर आज दिन में मेहमानों को खिला देना, हाँ।

[सहसा बाहर से मेहमान की आवाज़ आती है।]

आवाज़ : औलादी बहू ! अरे ज़रा सुनो तो !

हिरिया : दौड़ माई ! मेहमान बुला रहे हैं तुझे !

दसिया : आयी !

[बाहर चली जाती है।]

हिरिया : तो इसी तरह तू सोया ही रहेगा ? आखिर कब तक ? सड़क की बुहार, उन चार बँगलों की टहल और ये दोनों नालियाँ, ये सारे काम कब तक तेरी राह तकेंगे ! लगा-लगाया काम-धन्धा जब छूट जाएगा, तब पता लगेगा !

भीखो : छूट जाए, मेरी बला से !

दसिया : (**लौटकर आती हुई**) हिरिया ! जा बेटी, तू ही काम पर चली जा ! खँचिया-झाड़ू लेकर पिछवारे के रास्ते से गिमटी के बीच से ! जा, देखती हूँ यह कब तक इसी तरह मरा रहता है। यहीं पड़े-पड़े सूख न गए तो मैं अपने बाप की नहीं।

[हिरिया का प्रस्थान]

भीखो : उपवास करके मैं कभी भी किसी काम पर नहीं जाऊँगा, कहे दे रहा हूँ, चाहे सिर रगड़ कर रह जाओ तो क्या ! और अगर जाऊँ तो अपने बाप औलादी का असली खून नहीं !

दसिया : (**क्रोध से**) तेरे मुँह में व्याधी क्यों नहीं हो जाती ! ज़बान को लकवा क्यों नहीं मार जाता ! (**रुककर**) मेहमान सिर पे बैठे हैं, और इसे भूख-भूख की रट है, बेशरम कहीं का ! घर की इज्ज़त लेने पर तुला है !

भीखी : मेरे मुँह पर काँव-काँव मत करो ! नहीं तो अच्छा नहीं होगा !

दसिया : घबड़ा नहीं ! हटने दे सिर पर से मेहमानों को ! फिर तेरा कचूमर निकालूँगी ! अभी मजबूर हूँ रे, बेहया, नहीं तो याद है न मेरी मार !

भीखी : तेरी क्या औलादी की भी मार याद है मुझे ! वह मारता-मारता चला गया, तू भी उसके पाँव दबाने चली जाएगी; मेरा क्या !

दसिया : ठीक है ! किस नाग को जनम दिया मैंने अपनी कोख से ! हाय राम ! ज़रा भी तो इसे किसी के लिए मोह-माया हो ! बेशरम निगोड़ा कहीं का !

[रो पड़ती है ।]

दसिया : (सिसकियों को पीती हुई) तेरी ही शादी पक्की करने के लिए इन मेहमानों को टिकाए बैठी हूँ। तेरा बाप आज होता तो सब ऐसे ही नहीं पड़ा रहता ! तू ऐसा आवारा भी नहीं हुआ होता ! अब तक तेरा ब्याह हो गया होता और हिरिया तो कभी की ब्याही गयी होती ! (रुककर) जब वे थे तो इतने मेहमान तो आए दिन टिके रहते थे ! आज हम उपवास नहीं करते, जमादार इस तरह कच्ची-पक्की कहकर नहीं निकल जाता !

भीखी : (एकाएक खाट पर से उठ जाता है) लेकिन ये मेहमान मेरे घर पर क्यों इस तरह डेरा डाले हुए हैं ? क्या ज़रूरत है इनकी ?

दसिया : (बढ़कर मुँह पकड़ लेती है) चुप रह, नहीं तो जान दे दूँगी ! (सिसकती हुई) निगोड़ा यह सब तेरे लिए है !

भीखी : मेरे लिए ?

दसिया : मजबूरी की हद पर पहुँचकर मैं तेरे ही लिए 'अदला-बदला' तै कर रही हूँ !

भीखी : लेकिन तै तो कल हो चुका ! अब कब तक हम उपवास करेंगे; जैसे वे दहेज देकर मेरी शादी करेंगे !

दसिया : बेशरम कहीं का ! बेटी तो देगा वह हमें ! नहीं तो जुरेगी तुझे ?

भीखी : बदले में हिरिया भी तो जाएगी उसी घर ! हम तो एक दिन भी नहीं गए उसके घर मेहमानी करने !

[इधर-उधर कुछ ढूँढ़ने लगता है ।]

दसिया : क्यों उठा तू ! क्या ढूँढ़ रहा है ? कहाँ जा रहा है रे !

भीखी : हुक्का और चिलम ! बीड़ी नहीं है तो हुक्का ही पीऊँगा ! सेरों तम्बाकू तो पी गए होंगे वे ! कमाता मैं हूँ, मैं क्यों न पिऊँ ?

[बाहर जाने लगता है, दसिया दौड़कर उसे रोकती है ।]

दसिया : हाय दइया ! पागल हो गया क्या ? ऐसे जाएगा मेहमानों के सामने चीथड़ा लपेट कर ? टूट जाएगी तेरी शादी अगर यही करनी करेगा !

भीखी : लेकिन मैं हुक्का पीऊँगा !

दसिया : दो ही चिलम तम्बाकू है समझ ले, हाँ !

भीखी : अच्छा जा, हुक्का तो ले आ !

[दसिया का बाहर प्रस्थान; भीखी पिछवाड़े के र

दसिया : (हुक्का लिए लौटती है) कहाँ गया रे ? ओ
कहाँ उड़ गया ! (पिछवाड़े जाती है और लौट
बुत्ता पढ़ा के ! आना लौटकर। आज परस दूँगी थ

[मेहमान की आवाज़ आती है और उसी के संग मे

मेहमान : औलादी बहू !

दसिया : आयी !

मेहमान : हम लोगों को अब इजाज़त दो औलादी बहू
हो गई है।

दसिया : लेकिन ऐसे क्यों ? अभी रोटी बन जाती
जाइयो !

मेहमान : नहीं-नहीं ! तरद्दुद करने की कोई ज़रूरत न
दोपहर तक तो हम घर पहुँच ही जाएँगे !

दसिया : हाय-हाय ! कोई इस तरह घर से मेहमान बि
ताज़ा करके लाती हूँ, अभी रोटी बनी जा रही है

मेहमान : अच्छी बात है (बाहर चला जाता है।)

[दसिया चिलम भरने लगती है, बाहर से हिरिया

दसिया : क्या है रे ? इतनी जल्दी कैसे लौट आयी ? स

हिरिया : सिर्फ़ बँगलों का ही काम करके आ रही हूँ !

दसिया : सड़क और नाली का काम ?

हिरिया : उधर वह जमादार गालियाँ देता हुआ खड़ा
न हुई। (आँचल से खोलती हुई) इतना आटा
यहाँ से मिला है !

दसिया : अच्छा, ठीक है ! जा झटपट रोटि
मेहमानों को बिदा कर दूँ, समझी

[एकाएक पिछवाड़े से भीखी
हाथ में बीड़ी। बालों में तेल

दसिया : आ गया कमा के ?

भीखी : तुझे मतलब ?

हिरिया : मेहमानों को
के हैं !

काँव मत करो ! नहीं तो अच्छा नहीं होगा !
हटने दे सिर पर से मेहमानों को ! फिर तेरा कचूमर
ूर हूँ रे, बेहया, नहीं तो याद है न मेरी मार !
ी भी मार याद है मुझे ! वह मारता-मारता चला गया, तू
ी जाएगी; मेरा क्या !
को जनम दिया मैंने अपनी कोख से ! हाय राम ! ज़रा
मोह-माया हो ! बेशरम निगोड़ा कहीं का !

) तेरी ही शादी पक्की करने के लिए इन मेहमानों
म आज होता तो सब ऐसे ही नहीं पड़ा रहता ! तू
ा ! अब तक तेरा ब्याह हो गया होता और हिरिया
! (रुककर) जब वे थे तो इतने मेहमान तो आए
वास नहीं करते, जमादार इस तरह कच्ची-पक्की

ा है) लेकिन ये मेहमान मेरे घर पर क्यों इस
रत है इनकी ?
प रह, नहीं तो जान दे दूंगी ! (सिसकती हुई)

ेरे ही लिए 'अदला-बदला' तै कर रही

क हम उपवास करेंगे; जैसे वे दहेज

! नहीं तो जुरेगी तुझे ?
! हम तो एक दिन भी नहीं गए

ै रे !

ीऊँगा ! मेरों तम्बाकू तो

ों के सामने चीथड़ा

दसिया : दो ही चिलम तम्बाकू है समझ ले, हाँ !

भीखी : अच्छा जा, हुक़्क़ा तो ले आ !

[दसिया का बाहर प्रस्थान; भीखी पिछवाड़े के रास्ते बाहर निकल जाता है।]

दसिया : (**हुक़्क़ा लिए लौटती है**) कहाँ गया रे ? ओ भिखिया ! भिखिया रे ! हाय, कहाँ उड़ गया ! (**पिछवाड़े जाती है और लौटती है**) भाग गया। निकल गया बुत्ता पढ़ा के ! आना लौटकर। आज परस दूँगी थाली में ! खा लेना गटर-गटर !

[मेहमान की आवाज़ आती है और उसी के संग मेहमान का प्रवेश।]

मेहमान : औलादी बहू !

दसिया : आयी !

मेहमान : हम लोगों को अब इजाज़त दो औलादी बहू ! घर चलें, सारी बात तो तै ही हो गई है।

दसिया : लेकिन ऐसे क्यों ? अभी रोटी बन जाती है। खा-पीकर उस वक़्त चले जाइयो !

मेहमान : नहीं-नहीं ! तरद्दुद करने की कोई ज़रूरत नहीं ! टहलते-घूमते चले जाएँगे। दोपहर तक तो हम घर पहुँच ही जाएँगे !

दसिया : हाय-हाय ! कोई इस तरह घर से मेहमान बिदा करता है ! चलो, मैं हुक़्क़ा ताज़ा करके लाती हूँ, अभी रोटी बनी जा रही है !

मेहमान : अच्छी बात है (**बाहर चला जाता है।**)

[दसिया चिलम भरने लगती है, बाहर से हिरिया आती है।]

दसिया : क्या है रे ? इतनी जल्दी कैसे लौट आयी ? सब काम भुगत गया ?

हिरिया : सिर्फ़ बँगलों का ही काम करके आ रही हूँ !

दसिया : सड़क और नाली का काम ?

हिरिया : उधर वह जमादार गालियाँ देता हुआ खड़ा था, सो वहाँ जाने की मेरी हिम्मत न हुई। (**आँचल से खोलती हुई**) इतना आटा मिला है माई ! वकील साहब के यहाँ से मिला है !

दसिया : अच्छा, ठीक है ! जा झटपट रोटियाँ बना। खिला-पिलाकर किसी तरह मेहमानों को बिदा कर दूँ, समझो कि सात गंगा पार हो गई !

[एकाएक पिछवाड़े से भीखी आता है, सफ़ेद कमीज़ पहने लौटा है। मुँह में पान, हाथ में बीड़ी। बालों में तेल-कंघी।]

दसिया : आ गया कमा के ? यह बन-ठनके कैसे ? बोल कहाँ से ?

भीखी : तुझे मतलब ?

हिरिया : मेहमानों को दिखाने आया है। चन्दरवा से माँग के लाया है माई ! सब उसी के हैं !

भीखी : माई चुप कर दे इसे ! बेशरम कहीं की, अगर मेहमान सुनेंगे तो क्या कहेंगे। तुझे तो कोई देखेगा नहीं ।

दसिया : हाँ, हाँ, तेरी ही वजह से तो उसकी शादी हो रही है···निर्लज्ज कहीं का !

[मुँह छिपाकर हँस पड़ती है । उसी समय फिर एकाएक जमादार का प्रवेश]

जमादार : कहाँ है औलादी बहू ?

[दसिया बढ़कर हाथ जोड़े खड़ी हो जाती है ।]

जमादार : पूछ अपने भिखिया से, क्या है इसकी करनी ? पूछ, नहीं तो मारे बेतों के काट डालूँगा तुम लोगों को ! बेहया, सुअर के बच्चे !

दसिया : क्या है रे भिखिया ! बोल क्या है ? बोलता क्यों नहीं रे ?

[उसी समय बाहर से फिर मेहमान आता है ।]

मेहमान : क्या है औलादी बहू ! आज सुबह से ही क्या शोर पै शोर उठ रहा है तुम्हारे घर में ? क्या बात है ?

दसिया : कुछ नहीं ! कुछ नहीं !

भीखी : जी, कुछ नहीं ! जमादार साहब आए हैं ! सलाम जमादार साहब !

[बढ़कर जमादार साहब के पैर छू लेता है ।]

भीखी : आइए, बाहर आइए जमादार साहब ! मैं माफ़ी चाहता हूँ जमादार साहब !

[भीखी के पीछे जमादार बाहर जाता है और आँगन से दसिया के संग मेहमान भी बाहर जाता है । उसी समय बाहर से निःशब्द रोता हुआ दोनों हाथों में अपना मुँह छिपाए हुए भीखी लौटता है, और उसी खाट पर जैसे कटकर गिर जाता है ।]

हिरिया : क्या है रे भीखी ? भीखी ! क्या है ? (चीखती है) माई ! ओ रे माई !

[दसिया दौड़ी आती है ।]

हिरिया : देख कितना ख़ून बह रहा है भीखी के मुँह से !

दसिया : क्या है रे ? किसने मारा ? हाय, क्या हो गया ?

भीखी : जमादार ने मारा है माँ ! वह सुबह तुझे गाली दे रहा था न ! सड़क और नाली पर खड़ा होकर भी हम सबको गाली दे रहा था । मेरे दादा और बाप का नाम ले-लेकर गाली दे रहा था । मैंने भी उसे गाली दी । इतनी गालियाँ कि चुप कर दिया उसे ! वही अभी आया था ।

[दसिया रोने लगती है ।]

भीखी : वही अभी आया था । मैंने कहा, तू मुझे चाहे जितना मार ले, लेकिन मेहमानों की नजर में हमारी बेइज़्ज़ती न कर ! और उसने जूते से मेरे मुँह में मारा !

1

[रोने लगता है । फिर मेहमान की आवाज आती

आवाज : ओ औलादी बहू !

दसिया : आई···आ रही हूँ !

आवाज : जरा भीखी को बाहर भेज देना । समझीं न !

दसिया : अच्छा जी !

[भीखी उठने लगता है । दसिया उसे सँभालती है ।

दसिया : उठ नहीं बेटा ! लेटा रह, अभी ख़ून तो धार

हूँ !

[तेज़ी से परदा गिरता है ।]

बेशरम कहीं की, अगर मेहमान सुनेंगे तो क्या कहेंगे।

...तो उसकी शादी हो रही है···निर्लज्ज कहीं का !

...। उसी समय फिर एकाएक जमादार का प्रवेश]

...ही हो जाती है।]

...ा है इसकी करनी ? पूछ, नहीं तो मारे बेतों के काट
..., सुअर के बच्चे !

...क्या है ? बोलता क्यों नहीं रे ?

...न आता है।]

...सुबह से ही क्या शोर पै शोर उठ रहा है तुम्हारे

...ए हैं ! सलाम जमादार साहब !

...ा है।]

...! मैं माफ़ी चाहता हूँ जमादार साहब !

...और आँगन से दसिया के संग मेहमान भी
...रोता हुआ दोनों हाथों में अपना मुंह
...पर जैसे कटकर गिर जाता है।]

...ाती है) माई ! ओ रे माई !

...!

...दे रहा था न ! सड़क और
...। मेरे दादा और बाप का
...। इतनी गालियाँ कि चुप

...से, लेकिन मेहमानों
...मुँह में मारा !

1

[रोने लगता है। फिर मेहमान की आवाज़ आती है—]

आवाज़ : ओ औलादी बहू !

दसिया : आई···आ रही हूँ !

आवाज़ : ज़रा भीखी को बाहर भेज देना। समझीं न !

दसिया : अच्छा जी !

[भीखी उठने लगता है। दसिया उसे सँभालती है।]

दसिया : उठ नहीं बेटा ! लेटा रह, अभी ख़ून तो धारोधार बह रहा है ! दवा लाती हूँ !

[तेज़ी से परदा गिरता है।]

बाहर का आदमी

पात्र

जंगूसिंह
बलीसिंह
शान्तीलाल
माँ (घर के भीतर से)
लालाजी
कल्ली

[जंगल का एक भाग। चबूतरेनुमा धरती के एक
उस पर काली की भयावह मूर्ति रखी है। सामने
तलवारें और दो बन्दूकें हैं।

दिन डूबने में ज़रा-सी देर है। परदा
पैंतालीस वर्ष। खूब हृष्ट-पुष्ट। व्यक्तित्व से सच
से काली की मूर्ति के सामने नतशिर है। बलीसिंह
के बीच में है, दौलत के ढेर पर भूखे सिंह की तरह

बली : (मुट्ठी में रुपए उठाकर नीचे हथेली पर
छूम···छनन···न···।

जंगू : (घूमकर) बलीसिंह। पहले काम खत्म

बली : काम तो कल रात ही खत्म कर लिया
सोना अलग !

जंगू : यह हमारा पहला डाका है, बलीसिंह

बली : मुहरत कहो मुहूरत !

जंगू : नहीं, काली माई की कृपा ! पहले
हम डाकू हैं बलीसिंह, चोर नहीं

बली : चोर तो हम पहले भी नहीं

जंगू : (सव्यंग्य) ···चोर नहीं थे
करना (रुककर) छि

बली : (एकाएक सावधान
है) कोई आ रहा है

जंगू : हूँ···है तो···।
शान्तीलाल-जैसा

[दायीं ओर से
आकर चुप

जंगू : क्यों ?

[

बली :

र का आदमी

पात्र

...गूसिंह

...लीसिंह

...लाल

...भीतर से)

...मी

[जंगल का एक भाग। चबूतरेनुमा धरती के एक आसन पर कपड़ा बिछा है और उस पर काली की भयावह मूर्ति रखी है। सामने पूजा-अर्चना के स्थान पर दो तलवारें और दो बन्दूकें हैं।

दिन डूबने में ज़रा-सी देर है। परदा उठने पर जंगूसिंह (उम्र प्रायः पैंतालीस वर्ष। खूब हृष्ट-पुष्ट। व्यक्तित्व से सचमुच सरदार लग रहा है) श्रद्धा से काली की मूर्ति के सामने नतशिर है। बलीसिंह, जिसकी अवस्था पैंतीस-चालीस के बीच में है, दौलत के ढेर पर भूखे सिंह की तरह पिला पड़ रहा है।]

बली : (**मुट्ठी में रुपए उठाकर नीचे हथेली पर उनकी वर्षा करते हुए**) वाह ! वाह !! छूम···छनन···न···।

जंगू : (**घूमकर**) बलीसिंह। पहले काम ख़त्म कर लो !

बली : काम तो कल रात ही ख़त्म कर लिया···अब क्या काम ? यह लो चाँदी अलग, सोना अलग !

जंगू : यह हमारा पहला डाका है, बलीसिंह !

बली : मुहूरत कहो मुहूरत !

जंगू : नहीं, काली माई की कृपा ! पहले माँ काली को सोना चढ़ाओ ! (**चढ़ाकर**) अब हम डाकू हैं बलीसिंह, चोर नहीं !

बली : चोर तो हम पहले भी नहीं थे !

जंगू : (**सव्यंग्य**)···चोर नहीं थे ? किसी के बच्चे को उठा लाना, फिर रुपए वसूल करना (**रुककर**) छिः ! चोरी से भी बदतर।

बली : (**एकाएक सावधान होकर खड़ा हो जाता है और झपटकर बन्दूक उठा लेता है**) कोई आ रहा है !

जंगू : हूँ···है तो···। कोई लौण्डा-सा है ! (**रुककर**) लेकिन कायर नहीं। अरे, शान्तीलाल-जैसा लग रहा है। (**बन्दूक छीन लेता है**) शान्तीलाल है।

[दायीं ओर से शान्तीलाल का प्रवेश—त्रस्त, तार-तार-सा फटा और टूटा हुआ। आकर चुपचाप डरा-सा एक कोने में खड़ा हो जाता है।]

जंगू : क्यों ?···कैसे लौट आया ? अबे मनहूस, बोलता क्यों नहीं ? क्या बात है रे ?

[शान्ती मुँह छिपाकर रो पड़ता है।]

बली : जनाना कहीं का, रोने लगा।

जंगू : यहाँ रोने आया है ?

बली : मरने आया है मरने ! पहले बच के चला गया, मरने अब आया है !

शान्ती : (**फूटकर**) हाँ सरदार । सच, मैं मरने आया हूँ ।

[दोनों हँस पड़ते हैं ।]

बली : क्यों, अपने घर तक नहीं पहुँचा क्या ?

शान्ती : घरवालों ने मुझे निकाल दिया ।

जंगू : निकाल दिया ? क्या बकता है ?

शान्ती : घरवालों ने मुझे नहीं पहचाना ।

जंगू : तेरे माँ-बाप ने तुझे नहीं पहचाना ? (**क्रोध से**) झुट्ठा कहीं का । तू अपने घर तक पहुँचा भी था ?

शान्ती : जब मैं अपने घर पहुँचा, रात हो चुकी थी । दहलीज़ से आगे बढ़ा तो सामने ही माँ दीखीं । मुझे देखते ही दहाड़ मारकर चीख पड़ीं कि मैं भूत हूँ । मरकर भूत बन गया हूँ । मुझे साल-भर पहले जंगूसिंह ने मार डाला है ।···उस घर के लिए मैं मर चुका हूँ सरदार ।

[क्रम-परिवर्तन । स्टेज की सारी रोशनी सिमटकर शान्तीलाल पर जम जाती है । काली की मूर्ति के आगे एक परदा खिंच आता है जिसमें एक दरवाजा और एक खिड़की है । शान्ती की माँ उसी दरवाज़े से आती दीख पड़ती है ।]

माँ : (**शान्ती को देखते ही, डर से चीख उठती है**) नहीं···नहीं···(**आर्त्त पुकार से**) दौड़ो चन्दा के बाबू···दौड़ो···भूत···भूत···शान्ती का भूत मुझे लीलने आया है ।

शान्ती : माँ, मैं हूँ···मैं । मैं शान्तीलाल हूँ माँ ।

माँ : भूत···भूत (**डर से पुकारती हुई**) चन्दा के बाबू ।···कहाँ हो ?

शान्ती : नहीं माँ !···पहचानो मुझे । मैं शान्तीलाल हूँ, आपका शान्तीलाल । मैं भूत-प्रेत नहीं । मैं शान्तीलाल हूँ···पिताजी कहाँ हैं ?

माँ : (**दरवाज़े पर आती हुई, डर से**) नहीं-नहीं । दूर रहो दूर !···मुझे छुओ नहीं !

[तेज़ी से दरवाज़ा बन्द कर लेती है । बन्द दरवाज़े पर शान्ती सिर टिकाकर रो रहा है । तभी भीतर से आवाज़ आती है ।

लालाजी : क्या है ?···इस तरह काँप क्यों रही हो ?

माँ : शान्ती का भूत आया है ! बाहर खड़ा है । (**घबराकर**) नहीं-नहीं, दरवाज़ा मत खोलो । पकड़ लेगा । लील जाएगा । कहता है, मैं शान्तीलाल हूँ ।

लालाजी : वहम है तुम्हारा ! शान्तीलाल को तो डाकुओं ने मार डाला—जंगू ने उसका गला घोंट दिया ! अब तो एक साल पूरा हो गया ।

माँ : उसी की आत्मा प्रेत-योनि में आई है ।

लालाजी : हत्यारा जंगू । पहले सोलह हज़ार, फिर दस, फिर आठ हज़ार । तेरह दिसम्बर ···वही आखिरी तारीख थी ।

[बन्द दरवाज़े पर शान्तीलाल सिर टकराता है ।]

शान्ती : पिताजी, मैं ज़िन्दा हूँ । दरवाज़ा खोलिए ।

माँ : नहीं-नहीं, दरवाज़ा मत खोलो । (**दरवाज़ा ज़रा-सा खु**
बन्द कर देती है) ख़बरदार, दरवाज़े को छुओ तक
आया है ।

लालाजी : ठीक कहती हो तुम ! मेरा शान्ती तो मर गया

शान्ती : मैं मरा नहीं हूँ पिताजी ! जंगू ने मुझे छोड़ दिया

लालाजी : हाँ बेटे ! आत्मा अमर है । (**खिड़की से झाँकत**
मेरे शान्ती की आत्मा है— भटकती हुई आत्मा !

शान्ती : यह क्या कह रहे हैं आप ?

लालाजी : मैं सच कह रहा हूँ । मैं जंगू को दस हज़ार रुपए
न दे सका । मैं बीमार हो गया था—और तुम्हारी म
मुझे माफ़ करो शान्ती की आत्मा ! (**रुककर**) घबरा
से मैं तुम्हें प्रेत-योनि से ज़रूर मुक्त करूँगा, घबराओ

[स्टेज की सारी रोशनी धूमिल पड़ने लगती है । द
जाता है और जंगल का वही दृश्य और काली की मू
जंगूसिंह और बलीसिंह की हँसी फूटती है ।]

जंगू : तो मेरे घरवालों ने तुझे प्रेत समझ लिया । (**साश्च**

शान्ती : माँ क्या पहचानती ! लेकिन पिताजी ने भी नही
मर गया हूँ । मैं घर से बाहर निकाल दिया गया । प्रे

बली : क्यों रे ! यह चन्दा की माँ तेरी असली···

शान्ती : नहीं, मेरी माँ मर गई । यह मेरी सौतेली माँ है ।

जंगू-बली : धत् तेरे की । यह पहले क्यों नहीं बताया ?

जंगू : ओ हो ! तभी मैं कहता था कि इसके घरवाले कैसे
लिए आठ-दस हज़ार रुपए भी नहीं दे सकते ।

बली : हमारी जासूसी ही ग़लत थी, वरना हम लोग तुझ-जै
लाते ? अरे ! छूते तक नहीं ।

जंगू : हमने तभी से यह पेशा छोड़ दिया । जब आदमी
फिर पेशे में रहा क्या ? हमें यहाँ अनाथों
बली : सुन बे ! अब भाग जा यहाँ से ।
चौबीस जवानों का अपना गिरो

शान्ती : कहाँ जाऊँ ? तुम्हीं

जंगू : जा किसी कुएँ-नदी में

शान्ती : तुम्हीं लोग ले चलो !

जंगू : (**क्रोध से**) क्या

…ले बच के चला गया, मरने अब आया है !
… सच, मैं मरने आया हूँ।

… पहुँचा क्या ?
… दिया।
…है ?
…ाना।
…ना ? (क्रोध से) झुट्ठा कहीं का। तू अपने घर

… हो चुकी थी। दहलीज से आगे बढ़ा तो सामने
… मारकर चीख पड़ीं कि मैं भूत हूँ। मरकर भूत
… जंगूसिंह ने मार डाला है।···उस घर के लिए

…मी सिमटकर शान्तीलाल पर जम जाती है।
… आता है जिसमें एक दरवाज़ा और एक
…से आती दीख पड़ती है।]

…ती है) नहीं···नहीं···(आर्त्त पुकार से)
…···शान्ती का भूत मुझे लीलने आया है।
…।
…के बाबू।···कहाँ हो ?
…ाल हूँ, आपका शान्तीलाल। मैं भूत-
…हूँ ?
…दूर रहो दूर !···मुझे छुओ नहीं !
…जे पर शान्ती सिर टिकाकर रो

…र) नहीं-नहीं, दरवाज़ा मत
…तीलाल हूँ।
…र डाला—जंगू ने उसका

…ार। तेरह दिसम्बर

[बन्द दरवाज़े पर शान्तीलाल सिर टकराता है।]

शान्ती : पिताजी, मैं ज़िन्दा हूँ। दरवाज़ा खोलिए।

माँ : नहीं-नहीं, दरवाज़ा मत खोलो। (**दरवाज़ा ज़रा-सा खुलता है। वह फिर दरवाज़ा बन्द कर देती है**) ख़बरदार, दरवाज़े को छुओ तक नहीं ! शान्ती भूत बनकर आया है।

लालाजी : ठीक कहती हो तुम ! मेरा शान्ती तो मर गया। एक वर्ष होने को आया।

शान्ती : मैं मरा नहीं हूँ पिताजी ! जंगू ने मुझे छोड़ दिया।

लालाजी : हाँ बेटे ! आत्मा अमर है। (**खिड़की से झाँकता है**) मैं पहचान रहा हूँ, तू मेरे शान्ती की आत्मा है—भटकती हुई आत्मा !

शान्ती : यह क्या कह रहे हैं आप ?

लालाजी : मैं सच कह रहा हूँ। मैं जंगू को दस हज़ार रुपए न दे सका। आठ हज़ार भी न दे सका। मैं बीमार हो गया था—और तुम्हारी माँ इतनी रक़म कैसे जुटाती। मुझे माफ़ करो शान्ती की आत्मा ! (**रुककर**) घबराओ नहीं, दान-पुण्य, पूजा-पाठ से मैं तुम्हें प्रेत-योनि से ज़रूर मुक्त करूँगा, घबराओ नहीं !

[स्टेज की सारी रोशनी धूमिल पड़ने लगती है। दरवाज़े वाला परदा पीछे हट जाता है और जंगल का वही दृश्य और काली की मूर्ति दिखाई देती है। साथ ही जंगूसिंह और बलीसिंह की हँसी फूटती है।]

जंगू : तो मेरे घरवालों ने तुझे प्रेत समझ लिया। (**साश्चर्य**) माँ ने नहीं पहचाना ?

शान्ती : माँ क्या पहचानती ! लेकिन पिताजी ने भी नहीं पहचाना। मैं उन सबके लिए मर गया हूँ। मैं घर से बाहर निकाल दिया गया। प्रेत समझ लिया गया।

बली : क्यों रे ! यह चन्दा की माँ तेरी असली···

शान्ती : नहीं, मेरी माँ मर गई। यह मेरी सौतेली माँ है।

जंगू-बली : धत् तेरे की। यह पहले क्यों नहीं बताया ?

जंगू : ओ हो ! तभी मैं कहता था कि इसके घरवाले कैसे बेदर्द हैं कि बेटे की जान के लिए आठ-दस हज़ार रुपए भी नहीं दे सकते।

बली : हमारी जासूसी ही ग़लत थी, वरना हम लोग तुझ-जैसे उल्लू के पट्ठे को उठाकर लाते ? अरे ! छूते तक नहीं।

जंगू : हमने तभी से यह पेशा छोड़ दिया। जब आदमी की कोई क़ीमत ही न रह गई, फिर पेशे में रहा क्या ? हमें यहाँ अनाथालय नहीं खोलना।

बली : सुन बे ! अब भाग जा यहाँ से। अब हम डाकू हो गए हैं। देख यह बन्दूक। चौबीस जवानों का अपना गिरोह है···जा, भाग जा यहाँ से।

शान्ती : कहाँ जाऊँ ? तुम्हीं बताओ, अब मैं कहाँ जाऊँ ?

जंगू : जा किसी कुएँ-नदी में डूब मर।

शान्ती : तुम्हीं लोग ले चलो। तुम्हीं मुझे चुरा लाए थे, अब तुम्हीं···

जंगू : (**क्रोध से**) क्या बकता है। ज़बान खींच लूँगा।

शान्ती : फिर भी यही कहूँगा।

जंगू : देखा बलीसिंह। हमने दया की, यह साला गले पड़ गया !

बली : तेरी ख़ैरियत इसी में है कि तू भाग जा यहाँ से। भागता है कि नहीं ? (**उसे पकड़ लेता है**) बोल, भागेगा कि नहीं ?

[शान्ती उत्तर नहीं देता। आँखें फाड़े उसे एकटक देखता रहता है। बलीसिंह उसे खींचकर पीटता हुआ नेपथ्य की ओर जाता है।]

शान्ती :(**पिटते हुए बेपरवाही से**)मार डालो मुझे। खूब मारो, मुझे प्रेत बनाने वालो !

जंगू : बस···बस बलीसिंह, बन्द करो पीटना।

शान्ती : तुम दोनों प्रेत हो।

बली : (**क्रोध से**) फिर बोले तो···

शान्ती : ज़बान खींच लोगे ! मैं तब भी बोलूँगा। सच-सच कहूँगा। तुमने मुझे प्रेत बनाया है। देखो मुझे, मैं ऐसे ही था ? ···कौन अब पहचानेगा मुझे ?

जंगू : नहीं रहेगा चुप ? भागेगा नहीं रे ?

शान्ती : मैं मर गया। यह उसी का प्रेत खड़ा है।

जंगू : बलीसिंह। इस गधे को घसीटकर दूर कर दो यहाँ से। हमारे पास इसके लिए फ़ुरसत नहीं।

बली : (**शान्ती पर क्रोध से झपटता है, गिरा देता है और उसे घसीटता हुआ**) चल, अब तुझे जहन्नुम में छोड़ जाऊँ।

[घसीटता और पीटता नेपथ्य में ले जाता है। नेपथ्य से शान्तीलाल की एक चीख़ सुनाई पड़ती है, फिर वहीं से बलीसिंह की आवाज़ आती है।]

बली : अब यह बेहोश हो गया !

जंगू : छोड़कर चले आओ। वहीं पड़ा-पड़ा अपने-आप मर जाएगा।

बली : (**आते हुए**) और अभी इस पर जंगली जानवर लग जाएँगे।

जंगू : चलो ख़त्म हुआ क़िस्सा। (**रुककर**) कितनी देर हो गई ! बलीसिंह, सब रुपए बाँध लो।

बली : (**उठकर**) और यह सोना ?

जंगू : इससे बन्दूकें और पिस्तौल ख़रीदे जाएँगे। (**बली के हाथ से सोना ले लेता है**) कितना उम्दा सोना है ? जी होता है, अपनी कल्ली बेटी के लिए दो-तीन गहने बनवाऊँ।

बली : ज़रूर। ज़रूर बनवाओ। पहले डाके की दौलत है, निशानी रहेगी।

जंगू : जब तक कल्ली की माँ ज़िन्दा थी, मैं जेल ही में भटकता रहा। बड़ी दौलत पैदा की, लेकिन मैं उसे एक भी गहना न पहना सका।

बली : (**सब दौलत को बाँधता हुआ**) अच्छा चलो, भाभी नहीं तो उसकी कल्ली बेटी पहनेगी।

जंगू : अब चलो चलें यहाँ से।

[सब सामान सहेजकर जैसे ही वे चलने को होते हैं,
है।]

जंगू : तू फिर जी गया रे ?

बली : इसके मत्थे पर सचमुच मौत नाच रही है। (**बन्दूक**
पर एक कारतूस ज़ाया करना ही पड़ा।

शान्ती : (**बन्दूक पकड़ लेता है**) जंगूसिंह···सरदार !

[स्वर जैसे टूट-टूट जाता है।]

जंगू : क्या कहना चाहता है ?

शान्ती : मैं डाकू बन गया हूँ। तुमने पीटा और मैं बेहोश
हूँ, (**फूलती हुई साँस को दबाकर**) मैं भी डाकू हो गय
डाकू हो गया हूँ।

जंगू-बली : यह मज़ाक़ !

जंगू : (**क्रोध के आवेश में**) इस बार मैं मारूँगा तुझे। (
कारतूस लगी है न ? (**खोलकर देखता है**) चल मर

[शान्ती पत्थर की तरह बन्दूक़ के सामने खड़ा हो ज

शान्ती : चलाओ गोली ! मैं मर चुका हूँ—दर्द ख़त्म हो

बली : तुमसे गोली नहीं चलती ? (**बन्दूक लेने लगता है**)

जंगू : नहीं बलीसिंह ! शान्तीलाल में हिम्मत है ! जो मेरे
बहादुर है। चलो शान्तीलाल, आज से तुम मेरे शागि

शान्ती : शागिर्द नहीं, डाकू ! *तुम्हारी टोली का पचीसवाँ*

जंगू : शाबाश ! चलो, *माँ काली के सामने झुको—आशीर्व*

[शान्ती मूर्ति के सामने झुकता है।]

जंगू : यह लो बन्दूक़। जानते **हो चलाना ?**

शान्ती : (**बन्दूक लेकर**) **सब जान गया हूँ।**

[फ़ायर करता है।]

जंगू-बली : शाबाश ! ···**कैसे—**

शान्ती : बस, चल गई। **सब**
के लिए जो-जो ज़रूरी
परीक्षा लो **सरदार**

[**ज़बान सूखे होंठों**

जंगू : **पास हो गए**

जंगू : अब चलो चलें यहाँ से।

[सब सामान सहेजकर जैसे ही वे चलने को होते हैं, एकाएक शान्ती प्रवेश करता है।]

जंगू : तू फिर जी गया रे ?

बली : इसके मत्थे पर सचमुच मौत नाच रही है। (**बन्दूक ठीक करता हुआ**) इस गधे पर एक कारतूस जाया करना ही पड़ा।

शान्ती : (**बन्दूक पकड़ लेता है**) जंगूसिंह···सरदार !

[स्वर जैसे टूट-टूट जाता है।]

जंगू : क्या कहना चाहता है ?

शान्ती : मैं डाकू बन गया हूँ। तुमने पीटा और मैं बेहोश बन गया। मैं सब सीख गया हूँ, (**फूलती हुई साँस को दबाकर**) मैं भी डाकू हो गया हूँ सरदार। आज से मैं भी डाकू हो गया हूँ।

जंगू-बली : यह मज़ाक़ !

जंगू : (**क्रोध के आवेश में**) इस बार मैं मारूँगा तुझे। (**बलीसिंह से बन्दूक लेता है**) कारतूस लगी है न ? (**खोलकर देखता है**) चल मर अब।

[शान्ती पत्थर की तरह बन्दूक के सामने खड़ा हो जाता है।]

शान्ती : चलाओ गोली ! मैं मर चुका हूँ—दर्द खत्म हो गया है।

बली : तुमसे गोली नहीं चलती ? (**बन्दूक लेने लगता है**) मुझे दो !

जंगू : नहीं बलीसिंह ! शान्तीलाल में हिम्मत है ! जो मेरी बन्दूक से न डरा, वह ज़रूर बहादुर है। चलो शान्तीलाल, आज से तुम मेरे शागिर्द हुए।

शान्ती : शागिर्द नहीं, डाकू ! तुम्हारी टोली का पचीसवाँ जवान !

जंगू : शाबाश ! चलो, माँ काली के सामने झुको—आशीर्वाद लो।

[शान्ती मूर्ति के सामने झुकता है।]

जंगू : यह लो बन्दूक़। जानते हो चलाना ?

शान्ती : (**बन्दूक़ लेकर**) सब जान गया हूँ।

[फ़ायर करता है।]

जंगू-बली : शाबाश ! ···कैसे—कब सीख ली ?

शान्ती : बस, चल गई। सब सीख लिया। आज सब आ गया। (**रुककर**) एक डाकू के लिए जो-जो ज़रूरी है, वह सब मुझमें आ गया ! अभी-अभी मिला है।···मेरी परीक्षा लो सरदार जंगू सिंह !

[ज़बान सूखे होंठों पर फेरता है।]

जंगू : पास हो गए तुम (**बली सिंह से**) बली सिंह, पानी पिलाओ इसे ! बहुत प्यासा है।

शान्ती : नहीं-नहीं। मेरी प्यास मर गई सरदार। मुझे पानी नहीं चाहिए।

जंगू : शाबाश। चलो यहाँ से, आज तुम्हें बहुत उम्दा-उम्दा खाना खिलाऊँगा शान्तीलाल !

शान्ती : सरदार ! आज से मेरा नाम शान्तीलाल नहीं। वह मर गया। मेरा नाम अब अशान्ती है !

जंगू-बली : (**हँसकर**) अशान्ती लाल !

शान्ती : लाल भी नही ! ···शान्तीलाल, यह नाम मेरी बुआ ने रखा था। वह चली गई···मैं चला गया। मेरी माँ भी नहीं रही। अब इस भूत का नाम अशान्ती है—केवल अशान्ती।

[दोनों डाकू हँसते हैं।]

जंगू : बली सिंह। देख लेना, यह हमारे गिरोह का सबसे बहादुर जवान होगा।

शान्ती : कल ही कहीं डाका डालकर मेरा इम्तहान लो सरदार !

जंगू : घबराओ नहीं। अभी चार-छह दिन खूब आराम कर लो ! तुम्हारे लिए कपड़े बनेंगे। तुझे अपने बेटे की तरह रखूँगा।

शान्ती : नहीं सरदार मैं जो हूँ, वही रहूँगा। मुझे बस हथियार चाहिए। नई बन्दूक, नई पिस्तौल !

जंगू : सब मिलेगा—जो-जो तुम चाहोगे, मिलेगा।

शान्ती : सरदार, मैं कल ही डाका डालना चाहता हूँ।

बली : लेकिन कहाँ ? किस पर ?

शान्ती : लाला शंकरदयाल के घर ! उस घर, जहाँ बेटे के लिए दरवाज़ा बन्द हो गया। जिसने अपने बेटे को पराया समझा। पराया बना दिया। (**आवेश में**) सरदार ! उस दौलत-भरे घर को अगर मैं अकेला लूट कर न दिखा दूँ तो मेरे नाम पर थूक देना। मुझे मेरी बुआ की क़सम। मेरी माँ की क़सम !

जंगू : अच्छी बात है।

बली : हम आज से ही तैयारी करेंगे। अपने जवानों को इकट्ठा कर लें।

शान्ती : मैं तो कहता हूँ, मैं उस घर के लिए अकेला काफ़ी हूँ। मुझे सब पता है, मेरे घर की दौलत कहाँ-कहाँ रखी है। मैं अकेला लूटकर दिखाऊँगा !

[दोनों चुप हैं।]

शान्ती : (**कटु आवेश में**) दस हज़ार से भी ज़्यादा के गहने तो मेरी माँ छोड़कर मरी थी। (**रुककर**) उस घर से मेरी क़ीमत आठ हज़ार भी न आँकी गई।

जंगू : वह सब भूल जाओ !

शान्ती : नहीं सरदार ! जो मुझ पर बीता है, वह क्या भूलेगा ? मैं उतना ही हूँ जो बीत गया हूँ।

बली : अच्छा बाबा, चुप रह। उठा यह सामान, अब हम लोग यहाँ से चलेंगे !

जंगू : अभी चलोगे ? हमने सूरज डूबने का समय दिया थ
आ ही रहे होंगे।

बली : सूरज तो डूब गया।

जंगू : बस आ ही रहे होंगे। उनके हिस्से बाँट देंगे और ल
डालने की सारी स्कीम बना लेंगे।

शान्ती : सरदार ! मानो मेरी। सारी स्कीम मेरे दिमाग़
तरह कौंध रही है।

[पृष्ठभूमि में कुछ लोगों के आने तथा बोलने-चालने क

बली : (**नेपथ्य में देखकर**) वे लोग आ रहे हैं।

जंगू : सब आ गए हैं।

बली : हाँ, सभी दिखाई देते हैं।

जंगू : अशान्ती ! लो मेरी गोल के जवानों से मिलो।

[शान्ती अपनी बन्दूक को तानकर कुछ देखता रह जा
मंच के पास पहुँच जाती है। 'जै काली की' के स्वर उ
धूमिल हो जाता है। बन्द दरवाज़े वाला एक और
और काली की मूर्ति को ढक लेता है। जब रोशनी हो
का बरामदा दिखाई देता है। दायें-बायें एक-एक चारपा
पहर है।

जंगू के साथ शान्ती आता है। कन्धे पर बन्
कपड़े पहने है। पहले के शान्ती की अपेक्षा बिलकुल
बन्द किवाड़ों पर जंगू दस्तक देता है।]

शान्ती : यहाँ कहाँ आ गए ? तुम्हारा गाँव तो गोला
जंगू : यह बली सिंह का घर है। मैंने गोलागंज छो
किया है, तब से मैं कहीं एक जगह नहीं

[फिर बन्द दरवाज़े पर दस्तक देता
आती है।]

कल्ली : आयी काका···
शान्ती : सरदार ! यह तो
जंगू : ओ हो ! आवाज़
शान्ती : मैं तो बहुत दिन
जंगू : (बीच में ही)
कल्ली : आ गयी

[दायें हाथ

जंगू : अभी चलोगे ? हमने सूरज डूबने का समय दिया था अपने जवानों को, वे सब आ ही रहे होंगे।

बली : सूरज तो डूब गया।

जंगू : बस आ ही रहे होंगे। उनके हिस्से बाँट देंगे और लाला शंकरदयाल पर डाका डालने की सारी स्कीम बना लेंगे।

शान्ती : सरदार ! मानो मेरी। सारी स्कीम मेरे दिमाग में है। रह-रहकर बिजली की तरह कौंध रही है।

[पृष्ठभूमि में कुछ लोगों के आने तथा बोलने-चालने की आहट होती है।]

बली : (नेपथ्य में देखकर) वे लोग आ रहे हैं।

जंगू : सब आ गए हैं।

बली : हाँ, सभी दिखाई देते हैं।

जंगू : अशान्ती ! लो मेरी गोल के जवानों से मिलो।

[शान्ती अपनी बन्दूक़ को तानकर कुछ देखता रह जाता है। डाकुओं की आवाज़ मंच के पास पहुँच जाती है। 'जँ काली की' के स्वर उठते हैं। तभी मंच पर प्रकाश धूमिल हो जाता है। बन्द दरवाज़े वाला एक और परदा विंग से आकर जंगल और काली की मूर्ति को ढक लेता है। जब रोशनी होती है तो बली सिंह के घर का बरामदा दिखाई देता है। दायें-बायें एक-एक चारपाई पड़ी है। रात का तीसरा पहर है।

जंगू के साथ शान्ती आता है। कन्धे पर बन्दूक़ लटक रही है। साफ़ अच्छे कपड़े पहने है। पहले के शान्ती की अपेक्षा बिलकुल नया आदमी हो गया है। बन्द किवाड़ों पर जंगू दस्तक देता है।]

शान्ती : यहाँ कहाँ आ गए ? तुम्हारा गाँव तो गोलागंज में था।

जंगू : यह बली सिंह का घर है। मैंने गोलागंज छोड़ दिया। जब से यह पेशा अख़्तियार किया है, तब से मैं कहीं एक जगह नहीं रहता।

[फिर बन्द दरवाज़े पर दस्तक देता है, इस बार भीतर से कल्ली की आवाज़ आती है।]

कल्ली : आयी काका···चिराग़ जला रही हूँ।

शान्ती : सरदार ! यह तो जैसे कल्ली की आवाज़ है।

जंगू : ओ हो ! आवाज़ से तू कल्ली को पहचान गया ?

शान्ती : मैं तो बहुत दिन उसके संग रहा हूँ—जब तुम मुझे चुराकर लाए थे···

जंगू : (बीच में ही) खोलती है रे ?

कल्ली : आ गयी बापू।

[दायें हाथ में चिराग़ लिए कल्ली बन्द दरवाज़ा खोलती है।]

कल्ली : (**आश्चर्य से**) अरे ! यह कौन है बाबू ?

जंगू : पहचाना नहीं ? अरे ! वही शान्तीलाल तो है। जो ज़रा कपड़े-लत्ते नये पहने है।

कल्ली : अरे ! यह फिर कैसे आ गया ? घर नहीं गया क्या ?

[जंगू भीतर चला जाता है। शान्ती दरवाज़े से लगा चुपचाप खड़ा है।]

कल्ली : जब घर से लौट आए, तब यहाँ क्या खड़े हो ? चलो भीतर आओ न।

[शान्ती चुपचाप लौटकर दायीं ओर की चारपाई पर सिर थामकर बैठ जाता है। कल्ली दहलीज़ में निःस्पन्द खड़ी रह जाती है। कुछ क्षण बाद भीतर से जंगू लौटता है।]

जंगू : बली की बहू तो घोड़े बेचकर सोई है।

कल्ली : बली काका आज शाम को आए थे, फिर न जाने कहाँ चले गए, कुछ बताया नहीं।

जंगू : तुझे क्या बताता, काम से गया है ! ···क्यों अशान्ती, कुछ खाओ-पीओगे नहीं !

कल्ली : (**जैसे जगकर**) क्या ? ओह ! ···पानी पियूँगा।

जंगू : ला, बड़ा लोटा-भर पानी पिला तो ! आज दो दिन हो गए इसे मेरे साथ; लेकिन पानी के अलावा इसने कुछ नहीं लिया।

[कल्ली भीतर जाती है।]

जंगू : क्यों ? अगर तुम इस तरह भूखे रहे तो कल का डाका कैसे होगा ?

[कल्ली आती है। उसके हाथ से लोटा-भर पानी घूँट जाता है।]

शान्ती : (**लम्बी साँस छोड़कर**) सरदार ! वह काम भूख ही से होगा। (**खड़ा होकर**) भूख में इतनी ताक़त है कि बन्दूक़ में क्या होगी ! (**कटुता से**)—गला घोंट दूँगा लाला शंकरदयाल का ? उलट दूँगा तिजोरियाँ। मेरी ताक़त भूख है।

[सहसा घर से आवाज़ आती है—]

आवाज़ : कल्ली ! ···ओ कल्ली !

जंगू : जग गयी बली की बहू।

[भीतर चला जाता है। चिराग़ लिए कल्ली शान्तीलाल के पास आती है।]

शान्ती : क्या देख रही हो ? ···अब मैं डाकू हो गया हूँ। मैं अब वह शान्तीलाल नहीं, जिसे तुम्हारे बाबू ने चुराकर दस हज़ार के लिए गुम कर लिया था। तब मैं चोरी का सामान था, अब मैं खुद डाकू हूँ !

कल्ली : डाकू हो गए तुम ? ···

शान्ती : हूँ···लेकिन इस तरह ताज्जुब क्यों ?

कल्ली : : सच, तुम डाकू हो गए ?

शान्ती : हाँ, हाँ। तेरे बाबू की ग़ोल का पचीसवाँ
होगा !

कल्ली : चुप रहो जी !

[शान्ती केवल हँसता है।]

कल्ली : मैं कहती हूँ चुप रहो। लगता है तुम्हारा भेज

शान्ती : सब कुछ उलट गया है कल्ली।

कल्ली : तुम ज़रा सो लो ! अब सुबह बात करूँगी तु

शान्ती : सोओ तुम ! मैं क्यों सोऊँ !

कल्ली : देखो, तुम कुछ बोलो नहीं ! जो पूछती हूँ, उस

शान्ती : (**बीच में ही**) तुम जाओ यहाँ से। मैं यहीं
न देखो। कुछ नहीं समझोगी ! ···समझना हो
बली सिंह आएगा तो उससे समझना।

[सहसा भीतर से जंगू की पुकार आती है—"

शान्ती : हाथ के कंगन···गले का चन्द्रहार···माथे क

[खुलकर हँसता है। इसी बीच कल्ली भीतर से

कल्ली : मैं नहीं पहनूँगी ये गहने···नहीं पहनूँगी।

शान्ती : अच्छा ! ···लेकिन गहने तो नये हैं।

कल्ली : डाके के तो हैं।

शान्ती : ओ-हो ! बड़े दिमाग़ हैं। ···लेकिन खाती कि

[कल्ली चुप है।]

शान्ती : बेटी किसकी हो ? तुम्हारे शरीर में **ख़ून कि**

कल्ली : मेरी माँ का ?

शान्ती : माँ का ! (**हँसता है**) **अच्छा तमाशा है।**

[जंगू का प्रवेश।]

जंगू : मानेगी नहीं **कल्ली ! मार**

कल्ली : (**उफन पड़ती है**)

जंगू : चढ़ गया **दिमाग़ !**

[पकड़ लेता है
आती है।]

शान्ती : मैं तो

कल्ली : जो

शान्ती : मैंने

बाबू ?
ाल तो है। जो ज़रा कपड़े-लत्ते नये पहने है।
र नहीं गया क्या ?
ाजे से लगा चुपचाप खड़ा है।]
ा बड़े हो ? चलो भीतर आओ न।
र की चारपाई पर सिर थामकर बैठ जाता है।
रह जाती है। कुछ क्षण बाद भीतर से जंगू
है।
े, फिर न जाने कहाँ चले गए, कुछ बताया
ों अशान्ती, कुछ खाओ-पीओगे नहीं !
ी पियूँगा।
ो दिन हो गए इसे मेरे साथ; लेकिन
ा डाका कैसे होगा ?
र पानी घूँट जाता है।]
ूख ही से होगा। (खड़ा होकर)
(दृढ़ता से)—गला घोंट दूँगा
ताक़त भूख है।
पास आती है।]
वह शान्तीलाल नहीं,
था। तब मैं चोरी

शान्ती : हाँ, हाँ। तेरे बाबू की गोल का पचीसवाँ जवान···कल मेरा पहला डाका होगा !

कल्ली : चुप रहो जी !

[शान्ती केवल हँसता है।]

कल्ली : मैं कहती हूँ चुप रहो। लगता है तुम्हारा भेजा उलट गया है।

शान्ती : सब कुछ उलट गया है कल्ली।

कल्ली : तुम जरा सो लो ! अब सुबह बात करूँगी तुमसे।

शान्ती : सोओ तुम ! मैं क्यों सोऊँ !

कल्ली : देखो, तुम कुछ बोलो नहीं ! जो पूछती हूँ, उसका उत्तर दो···यहीं सोओगे या···।

शान्ती : (**बीच में ही**) तुम जाओ यहाँ से। मैं यहीं बैठा रहूँगा ! मैं कहता हूँ, मुझे यों न देखो। कुछ नहीं समझोगी !···समझना हो तो जाओ अपने बाबू से समझो या बली सिंह आएगा तो उससे समझना।

[सहसा भीतर से जंगू की पुकार आती है—"कल्ली ! यहाँ से चल।"]

शान्ती : हाथ के कंगन···गले का चन्द्रहार···माथे की बेंदी···और कान के बाली-बुन्दे।

[खुलकर हँसता है। इसी बीच कल्ली भीतर से दौड़ी आती है।]

कल्ली : मैं नहीं पहनूँगी ये गहने···नहीं पहनूँगी।

शान्ती : अच्छा !···लेकिन गहने तो नये हैं।

कल्ली : डाके के तो हैं।

शान्ती : ओ-हो ! बड़े दिमाग़ हैं।···लेकिन खाती किसका हो ?

[कल्ली चुप है।]

शान्ती : बेटी किसकी हो ? तुम्हारे शरीर में खून किसका है ?

कल्ली : मेरी माँ का ?

शान्ती : माँ का ! (**हँसता है**) अच्छा तमाशा है।

[जंगू का प्रवेश।]

जंगू : मानेगी नहीं कल्ली ! मार खाएगी क्या ?

कल्ली : (**उफन पड़ती है**) और क्या है तुम्हारे पास—डाका और मार।

जंगू : चढ़ गया दिमाग़ !

[पकड़ लेता है और भीतर खींच ले जाता है। कुछ क्षण बाद कल्ली आँसू पोंछती आती है।]

शान्ती : मैं तो समझता था कि तुम्हारा बाबू अब तुम्हें न मारता होगा।

कल्ली : जो मर गया वह मारने के सिवा और क्या करेगा।

शान्ती : मैंने सुना था कि चोर और डाकू में अन्तर होता है, लेकिन कल्ली, तेरा बाबू

तो चोर से ही डाकू हुआ है (रुककर) और यह बली सिंह भी चोर ही रहा होगा ···क्यों था न ?

कल्ली : चुप रहो, जरा भी नहीं डरते !

शान्ती : अब क्यों डरूँ ?

कल्ली : तभी आदमी से डाकू बन गए !

[शान्ति चुप है।]

कल्ली : इसके मानी तुम भी चोर थे।

शान्ती : क्यों नहीं। इतने दिन चोर के घर का अन्न जो खाया है।

कल्ली : वे मेरे हाथ की रोटियाँ थीं।

शान्ती : तुम्हारे हाथ की ? तुम्हारा भी कुछ अलग है ?

कल्ली : है। जो मैं सोचती हूँ वही मेरा है। जो मैं भीतर हूँ···

शान्ती : (बीच में ही) लेकिन मेरे भीतर कुछ नहीं है। मैं जो हूँ, वह केवल बाहर हूँ !

कल्ली : झूठ। मैंने तुम्हें आदमी देखा था।

शान्ती : वह मर गया। तुम्हें तो खुश होना चाहिए।

कल्ली : मैं जंगूसिंह की बेटी हूँ इसलिए न ! (रो पड़ती है) मेरे बाबू ने इसीलिए तुम्हें मार डालने से छोड़ दिया था कि तुम डाकू बनो। जंगूसिंह ने कभी किसी लड़के को नहीं छोड़ा।

शान्ती : (पीड़ा से) चुप रहो कल्ली। मेरी नसों में जहर मत घोलो, नहीं तो मैं तुम्हारे बाबू को बता दूँगा कि तुम···

कल्ली : जानती है मेरे बाबू को। वह मुझे खूब जानता है, तभी वह मुझसे यूँ पेश आता है।

शान्ती : जंगूसिंह ने मुझे जिन्दा छोड़कर मार दिया कल्ली। मुझे प्रेत सिद्ध कर दिया··· मौत से भी भयानक ! (एकाएक कटु हो जाता है) कल्ली, तुम यहाँ से भाग जाओ। हट जाओ मेरे सामने से। मुझे कुछ नहीं चाहिए।

[भीतर से बन्दूक लिए जंगूसिंह आता है।]

कल्ली : (शान्ती से) कुछ खा लो तुम।

शान्ती : मुझे अभी जाना है।

जंगू : कल्ली, हम जा रहे हैं। परसों रात इसी समय लौटेंगे—इन्तजार करना। जा भीतर। किवाड़ बन्द कर ले। चल अशान्ती।

[जंगू बायीं ओर मुड़ता है। कल्ली देहरी पर वैसे ही चिराग लिए खड़ी शून्य में तक रही है।]

कल्ली : जाओ। मैं अपने ईश्वर से मनाऊँगी कि तुम सब मर जाओ। शान्ती तुम जरूर मारे जाओ। (रो पड़ती है) सब मारे जाओ ! मैं संसार में भीख माँग लूँगी पर चोरी-डाके की रोटी न खाऊँगी।

[शान्ती धीरे-धीरे दायीं ओर मुड़ता है। तभी कल्ली
है और उसी पर कल्ली झटके से किवाड़ बन्द कर ले
बिलकुल अँधेरा रह जाता है। फिर जब धीरे-धीरे प्र
दृश्य काली की मूर्ति के साथ सामने आ जाता है। नी
सिंह डाके की दौलत के सामने बैठे हैं। दोनों के हाथ
में झूम रहे हैं, हँस रहे हैं।

जंगू : शाबाश शान्तीलाल। जाओ इनाम लो अपना। हम
माँगना हो माँग लो।

[शान्तीलाल एकदम त्रस्त और उखड़ा-उखड़ा-सा
है। उसके दोनों हाथ ज़ख्मी हैं।

बली : पहले ही डाके में तुम्हारी यह बहादुरी ! आओ···
से शराब पिलाऊँगा !

जंगू : शान्ती, तुम चुप क्यों हो बेटे ! क्या बात है ?
बली : बहादुर नौजवान ! जो पूरे ढाई घण्टे के डाके में
पहुँचते ही उस घर के सारे बन्द किवाड़ तोड़

शान्ती : (एकाएक तड़प उठता है) चुप रहो !

जंगू : बेटे, तुम्हें मैं अपना सिपहसालार बना रहा हूँ
हाथों में चोट लगी है। आओ, मैं उस पर

शान्ती : सरदार !···

जंगू : हाँ-हाँ, बोलो !

शान्ती : नहीं। कुछ नहीं।

जंगू : नहीं, माँगो। माँगो, जो माँगना

शान्ती : रामनगर के उस बन्द घर को
तुमने मेरे हाथों से तुड़वाया।

जंगू : तुम चाहते जो थे।

शान्ती : (उसी तरह शून्य
से उस खम्भे के साथ
मुँह पर थूका क्यों ?

बली : (शराब के

कर) और यह बली सिंह भी चोर ही रहा होगा

!

!

घर का अन्न जो खाया है ।

अलग है ?

भी मैं भीतर हूँ···

कुछ नहीं है । मैं जो हूँ, वह केवल बाहर हूँ !

हिए ।

पड़ती है) मेरे बाबू ने इसीलिए तुम्हें

बनो । जंगूसिंह ने कभी किसी लड़के

बाहर मत धोलो, नहीं तो मैं तुम्हारे

है, तभी वह मुझसे यूँ पेश आता

थी । मुझे प्रेत सिद्ध कर दिया···

कल्ली, तुम यहाँ से भाग

हिए ।

इन्तजार करना । जा

लिए खड़ी शून्य में

शान्ती तुम ज़रूर

माँग लूँगी पर

[शान्ती धीरे-धीरे दायीं ओर मुड़ता है । तभी कल्ली का चिराग एकाएक बुझ जाता है और उसी पर कल्ली झटके से किवाड़ बन्द कर लेती है । कुछ क्षणों तक रंगमंच बिलकुल अँधेरा रह जाता है । फिर जब धीरे-धीरे प्रकाश लौटता है, वही जंगल का दृश्य काली की मूर्ति के साथ सामने आ जाता है । नीचे ज़मीन पर जंगू और बली-सिंह डाके की दौलत के सामने बैठे हैं । दोनों के हाथों में शराब की बोतलें हैं, मस्ती में झूम रहे हैं, हँस रहे हैं ।

जंगू : शाबाश शान्तीलाल । जाओ इनाम लो अपना । हम बेहद खुश हैं तुमसे । जो कुछ माँगना हो माँग लो ।

[शान्तीलाल एकदम त्रस्त और उखड़ा-उखड़ा-सा आकर चुपचाप खड़ा हो जाता है । उसके दोनों हाथ ज़ख्मी हैं ।

बली : पहले ही डाके में तुम्हारी यह बहादुरी ! आओ···इस खुशी में मैं तुम्हें अपने हाथ से शराब पिलाऊँगा !

जंगू : शान्ती, तुम चुप क्यों हो बेटे ! क्या बात है ? आओ, मेरे पास आ जाओ !

बली : बहादुर नौजवान ! जो पूरे ढाई घण्टे के डाके में बिजली-सा दौड़ता रहा, जिसने पहुँचते ही उस घर के सारे बन्द किवाड़ तोड़ डाले···

शान्ती : (**एकाएक तड़प उठता है**) चुप रहो !

जंगू : बेटे, तुम्हें मैं अपना सिपहसालार बना रहा हूँ । मेरे पास आ जाओ । तुम्हारे दोनों हाथों में चोट लगी है । आओ, मैं उस पर शराब लगा दूँ ।

शान्ती : सरदार ! ···

जंगू : हाँ-हाँ, बोलो !

शान्ती : नहीं । कुछ नहीं ।

जंगू : नहीं, माँगो । माँगो, जो माँगना चाहते हो, उधर शून्य में क्या देख रहे हो ?

शान्ती : रामनगर के उस बन्द घर को देख रहा हूँ—उन सारे बन्द किवाड़ों को, जिन्हें तुमने मेरे हाथों से तुड़वाया ।

जंगू : तुम चाहते जो थे । आओ, मेरे पास आ जाओ । तुम बेहद थक गए हो ।

शान्ती : (**उसी तरह शून्य में देखता हुआ**) सरदार ! तुमने मेरे पिता को बड़ी बेरहमी से उस खम्भे के साथ बाँध दिया, मुझे इसकी शिकायत नहीं, लेकिन तुमने उनके मुँह पर थूका क्यों ?

बली : (**शराब के नशे में बेतुका ठहाका लगाते हुए**) उस साले कंजूस के लिए अब इसे दर्द हो रहा है ।

शान्ती : (**जंगूसिंह की बात को सुनी-अनसुनी कर वहीं शून्य में देखते हुए**) तुमने मेरी माँ को गन्दी गालियाँ क्यों दीं ?

जंगू : (**नशे में थथलाते हुए**) वह माँ नहीं डायन है···हम तुम्हारी तरह बात नहीं करते, काम करते हैं ।

[बोतल को मुँह से लगा लेता है।]

शान्ती : (**वहीं शून्य में देखता हुआ ओंठों में**) बेरहम, हत्यारे कहीं के !

बली : (**बेहद नशे में**) अरे नाराज़ क्यों हो रहे हो बेटे ?

जंगू : (**पूर्ववत् थथलाते हुए**) बेटा, नाराज़ हो रहा है बलीसिंह। (**शान्ती से**) यह नाराज़ होने का वक्त नहीं, खुश होने का वक्त है। आओ नाराज़गी छोड़ो। अपनी बहादुरी का इनाम लो।

शान्ती : (**उसी स्वर में**) तुम लाला शंकरदयाल पर डाका डालने गए थे, पर तुमने चार खून क्यों किए ? दौलत के साथ जानें क्यों लीं ?

जंगू : (**ठहाका मारकर**) हम डाकू हैं, चोर नहीं, जो खून करने से झिझकें। फिर खून तो तीन हुए। क्यों बलीसिंह ?

[बलीसिंह धुत्त लेटा है। जवाब नहीं देता।]

जंगू : (**उसे पाँव से ठहोका देकर**) धुत्त हो गए ! और कहता था मैं पूरी बोतल पी सकता हूँ। साला झुट्ठा !

शान्ती : चौथा खून उस कुत्ते का हुआ जो पहुँचते ही भूँककर दौड़ा था।

बली : (**सहसा उठकर शराबी ठहाका लगाता है**) कुत्ते का खून ! हा-हा-हा।

[जंगूसिंह उसे बाँहों से पकड़ लेता है और दोनों मिलकर 'कुत्ते का खून हा-हा-हा' करते हुए ठहाके पर ठहाका लगाते हैं और धुत्त हो जाते हैं।]

शान्ती : (**अजीब पीड़ा और कटुता से**) उस कुत्ते को मैंने पाला था। उसका नाम मोती था। ज़रा-सा पिल्ला था, जब मैं उसे लाया था। क्यों मारा उस निर्दोष कुत्ते को ? (**क्रोध से उन धुत्त पड़े डाकुओं को देखता है**) जवाब दो, नहीं तो तुम भी कुत्ते की मौत मारे जाओगे।

बली : (**गहरे नशे में**) कुत्ते, हम सचमुच तुम्हारे कुत्ते हैं···तुम आज से मालिक हो, बादशाह हो।

जंगू : तुम सरदार बनने योग्य हो। आओ सरदार ! आओ बादशाह ! हमें आज अपने हाथ से पिलाओ, हमें इनाम दो। हमने तुम्हारे बाप को उसकी कंजूसी का मज़ा चखाया। तुम हमें इनाम दो। यह दौलत तुम्हीं बाँटो।

शान्ती : मैं बाँटूँ ? अपने पिता की वह दौलत तुम हत्यारों में बाँटूँ जो उसने कौड़ी-कौड़ी कर जोड़ी। जो उसके सारे जन्म की कमाई थी।···यह सब मैं करूँ जो उसका बेटा हूँ, जिसे उसने जन्म दिया है। जंगूसिंह ! हत्यारे यह सब तेरे कारण हुआ। न तू मुझे चुराकर लाता, न मैं अपना ही घर लूटने वाला बनता। तुम्हीं ने बेटे को बाप के घर में पराया बना दिया। डाकू बना दिया। (**सहसा पलटकर जंगू से**) तुमने उसका बेटा छीना, दौलत छीनी और उस ग़रीब की आबरू मिट्टी में मिला दी !···क्यों? जवाब दो जंगूसिंह (**उसको उठाकर झकझोरता है**) जवाब दो ! नहीं देते ?···

[जंगूसिंह शराब के नशे में बड़बड़ाता है। शा
है, पर शान्ती के एक ही धक्के से नेपथ्य में
बलीसिंह की ओर मुड़ता है और उसे उठाकर

शान्ती : और तुमने बलीसिंह, उस कुत्ते को क्यों मा

[बलीसिंह बड़बड़ाता है, पर शान्ती के दो धक
है।

शान्ती परे हटकर निशाना साधता है।

शान्ती : तुमने मेरे प्यारे कुत्ते को मारा बलीसिंह,
(**बन्दूक दाग देता है**) और तुमने जंगूसिंह,
नाम पर थूकता हूँ। (**बन्दूक दाग देता है।**
फेंकता है) मर गए दोनों ! अपने दण्ड को
दण्ड क्या है ? मुझे कौन दण्ड देगा ? मुझे
उठा लेता है) दण्ड तो मुझे भी मिलना चाहि

[सहसा प्रकाश मन्द होकर बुझ जाता है।
बलीसिंह के बरामदे का वही बन्द दरवाज़ा स
हुआ शान्ती आता है और उसी बन्द दरवाज़े
शरीर पर कहीं-कहीं ताज़े खून के धब्बे हैं औ
रही है।]

शान्ती : (**टूटते स्वर में**) कल्ली, दरवाज़ा खोलो।

कल्ली : (**भीतर से**) आई। चिराग़ जला रही हूँ

शान्ती : नहीं चिराग़ न लाओ। मैं कोई बाहर का

[दरवाज़ा खुलता है, कल्ली जैसे ही चिराग़
को मुँह से बुझा देता है। वह फिर जलाती है,

कल्ली : (**झुँझलाकर**) *यह क्यों ? चिराग़ क्यों बुझा*
भीतर नहीं जा सकते।

शान्ती : *मैं भीतर नहीं जाऊँगा।* (**कल्ली को**
चलें। यह लो मेरी **बन्दूक। चलो**

कल्ली : (**डरकर**) हाय ! **यह**

शान्ती : फेंक दो इसे !

[स्वयं **फेंकता है।**]

कल्ली : (**निकट**
चाहती थी।

[**शान्ती**

[जंगूसिंह शराब के नशे में बड़बड़ाता है। शान्ती को मारने के लिए हाथ उठाता है, पर शान्ती के एक ही धक्के से नेपथ्य में लड़खड़ाता जा गिरता है। शान्ती बलीसिंह की ओर मुड़ता है और उसे उठाकर झकझोरता है।]

शान्ती : और तुमने बलीसिंह, उस कुत्ते को क्यों मारा ? क्यों मारा ? जवाब दो···

[बलीसिंह बड़बड़ाता है, पर शान्ती के दो धक्कों से जंगूसिंह के बराबर जा गिरता है।

शान्ती परे हटकर निशाना साधता है।]

शान्ती : तुमने मेरे प्यारे कुत्ते को मारा बलीसिंह, मैं तुम्हें कुत्ते की मौत मारता हूँ, (**बन्दूक दाग देता है**) और तुमने जंगूसिंह, मेरे बाप के मुँह पर थूका, मैं तुम्हारे नाम पर थूकता हूँ। (**बन्दूक दाग देता है। फिर उठकर उन्मादियों-सा बन्दूक फेंकता है**) मर गए दोनों ! अपने दण्ड को प्राप्त हुए ! लेकिन मैं···मैं···मेरा दण्ड क्या है ? मुझे कौन दण्ड देगा ? मुझे···कौन दण्ड देगा ? (**बढ़कर बन्दूक उठा लेता है**) दण्ड तो मुझे भी मिलना चाहिए।···मुझे भी मिलना चाहिए।

[सहसा प्रकाश मन्द होकर बुझ जाता है। क्षण-भर बाद जब प्रकाश लौटता है तो बलीसिंह के बरामदे का वही बन्द दरवाजा सामने है। दायीं ओर से लड़खड़ाता हुआ शान्ती आता है और उसी बन्द दरवाज़े से सिर टकराकर खड़ा हो जाता है। शरीर पर कहीं-कहीं ताज़े खून के धब्बे हैं और बन्दूक सम्हाले से भी नहीं सम्हल रही है।]

शान्ती : (**टूटते स्वर में**) कल्ली, दरवाजा खोलो। ओ कल्ली !

कल्ली : (**भीतर से**) आई। चिराग़ जला रही हूँ।

शान्ती : नहीं चिराग़ न लाओ। मैं कोई बाहर का आदमी नहीं हूँ।

[दरवाज़ा खुलता है, कल्ली जैसे ही चिराग़ लिए दीख पड़ती है, शान्ती चिराग़ को मुँह से बुझा देता है। वह फिर जलाती है, वह फिर बुझा देता है।]

कल्ली : (**झुँझलाकर**) यह क्यों ? चिराग़ क्यों बुझा देते हो ? बिना रोशनी के तुम भीतर नहीं जा सकते।

शान्ती : मैं भीतर नहीं जाऊँगा। (**कल्ली को दरवाज़े से बाहर खींच लेता है**) आओ चलें। यह लो मेरी बन्दूक। चलो कहीं फेंक आएँ इसे।

कल्ली : (**डरकर**) हाय ! यह बन्दूक खून से डूबी है। तुम्हारे हाथ भी घायल हैं।

शान्ती : फेंक दो इसे !

[स्वयं फेंकता है।]

कल्ली : (**निकट आकर**) यह क्या तुम्हें तो गोली लग गई है ? अच्छा हुआ। मैं यही चाहती थी। वे दोनों मर गए न ?

[शान्ती अपने को थामकर बैठ जाता है।]

कल्ली : (**पीड़ा से**) तुम्हें मेरे बाबू ने तो नहीं मारा ? (**रुककर**) बलीसिंह ने गोली चलाई होगी तुम पर। (**बढ़कर बन्दूक उठा लेती है**) बोलो, कहाँ हैं वे ? बताओ मुझे।

शान्ती : (**आधा लेट गया है**) बता दूँ।···मैंने दोनों का खून कर दिया।

कल्ली : मेरे बाबू को मार दिया ! हत्यारे, जिसने तुम्हें इतने दिन प्यार से खिलाया। मारने के बदले तुम्हें छोड़ दिया, उसे मार दिया तुमने, तुम···!

[बन्दूक साधने लगती है।]

शान्ती : बन्दूक में एक कारतूस है। चलाओ गोली (**कराहकर लेट जाता है**) चलाओ जल्दी। (**उठता हुआ**) चलाओ, मैं आत्महत्या के पाप से बच जाऊँगा।

[कल्ली रो पड़ती है और शान्ती को सम्हालने दौड़ती है।]

शान्ती : मुझे पता था, तभी मैंने खुद ही बदला ले लिया (**रुककर**) कल्ली, अब मैं अपने घर जाना चाहता हूँ। मुझे ले चल। तू मेरी बुआ है न ? (**बेहोश होने लगता है**) तब मैं अकेले घर गया था, आज मैं तेरे संग चलूँगा। उठा मुझे। देख आज मेरे घर का दरवाजा बन्द नहीं। देख वह खुल रहा है। मेरे लिए खुल रहा है।

[धीरे-धीरे प्रकाश बुझने लगता है और उसी पर परदा गिरता है।]

शाकाहार

पात्र

बड़े बाबू
परेम मामा
दारोगाजी
दिलीप
अशोक
बीरेन्द्र
मुंशीजी
एक भिखारी

ो नहीं मारा ? (रुककर) बलीसिंह ने गोली
उठा लेती है) बोलो, कहाँ हैं वे ? बताओ

मैंने दोनों का खून कर दिया ।
रे, जिसने तुम्हें इतने दिन प्यार से खिलाया ।
मार दिया तुमने, तुम···!

ोली (कराहकर लेट जाता है) चलाओ
हत्या के पाप से बच जाऊँगा ।

ालने दौड़ती है ।]

लिया (रुककर) कल्ली, अब मैं अपने
ुआ है न ? (बेहोश होने लगता है)
चलूँगा । उठा मुझे । देख आज मेरे
ा है । मेरे लिए खुल रहा है ।

र परदा गिरता है ।]

शाकाहारी

पात्र

बड़े बाबू
परेम मामा
दारोगाजी
दिलीप
अशोक
वीरेन्द्र
मुंशीजी
एक भिखारी

समय : सुबह के साढ़े नौ बजे।

स्थान : बड़े बाबू के घर का बाहरी बरामदा।

[मंच पर सामने दो दरवाजे : एक दायीं ओर, विंग के पास, जो घर के भीतर जाने के लिए है; दूसरा दर्शकों के सामने। परदा उठते ही भीतर से बड़े बाबू का प्रवेश, जैसे कि दफ्तर जाने को तैयार हैं।]

बड़े बाबू : परेम ! परेम !! कहाँ हो जी तुम ?

परेम : (**बाहर से**) जी आया !

बड़े बाबू : वहाँ बैठे-बैठे क्या कर रहे हो जी ? चलो, इधर आओ।

[हाथ में खुली चिट्ठी लिए हुए मोटे-ताजे परेम का प्रवेश,]

बड़े बाबू : वहाँ बैठे-बैठे क्या कर रहे थे ? बोलते क्यों नहीं ? अरे बुकुर-बुकुर मेरा मुँह क्या देख रहा है रे ? यह कैसा कागज़ है ? क्या बात है ? बोलता क्यों नहीं ?

परेम : गन्दा कागज़ है जी। फिर वही गन्दी चिट्ठी।

बड़े बाबू : कैसी चिट्ठी ! कोई बियरिंग चिट्ठी है क्या ?

परेम : नहीं जी गन्दी चिट्ठी है। प्रेम···प्रेम···प्रेम।

बड़े बाबू : बन्द करो मुँह ! तो क्या हो गया ? कौन-सी नई बात हो गई ? यह तो रोज़ का खेल है। यही तुम रखवाली करते हो ? क्या करते हो यहाँ बैठे-बैठे ?

परेम : (**जम्हाई लेते हुए**) रात को ज़रा फो गया था।

[बड़े बाबू परेम से चिट्ठी ले लेते हैं।]

परेम : बड़ी बेहूदी गन्दी बातें लिखी हैं जी।

बड़े बाबू : क्या कहा ?

परेम : बदमाफ ने लिखा है···लिखा है कि मैं प्रे···प्रे···प्रे···।

बड़े बाबू : बन्द करो मुँह। नेशनल सर्टीफ़िकेट-जैसा मुँह बनाता है।

परेम : लेकिन आप देखिए न बड़े बाबू। मेरी कमला भानजी तो आपकी आज्ञानुफार चौबीफ घण्टे घर में रहती है। आपने कालेजफे उफका नाम कटा दिया—तब फे वह घर में बैठी-बैठी फुइटर बुनती है। कभी कुछ लिखती नहीं है। फिर्फ पढ़ती है, रामायण या महाभारत पढ़ा करती है। ये लौण्डे खामखाह उफ बेचारी को खत लिखते हैं, इफमें मेरी कमला भानजी का क्या दोफ है। फोचिए इफ बात को। आप बेकार ही में तो बेटी को फजा देते हैं।

बड़े बाबू : चुप रहो ! फजा-फजा ! तुम्हें कुछ पता भी रहता है। बड़े मोह दिखाते हैं,

कमला भानजी कमला भानजी। तभी तो वह तुम्हारी
है। यह देखो चिट्ठियाँ कमला ने भेज रखी हैं, दिलीप
यही रखवाली कर रहे हो न ! मैंने कल इतनी चिट्ठि
में न होता तो अब तक पता नहीं क्या हो जाता।

परेम : अरे ! अरे ! यह कैफे हो गया ?

बड़े बाबू : कैफे हो गया ? जैसे यह चिट्ठी आई है उसी त
कहते थे न, कि मेरे ज़िन्दा रहते कोई चिट्ठी ? और
भेजों ? तुम दिन-रात टाँग पसारकर यहाँ सोते हो
रखवाली करता हूँ। बेकार कहीं के !

परेम : अब ऐफा नहीं होगा ! अब ऐफा नहीं होगा !! मैं
ने मुझको धोखा दिया। अच्छा, अच्छा, बड़े बाबू।
लीजिए। बड़ी गज़ब-गज़ब की बातें लिखी हैं इफ
अँगरेजी में लिखी है और आधी हिन्दी में।

बड़े बाबू : चलो, यह अच्छा हुआ नाम और पता लिखा

परेम : फच-फच जीजाजी ! मारो-मारो, गिरफ्तार करा

बड़े बाबू : अरे ! यह क्या ? इस तरह क्या शोर मचा र
है क्या ?

परेम : फिरा तो नहीं है। कुछ नहीं, कुछ नहीं। मैं कह रह
कर लीजिए, बड़े बाबू। मुझे डर है, कहीं खो न
कीजिए, नहीं तो मिट जाएगा।

बड़े बाबू : बड़े बेवकूफ़ हो। मिट कैसे जाएगा ? अजीब

परेम : मैं आपफे क्या बताऊँ जीजाजी। ये बदमाफ ऐ
लिखावट हाथ लगते ही मिट जाए।

बड़े बाबू : बे-अक़्ल हो। तुम भूल जाते हो कि मैं तीस सा
में हूँ। महज़ हैण्डराइटिंग से मैं इनसान पकड़ सकत
पता लिखा हुआ है। अशोक, बी० ए०, 3 पार्क रोड

परेम : बदमाफ कहीं के। तभी मैं कहता हू कि मेरी क
है जितना कि इन लौंडों-लुच्चों का है। मेरी
है।

बड़े बाबू : जैसे कि तुम सीधे और नेक हो।
नेकी की। मेरी नाक काट ली इसने।
सम्हली नहीं।

परेम : (पैर पकड़कर) नहीं-नहीं
कोई बात नहीं। माफ़

बड़े बाबू : लो हिम्मत
बातें नहीं लिखी हैं

कमला भानजी कमला भानजी। तभी तो वह तुम्हारी आँखों में सरासर धूल डालती है। यह देखो चिट्ठियाँ कमला ने भेज रखी हैं, दिलीप और अशोक के नाम। तुम यही रखवाली कर रहे हो न ! मैंने कल इतनी चिट्ठियाँ पकड़ी हैं। मैं पोस्टआफ़िस में न होता तो अब तक पता नहीं क्या हो जाता।

परेम : अरे ! अरे ! यह कैफे हो गया ?

बड़े बाबू : कैफे हो गया ? जैसे यह चिट्ठी आई है उसी तरह यह भी हो गया। तुम तो कहते थे न, कि मेरे ज़िन्दा रहते कोई चिट्ठी ? और कमला ने इतनी चिट्ठियाँ कैसे भेजीं ? तुम दिन-रात टाँग पसारकर यहाँ सोते हो और मुझसे कहते हो कि मैं रखवाली करता हूँ। बेकार कहीं के !

परेम : अब ऐफा नहीं होगा ! अब ऐफा नहीं होगा !! मैं माफ़ी माँग रहा हूँ। दुफमनों ने मुझको धोखा दिया। अच्छा, अच्छा, बड़े बाबू। आप पहले यह चिट्ठी तो पढ़ लीजिए। बड़ी ग़ज़ब-ग़ज़ब की बातें लिखी हैं इफमें। बदमाफ ने आधी चिट्ठी अँगरेजी में लिखी है और आधी हिन्दी में।

बड़े बाबू : चलो, यह अच्छा हुआ नाम और पता लिखा है इसमें।

परेम : फच-फच जीजाजी ! मारो-मारो, गिरफ़्तार कराओ !

बड़े बाबू : अरे ! यह क्या ? इस तरह क्या शोर मचा रहा है ? तेरा भेजा फिर गया है क्या ?

परेम : फिरा तो नहीं है। कुछ नहीं, कुछ नहीं। मैं कह रहा हूँ बदमाफ का पूरा पता नोट कर लीजिए, बड़े बाबू। मुझे डर है, कहीं खो न जाए या मिट न जाए। जल्दी कीजिए, नहीं तो मिट जाएगा।

बड़े बाबू : बड़े बेवकूफ़ हो। मिट कैसे जाएगा ? अजीब आदमी है ?

परेम : मैं आपफे क्या बताऊँ जीजाजी। ये बदमाफ ऐसा मफाला लगाते हैं कि वह लिखावट हाथ लगते ही मिट जाए।

बड़े बाबू : बे-अक़्ल हो। तुम भूल जाते हो कि मैं तीस सालों से पोस्टआफ़िस की नौकरी में हूँ। महज़ हैण्डराइटिंग से मैं इनसान पकड़ सकता हूँ। यहाँ तो स्याही से पूरा पता लिखा हुआ है। अशोक, बी० ए०, 3 पार्क रोड।

परेम : बदमाफ कहीं के। तभी मैं कहता हूँ कि मेरी कमला भानजी का इतना दोफ नहीं है जितना कि इन लौंडों-लुच्चों का है। मेरी भानजी फीधी और नेक लड़की है।

बड़े बाबू : जैसे कि तुम सीधे और नेक हो। ये चिट्ठियाँ सबूत हैं न उसकी सिधाई और नेकी की। मेरी नाक काट ली इसने। मैं ज़हर देकर मार डालूँगा, अगर यह सम्हली नहीं।

परेम : (पैर पकड़कर) नहीं-नहीं जीजाजी, बच्ची है; लौंडों ने बहका दिया है और कोई बात नहीं। माफ़ कीजिए। अब ऐफा नहीं होगा। मैं ज़िम्मेदारी लेता हूँ।

बड़े बाबू : लो हिम्मत हो तो पढ़ो इन चिट्ठियों को। पढ़ने और ज़बान पर लाने लायक़ बातें नहीं लिखी हैं इनमें। लेकिन मैं हिम्मत हारनेवाला इनसान नहीं। सब मेरे

हाथ में है। सारी चिट्ठियों का रजिस्टर है मेरे पास। और अब तो मेरे हाथ में सबूत है, नाम है, पता है। मैं एक-एक को न गिरफ्तार करा दूं तो मेरी मूँछ नहीं परवाह नहीं है, परवाह नहीं, पुलिस को चाहे मुँह-माँगा इनाम क्यों न देना पड़े! क्या समझ रखा है इन बन्द लिफ़ाफ़ों ने !

परेम : ज़रूर ! ज़रूर ! दुफ्चरित्र गिरफ्तार हों। दुफ्चरित्र बन्दी हों। दुफ्च···

बड़े बाबू : यह क्या ? यह क्या ? लेटरबाक्स-जैसा मुँह बनाता है।

परेम : ज़रा ग़म के बाद ख़ुफी में आ गया था।

बड़े बाबू : ख़ुशी में आ गया था। अच्छा सुनो, ज़रा ध्यान से सुनो। कमला आज इस कमरे में बन्द रहेगी।

परेम : अयं ! ऐफा न कीजिए बड़े बाबू। ऐफा न कीजिए।

बड़े बाबू : जो कह रहा हूँ, पहले उसे सुनो। सुनते हो कि नहीं !

परेम : जी कहिए, फुनूँगा क्यों नहीं ?

बड़े बाबू : जब तक मैं दफ़्तर से लौटकर न आऊँ, कमला बन्द इस कमरे में। बग़ल से बन्द, इधर से ताला। और तुम यहाँ से एक पल के लिए भी नहीं हटोगे। आज तो दफ़्तर को भी देर हो गई। पोस्टऑफ़िस की कुंजियाँ मेरे पास हैं। मैं जा रहा हूँ। दफ़्तर से छुट्टी लेकर ख़ुद पुलिस चौकी जाऊँगा।

परेम : और कमला बेटी !

बड़े बाबू : कह तो दिया वह बन्द रहेगी इस कमरे में। कोई मुरव्वत नहीं।

[बड़े बाबू भीतर जाते हैं।]

परेम : बेचारी को खाना-वाना खिलाकर बन्द कीजिएगा। कहीं भूखी न रह जाए मेरी भानजी। एकाध किताब रख दीजिएगा उफ के कमरे में।

[सामने से मुंशीजी का प्रवेश : अवस्था चालीस-पैंतालीस वर्ष से अधिक नहीं है, पर ऐनक और सिर की टोपी के ढंग से काफ़ी बुजुर्ग-से लगते हैं।]

परेम : अयँ ! कौन ? कौन हैं आप ? आप यहाँ क्यों आए ? बोलिए, क्या काम है आपका यहाँ ? जल्दी बोलिए। इधर-उधर झाँक रहे हैं ?

मुंशीजी : मैं पोस्ट आफ़िस से आ रहा हूँ जी। बड़े बाबू कहाँ हैं ?

परेम : क्यों, क्या बात है ? कौन हैं आप ? आपकी तारीफ़ ? क्या बात है ?

मुंशीजी : जी, बड़ी देर हो रही है दफ़्तर में सब परेशान हो रहे हैं।

परेम : फवाल कुछ जवाब कुछ। बड़े अजीब आदमी लगते हो तुम। फवाल नहीं फुनते क्या ?

[बड़े बाबू का प्रवेश।]

मुंशीजी : (**नमस्ते करते हैं**) नमस्ते बड़े बाबू। (**परेम को घूरते हैं मुंशीजी**)

बड़े बाबू : (**नमस्ते लेते हुए**) मुंशीजी ! अभी चल रहा हूँ दफ़्तर। देर हो गयी आज। क्या करूँ, एक ब्रांच पोस्ट ऑफ़िस तो मेरे घर खुल गया—सुबह-शाम डिलिवरी।

[**सामने का दरवाज़ा बन्द करके ताला लगाते हैं।**]

बड़े बाबू : जो हुआ बहुत हुआ। अब तैनात हो गया
शादी करके छोड़ूँगा, ऐट ऐनी कास्ट। विमला
मेरे दो-दो नेशनल सर्टीफ़िकेट लग गए थे। चा
ऑर्डर क्यों न लग जाएँ, परवाह नहीं। पर अब श
पर इज़्ज़त पर आँच नहीं आने दूँगा, हाँ। मुंशीज
इन लौंडे और लौंडियों ने। पैदा नहीं हुए कि
जैसी तो सूरत होती है इन लौंडे-लौंडियों की।
इस पचास साल की उमर में इन प्रेमी छोकड़ों
बोल जाएँ, चें।

परेम : अरे जी चें, क्या हैं बोल जाएँ।

मुंशीजी : बिलकुल सही बड़े बाबू।

बड़े बाबू : देखिए न, मुफ़्त ही में अजीब परेशानी पैदा

परेम : दुफ्चरित्र ! आवारा !! दिन-रात फनीमा
हैं। इफमें मेरी कमला बेटी का दोफ नहीं।

बड़े बाबू : बेवक़ूफ़ हो तुम। ख़बरदार बाबू परेमशंक
से हटिएगा नहीं। कमला से भीतर से कुछ कहे,

परेम : यफ प्लीज़।

मुंशीजी : बड़े बाबू, इस सबकी एक दवा शादी है।

बड़े बाबू : भाई, शादी की बात बिलकुल तय है। लें
होगी न, लौंडों का खेल तो है नहीं। चौधरी राम
क़रीब तय ही है।

मुंशीजी : जी, हाँ वह तो है ही।

बड़े बाबू : लड़का वीरेन्द्र बी०ए० में पढ़ रहा है। क्या
हीरा ! सच्चरित्र, विद्वान, सुन्दर और आज्ञाका
कभी होटल-रेस्ट्राँ में बैठना।

मुंशीजी : बड़े बाबू, बहुत देर हो रही है दफ़्तर को।

बड़े बाबू : चलो चलो, (फिर एक बार ताला
तैनात रहना।

परेम : बेटी को खाना-वाना तो खिला

बड़े बाबू : मुंशीजी, देख लिया न

मुंशीजी : जी।

बड़े बाबू : तो मुंशीजी, आप
यह भी तो अपने ज़माने के
पूरा दिमाग़ तो किसी
मुंशीजी, अब मैं
जल्द वापस। तब

रिवाल्वर है मेरे पास। और अब तो मेरे हाथ में
...क को न गिरफ्तार करा दूँ तो मेरी मूँछ नहीं
...को चाहे मुँह-माँगा इनाम क्यों न देना पड़े !
...ड़ों ने !
गिरफ्तार हों। दुष्चरित्र बन्दी हों। दुष्च···
...राक्षस-जैसा मुँह बनाता है।
...बा था।
...सुनो, जरा ध्यान से सुनो। कमला आज इस

...ऐसा न कीजिए।
...। सुनते हो कि नहीं !

...जाऊँ, कमला बन्द इस कमरे में। बगल से
...एक पल के लिए भी नहीं हटोगे। आज तो
...की कुंजियाँ मेरे पास हैं। मैं जा रहा हूँ।
...ऊँगा।

...रे में। कोई मुरव्वत नहीं।

...खिएगा। कहीं भूखी न रह जाए मेरी
...कमरे में।
...पैंतालीस वर्ष से अधिक नहीं है,
...बूढ़े-से लगते हैं।]
...आए ? बोलिए, क्या काम है
...है ?
...है ?
...? क्या बात है ?
...रहे हैं।
...तुम। सवाल नहीं सुनते

...हैं मुंशीजी)
...। देर हो गयी आज।
...शाम डिलिवरी।

बड़े बाबू : जो हुआ बहुत हुआ। अब तैनात हो गया हूँ। मैं इस मार्च में कमला की शादी करके छोड़ूँगा, ऐट ऐनी कास्ट। विमला और सरला बेटी की शादियों में मेरे दो-दो नेशनल सर्टीफ़िकेट लग गए थे। चार नेशनल सर्टीफ़िकेट और पोस्टल ऑर्डर क्यों न लग जाएँ, परवाह नहीं। पर अब शादी करके छोड़ूँगा। मिट जाऊँगा पर इज़्ज़त पर आँच नहीं आने दूँगा, हाँ। मुंशीजी, क्या समझ रखा है आजकल के इन लौंडे और लौंडियों ने। पैदा नहीं हुए कि प्रेम करने चलते हैं। पोस्टकार्ड-जैसी तो सूरत होती है इन लौंडे-लौंडियों की। मुंशीजी, ईमान से कह रहा हूँ, इस पचास साल की उमर में इन प्रेमी छोकड़ों को अगर एक झापड़ मार दूँ तो चें बोल जाएँ, चें।

परेम : अरे जी चें, क्या हें बोल जाएँ।

मुंशीजी : बिलकुल सही बड़े बाबू।

बड़े बाबू : देखिए न, मुफ़्त ही में अजीब परेशानी पैदा किए हुए हैं।

परेम : दुष्चरित्र ! आवारा !! दिन-रात सनीमा देखते हैं। सनीमा का नक़ल करते हैं। इसमें मेरी कमला बेटी का दोस नहीं।

बड़े बाबू : बेवक़ूफ़ हो तुम। ख़बरदार बाबू परेमशंकर, एक मिनिट के लिए आप यहाँ से हटिएगा नहीं। कमला से भीतर से कुछ कहे, कोई जवाब नहीं। नो रिप्लाई।

परेम : यस प्लीज़।

मुंशीजी : बड़े बाबू, इस सबकी एक दवा शादी है।

बड़े बाबू : भाई, शादी की बात बिलकुल तय है। लेकिन शादी तो लग्न और साइत से होगी न, लौंडों का खेल तो है नहीं। चौधरी रामखेलावन लाल के यहाँ बात क़रीब-क़रीब तय ही है।

मुंशीजी : जी, हाँ वह तो है ही।

बड़े बाबू : लड़का बीरेन्द्र बी०ए० में पढ़ रहा है। क्या लड़का है ! अहा हा। हीरा है ! हीरा ! सच्चरित्र, विद्वान्, सुन्दर और आज्ञाकारी। न कभी सनीमा देखना, न कभी होटल-रेस्ट्राँ में बैठना।

मुंशीजी : बड़े बाबू, बहुत देर हो रही है दफ़्तर को।

बड़े बाबू : चलो चलो, (फिर एक बार ताला देखकर) देखना परेम, ख़बरदार। हाँ, तैनात रहना।

परेम : बेटी को खाना-वाना तो खिला दिया है न !

बड़े बाबू : मुंशीजी, देख लिया न इनका हाल ! यह भी किसी मजनूँ से कम थोड़े हैं।

मुंशीजी : जी।

बड़े बाबू : तो मुंशीजी, आप यहीं रहिए। यह परेम बाबू कम लाखैरा आदमी नहीं हैं। यह भी तो अपने ज़माने के बहुत बड़े प्रेमी रह चुके हैं। कई बार पिट चुके हैं। पूरा दिमाग़ तो किसी महबूबा को दे आए हैं। महज शरीर ही है इनके पास। अच्छा मुंशीजी, अब मैं सब आपको सौंपकर जा रहा हूँ। दफ़्तर। पुलिस स्टेशन। फिर जल्द वापस। तब तक आपकी ड्यूटी यहाँ।

मुंशीजी : जी ठीक।

[बड़े बाबू का प्रस्थान, मुंशीजी तथा परेम मामा एक-दूसरे को देखते हैं।]

मुंशीजी : परेम बाबू, आपसे मिलकर निहायत खुशी हुई।

परेम : अयँ ! क्या मतलब आपका ! मुझे तो क़तई खुफी नहीं हुई आपफे मिलकर। बड़े बाबू ने जो मेरे बाबत कहा आपने कहीं यक़ीन तो नहीं कर लिया? अगर कर लिया तो आप बेवकूफ़ हैं।

मुंशीजी : जी।···जी।

परेम : बड़े बाबू मेरे जीजा, बहनोई यानी 'ब्रादर इन ला' होते हैं। वह मुझफे मज़ाक़ करते हैं। 'बट नेचुरल'।

मुंशीजी : जी हाँ, रिश्ता ही ऐसा है।

परेम : अयँ। क्या फ़रमाया आपने? रिफ्ता ही ऐफा है, क्या मतलब आपका? आप मुझे बहुत कम पढ़े-लिखे लगते हैं। मज़ाक़ के क्या मतलब, आपको पता नहीं है फायद। मज़ाक़ के मतलब बयान, ग़लत कैफियत।

[मुंशीजी हँसते हैं।]

परेम : जनाब आपको हँफी आ रही है। जैसे मैं मज़ाक़ कर रहा हूँ आप फे। गोया कि आपका मेरा कोई रिफ्ता है? आप फमझते हैं क्या मुझको?

मुंशीजी : जी आपको मैं सिकन्दर मानता हूँ।

परेम : हूँ, अच्छा फिकन्दर! वाह-वाह! चलिए माफ किया आपको। तो मुंफीजी, आपका नाम क्या है?

मुंशीजी : ख़ाकसार को बिन्देश्वरीलाल श्रीवास्तव खरे कहते हैं।

परेम : यह क्या बत्तमीज़ी है। इत्ता बड़ा नाम। आधा हिन्दी आधा उर्दू। ख़ाकफार विन्देफवरीलाल फ्रीवाफ्तव खरे। कुछ और तो नहीं बाक़ी?

मुंशीजी : अजी सुनिए तो साहब, मैं भी तो आपसे कुछ अर्ज़ करूँ।

परेम : दैट्फ आल। खाकफार विन्देफवरीलाल। अब आप गौर फे मेरी एक बात फुनिए।

मुंशीजी : जी फ़रमाइए।

परेम : आप मेहरबानी करके यहाँ फे चले जाइए। मैं अकेला काफ़ी हूँ यहाँ के लिए। यहाँ आपकी कोई ज़रूरत नहीं। आप फ़ज़ूल यहाँ बैठे हैं।

मुंशीजी : लेकिन हुज़ूर सुनिए तो, बड़े बाबू ने मेरी ड्यूटी जो यहाँ लगा रखी है।

परेम : अजी ख़ाकफार विन्देफवरीलालजी, वह तो बड़े बाबू का मज़ाक़ था। आप जल्दी फे अपने दफ्तर जाइए। यहाँ बैठकर आप क्या करेंगे? एक मक्खी भी तो नहीं मार फकते।

मुंशीजी : वह तो सही है जी, मगर बड़े बाबू मुझे यहाँ बैठा गए हैं। मेरे हाकिम हैं वे।

परेम : वह तो ठीक है, लेकिन अब मैं कह रहा हूँ कि आप यहाँ फे तफरीफ ले जाइए। आपका कोई काम नहीं है यहाँ। यह फराफर मेरी भानजी की बदनामी है कि

आप जैफे मनहूफ आदमी उफकी रखवाली में
तीफ तरीके से बाटेंगे। मैं पोफ्ट ऑफ़िफ के
बड़ी गड़बड़ी करते हैं, गोलमाल।

मुंशीजी : ओ हो हो। हुज़ूर ऐसी कोई बात नहीं
है। कमला देवी मेरी बेटी है। आप कैसी ब
भला ऐसा भी कभी हो सकता है, ग़ैरमुमकिन।

[सामने से एक बुड्ढे भिखारी का प्रवेश।]

भिखारी : जै हो बाबू। कल्याण हो।

परेम : क्या है? कौन हो तुम? कहाँ रहते हो?
देख रहे हो? मामला क्या है? जल्दी बोलो।

भिखारी : माफ़ी दें। कुछ नहीं हुज़ूर!

[तेज़ी से लौटता है।]

परेम : कहाँ भाग रहा है? (पकड़ लेते हैं) इधर,
छोड़ूँगा तुझे, चल!

मुंशीजी : (छुड़ाते हुए) हाँ-हाँ, अजी छोड़िए। बे
क्या कमाल करते हैं, परेम बाबू!

[भिखारी का प्रस्थान।]

परेम : देखिए मुंफी ख़ाकफार विन्देफवरीलाल,
फमय। वह कोई ज़रूर था जो भिखारी
पता! हो फकता है वह कोई भेद लेने
ताले को देख रहा था। आप फराफर बे
फ़ौरन चले जाइए यहाँ फे।

मुंशीजी : जी हुज़ूर, माफ़ कीजिए इस
नहीं करूँगा। मुझे बेहद अफ़सोस

परेम : नहीं जनाब, आपका यहाँ
आप तफ़रीफ़ ले जाइए
किफ तरह फे हैं। यह
लगायी जाती है। उफ
गन्दे दाँत हैं आपके?

मुंशीजी : इसके लिए मैं
तो आप मेहरबानी

[सहसा बन्द कमरे

आवाज़ : मामाजी!

आप जैफे मनहूफ आदमी उफकी रखवाली में तैनात रहें। आप इफे बीफों जगह तीफ तरीके से बाटेंगे। मैं पोफ्ट ऑफ़िफ के आदमियों को खूब जानता हूँ। बड़ी गड़बड़ी करते हैं, गोलमाल।

मुंशीजी : ओ हो हो। हुजूर ऐसी कोई बात नहीं। बड़े बाबू की इज्जत मेरी इज्जत है। कमला देवी मेरी बेटी है। आप कैसी बात करते हैं, राम-राम ! छी-छी ! भला ऐसा भी कभी हो सकता है, ग़ैरमुमकिन।

[सामने से एक बुड्ढे भिखारी का प्रवेश।]

भिखारी : जै हो बाबू। कल्याण हो।

परेम : क्या है ? कौन हो तुम ? कहाँ रहते हो ? क्या काम है यहाँ ? इफ तरह क्यों देख रहे हो ? मामला क्या है ? जल्दी बोलो।

भिखारी : माफ़ी दें। कुछ नहीं हुजूर !

[तेज़ी से लौटता है।]

परेम : कहाँ भाग रहा है ? **(पकड़ लेते हैं)** इधर, बदमाफ, चल इधर। आज नहीं छोड़ूँगा तुझे, चल !

मुंशीजी : **(छुड़ाते हुए)** हाँ-हाँ, अजी छोड़िए। बेचारा ग़रीब भिखारी है। आप भी क्या कमाल करते हैं, परेम बाबू !

[भिखारी का प्रस्थान।]

परेम : देखिए मुंफी खाकफार विन्देफवरीलाल, आपने बड़ी बुरी हरकत की है इफ फमय। वह कोई ज़रूर था जो भिखारी के रूप में यहाँ आया था। आपको क्या पता ! हो फकता है वह कोई भेद लेने आया हो। आपने देखा नहीं, वह बार-बार ताले को देख रहा था। आप फराफर बेवक़ूफ़ हैं। आपको कोई तमीज़ नहीं। आप फ़ौरन चले जाइए यहाँ फे।

मुंशीजी : जी हुज़ूर, माफ़ कीजिए इस बार। अब मैं आपकी किसी बात में दख़लन्दाज़ी नहीं करूँगा। मुझे बेहद अफ़सोस है।

परेम : नहीं जनाब, आपका यहाँ इफ तरह महज़ बैठना ही काफ़ी दख़लन्दाज़ी है। आप तफ़रीफ़ ले जाइए यहाँ फे। आपकी फूरत मुझे पफन्द नहीं। अजी, आप देखते किफ तरह फे हैं। यह चफ्मा आप किफ बेहूदा तरीकेफे लगाते हैं। ऐफे कहीं टोपी लगायी जाती है। उफ पर आप मुँह खोले रहते हैं। बन्द कीजिए मुँह। कितने गन्दे दाँत हैं आपके ?

मुंशीजी : इसके लिए मैं क्या करूँ हुज़ूर। लीजिए मैं अपना मुँह इधर फेर लेता हूँ। अब तो आप मेहरबानी करके खुश हो जाइए।

[सहसा बन्द कमरे से कमला की आवाज़ आती है।]

आवाज़ : मामाजी !

परेम : क्या है बेटी ?

आवाज़ : प्यास लगी है मामाजी !

परेम : क्या करूँ बेटी, मजबूर हूँ ! भगवान् का नाम लो। अन्यायियों का नाफ हो। फो जाओ बेटी। कुछ बोलो नहीं। बोलने फे और प्याफ लगेगी बेटी।

मुंशीजी : पानी तो रख देना था भीतर।

परेम : आप फे मतलब, चुप रहिए। उधर देखिए। उधर देखिए।

मुंशीजी : (**दूसरी ओर मुँह करते हुए**) क्या आफ़त है !

परेम : मैं आफ़त हूँ ?

मुंशीजी : नहीं जी, मैं हूँ।

परेम : फ़ज़ूल आदमी ? अच्छा मुंफी खाकफार विन्देफवरीलाल, आप बड़े बाबू के फुभचिन्तकों में फे हैं ना ?

मुंशीजी : ज़रूर हूँ, जी।

परेम : तो आप एक काम कीजिए। आँख मूँदकर भगवान् फे प्रार्थना कीजिए कि कमला बेटी की फादी मार्च में चौधरी रामखेलावन लाल के फ़ुपुत्र फ्री वीरेन्द्र बहादुर फे हो जाए। चलिए, इबादत कीजिए। मूँदिए आँख।

मुंशीजी : जी, आँख तो नहीं मूँद सकता। इसके लिए मजबूर हूँ। हाँ, कमला बेटी की शादी वीरेन्द्र बेटे से हो जाए, इसके लिए मैं तहेदिल से खुदा से इल्तिजा कर सकता हूँ और करता भी हूँ।

परेम : फाबाफ ! लेकिन यह वीरेन्द्र बेटा क्यों ? कोई रिफ्ता है वहाँ फे क्या ?

मुंशीजी : जी, मैं उस फेमिली से खूब वाक़िफ़ हूँ। वहाँ मेरा आना-जाना है।

परेम : हाँ मुंफीजी, अरे तो आप इधर देखिए।

मुंशीजी : मैंने बीरू को बचपन में पढ़ाया है। मैं ट्यूटर था जी।

परेम : ओह, बड़ी खुफी हुई मुझे आपके मिलकर। रुकिए, मैं कुरफी लाता हूँ आपके लिए।

मुंशीजी : नहीं-नहीं जी, शुक्रिया। कोई बात नहीं। ज़हमत मत उठाइए।

[परेम कुरसी लेकर आते हैं।]

परेम : नहीं मुंफीजी, आपको बैठना होगा, (**बैठाते हुए**) देखिए बुजुर्गों की इज्जत हम नहीं करेंगे तो भला कौन करेगा। आप तफरीफ़ रखिए न !

मुंशीजी : लेकिन अच्छा नहीं लगता कि आप खड़े रहें। देखिए परेम बाबू, आप तो मेहमान हैं।

परेम : आप तो काँटों में घफीट रहे हैं, मुंफीजी। खैर, आपकी खुफी के लिए मैं एक पटूल लाता हूँ।

[परेम स्टूल लेकर आते हैं और उस पर बैठते हैं।]

परेम : तो जी, आप ट्यूटर थे वीरेन्द्र बाबू के ?

मुंशीजी : जी हाँ, बड़ा ही होनहार लड़का है वीरेन्द्र। सदा फ़र्स्ट क्लास आता है।

न पान, न सिगरेट, न गोश्त, न अण्डा, बेहद सीधा

परेम : मुंफीजी, ठीक इफी तरह मेरी कमला भानजी है
मुंफीजी, इन छोटी-छोटी बातों का वे लोग कुछ नहीं

मुंशीजी : अजी नहीं; इस उमर में खत वग़ैरह तो सभ
लोग बहुत ऊँचे खयाल के हैं।

परेम : आप उफ्ताद जो रह चुके हैं उस परिवार में मुंफी
हूँ आपके !

मुंशीजी : आदाबर्ज़ !

परेम : मुंफीजी, आपकी क्या खातिर करूँ मैं। प्याफ तो
लाता हूँ।

मुंशीजी : नहीं-नहीं, जब तक भीतर बेटी प्यासी बैठी
सरासर गुनाह है।

परेम : वाह-वाह ! फही है, क्या बात है ! और पान,
ही आपके गुनाह है।

मुंशीजी : जी हाँ, मैं तो जी सौंफ खाता हूँ।

परेम : और यहाँ तो जी फौंफ भी नहीं खायी जाती।

मुंशीजी : जी हाँ, बिलकुल फ़ज़ूल का खर्चा है यह सब

[परेम साहब हँसने लगते हैं। और मुंशीजी घबरा
हँसते हैं तो परेम साहब उनका मुँह देखते रह जाते

परेम : मुंफीजी, आप हिन्दी भी तो खूब जानते होंगे।

मुंशीजी : जी हाँ, जानता हूँ।

परेम : घफीट भी पढ़ लेते होंगे, और मुफकिल अल्फ़ाज

मुंशीजी : जी हाँ, पोस्ट ऑफ़िस की नौकरी में सारी
मुश्किल अल्फ़ाज, घसीटबाजी इन सबसे तो हमेशा

परेम : जी मुंफीजी। कई दिन हुए मेरे पाफ ऐफी ही
अजी किफी ने भेजा है। अब आपके क्या

मुंशीजी : अयें ! वाइफ़ !

परेम : नहीं जी, मिड वाइफ़। मिड एण्ड

मुंशीजी : ओ, बीच की औरत !

परेम : औरत नहीं, प्रेमिका।
पढ़कर मुझे फुना दीजिए

मुंशीजी : जी हाँ लाइए।

परेम : जी हाँ, आप
लेकिन बात यह है

मुंशीजी : तो मुझसे

न पान, न सिगरेट, न गोश्त, न अण्डा, बेहद सीधा और शरीफ़।

परेम : मुंफीजी, ठीक इफी तरह मेरी कमला भानजी है। कितनी अच्छी जोड़ी रहेगी। मुंफीजी, इन छोटी-छोटी बातों का वे लोग कुछ नहीं खयाल करेंगे ?

मुंशीजी : अजी नहीं; इस उमर में ख़त वग़ैरह तो सभी बच्चे-बच्चियाँ लिखती हैं वे लोग बहुत ऊँचे ख़याल के हैं।

परेम : आप उफ्ताद जो रह चुके हैं उस परिवार में मुंफीजी ! वाह कितने बुलन्द ख़याल हैं आपके !

मुंशीजी : आदाबर्ज़ !

परेम : मुंफीजी, आपकी क्या ख़ातिर करूँ मैं। प्याफ तो लगी ही होगी। मैं कुछ नाफ्ता लाता हूँ।

मुंशीजी : नहीं-नहीं, जब तक भीतर बेटी प्यासी बैठी है तब तक हम लोगों का पानी सरासर गुनाह है।

परेम : वाह-वाह ! फही है, क्या बात है ! और पान, फिगरेट, बीड़ी वग़ैरह तो पूछना ही आपके गुनाह है।

मुंशीजी : जी हाँ, मैं तो जी सौंफ खाता हूँ।

परेम : और यहाँ तो जी फौंफ भी नहीं खायी जाती।

मुंशीजी : जी हाँ, बिलकुल फ़ज़ूल का खर्चा है यह सब।

[परेम साहब हँसने लगते हैं। और मुंशीजी घबराए बैठे रहते हैं और जब मुंशीजी हँसते हैं तो परेम साहब उनका मुँह देखते रह जाते हैं।]

परेम : मुंफीजी, आप हिन्दी भी तो खूब जानते होंगे।

मुंशीजी : जी हाँ, जानता हूँ।

परेम : घफीट भी पढ़ लेते होंगे, और मुफकिल अल्फ़ाज भी।

मुंशीजी : जी हाँ, पोस्ट ऑफ़िस की नौकरी में सारी भाषाएँ जाननी पड़ती हैं और मुश्किल अल्फ़ाज, घसीटबाजी इन सबसे तो हमेशा साबका पड़ता है।

परेम : जी मुंफीजी। कई दिन हुए मेरे पाफ ऐफी ही हिन्दी में एक ख़त आया पड़ा है। अजी किफी ने भेजा है। अब आपफे क्या छिपाना, वह एक जगह 'मिड वाइफ़' है।

मुंशीजी : अयँ ! वाइफ़ !

परेम : नहीं जी, मिड वाइफ़। मिड एण्ड वाइफ़ फमझे।

मुंशीजी : ओ, बीच की औरत !

परेम : औरत नहीं, प्रेमिका। बहुत फख्त और घफीट हिन्दी लिखती है। ज़रा उफे पढ़कर मुझे फुना दीजिएगा। बहुत-बहुत फुक्रिया।

मुंशीजी : जी हाँ लाइए। कहाँ है ? ख़त पढ़ना क्या बड़ी बात है ?

परेम : जी हाँ, आप लोग तो दूफरों का ख़त पढ़ते ही रहते हैं। ख़त तो यह है मुंफीजी। लेकिन बात यह है कि यह 'लव लेटर' है।

मुंशीजी : तो मुझसे क्या ? पोस्ट ऑफ़िस में तो हजारों 'लव लेटर्स' रोज हम लोगों के

सामने से गुज़रते हैं। हमारे लिए तो वे मामूली खत हैं।

परेम : वह तो फही हैं मुंफीजी। आप मेरे बुजुर्ग हैं। मेहमान हैं। आप मेरे इफ खत के मजमून को न फुनें तो बेहतर ही होगा। रुकिए, मैं एक तरीक़ा फोचता हूँ।

[दौड़कर भीतर से एक दरी लाता है।]

परेम : लाइए, इफफे मैं आपको पूरा फिर बाँध देता हूँ, ताकि आपको कुछ फुनाई न पड़े।

मुंशीजी : नहीं बाबा, नहीं। मैं मर जाऊँगा। मैं मर जाऊँगा।

परेम : अच्छी बात है। मैं कपड़ा लाता हूँ।

[दौड़कर एक लम्बी धोती लाते हैं। मुंशीजी डर के मारे चश्मा हाथ में लेकर 'नहीं नहीं, ऐसा न कीजिए' कहते रहते हैं, मगर परेम कान से सिर के ऊपर धोती लपेटने लगते हैं।]

परेम : क्या करेंगे आप बच्चों की बात फुनकर ?

[मुंशीजी के सिर-कान पर धोती बँध जाती है।]

परेम : (**कान के पास चिल्लाकर**) लीजिए मुंफीजी, अब पढ़िए।

[मुंशीजी चश्मा लगाते हैं और अब चश्मा नाक पर चढ़ता ही नहीं।]

मुंशीजी : अजी, बिना चश्मे के मैं नहीं पढ़ सकता। और अब चश्मा लग कैसे सकता है। ग़ैर-मुमकिन। आप कुछ समझ से तो काम लिया कीजिए।

परेम : (**हाथ से संकेत**) परेशान न होइए, मैं लगाता हूँ न।

[बँधी कनपटी में किसी तरह खोंसने का प्रयत्न करता है और बार-बार असफल होता है, पर अन्त में किसी तरह चश्मे को नाक के अन्तिम सिरे पर टिका देता है।]

परेम : (**शोर मचाकर**) लीजिए, अब पढ़िए मुंफीजी। (**हाथ से इशारा करता है**)

मुंशीजी : इस खत में तो शाइरी है। बड़े पुरलुत्फ़ 'कोटेशन' हैं। (**खत पढ़ते हैं, पहले धीरे-धीरे और बाद में उर्दू के तरन्नुम में**) 'पन्थ रहने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला'।

परेम : धीरे-धीरे पढ़िए मुंफीजी। (**हाथ से इशारा**) धीरे-धीरे।

मुंशीजी : (**उसी भाँति**) 'मिलन का मत नाम लो, मैं विरह में चिर हूँ'।

परेम : (**हाथ से इशारा करके**) क्या मतलब है इफका मुंफीजी ? मतलब क्या है ?

मुंशीजी : मतलब यह है कि आपकी महबूबा आजकल कहीं सफ़र पर गई हुई हैं। और रास्ता भूल गई हैं। मनचले लोग रास्ता बताने आते हैं। वह सबको डाँटती हैं कि प्राण रहने दो अकेला। अकेली यहाँ आई हूँ (**देखकर**) बड़ी समझदार औरत है जी !

ी वे मामूली खत हैं।
रे बुजुर्ग हैं। मेहमान हैं। आप मेरे इस खत के
ा। रुकिए, मैं एक तरीक़ा सोचता हूँ।
है।]
ाँध देता हूँ, ताकि आपको कुछ सुनाई न
ा। मैं मर जाऊँगा।
मुंशीजी डर के मारे चश्मा हाथ में लेकर
ागर परेम कान से सिर के ऊपर धोती
है।]
, अब पढ़िए।
पर पड़ता ही नहीं।]
और अब चश्मा लग कैसे सकता
ी कीजिए।
ा।
ा है और बार-बार असफल
न्तिम सिरे पर टिका देता
ा इशारा करता है)
(खत पढ़ते हैं, पहले
अपरिचित प्राण रहने
हूँ।
ब क्या है?
र्द हुई है। और
ो डाँटता हैं
ार औरत

परेम : औरत नहीं मुंफीजी। लड़की···लड़की मिफ फरोज कहिए।

[सहसा बन्द कमरे से कोई गीत गुनगुनाकर गाए जाने की आवाज़ आती है। परेम मामा घबड़ाकर इधर-उधर कान लगाकर सुनते हैं।]

परेम : मुंफीजी ! मुंफीजी ! वे ही गा रही हैं। (**इशारा करता है।**)

[मुंशीजी कुछ सुन नहीं पा रहे हैं।]

परेम : गुनगुनाओ नहीं बेटी। जज़्बात पर काबू रखो। गुनगुनाओ मत। नहीं तो कहीं लौंडे फुन पावेंगे तो फड़कपर फे झाँकेंगे।

[गुनगुनाना बन्द।]

मुंशीजी : क्या बात है परेम बाबू?

परेम : (**इशारे से**) कुछ नहीं मुंफीजी। (**इशारा करते हैं**) बाक़ी खत भी पढ़ दीजिए। मेरा जी लगा हुआ है।

मुंशीजी : मेरा कान दर्द कर रहा है। मेरा सिर फटा जा रहा है। अब मैं मजबूर हूँ।

[पगड़ी नोचकर फेंकने लगते हैं। परेम मामा जल्दी से खोल देते हैं। पर मुंशीजी की टोपी काग़ज़ की तरह सिकुड़ कर बेकार हो जाती है।]

मुंशीजी : (**टोपी की दशा देखते हुए**) यह क्या सत्यानास कर दिया आपने? यह मैं नहीं सह सकता? आने दीजिए बड़े बाबू को। आपने समझा क्या है? यह टोपी सन् उन्नीस सौ चार की है। पहली गांधी टोपी। मेरे बाबा ने मुझको दी थी। आने दीजिए बड़े बाबू को!

परेम : (**जो थर-थर काँपने लगे थे**) माफ़ कीजिए मुंफीजी। माफ़ी दीजिए। मैं आपके पैर गिरता हूँ। इतनी बड़ी फज़ा न दीजिए। बड़े बाबू बड़े बेरहम आदमी हैं। मेरे 'लव लेटर' की बात फुनकर मुझे ज़िन्दा न छोड़ेंगे।

मुंशीजी : मैं मजबूर हूँ। आपने बहुत तंग किया है।

परेम : लीजिए मुंफीजी, आप मुझे तंग कर लीजिए। (**कान पकड़कर उठने-बैठने लगता है**) अब तो माफ़ी दीजिए मुंफीजी मेरी ज़िन्दगी आपके हाथों में है। मुझे बचा लीजिए। रहम कर दीजिए। (**डर से काँप जाता है**) मुंफीजी, वह आ रहे हैं बड़े बाबू। मेरी इज़्ज़त आपके हाथों में है। लीजिए, लगा लीजिए अपनी टोपी।

[मुंशी टोपी लगा लेते हैं। बड़े बाबू का प्रवेश।]

बड़े बाबू : सब ठीक-ठाक ! कोई नई बात तो नहीं? (**ताला देखते हैं।**)

परेम : जी फब ठीक है। क्या हुआ जीजाजी?

बड़े बाबू : उनमें से दो लड़के तो पकड़ लिए गए—तीसरे को पकड़ने गए हैं। पुलिस ने सब क़बूल करा लिया।

परेम : अजी फाहब ! ऐसे लड़के झूठ नहीं बोलते।

मुंशीजी : जी हाँ, क्यों नहीं। क्यों नहीं।

[परेम छिपकर फिर मुंशीजी के चरण छूता है।]

बड़े बाबू : कोई यहाँ आया-गया तो नहीं।

परेम : कोई नहीं जी।

मुंशीजी : एक भिखारी आया था, और तो इधर कोई नहीं दीखा।

परेम : हाँ, 'बेगर इज़ बेगर।' हाँ बड़े बाबू। कमला बेटी प्याफी है, उफे पानी पिला दीजिए। जी हाँ।

बड़े बाबू : अच्छी बात है। (**भीतर प्रस्थान**)

परेम : (**हाथ जोड़कर**) मुंफीजी! बहुत-बहुत फुक्रिया। ज़रा-फा हुँफ दीजिए। ज़रा-फा, 'प्लीज़ इफमाइल ए लिटिल'।

[मुंशीजी मुसकरा देते हैं।]

परेम : अहा हा! क्या बात है! बहुत-बहुत फुक्रिया-फुक्रिया! इन्क़लाब ज़िन्दाबाद।

[भीतर से बड़े बाबू का प्रवेश।]

बड़े बाबू : यह क्या? उसे तो प्यास नहीं है। और पानी तो रखा था भीतर, वह पी सकती थी।

परेम : भूल गई होगी, बच्ची ही तो है।

मुंशीजी : बड़े बाबू! अब मुझे इजाज़त दीजिए। दफ़्तर जाऊँ मैं?

बड़े बाबू : परेम, तुमने मुंशीजी की कोई ख़ातिर नहीं की? बड़े नालायक हो यार तुम। जाओ, भीतर से पान ले आओ।

[परेम का **प्रस्थान**।]

बड़े बाबू : मुंशीजी! ये बातें किसी तरह भी वीरेन्द्र के पिता चौधरी रामखेलावन लाल तक नहीं पहुँचनी चाहिए। क्या बताऊँ, बदक़िस्मती से ये बातें पैदा हो गयीं। आज अभी सब ख़त्म हुई जा रही हैं।

मुंशीजी : इन बातों में क्या रखा है बड़े बाबू। आप चिन्ता न कीजिए। चौधरी रामखेलावन बड़े ही शरीफ़ आदमी हैं। न उन्हें यक़ीन ही होगा इन बातों पर, न इन छोटी बातों का वे ख़याल ही करते हैं। ठोस आदमी हैं जी वह।

बड़े बाबू : सब आपकी दुआ है मुंशीजी।

[परेम पान की तश्तरी लेकर आते हैं।]

बड़े बाबू : लीजिए मुंशीजी।

मुंशीजी : पहले आप लीजिए।

[बारी-बारी से पान लेते हैं। तश्तरी में बचा हुआ एक बीड़ा पान, आँख बचाकर परेम बाबू खाते हैं।]

मुंशीजी : (**परेम बाबू को देखकर**) आदाबर्ज़।

बड़े बाबू : क्या बताऊँ मुंशीजी, आजकल लड़के
ख़राब है कि सिर चकरा जाता है। इन
क्या-क्या 'पोस्टर्स' छापते हैं, जाने क्या-
हरकतें करते हैं।

परेम : और उफी फबकी नक़ल ये कुछ मनचले

[मुंशीजी बहुत ग़ौर से परेम बाबू को देख
हैं।]

परेम : और पान लीजिएगा मुंफीजी। तम्बाकू

मुंशीजी : नहीं जी, शुक्रिया।

[उसी समय तीन लड़कों के संग दारोगाजी

बड़े बाबू : आइए दारोगाजी, आइए। कुरसी प

दारोगा : (**बैठते हुए**) जी हाँ।

परेम : क्यों, अच्छा।

बड़े बाबू : चलिए, आप लोग 'क्यू' में बड़े ही
होती है। लगाइए क्यू। क्यों? यही

परेम : (**उसी बोध**) तुम्हारा नाम?

अशोक : जी, अशोक।

परेम : अफोककुमार कहिए न। फर्म

बड़े बाबू : परेम, तुम चुप रहो।

परेम : (**अनसुना**) जी, तुम्हारा

दिलीप : जनाब ज़रा क़ायदे से

परेम : ओह! दिलीपकुमार कहि
फत्यानाफ हो गया।

बड़े बाबू : चुप रहो परेम,

दारोगा : दिलीपचन्द।
इज एब्यू
लॉगफेलो

बड़े बाबू :
तुम 12

परेम : और

बड़े बाबू : क्या बताऊँ मुंशीजी, आजकल लड़के-लड़कियों के इर्द-गिर्द माहौल ही इतना खराब है कि सिर चकरा जाता है। इन सनीमावालों ने तो सत्यानास कर दिया। क्या-क्या 'पोस्टर्स' छापते हैं, जाने क्या-क्या गाते हैं। क्या-क्या गाते हैं, क्या-क्या हरकतें करते हैं।

परेम : और उफी फबकी नक़ल ये कुछ मनचले लड़के करते हैं।

[मुंशीजी बहुत ग़ौर से परेम बाबू को देखते हैं, परेम साहब पानी-पानी हो जाते हैं।]

परेम : और पान लीजिएगा मुंफीजी। तम्बाकू और?

मुंशीजी : नहीं जी, शुक्रिया।

[उसी समय तीन लड़कों के संग दारोगाजी का प्रवेश।]

बड़े बाबू : आइए दारोगाजी, आइए। कुरसी पर बैठिए। ये लोग हैं!

दारोगा : (**बैठते हुए**) जी हाँ।

परेम : क्यों, अच्छा।

बड़े बाबू : चलिए, आप लोग 'क्यू' में खड़े हो जाइए। यही दिक़्क़त पोस्ट ऑफ़िस में होती है। लगाइए क्यू। क्यों? यही अब आप लोग पढ़ते हैं?

परेम : (**उसी बीच**) तुम्हारा नाम?

अशोक : जी, अशोक।

परेम : अफोककुमार कहिए न। फर्माते क्यों हैं? तो आप हैं अफोक।

बड़े बाबू : परेम, तुम चुप रहो।

परेम : (**अनसुना**) जी, तुम्हारा क्या नाम है?

दिलीप : जनाब ज़रा क़ायदे से ज़बान हिलाइए। जी, मेरा नाम है दिलीपचन्द।

परेम : ओह! दिलीपकुमार कहिए न। (**चिल्ला उठते हैं**) फनीमा। फनीमा। फनीमा। फत्यानाफ हो गया।

बड़े बाबू : चुप रहो परेम, (**रजिस्टर मिलाते हुए**) क्या नाम बताया आपने?

दारोगा : दिलीपचन्द। यही पढ़ते-लिखते हैं आप लोग? भूल गए—कैरेक्टर दाई नेम इज एज्यूकेशन···आगे क्या है बड़े बाबू? एक लाइन और है इसके आगे। शायद लाँगफेलो या वर्ड्सवर्थ की लाइन्स हैं।

बड़े बाबू : तो दिलीपचन्द! आपने 13 मई सन् '56 को यह खत लिखा था, कि कमल, तुम 12 बजे रात को अलफ्रेड पार्क में मिलना, नहीं तो मैं मर जाऊँगा।

परेम : और आप अब तक नहीं मरे। अरे जन्मते ही क्यों नहीं मर गए?

[दिलीपचन्द अपनी मस्ती में मुँहवाला बाजा बजा रहे हैं। और अशोकजी उँगली में चेन घुमा रहे हैं।]

दारोगा : बन्द करो बाजा। ठीक से खड़े रहो।

परेम : इधर-उधर ~ग देख रहे हैं आप लोग?

अशोक : शट अप !

बड़े बाबू : और अशोक साहब, आपने पहली सितम्बर उन्नीस सौ छप्पन और उन्तीस जनवरी सन् सत्तावन और पन्द्रह सितम्बर को ये ख़त लिखे हैं कि मैं मैटिनी शो में निशात टाकीज़ में तुम्हारा इन्तज़ार करूँगा।

दारोगा : बत्तमीज़ कहीं के। घर ही में मुहब्बत करने लगते हो तुम लोग। ऐसी बात थी तो तुम लोग मेरे पास आते, मैं तुम लोगों की मदद करता। कहीं ऐसी लड़कियों की कमी है !

परेम : आप लोग 'क्यू' मत बिगाड़िए। ठीक के खड़े रहिए। फीटी बाजा मत बजाइए।

दारोगा : 'इश्क वह खेल नहीं ग़ालिब···' आगे क्या है, आगे ?

परेम : जिसे ये लौंडे खेलते हैं ?

दारोगा : और आप हैं वीरेन्द्र।

मुंशीजी : (आश्चर्य) वीरेन्द्र ! वीरेन्द्र···।

वीरेन्द्र : जी, नमस्ते मुंशीजी।

बड़े बाबू : वीरेन्द्र, तुम हो ?

[परेम और मुंशीजी संकेत से आपस में बातें करने लगते हैं।]

बड़े बाबू : दारोगा जी ! आपने वीरेन्द्र को ग़लती से तो नहीं पकड़ लिया। आप जानते हैं, इन्हें !

दारोगा : जी, आप चौधरी रामखेलावन लाल के साहबज़ादे हैं, बी० ए० में पढ़ते हैं।

[परेम अन्दर से कुरसी लाते हैं, वीरेन्द्र के बैठने के लिए।]

परेम : आइए, इस पर तशरीफ़ रखिए।

दारोगा : यही वीरेन्द्र साहब। इस प्रेम-गिरोह के ख़ास आदमी हैं। सारे ख़तों के मज़मून यही बनाते हैं।

परेम : आइए वीरेन्द्र बाबू, बैठिए न।

वीरेन्द्र : नहीं, नहीं ! अशोक, तुम बैठो।

[अशोक बैठने लगता है।]

परेम : नहीं, नहीं। आप नहीं। चलिए। 'क्यू' मत तोड़िए। इधर-उधर क्या झाँक रहे हैं ?

मुंशीजी : दारोगा जी ! आपको ग़लतफ़हमी हुई है, यह वीरेन्द्र तो बहुत ही नेक लड़का है। आओ, कुरसी पर बैठो, बेटा।

[अशोक और दिलीप आपस में बातें करते हैं।]

दारोगा : बड़े बाबू, आपके पास सारे ख़तों की डायरी और रजिस्टर है न। सब यहाँ लाइए और कमला बेटी को बुलाइए। अभी सबका फ़ैसला हुआ जाता है। जब तक ये लोग जेल की हवा न खाएँगे, इनकी यह प्रेमबाज़ी न जाएगी।

परेम : जी, इन्क़लाब ज़िन्दाबाद···क्या समझ रखा है इन लोगों ने ?

बड़े बाबू : चुप रहो जी तुम। छोड़िए दारोगाजी, मैं आ
ज़हमत उठानी पड़ी। सब फ़ैसला भगवान् करता
शिकायत नहीं। वीरेन्द्र बेटा, बैठो न तुम। बहुत-

दारोगा : (बिलकुल घबड़ा जाते हैं) यानी आपका म
समझा नहीं।

मुंशीजी : दारोगाजी, एक मिनिट।

[मुंशीजी बड़े क़रीने से दारोगाजी से संकेतों द्वारा
होने की बात बताते हैं।]

दारोगा : (हँस पड़ते हैं) ओ हो ! ऐक्सीडेण्ट। मिस्ट
आप दोनों की बिदाई। और बड़े बाबू मेरी मिठा
इज़ लव एण्ड लव इज़ ? ···अब क्या है इसके बा

मुंशीजी : एण्ड लव इज़ मैरेज। आदाबर्ज़।

दारोगा : आदाबर्ज़।

अशोक : माफ़ कीजिएगा। अब तक हम लोग चुप थे
हमें लग रहा है कि हमारे ख़िलाफ़ आप लोग कोई

दारोगा : कोई जालसाज़ी नहीं साहब। आप दोनों साहब

दिलीप : ऐसा नहीं हो सकता दारोगाजी। हम तीनों सं
में ? आख़िर वीरेन्द्र को हमसे अलग करके उसे को
आप लोग। यही न !

अशोक : ऐसा हम नहीं होने देंगे !

मुंशीजी : अरे बेटे, जाओ घर सब ठीक है।

परेम : जी हाँ, आप दोनों को माफ़ी दी गयी।

अशोक : (गुस्से से) थैंक्यू वेरी मच। मेहरबा
बोलिए।

दिलीप : अच्छी जालसाज़ी करना चाहते हैं
वीरेन्द्र सबसे सीधा, कमज़ोर और
रोककर आप लोग दिखाई

बड़े बाबू : ओह ओ, जाओ

अशोक : अजी कैसा क़सूर
बुलाइए।

दिलीप : (भाव बदलते

दारोगा : चुप रहो,

परेम : 'गेट आउट

बड़े बाबू : दारो
ख़ुशी की

बड़े बाबू : चुप रहो जी तुम। छोड़िए दारोगाजी, मैं आपका शुक्रगुज़ार हूँ। आपको बड़ी ज़हमत उठानी पड़ी। सब फ़ैसला भगवान् करता है जी। अब मुझे किसी से कोई शिकायत नहीं। वीरेन्द्र बेटा, बैठो न तुम। बहुत-बहुत शुक्रिया दारोगाजी।

दारोगा : (**बिलकुल घबड़ा जाते हैं**) यानी आपका मतलब बड़े बाबू। अयँ! मैं कुछ समझा नहीं।

मुंशीजी : दारोगाजी, एक मिनिट।

[मुंशीजी बड़े क़रीने से दारोगाजी से संकेतों द्वारा स्फुट स्वर से वीरेन्द्र के मंगेतर होने की बात बताते हैं।]

दारोगा : (**हँस पड़ते हैं**) ओ हो! ऐक्सीडेण्ट। मिस्टर वीरेन्द्र, आपको बधाई। और आप दोनों की बिदाई। और बड़े बाबू मेरी मिठाई। "ब्यूटी इज़ ट्रूथ। एण्ड ट्रूथ इज़ लव एण्ड लव इज़? ···अब क्या है इसके बाद?"

मुंशीजी : एण्ड लव इज़ मैरेज। आदाबर्ज़।

दारोगा : आदाबर्ज़।

अशोक : माफ़ कीजिएगा। अब तक हम लोग चुप थे। अब हम नहीं चुप रह सकते। हमें लग रहा है कि हमारे खिलाफ़ आप लोग कोई जालसाज़ी कर रहे हैं।

दारोगा : कोई जालसाज़ी नहीं साहब। आप दोनों साहबान यहाँ से जा सकते हैं।

दिलीप : ऐसा नहीं हो सकता दारोगाजी। हम तीनों संग आए हैं और संग जाएँगे यहाँ से? आख़िर वीरेन्द्र को हमसे अलग करके उसे कोई सख़्त सज़ा देना चाहते हैं, आप लोग। यही न!

अशोक : ऐसा हम नहीं होने देंगे!

मुंशीजी : अरे बेटे, जाओ घर सब ठीक है।

परेम : जी हाँ, आप दोनों को माफ़ी दी गयी। 'यू मे प्लीज़ गो होम'।

अशोक : (**गुस्से से**) थैंक्यू वेरी मच। मेहरबानी करके आप लोग हमारे बीच मत बोलिए।

दिलीप : अच्छी जालसाज़ी करना चाहते हैं आप लोग। आप लोगों ने देख लिया कि वीरेन्द्र सबसे सीधा, कमज़ोर और चुप रहने वाला है, इसीलिए अकेले उसी को रोककर आप लोग दिलचाही सज़ा देना चाहते हैं? ग़ैरमुमकिन है यह।

बड़े बाबू : ओह ओ, जाओ बेटा! क़सूर माफ़ हो गया।

अशोक : अजी कैसा क़सूर? कैसी माफ़ी? (**भाव बदलकर**) पहले मिस कमला को तो बुलाइए।

दिलीप : (**भाव बदलते हुए**) सुना है, उस बेचारी को आपने क़ैद में डाल रखा है।

दारोगा : चुप रहो, नहीं जाओगे सीधे तुम लोग यहाँ से?

परेम : 'गेट आउट! आई वार्न यू!'

बड़े बाबू : दारोगाजी! मेरा खयाल है, इन लोगों को सारी बात बता दी जाए। भई खुशी की बात यह है कि मेरी कमला बेटी से वीरेन्द्र बेटे की शादी की बात बुज़ुर्गों

में तय हो चुकी है।

[अशोक और दिलीप चीखकर आपस में भिंच जाते हैं।]

वीरेन्द्र : नहीं-नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। बचाओ···बचाओ।

[अशोक और दिलीप के पीछे वीरेन्द्र जैसे जान छोड़कर भागता है। परेम और दारोगाजी दौड़कर वीरेन्द्र को पकड़ लेते हैं। छटपटाते हुए वीरेन्द्र को परेम, मुंशीजी तथा दारोगाजी अपने कन्धों पर लादे हुए मंच पर आते हैं। परेम मामा नारे लगाते हैं—'प्रेम की जै हो। प्रेम ज़िन्दाबाद।' बड़े बाबू बन्द दरवाज़े को खोलते हैं।]

बड़े बाबू : घबड़ाओ नहीं बेटा ! रोओ नहीं। तुम्हारी शादी में चार नेशनल सर्टीफ़िकेट दूंगा, हाँ !

[वीरेन्द्र को कन्धों पर लादे हुए लोग भीतर जाते हैं।]

[परदा गिरता है]

शरणागत

पात्र

परीक्षित

शुकदेव

जनमेजय

उत्तरा

शृंगी ऋषि

ऋषिकुमार

परीक्षित के और तीन पु[illegible]

तक्षक

अन्य पात्र

।

प चीखकर आपस में भिच जाते हैं ।]

नहीं हो सकता। बचाओ···बचाओ।

प के पीछे वीरेन्द्र जैसे जान छोड़कर भागता है। परेम और वीरेन्द्र को पकड़ लेते हैं। छटपटाते हुए वीरेन्द्र को परेम, ाजी अपने कन्धों पर लादे हुए मंच पर आते हैं। परेम मामा म की जै हो। प्रेम जिन्दाबाद।' बड़े बाबू बन्द दरवाज़े को

बेटा ! रोओ नहीं। तुम्हारी शादी में चार नेशनल सर्टीफ़िकेट

र लादे हुए लोग भीतर जाते हैं।]

[परदा गिरता है]

शरणागत

पात्र

परीक्षित
शुकदेव
जनमेजय
उत्तरा
शृंगी ऋषि
ऋषिकुमार
परीक्षित के और तीन पुत्र
तक्षक
अन्य पात्र

[गंगा-तट पर एक उच्चासन; शुकदेवजी रत्नमण्डित व्यास-गद्दी पर आसीन हैं। सिर पर छाया-रूप में स्वर्ण-क्षत्र फैला है। सामने श्रोतासन पर राजा परीक्षित बैठे हैं। उस पार पृष्ठभूमि में शुभ्र ज्योति पर स्वर्ण-कलश की भाँति राजधानी हस्तिनापुर दीख पड़ रही है।

जब परदा उठता है, प्रातःकाल का मण्डलाकार सूर्य उदित हो रहा है। पृष्ठ-भूमि में आरती के वाद्य-यन्त्र समवेत स्वर से बजने लगते हैं। मन्त्रमुग्ध, ध्यानावस्था में हाथ जोड़े परीक्षित बैठे हैं। अवधूत, वीतरागी शुकदेव कमलासन से एकाग्र बैठे हैं। धीरे-धीरे पृष्ठभूमि का आरती-संगीत मन्द पड़ने लगता है, तब भक्ति-संगीत से शुकदेवजी मन्त्र-पाठ आरम्भ करते हैं :

"जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्,
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत् सूरयः।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा,
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि॥"

मन्त्र-स्वर जैसे ही समाप्त होता है, दायीं ओर से राजमाता उत्तरा आती हैं और चुपचाप व्यासगद्दी के सम्मुख नतशिर प्रणाम करती हैं।]

शुकदेव : (**आत्म-चिन्तन से जैसे जगकर**) परीक्षित ! जीवात्मा समूची सृष्टि जिस अनन्त शक्ति···

उत्तरा : (**गम्भीरता से बीच ही में**) क्षमा महर्षि और उस सृष्टि की धरती, माँ, कौन···

शुकदेव : (**ध्यान भंग होकर**) कौन ?···राजमाता उत्तरा ! यहाँ कैसे ?

[उत्तरा मौन]

परीक्षित : (**करुण दृष्टि से माँ की ओर देखकर**) माँ ! तुम यहाँ ?

शुकदेव : शान्त परीक्षित ! यह मोह है—जड़ माया···माया-बन्धन।

उत्तरा : माया नहीं, मैं सत्य हूँ, जैसे तुम्हारा ब्रह्म सत्य है।···मुझे मेरा पुत्र चाहिए··· महर्षिराज !

[परीक्षित माँ को देखने लगते हैं।]

शुकदेव : परीक्षित ! अन्धकार को वेधकर देखो, दर्शन की दृष्टि से।

परीक्षित : (**घबड़ाकर**) मुझे प्रकाश दो प्रभु ! ऐसा प्रकाश जो मृत्यु को जीत ले।

शुकदेव : राजधानी लौट जाओ, महामाया !

उत्तरा : वहाँ मेरी मुक्ति नहीं !

शुकदेव : उसका विधान होगा, पहले राजमहल जाओ।

उत्तरा : नहीं, मुझे मेरी आत्मा चाहिए ! वहीं मेरी मुक्ति

शुकदेव : ईश्वर की शरण जाओ !

उत्तरा : मेरा ईश्वर तक्षक है।

शुकदेव : शान्त महारानी ! विवेक मत खोओ ! यह सब कु
यह सब उसी परब्रह्म का विधान है। (**मन्द मुस्कान**
इच्छा है। वह उसी का अंश है जो विराट् है, शाश्वत

उत्तरा : मुझे भ्रम में मत डालो महर्षि, मुझे मुक्ति नहीं च

[पृष्ठभूमि में सहसा कई रथों के दौड़ने की आवाज़
से सारा वातावरण भर जाता है।]

परीक्षित : (**घबड़ाकर आसन से उठ जाते हैं, कातर स्व**
यह किसका आक्रमण ? यह कौन है ?

शुकदेव : (**हँसते हुए आसन से उठकर**) विह्वल मत हो
जनमेजय, श्रुतसेन, भीमसेन तथा उग्रसेन।

[परीक्षित घबड़ाहट से चुप हैं।]

शुकदेव : चिन्ता मत करो परीक्षित ! चिन्ता की जननी

परीक्षित : शक्ति दीजिए, मुझे भय लग रहा है।

शुकदेव : भय सत्य से मिटाओ परीक्षित ! अभय हो !

[पृष्ठभूमि में कोलाहल मच जाता है। रण-वेश में

जनमेजय : (**वीरतापूर्ण आवेश में**) कहाँ है वह अभिशाप
पर दृष्टि पड़ते ही) ओह ! *माता !*

[चरण स्पर्श करता है, शेष भाई नतशिर हो जाते
हाथ उठाती है, दूसरे हाथ से आँचल सम्हालकर अप

जनमेजय : माता ! मृत्यु के सामने रुदन ! *नहीं, चलो !*
नहीं तो मृत्यु को शक्ति मिल जाएगी। (**रुककर**)
हैं, वह अपनी माँ का एक होगा, हम चार हैं।
जीवन की ये चार भुजाएँ हैं !

[शुकदेव अपने आसन पर बैठकर

जनमेजय : आर्य ! (**परीक्षित**

परीक्षित : पुत्र, मैं अभि

जनमेजय : तो क्या हुआ ?

परीक्षित : (**अपने**

उत्तरा : वहाँ मेरी मुक्ति नहीं !

शुकदेव : उसका विधान होगा, पहले राजमहल जाओ।

उत्तरा : नहीं, मुझे मेरी आत्मा चाहिए ! वहीं मेरी मुक्ति है।

शुकदेव : ईश्वर की शरण जाओ !

उत्तरा : मेरा ईश्वर तक्षक है।

शुकदेव : शान्त महारानी ! विवेक मत खोओ ! यह सब कुछ, भूत, वर्तमान और भविष्य यह सब उसी परब्रह्म का विधान है। (मन्द मुस्कान) तक्षक का विषदंश उसी की इच्छा है। वह उसी का अंश है जो विराट् है, शाश्वत है !

उत्तरा : मुझे भ्रम में मत डालो महर्षि, मुझे मुक्ति नहीं चाहिए।

[पृष्ठभूमि में सहसा कई रथों के दौड़ने की आवाज़ उभरती है और जनकोलाहल से सारा वातावरण भर जाता है।]

परीक्षित : (घबड़ाकर आसन से उठ जाते हैं, कातर स्वर से) महर्षि ! महर्षिराज ! यह किसका आक्रमण ? यह कौन है ?

शुकदेव : (हँसते हुए आसन से उठकर) विह्वल मत हो राजन् ! ये आपके पुत्र हैं—जनमेजय, श्रुतसेन, भीमसेन तथा उग्रसेन।

[परीक्षित घबड़ाहट से चुप हैं।]

शुकदेव : चिन्ता मत करो परीक्षित ! चिन्ता की जननी मोह है।

परीक्षित : शक्ति दीजिए, मुझे भय लग रहा है।

शुकदेव : भय सत्य से मिटाओ परीक्षित ! अभय हो !

[पृष्ठभूमि में कोलाहल मच जाता है। रण-वेश में चारों पुत्र प्रकट हैं।]

जनमेजय : (वीरतापूर्ण आवेश में) कहाँ है वह अभिशाप ? वह तक्षक कहाँ है ? (उत्तरा पर दृष्टि पड़ते ही) ओह ! माता !

[चरण स्पर्श करता है, शेष भाई नतशिर हो जाते हैं। आशीष के लिए उत्तरा एक हाथ उठाती है, दूसरे हाथ से आँचल सम्हालकर अपने आँसुओं को छिपाती है।]

जनमेजय : माता ! मृत्यु के सामने रुदन ! नहीं, चलो ! रथ पर बैठो ! रोओ मत, नहीं तो मृत्यु को शक्ति मिल जाएगी। (रुककर) तक्षक मृत्यु है, और हम जीवन हैं, वह अपनी माँ का एक होगा, हम चार हैं। दृष्टि उठाओ, आर्या ! क्रम से देखो, जीवन की ये चार भुजाएँ हैं !

[शुकदेव अपने आसन पर बैठकर हँस पड़ते हैं।]

जनमेजय : आर्य ! (परीक्षित का चरण-स्पर्श)

परीक्षित : पुत्र, मैं अभिशप्त हूँ !

जनमेजय : तो क्या हुआ ? जहाँ आप हैं वरदान भी है !

परीक्षित : (अपने आसन पर बैठते हुए) आज से ठीक सातवें दिन मुझे तक्षक डँसेगा !

यह ईश्वर का विधान है, जनमेजय !

जनमेजय : उसी विधान का एक अंग मैं हूँ । और ईश्वर का विधान क्या केवल मृत्यु के लिए है ?

शुकदेव : (मन्द मुसकान-सहित) मृत्यु जीवन का ही परम विधान है ! सत्य को ज्ञान की दृष्टि से क्यों नहीं देखते ?

जनमेजय : ज्ञान क्या, मैं उसे समूचे दर्शन से देखता हूँ, वह दर्शन, जो जीवन से आता है, मृत्यु से नहीं !

शुकदेव : (खुलकर हँसते हुए) पगले ! कैसा जीवन, कैसी मृत्यु ! सब कुछ ईश्वर ही तो है···वही तक्षक, वही परीक्षित, वही शृंगी ऋषि, वही ऋषिपुत्र···वही केवल।

जनमेजय : (बीच में ही) अर्थात् निष्क्रिय हो जाएँ हम ? क्यों महर्षि ! यही तुम्हारा उपदेश है न ? (रुककर परीक्षित से) महाराज, रथ पर बैठकर अपनी राजधानी चलिए !

परीक्षित : नहीं जनमेजय, मैं यहाँ अपनी मुक्ति के लिए आया हूँ।

जनमेजय : क्षमा हो आर्य ! बैठकर मरने में मुक्ति नहीं, ऐसी मृत्यु पाण्डुवंश में नहीं होती। कभी नहीं हुई ! जीना और संग्राम करके जीना, यह पाण्डुकुल की मुक्ति है !

परीक्षित : संयम से बातें करो पुत्र ! तुम भगवान् शुकदेव के सामने हो !

जनमेजय : (सिर झुकाकर) नतशिर हूँ; पर मैं नियति को नहीं मानता ! मुझे कर्म पर विश्वास है, विष्णुरात !

परीक्षित : (आश्चर्य से) विष्णुरात !

उत्तरा : सच, तुम विष्णुरात हो ! जिस मृत्यु ने जन्म से पूर्व ही तुम्हारी परीक्षा ली है ···तब तुम्हें साक्षात् विष्णु ने बनाया था !

जनमेजय : आर्य, तभी आप परीक्षित हैं।

शुकदेव : तुम मृत्यु से इतने भयाकुल हो, जनमेजय ?

जनमेजय : नहीं, मैं जागरूक हूँ···और ऐसी मृत्यु से मैं संग्राम करूँगा, जो जीवन को अभिशप्त करती है।

परीक्षित : (आज्ञार्थक स्वर से) शान्त जनमेजय ! जाओ, पाण्डुवंश का राजसिंहासन सँभालो। जाओ, मैं ईश्वर की शरण हूँ, मुझे परम गति पाने दो, जनमेजय ?

शुकदेव : जाओ राजमाता, पुत्र को विवेक से देखो !

[उत्तरा मौन, चिन्तित खड़ी है।]

जनमेजय : मैं तक्षक को देखूँगा···देखूँगा, तक्षक की कितनी लम्बी जिह्वा है। (उत्तरा से) चिन्ता न करो राजमाता ! यह देखो, आपकी आठ भुजाएँ हैं···आशीर्वाद दो, मैं देखूँगा, पिता को कौन विष-दंश करता है !

शुकदेव : अन्धकार में मत भटको जनमेजय ! चोट लग जाती है, उसकी शरण जाओ

···जो नियन्ता है, समग्र-सम्पूर्ण है—सत् चित् आ

जनमेजय : ये लीला की बातें हैं ! हम मनुष्य हैं ! पुत्र के
यह मानव-धर्म नहीं कहता, ईश्वर-धर्म भले ही कह

शुकदेव : प्रकृति का विरोध मत करो जनमेजय, परीक्षि
अन्तिम शान्ति ! तब तुम चले जाओ यहाँ से !

जनमेजय : यह शान्ति की विडम्बना है ऋषि-प्रवर ! जि
हो, उसे शान्ति मिलेगी ?

शुकदेव : (हँसते हुए) भूलते हो जनमेजय ! मृत्यु शरी
आत्मा को सबसे अधिक शान्ति मिलती है।

जनमेजय : ऐसी अकाल मृत्यु से नहीं !

[उत्तरा रो पड़ती है।]

जनमेजय : घबड़ाओ नहीं राजमाता ! किसी भी मूल
काल तक्षक को ढूँढ़ने जा रहा हूँ। तीनों लोक, च
करूँगा ! देखता हूँ, वह मेरे पंजे से कैसे बच निकल
गार में डालूँगा कि सात दिन क्या, सात कल्प तक उ

उत्तरा : जनमेजय, मुझे भी अपने संग ले चल ! मैं प्राण

[पृष्ठभूमि में यह मन्त्र गूँज उठता है—"ॐ
पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते

पूरे सतीत्व की परीक्षा दूँगी।

परीक्षित : नहीं, नहीं, मैं ऐसा नहीं। मनाओ जनमेजय क
सत्य निभाओ !

जनमेजय : हम कुरुवंश का सत्य निभायेंगे महाराज। (
यहाँ जाइए। ऋषि-पुत्र को चुनौती दीजिए कि मृत्

[उत्तरा का प्रस्थान करता है।]

जनमेजय : (प्रस्थान देता हुआ) सारथी, रथ

परीक्षित : (उठकर जाते हुए जनमेजय को
रहो।

जनमेजय : (नतशिर) मुझे आशीर्वाद दी

शुकदेव : सावधान ! नियम की
कहीं तुम्हें भी न गिरा दे

परीक्षित : मेरी आज्ञा है

जनमेजय : राजधानी सँ

परीक्षित : लेकिन तुम

जनमेजय : विरोध

···जो नियन्ता है, समग्र-सम्पूर्ण है—सत् चित् आनन्द !

जनमेजय : ये लीला की बातें हैं ! हम मनुष्य हैं ! पुत्र के देखते पिता की मृत्यु हो जाए··· यह मानव-धर्म नहीं कहता, ईश्वर-धर्म भले ही कहता हो !

शुकदेव : प्रकृति का विरोध मत करो जनमेजय, परीक्षित को शान्ति मिलने दो—अन्तिम शान्ति ! तब तुम चले जाओ यहाँ से !

जनमेजय : यह शान्ति की विडम्बना है ऋषि-प्रवर ! जिसे मृत्यु की अवधि बता दी गयी हो, उसे शान्ति मिलेगी ?

शुकदेव : (हँसते हुए) भूलते हो जनमेजय ! मृत्यु शरीर की एक अवस्थामात्र है, जहाँ आत्मा को सबसे अधिक शान्ति मिलती है।

जनमेजय : ऐसी अकाल मृत्यु से नहीं !

[उत्तरा रो पड़ती है।]

जनमेजय : घबड़ाओ नहीं राजमाता ! किसी भी मूल्य पर मैं यह होने नहीं दूँगा। मैं काल तक्षक को ढूँढ़ने जा रहा हूँ। तीनों लोक, चौदहों भुवनों में उसका पीछा करूँगा ! देखता हूँ, वह मेरे पंजे से कैसे बच निकलता है। मैं उसे भयानक कारागार में डालूँगा कि सात दिन क्या, सात कल्प तक उसे कोई रास्ता न मिले !

उत्तरा : जनमेजय, मुझे भी अपने संग ले चल ! मैं प्राण के बदले प्राण दूँगी।

[पृष्ठभूमि में यह मन्त्र गूँज उठता है—"ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।"]

पूरे सतीत्व की परीक्षा दूँगी।

परीक्षित : नहीं, नहीं, मैं ऐसा नहीं। मनाओ जनमेजय को। रोको उसे। कुरुवंश का सत्य निभाओ !

जनमेजय : हम कुरुवंश का सत्य निभायेंगे महाराज। (**रुककर**) आर्य ! शृंगी ऋषि के यहाँ जाइए। ऋषि-पुत्र को चुनौती दीजिए कि मृत्यु से जीवन का पलला बड़ा है

[उत्तरा का प्रस्थान करता है।]

जनमेजय : (**प्रस्थान देता हुआ**) सारथी, रथ बढ़ाओ !

परीक्षित : (**उठकर जाते हुए जनमेजय को रोककर**) जनमेजय, अपनी मर्यादा में रहो।

जनमेजय : (**नतशिर**) मुझे आशीर्वाद दीजिए।

शुकदेव : सावधान ! नियम की ही संज्ञा सृष्टि है, परीक्षित ! जनमेजय की स्वतन्त्रता कहीं तुम्हें भी न गिरा दे !

परीक्षित : मेरी आज्ञा है जनमेजय, राजधानी को छोड़ तुम कहीं नहीं जा सकते।

जनमेजय : राजधानी सँभालने के लिए आपके ये तीन बेटे खड़े हैं।

परीक्षित : लेकिन तुम धर्म का विरोध नहीं कर सकते !

जनमेजय : विरोध नहीं आर्य, मैं उसी को निभाने जा रहा हूँ। कुरुवंश के पुत्रों की यही

मर्यादा है, पिता के लिए पुत्र। गाण्डीवधारी अर्जुन के लिए अभिमन्यु, महाराज शान्तनु के लिए भीष्म पितामह !

परीक्षित : वे और बातें थीं।

जनमेजय : नहीं, यही बात थी, जीवन और मृत्यु की ! **(रुककर)** याद आ गया। बचपन में मुझे राजमाता ने बताया था, कुरुक्षेत्र की लड़ाई में वीर अर्जुन, सर्प-कुण्डली की तरह सजी हुई दुर्योधन की सेना को देखते ही मृत्युमय हो गए थे। आज मुझे पता लग गया, यही बैरी तक्षक उस समय भी था वहाँ ! **(रुककर)** न जाने कब से यह हमारे पीछे पड़ा है।

शुकदेव : **(हँसकर)** प्रतिशोध की ज्वाला में तुम्हारा विवेक भी जल रहा है।

जनमेजय : शायद तभी मुझे दृष्टि मिल रही है। **(आगे बढ़ता है)** सारथी ! मन्त्र फूंको, बढ़ाओ रथ, तक्षक को अभी बन्दी करना है।

परीक्षित : **(घबड़ाकर)** क्या करना चाहते हो तुम ?

जनमेजय : अपना धर्म।

परीक्षित : और मेरा धर्म !

जनमेजय : आपका भी धर्म जीना है, इससे बढ़कर संसार में कोई धर्म नहीं !

परीक्षित : लेकिन मेरे अपराध का दण्ड कौन भोगेगा ?

जनमेजय : समूचा राष्ट्र, केवल राजा नहीं। **(रुककर भाइयों की ओर)** उग्रसेन, जाओ, तुम राजधानी जाओ। शासन करो।

उग्रसेन : **(शीश झुकाकर)** एवमस्तु।

जनमेजय : भीमसेन, जाओ, तुम युद्ध की तैयारी करो !

भीमसेन : जो आज्ञा।

जनमेजय : श्रुतसेन ! तुम यहाँ गंगा-तट से लेकर श्रृंगी-ऋषि के आश्रम तक सावधान रहो।

श्रुतसेन : शिरोधार्य।

[क्रमशः तीनों भाई चले जाते हैं।]

जनमेजय : **(आवेश में प्रस्थान करता हुआ)** मन्त्र फूंको, सारथी !

[पृष्ठभूमि में शंखध्वनि होती है और रथ चला जाता है।]

परीक्षित : **(आसन पर आ, कातर स्वर से)** यह सब क्या हो रहा है, ऋषिनाथ ?

[शुकदेव एक शक्तिपूर्ण हँसी बिखेर देते हैं।]

परीक्षित : **(भयभीत हो)** शक्ति दो, मुझे भय लग रहा है।

शुकदेव : और मुझे हँसी लग रही है। जानते हो भय का कारण ? सब तुम्हारे मोह का अन्धकार है।

परीक्षित : मुझे ज्ञान दो !

शुकदेव : बिना आस्था के ज्ञान पंगु होता है। **(रुककर)** जनमेजय के कारण तुम अपने जीवन के मोह में आ गए, परीक्षित !

परीक्षित : नहीं, कभी नहीं।

शुकदेव : तो जनमेजय को उत्साह दे, अपनी शान्ति क्यों भं
से सृष्टि में आतंक फैलता है।

[सहसा उत्तरा का प्रवेश।]

उत्तरा : कभी नहीं ! मेरा जनमेजय नयी मानवता है।

परीक्षित : राजमाता !

उत्तरा : राजमाता नहीं, केवल तुम्हारी माँ, तुम्हारी, जि
थी।

शुकदेव : परीक्षा···तभी परीक्षित।

[हँसते हैं, आसन से उठकर पास रखे जलपात्र को
हैं। दूसरी ओर से श्रृंगी ऋषि का प्रवेश।]

परीक्षित : ओह, श्रृंगी ऋषि !

श्रृंगी ऋषि : हाँ, राजन् ! क्षमा माँगने आया हूँ।

परीक्षित : नहीं, क्षमाप्रार्थी तो मैं हूँ। अपराध मैंने किया है
श्रृंगी ऋषि : लेकिन वह इतना बड़ा अपराध नहीं कि
मृत्यु-दण्ड मिले। **(रुककर)** ऐसे तामसी पुत्र को जन्म

[उत्तरा आँचल में मुख छिपा लेती है।]

श्रृंगी ऋषि : रोओ नहीं, राजमाता ! मैं तब से कई बार

उत्तरा : **(कौतूहल से)** तो क्षमा दे दी उसने ?

श्रृंगी ऋषि : मृत्यु के पास दया नहीं होती, राजमाता
परीक्षित को बचाने के लिए कोई भी शक्ति है
करता हूँ।

उत्तरा : करो ऋषि। किसी भी मूल्य पर मेरे परीक्षि

परीक्षित : नहीं, नहीं, कभी नहीं !

उत्तरा : परीक्षित !

परीक्षित : क्या करोगी इस
तक जिन्दा रख सकोगी ?

[उसी क्षण सहसा पृष्ठभूमि
उठकर आकाश में दौड़ने

उत्तरा : जब तक माँ जिन्दा

परीक्षित : **(आतंकित हो)**
(आर्त्त पुकार)

लिए पुत्र। गाण्डीवधारी अर्जुन के लिए अभिमन्यु, महाराज
न पितामह !

ीं।

त थी, जीवन और मृत्यु की ! (रुककर) याद आ गया।
माता ने बताया था, कुरुक्षेत्र की लड़ाई में वीर अर्जुन, सर्प-
ी हुई दुर्योधन की सेना को देखते ही मृत्युमय हो गए थे। आज
ही वैरी तक्षक उस समय भी था वहाँ ! (रुककर) न जाने
पड़ा है।

ोध की ज्वाला में तुम्हारा विवेक भी जल रहा है।

दृष्टि मिल रही है। (आगे बढ़ता है) सारथी ! मन्त्र
क को अभी बन्दी करना है।

या करना चाहते हो तुम ?

ीना है, इससे बढ़कर संसार में कोई धर्म नहीं !

का दण्ड कौन भोगेगा ?

राजा नहीं। (रुककर भाइयों की ओर) उग्रसेन, जाओ,
न करो।

स्तु।

द्ध की तैयारी करो !

ट से लेकर श्रृंगी-ऋषि के आश्रम तक सावधान

) मन्त्र फूंको, सारथी !

चला जाता है।]

यह सब क्या हो रहा है, ऋषिनाथ ?

]

रहा है।

कारण ? सब तुम्हारे मोह का

के कारण तुम अपने

जीवन के मोह में आ गए, परीक्षित !

परीक्षित : नहीं, कभी नहीं।

शुकदेव : तो जनमेजय को उत्साह दे, अपनी शान्ति क्यों भंग की ? जानते हो, अनियमन से सृष्टि में आतंक फैलता है।

[सहसा उत्तरा का प्रवेश।]

उत्तरा : कभी नहीं ! मेरा जनमेजय नयी मानवता है।

परीक्षित : राजमाता !

उत्तरा : राजमाता नहीं, केवल तुम्हारी माँ, तुम्हारी, जिसे गर्भ में ही परीक्षा देनी पड़ी थी।

शुकदेव : परीक्षा···तभी परीक्षित।

[हँसते हैं, आसन से उठकर पास रखे जलपात्र को उठा गंगा की ओर चले जाते हैं। दूसरी ओर से श्रृंगी ऋषि का प्रवेश।]

परीक्षित : ओह, श्रृंगी ऋषि !

श्रृंगी ऋषि : हाँ, राजन् ! क्षमा माँगने आया हूँ।

परीक्षित : नहीं, क्षमाप्रार्थी तो मैं हूँ। अपराध मैंने किया है।

श्रृंगी ऋषि : लेकिन वह इतना बड़ा अपराध नहीं कि आप-जैसे चक्रवर्ती राजा को मृत्यु-दण्ड मिले। **(रुककर)** ऐसे तामसी पुत्र को जन्म देकर मैं स्वयं अपराधी हूँ।

[उत्तरा आँचल में मुख छिपा लेती है।]

श्रृंगी ऋषि : रोओ नहीं, राजमाता ! मैं तब से कई बार तक्षक से मिला हूँ।

उत्तरा : **(कौतूहल से)** तो क्षमा दे दी उसने ?

श्रृंगी ऋषि : मृत्यु के पास दया नहीं होती, राजमाता ! लेकिन मेरे पास अगर परीक्षित को बचाने के लिए कोई भी शक्ति है तो मैं उसे अब भी न्योछावर करता हूँ।

उत्तरा : करो ऋषि। किसी भी मूल्य पर मेरे परीक्षित को बचा लो।

परीक्षित : नहीं, नहीं, कभी नहीं !

उत्तरा : परीक्षित !

परीक्षित : क्या करोगी इस अभिशप्त परीक्षित को जिला कर ? जो मर गया उसे कब तक जिन्दा रख सकोगी ?

[उसी क्षण सहसा पृष्ठभूमि में तूफ़ान आता है। गंगा की लहरें जैसे ऊपर उठ-उठकर आकाश में दौड़ने लगती हैं।]

उत्तरा : जब तक माँ जिन्दा है।

परीक्षित : **(आतंकित हो)** यह तूफ़ान कैसा ? ओह ! अभी तक शुकदेवजी नहीं लौटे **(आर्त्त पुकार)** जनमेजय ! श्रुतसेन ! श्रुतसेन !

[श्रुतसेन का प्रवेश।]

परीक्षित : देखो, यह क्या है? रथ दौड़ाओ!

उत्तरा : मैं भी चलूँगी!

[दोनों का प्रस्थान।]

शृंगी ऋषि : कहीं से तक्षक भागा आ रहा है। पाताल लोक से भागा आ रहा है, वह है...।

[तूफ़ान थम जाता है। भयाकुल तक्षक का प्रवेश। परीक्षित के चरणों पर आ गिरता है।]

तक्षक : शरण दो,...शरण दो चक्रवर्ती। जनमेजय से मुझे बचाओ।

परीक्षित : शान्त काल-तक्षक, इतनी दीनता न दिखाओ! जो मेरा धर्म हो गया, उसके लिए दीनता क्यों?

तक्षक : बचाओ मुझे।

परीक्षित : सुरक्षित हो तुम कालसर्प! **(याचना के स्वर में)** लेकिन तक्षक, तुम मुझ पर कृपा करो।

तक्षक : कृपा?

परीक्षित : घबड़ाओ नहीं, मैं हाथ जोड़ता हूँ, तुम मुझे आज ही डँस लो!

तक्षक : तो आप मुझे शरण देना नहीं चाहते?

परीक्षित : वह तो दे ही चुका। तुम सुरक्षित हो, लेकिन तुम मुझे आज ही डँस लो!

तक्षक : ऐसा नहीं हो सकता, कभी नहीं हो सकता।

परीक्षित : हाँ क्यों नहीं सकता? लो, विषदंश करो।

तक्षक : **(डरकर)** नहीं-नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। कभी नहीं, अभी जीवन के सात दिन बाक़ी हैं। जीवन मुझे ही डँस लेगा।

परीक्षित : नहीं, दया करो तक्षक! मैं इन सात दिनों का भयंकर त्रास नहीं सह सकता।

तक्षक : जीवन सब कुछ सह लेता है, राजन्! बड़ा चौड़ा है इसका कन्धा।

परीक्षित : मेरे साथ छल न करो, सर्पराज!

तक्षक : लेकिन आज तो मेरे मुँह में विष ही नहीं है, राजा परीक्षित!

परीक्षित : मुझे डँसकर दिखाओ।

तक्षक : असम्भव।

परीक्षित : मैं स्वयं देखता हूँ।

तक्षक : **(क्रोध से)** सावधान परीक्षित! शरण देकर मूल्य चुकाना चाहते हो? यही है तुम्हारी मर्यादा?

शृंगी ऋषि : मर्यादा का ध्यान रखो, तक्षक!

तक्षक : **(व्यंग्य से)** ओह! शृंगी ऋषि! आप!

शृंगी ऋषि : भूलो नहीं, तुम्हें भी शाप दिया जा सकत

तक्षक : **(फूटकर हँसने लगता है)** मैं और शाप! (हँ
मैं स्वयं अपना शाप हूँ। बोलो ऋषि! चुप क्यों हो
है, मौत पर नहीं।

शृंगी ऋषि : भयानक!

तक्षक : मैं ही भयानक हूँ। **(रुक जाता है)** ऋषि, भ
भयानक।...आश्रम में तुम रहते हो और वहीं
मरा हुआ साँप जिसे राजा परीक्षित ने तुम्हारे गले
तो शिकार था। तुम्हें सावधान करने के लिए
दिया गया तो इसमें राजा का क्या दोष? चक्रव
होता है। (रुककर) एक तो सर्प का प्राण लिया, उ
उसकी जान लेने के लिए फिर सर्प का ही हाथ
भयानक है?

परीक्षित : ऐसा न कहो तक्षक! ऋषि मेरे अतिथि हैं, उ

तक्षक : शरणागत से बड़ा कोई अतिथि नहीं होता, राज

परीक्षित : **(उठकर उसे छिपाते हुए)** जनमेजय से तुम
जाओ।

ऋषि : **(साधु कण्ठ से)** महान् हो राजा परीक्षित! अ
महान् हो तुम!

परीक्षित : आपको कष्ट हुआ, मैं लज्जित हूँ।

ऋषि : नहीं, मैं लज्जित हूँ, तक्षक ने ठीक कहा है। **(रुक**
जीवन की परीक्षा दे, वह परीक्षित मुझे क्षमा करे
तपस्या करूँगा राजन्! **(प्रस्थान करते हुए)** ओ

[एकाएक पृष्ठभूमि में शंख-ध्वनि के साथ
उत्तरा के साथ जनमेजय का प्रवेश होता है।]

जनमेजय : (आवेश में) **मुझे तक्षक चाहिए।**
वह?...आर्य, आप **बोलते क्यों नहीं**

परीक्षित : तक्षक मेरी **शरण में है।**

उत्तरा : बन्दी करो **जनमेजय!**

परीक्षित : धर्म के **विरुद्ध**
करने वाला **इस**

जनमेजय : **मैं हूँ।**

परीक्षित : **उसके**

उत्तरा : **तक्षक ने**

परीक्षित :

।]

है ? रथ दौड़ाओ !

।]

भागा आ रहा है। पाताल लोक से भागा आ रहा है, वह

है। भयाकुल तक्षक का प्रवेश। परीक्षित के चरणों पर आ

दो चक्रवर्ती। जनमेजय से मुझे बचाओ।

इतनी दीनता न दिखाओ ! जो मेरा धर्म हो गया, उसके

कालसर्प ! (याचना के स्वर में) लेकिन तक्षक, तुम मुझ

जोड़ता हूँ, तुम मुझे आज ही डँस लो !

नहीं चाहते ?

सुरक्षित हो, लेकिन तुम मुझे आज ही डँस लो !

नहीं हो सकता।

लो, विषदंश करो।

नहीं हो सकता। कभी नहीं, अभी जीवन के

डँस लेगा।

मैं इन सात दिनों का भयंकर त्रास नहीं सह

! बड़ा चौड़ा है इसका कन्धा।

!

नहीं है, राजा परीक्षित !

मूल्य चुकाना चाहते हो ? यही

शृंगी ऋषि : भूलो नहीं, तुम्हें भी शाप दिया जा सकता है।

तक्षक : (**फूटकर हँसने लगता है**) मैं और शाप ! (**हँसकर**) मुझे शाप ! जानते हो, मैं स्वयं अपना शाप हूँ। बोलो ऋषि ! चुप क्यों हो गए ? शाप जीवन पर लगता है, मौत पर नहीं।

शृंगी ऋषि : भयानक !

तक्षक : मैं ही भयानक हूँ। (**रुक जाता है**) ऋषि, भयानक तुम हो, मुझसे नौ गुने भयानक।···आश्रम में तुम रहते हो और वहीं तुम्हारे बेटे हिंसा करते हैं। वह मरा हुआ साँप जिसे राजा परीक्षित ने तुम्हारे गले में डाला, वह तुम्हारे बेटे का ही तो शिकार था। तुम्हें सावधान करने के लिए वह साँप तुम्हारे गले में लटका दिया गया तो इसमें राजा का क्या दोष ? चक्रवर्ती राजा राष्ट्र का धर्मराज भी होता है। (**रुककर**) एक तो सर्प का प्राण लिया, उलटे दूसरे व्यक्ति को दोषी बना उसकी जान लेने के लिए फिर सर्प का ही हाथ खून से रँगा। क्या यह कम भयानक है ?

परीक्षित : ऐसा न कहो तक्षक ! ऋषि मेरे अतिथि हैं, उनका अपमान न करो सर्पराज !

तक्षक : शरणागत से बड़ा कोई अतिथि नहीं होता, राजा परीक्षित !

परीक्षित : (**उठकर उसे छिपाते हुए**) जनमेजय से तुम सुरक्षित हो। आओ, यहाँ छिप जाओ।

ऋषि : (**साधु कण्ठ से**) महान् हो राजा परीक्षित ! ओह, मृत्यु जीवन की शरण ! महान् हो तुम !

परीक्षित : आपको कष्ट हुआ, मैं लज्जित हूँ।

ऋषि : नहीं, मैं लज्जित हूँ, तक्षक ने ठीक कहा है। (**रुककर**) जो मृत्यु को शरण देकर जीवन की परीक्षा दे, वह परीक्षित मुझे क्षमा करे। मैं तुम्हारी मुक्ति के लिए तपस्या करूँगा राजन् ! (**प्रस्थान करते हुए**) ओ३म् शान्ति ! ओ३म् शान्ति !

[एकाएक पृष्ठभूमि में शंख-ध्वनि के साथ कोलाहल उठता है। उसी बीच से उत्तरा के साथ जनमेजय का प्रवेश होता है।]

जनमेजय : (**आवेश में**) मुझे तक्षक चाहिए। यहाँ तक्षक आ छिपा है। बोलो, कहाँ है वह ?···आर्य, आप बोलते क्यों नहीं ? मुझे तक्षक चाहिए।

परीक्षित : तक्षक मेरी शरण में है।

उत्तरा : बन्दी करो जनमेजय ! पकड़ लो उसे !

परीक्षित : धर्म के विरुद्ध चलने की राय मत दो, माँ ! मेरी शरण से तक्षक को बन्दी करने वाला इस संसार में कोई नहीं है।

जनमेजय : मैं हूँ।

परीक्षित : उसके लिए पहले मेरी मौत होगी, तब कहीं शरणागत बन्दी होगा।

उत्तरा : तक्षक ने तुम्हारे साथ छल किया है।

परीक्षित : असम्भव ! गंगा को साक्षी देकर कहता हूँ, जब तक तक्षक मेरी शरण है,

उसे कोई नहीं छू सकता।

उत्तरा : धर्म निभ चुका परीक्षित, अब नीति निभने दो।

[उसी क्षण शुकदेव का व्यंग्य-हास उठता है।]

शुकदेव : (**हँसी बन्द करते हुए प्रवेश**) धर्म और नीति ! काल के पुतलो ! किसका धर्म, किसकी नीति, किसके लिए, और क्यों ?

जनमेजय : रहस्य की भाषा जनमेजय नहीं समझता।

शुकदेव : नहीं समझते, तो देख लो तक्षक कहाँ है। परीक्षित, दिखा दो रहस्य के सत्य को ! (हँसकर) यहाँ क्या ढूँढ़ते हो ? तक्षक चला गया यहाँ से, तुम देख नहीं सके। मौत को देख सकते हो तुम ?

जनमेजय : (**दुःखपूर्ण आश्चर्य से**) भाग गया ? भाग गया तक्षक !

उत्तरा : छल करके भाग गया (**आज्ञार्थक स्वर**) जनमेजय, पीछा करो। जल, थल, वायु तीनों को बाँध लो। घेरा डाल दो महाबली !

शुकदेव : मौत और बन्धन ! कौन बन्दी करेगा तक्षक को ? वह कहाँ नहीं है जो दृश्य-अदृश्य दोनों से परे है, उसे कौन बाँध सकता है ?

जनमेजय : जनमेजय।

[शुकदेव हँसते हैं।]

उत्तरा : पता नहीं क्यों महात्मन्, आप इस समय सर्प का पक्ष ले रहे हैं।

शुकदेव : वह कालसर्प नहीं, ईश्वर की इच्छा है।

जनमेजय : तो ईश्वर की इच्छा विनाश है ? (**रुककर**) अगर यही सत्य है, तो मैं तुम्हारे दर्शन से घृणा करता हूँ !

शुकदेव : घृणा, घृणा, प्रतिशोध, घृणा, ये सब मृत्यु-पोषक हैं। मुझे उनमें आस्था है, जो जीवन के तत्त्व हैं—प्रकृति, ब्रह्म, आत्मा।

उत्तरा : फिर मेरे पुत्र का कल्याण करो, महर्षि !

शुकदेव : कल्याण ही होगा, जो मौत को शरण दे सकता है, जो शृंगी ऋषि से अपनी मुक्ति के लिए तपस्या करा सकता है, वह मुक्त है···मंगल, चिर मंगल !

जनमेजय : (**व्यंग्य से**) ऐसी मुक्ति, जो साँप काटने से होती है !

शुकदेव : तुम परीक्षित के अवसान को अपनी दृष्टि से क्यों नहीं देखते ?

जनमेजय : जो शून्य है, उसमें क्या देखूँ ?

शुकदेव : देखना होगा।

जनमेजय : तो उसे देखने के लिए पहले पिता को मरने दूँ ?

शुकदेव : (एक **क्षण उसे देखकर**) मेरा एक उपदेश लो जनमेजय !

जनमेजय : (**बीच ही में**) क्षमा···उपदेश मुझे ज्ञान नहीं देते, न कल्पना अनुभूति देती है। मैं वही हूँ, वही जानता हूँ, जो मेरा संघर्ष है। (**रुककर**) किसने देखी है मौत के बाद की दुनिया ?

शुकदेव : (**स्नेह से**) सुनो, मैंने देखी है। यहाँ बैठो, बताऊँगा !

जनमेजय : मुझे नहीं चाहिए···मुझे केवल तक्षक चाहिए !

शुकदेव : लेकिन यह परीक्षित को नहीं चाहिए। मौत से क्योंकि मौत को तुमने सदा भय की दृष्टि से देखा है दया क्यों नहीं करते, जनमेजय ? फिर तुम्हें मौत के मिल जाएगा !

[पृष्ठभूमि से सहसा एक शक्तिपूर्ण हँसी उठती है है।]

शुकदेव : (**देखते ही**) ऋषिपुत्र ! तुम यहाँ क्यों आए ? चाहते हो क्या ?

ऋषिपुत्र : मैं जनमेजय का अहंकार देखने आया हूँ !

उत्तरा : नहीं, नहीं, ऐसा नहीं !

परीक्षित : क्षमा ऋषिपुत्र !

जनमेजय : नहीं ऋषिपुत्र ! मैं तुमसे क्षमा नहीं चाहता ! पर प्रयोग कर लो ! (**रुककर**) तुम्हें शाप देने क परीक्षित-पुत्र होने की मर्यादा है !

ऋषिपुत्र : देखूँगा !

जनमेजय : अन्धे, तुम क्या देखोगे ? मौत के उपासक ! तुम कितना मूल्य है ! (**क्रोध से**) ऋषि के बेटे ! शाप कि इस चक्रवर्ती राजा के भी कोई बेटा है।

ऋषिपुत्र : हुआ करे ? वह मेरे सत्य को नहीं पा सकता

जनमेजय : यह भविष्य बताएगा कि किस बाप के बेटे तुम शाप हो तो मैं तपस्या हूँ ! जला डालूँगा

[ऋषिपुत्र हँसता है।]

ऋषिपुत्र : अज्ञानी, तुझे कुछ पता भी है !

[उत्तरा रो पड़ती है।]

परीक्षित : मत लड़ो

जनमेजय : जनमेजय

उत्तरा : मुझे

जनमेजय :

आओ !

के

नीति निभने दो ।

उठता है ।]

धर्म और नीति ! काल के पुतलो ! किसका
और क्यों ?
हीं समझता ।
कहाँ है । परीक्षित, दिखा दो रहस्य के सत्य
? तक्षक चला गया यहाँ से, तुम देख नहीं

ा ? भाग गया तक्षक !
र) जनमेजय, पीछा करो । जल, थल, वायु
ली !
ा तक्षक को ? वह कहाँ नहीं है जो
सकता है ?

सर्प का पक्ष ले रहे हैं ।

र) अगर यही सत्य है, तो मैं

हैं । मुझे उनमें आस्था है, जो

है, जो भृंगी ऋषि से अपनी
ल, चिर मंगल !
है !
हीं देखते ?

ना अनुभूति देतो
ने देखी है मौत

शुकदेव : **(स्नेह से)** सुनो, मैंने देखी है । यहाँ बैठो, मैं एक-एक करके असंख्य बताऊँगा !

जनमेजय : मुझे नहीं चाहिए···मुझे केवल तक्षक चाहिए !

शुकदेव : लेकिन यह परीक्षित को नहीं चाहिए । मौत से तुम डरे हो, परीक्षित नहीं । क्योंकि मौत को तुमने सदा भय की दृष्टि से देखा है, **(रुककर)** तुम मौत पर दया क्यों नहीं करते, जनमेजय ? फिर तुम्हें मौत के बाद का अवसान देखने को मिल जाएगा !

[पृष्ठभूमि से सहसा एक शक्तिपूर्ण हँसी उठती है और ऋषिपुत्र का प्रवेश होता है ।]

शुकदेव : **(देखते ही)** ऋषिपुत्र ! तुम यहाँ क्यों आए ? धर्म को राजनीति बनाना चाहते हो क्या ?

ऋषिपुत्र : मैं जनमेजय का अहंकार देखने आया हूँ !

उत्तरा : नहीं, नहीं, ऐसा नहीं !

परीक्षित : क्षमा ऋषिपुत्र !

जनमेजय : नहीं ऋषिपुत्र ! मैं तुमसे क्षमा नहीं चाहता ! तुम्हारी जो शक्ति हो, मुझ पर प्रयोग कर लो ! **(रुककर)** तुम्हें शाप देने का अगर घमण्ड है, तो मुझे परीक्षित-पुत्र होने की मर्यादा है !

ऋषिपुत्र : देखूँगा !

जनमेजय : अन्धे, तुम क्या देखोगे ? मौत के उपासक ! तुम नहीं समझते कि जीवन का कितना मूल्य है ! **(क्रोध से)** ऋषि के बेटे ! शाप देते समय शायद तुम भूल गए कि इस चक्रवर्ती राजा के भी कोई बेटा है ।

ऋषिपुत्र : हुआ करे ? वह मेरे सत्य को नहीं पा सकता ।

जनमेजय : यह भविष्य बताएगा कि किस बाप के बेटे में अधिक सत्य है । **(विश्वास से)** तुम शाप हो तो मैं तपस्या हूँ ! जला डालूँगा तेरे शाप को !

[ऋषिपुत्र हँसता है ।]

ऋषिपुत्र : अज्ञानी, तुझे कुछ पता भी है ! तक्षक अपना रास्ता देख गया ।

[उत्तरा रो पड़ती है ।]

परीक्षित : मत लड़ो जनमेजय ! मत लड़ो ! शान्त हो जाओ !

जनमेजय : जनमेजय अभी जीवित है, राजमाता !

उत्तरा : मुझे शक्ति दो महाबली ! विश्वास दो मुझे !

जनमेजय : राजमाता ! दुश्मन के सामने यह रुदन ! यह अधीरता ! चेतना में आओ ! जनमेजय के मस्तक पर रक्त का टीका करो ! अब वह महाराज परीक्षित के चारों ओर चक्रव्यूह रचाएगा ! असंख्य महारथियों से मैं इस भूमि को पाट दूँगा । गंगा की पूरी धरती पर विष मार दवाइयाँ बिखेरूँगा । प्रकृति पर भी

विजय पाने वाले असंख्य वैद्यों को यहाँ बैठाऊँगा ! **(रुककर) जाओ** ऋषिपुत्र ! तुम भी तक्षक के साथ आना···जाओ, तैयारी करो !···चले जाओ यहाँ से !

[जनमेजय की पूरी बात समाप्त नहीं हो पाती, तभी व्यंग्य से हँसता हुआ ऋषि-पुत्र बाहर चला जाता है—

जनमेजय : **(उसी आवेश में)** शाप वालो, जाओ ! तुम्हारा शाप तुम्हीं पर उतरे !

[धीरे-धीरे रंगमंच की सारी रोशनी समाप्त हो जाती है। एक क्षण के लिए रंगमंच अन्धकारमय, सुनसान पड़ा रहता है। धीरे-धीरे मन्त्र का स्वर उभरने लगता है।

निरस्तनिखिलाज्ञानं ज्ञानाज्ञानविलक्षणम् ।
पूर्णानन्दं किमपि तन्नीलरत्नमहं भजे ॥

और इसी के साथ रंगमंच पर प्रकाश आने लगता है। लौटकर आए हुए प्रकाश में हम फिर शुकदेव और परीक्षित को उसी मुद्रा में बैठे पाते हैं, जैसे नाटक के आरम्भ में।]

शुकदेव : राजा परीक्षित !

परीक्षित : हाँ भगवन् !

शुकदेव : परीक्षित, सुनो ! यह जगत् मन का विलास है ! और यह विराट् ही विविध लोकों की सृष्टि, स्थिति और संहार की लीलाभूमि है !

परीक्षित : भगवन् ! एक जिज्ञासा है मेरी।

शुकदेव : क्या ?

परीक्षित : महाभारत के उपरान्त भगवान् कृष्ण की क्या लीला थी ? मैं वह कथा सुनना चाहता हूँ।

शुकदेव : **(हँसकर)** वह यदुवंशियों पर शाप की कथा है। समस्त यदुवंशियों का संहार हो गया। और जिस शाप से यह हुआ, वह विनाश-शक्ति जरा नामक बहेलिए का शर बनकर कृष्ण के तलवे में बिंध गयी।

[रंगमंच का सारा प्रकाश लुप्त हो जाता है और पृष्ठभूमि में एक धौंसे पर एक-एक करके छह प्रहार होते हैं, फिर यह मन्त्र उठता है—"योगीन्द्राय नमस्तस्मै शुकाय ब्रह्मरूपिणे। संसारसर्पदंष्टं यो विष्णुरातममू मुचत्।"

जहाँ मन्त्र समाप्त होता है वहाँ धौंसे पर सातवाँ प्रहार शक्तिपूर्ण ढंग से होता है ! फिर सारा वातावरण एक ही क्षण में, शंख-ध्वनि, रणभेरी के तुमुल नाद से भर जाता है। धीरे-धीरे रंगमंच पर प्रकाश लौटता है, जहाँ हम देखते हैं कि रंगमंच पर परीक्षित के तीनों पुत्र, दो अन्य महारथियों के साथ परीक्षित को घेर कर खड़े हैं. पास कश्यप नामक वैद्य बैठा है, दूसरे किनारे युद्धवेश में राजमाता उत्तरा खड़ी हैं। परीक्षित समाधि लगाए निश्चल मौन बैठे हैं।]

शुकदेव : **(पृष्ठभूमि के जन-कोलाहल और रणभेरी के तुमुल नाद को समाप्त करते हुए)**

शान्त हो ! बन्द करो यह रणभेरी, बन्द करो, शान्

[पृष्ठभूमि में शान्ति फैलने लगती है।]

शुकदेव : तुम्हारी शक्ति का फल युद्ध नहीं, शान्ति है। आए हो ? तुम्हारे युद्ध की नीति क्या है ? क्या

उत्तरा : यह सब मुझे मालूम है। उस उत्तरा माँ को जिसने अश्वत्थामा का तेजस्वी ब्रह्मास्त्र देखा है, देखी है। हमारी यह शक्ति आत्मरक्षा के लिए है,

शुकदेव : लेकिन यह धर्मभूमि है। यहाँ परीक्षित की मुक्ति

उत्तरा : मेरे पुत्र की मुक्ति यह राजसेना देगी !

शुकदेव : **(क्रोध से)** पर लड़ाई होगी किससे ?

उत्तरा : तक्षक से।

शुकदेव : नहीं, जिसे तुम इतना भयानक शत्रु मान बैठी नहीं। वह अकेला है, सूक्ष्म अकेला और सब जगह है

उत्तरा : कोई बात नहीं ! चारों ओर मेरे महारथी औषधियों के साथ महावैद्य बैठे हैं।

[उसी समय पृष्ठभूमि में कोई जनमेजय का नाम ले

उत्तरा : कौन है, जनमेजय को पुकारने वाला ?

[बाहर निकल जाती है और स्वयं जनमेजय को ढूँढ़

उत्तरा : **(आकर, जैसे सबसे पूछती हुई) कहाँ है मेरा**
मेरा बाहुबली कहाँ गया ?

श्रुतसेन : सैन्य संचालन कर रहे हैं।

शुकदेव : संचालन तो कर रहा है, पर जनमेजय
कहीं चला गया।

उत्तरा : असम्भव !

शुकदेव : जब तक यहाँ जनमेजय
थी, क्योंकि जनमेजय
मोह !

उत्तरा : यह तुम्हारा
मेरा बाहुबली
है।

शुकदेव : (हँ

ों को यहाँ बैठाऊँगा ! (रुककर) जाओ ऋषिपुत्र !
···जाओ, तैयारी करो ! ···चले जाओ यहाँ से !

प्त नहीं हो पाती, तभी व्यंग्य से हँसता हुआ ऋषि-

वालो, जाओ ! तुम्हारा शाप तुम्हीं पर उतरे !

रोशनी समाप्त हो जाती है। एक क्षण के लिए
पड़ा रहता है। धीरे-धीरे मन्त्र का स्वर उभरने

ज्ञानाज्ञानविलक्षणम् ।
तन्नीलरत्नमहं भजे ॥

काश आने लगता है। लौटकर आए हुए प्रकाश
को उसी मुद्रा में बैठे पाते हैं, जैसे नाटक के

ा विलास है ! और यह विराट् ही विविध
लीलाभूमि है !

की क्या लीला थी ? मैं वह कथा

ा है। समस्त यदुवंशियों का संहार
-शक्ति जरा नामक बहेलिए का

पृष्ठभूमि में एक धौंसे पर एक-
ा है—"योगीन्द्राय नमस्तस्मै
युक्त् ।"

ों प्रहार शक्तिपूर्ण ढंग से
नि, रणभेरी के तुमुल नाद
, जहाँ हम देखते हैं कि
के साथ परीक्षित को घेर
युद्धवेश में राजमाता
।]

समाप्त करते हुए)

शान्त हो ! बन्द करो यह रणभेरी, बन्द करो, शान्त ! शान्त हो ! ···शान्त !

[पृष्ठभूमि में शान्ति फैलने लगती है।]

शुकदेव : तुम्हारी शक्ति का फल युद्ध नहीं, शान्ति है। **(रुककर)** किससे युद्ध करने आए हो ? तुम्हारे युद्ध की नीति क्या है ? क्या उद्देश्य है तुम्हारा ?

उत्तरा : यह सब मुझे मालूम है। उस उत्तरा माँ को सब ज्ञात है। मैं वह माँ हूँ, जिसने अश्वत्थामा का तेजस्वी ब्रह्मास्त्र देखा है, जिसने कुरुक्षेत्र की रणसज्जा देखी है। हमारी यह शक्ति आत्मरक्षा के लिए है, आक्रमण के लिए नहीं।

शुकदेव : लेकिन यह धर्मभूमि है। यहाँ परीक्षित की मुक्ति के लिए भक्ति हो रही है।

उत्तरा : मेरे पुत्र की मुक्ति यह राजसेना देगी !

शुकदेव : **(क्रोध से)** पर लड़ाई होगी किससे ?

उत्तरा : तक्षक से।

शुकदेव : नहीं, जिसे तुम इतना भयानक शत्रु मान बैठी हो वह अकेला है, कोई सेना नहीं। वह अकेला है, सूक्ष्म अकेला और सब जगह है।

उत्तरा : कोई बात नहीं ! चारों ओर मेरे महारथी खड़े हैं। चारों ओर अमोघ औषधियों के साथ महावैद्य बैठे हैं।

[उसी समय पृष्ठभूमि में कोई जनमेजय का नाम ले-लेकर पुकारने लगता है।]

उत्तरा : कौन है, जनमेजय को पुकारने वाला ?

[बाहर निकल जाती है और स्वयं जनमेजय को ढूँढ़ती हुई पुकारने लगती है।]

उत्तरा : **(आकर, जैसे सबसे पूछती हुई)** कहाँ है मेरा जनमेजय ? बोलते क्यों नहीं, मेरा बाहुबली कहाँ गया ?

श्रुतसेन : सैन्य संचालन कर रहे हैं।

शुकदेव : संचालन तो कर रहा है, पर जनमेजय यहाँ नहीं है। वह पिता से रूठकर कहीं चला गया।

उत्तरा : असम्भव !

शुकदेव : जब तक यहाँ जनमेजय उपस्थित था, परीक्षित की समाधि ही नहीं लगती थी, क्योंकि जनमेजय को देखकर उन्हें जीवन से मोह होता था। समाधि और मोह !

उत्तरा : यह तुम्हारा छल है, यह सत्य नहीं हो सकता। **(रुककर)** अब ध्यान आया, मेरा बाहुबली जनमेजय सुमेरु पर्वत से संजीवनी बूटी लाने गया है ! वह अभी आता है।

शुकदेव : **(हँसकर)** यह दृश्य-जगत् मन का स्वप्न है, आर्या !

[पृष्ठभूमि में फिर तूफ़ान उठता है, राजमाता और परीक्षित-पुत्र सावधान होते हैं।]

उत्तरा : **(घबड़ाहट से पुकारने लगती है)** जनमेजय ! जनमेजय !! आह ! मेरा

जनमेजय कब तक लौटेगा ?···श्रुतसेन !

श्रुतसेन : क्या है राजमाता ?

उत्तरा : देखो···वह देखो···वह तक्षक आ रहा है···बन्दी करो···बन्दी करो !

[शंखध्वनि के साथ, पृष्ठभूमि में रणभेरी बज उठती है। कोलाहल उभरने लगता है। लेकिन कुछ ही क्षणों में शान्त होने लगता है।]

उत्तरा : आगे न बढ़ना···आगे न बढ़ना तक्षक ! रुक जा वहीं !

श्रुतसेन : भीमसेन, उग्रसेन कहाँ है ? राजमाता, कहाँ है वह तक्षक ?

उत्तरा : (डरी हुई) वह है ! वह है···देखते नहीं ?

श्रुतसेन : कुछ नहीं दीखता !

भीमसेन : शून्य है वहाँ !

उग्रसेन : कहाँ ?

श्रुतसेन : कहाँ देख रही हो राजमाता ? मुझे दिखाओ !

उत्तरा : वह देख रही हूँ···देखते क्यों नहीं, वह बढ़ा चला आ रहा है।

श्रुतसेन : ओह, मुझे क्यों नहीं दीखता !

भीमसेन : उग्रसेन कहाँ है ? आह, कहाँ है ?

उत्तरा : आह ! वह आ गया···देखो···बाण चलाओ···कृपाण से वार करो !

समवेत स्वर : कहाँ ? कहाँ···हमें तक्षक नहीं दीख रहा है। दृष्टि दो हमें ! कहाँ है हमारा शत्रु ?

उत्तरा : (करुणा से) कैसे दिखाऊँ ! तुम सब देखते क्यों नहीं ? इतने महारथी···यह शक्तिमय सेना क्या अन्धी हो गयी ? (रो पड़ती है) देखो···वह देखो, तक्षक आ गया।

[तक्षक का प्रवेश, पृष्ठभूमि में और रंगमंच पर 'जनमेजय', 'जनमेजय' की आर्त्त पुकार उठती है।]

उत्तरा : (भिक्षा के स्वर में) तक्षक ! आज मैं तेरी शरण हूँ; मेरे परीक्षित को मत डँस···नहीं तो तुझे कौन शरण देगा ! अपने से डरो, कालराज ! (अधीरता से) नहीं, नहीं···अब आगे मत बढ़ो···रुको···रुक जाओ !

श्रुतसेन : मौत के पास दया नहीं होती, राजमाता ! (आवेश में) यह लो मेरी तलवार !

भीमसेन : और मेरा धनुष-बाण लो !

श्रुतसेन : तक्षक पर प्रहार कर दो, राजमाता ! मौत से भिक्षा नहीं मिलती !

[उत्तरा पृथ्वी पर निष्क्रिय बैठी रह जाती है।]

श्रुतसेन : ओह ! यह क्या हो गया ? (रुँधे कण्ठ से) इतनी ठण्डी ! उठ तक नहीं सकती ?

उत्तरा : मैं निष्क्रिय हो चुकी ! (गिरी वाणी से) मेरी दृष्टि तक्षक से मिल गयी।

आज तक्षक के अणु-अणु में विष भरा है ! मैं तक्ष
है) जनमेजय ! जनमेजय !! जल्दी आ, मैं तक्ष

श्रुतसेन : तक्षक को बाँधे रखिए ! वह बढ़ने न पाए··

उत्तरा : नहीं, मत हटो यहाँ से···जनमेजय का बनाय
वह देखो···सुनो महारथियो ! देखो···वह देख
तक्षक से सन्धि कर रहा है। आक्रमण क्यों नहीं

[सहसा रंगमंच का सारा प्रकाश सिमटकर क
जाता है, जैसे रंगमंच पर केवलवही दो हैं, शेष

तक्षक : तो तुम सर्प-विष के इतने बड़े चिकित्सक हो
माँगा दे सकता हूँ, खुलकर माँग लो।

[कश्यप धन का संकेत करता है।]

तक्षक : बस !·· और कुछ नहीं !

[कश्यप प्रसन्नता से सिर हिलाता है।]

तक्षक : यह लो अपार धन ! इतनी मणियाँ, हीरे-जव

[कश्यप ग्रहण करता है।]

तक्षक : चले जाओ यहाँ से ! भागकर छिप जाओ कहीं
तुम्हें न पा सके···चले जाओ !

कश्यप : मुझे डर लग रहा है।

तक्षक : किसी का डर नहीं। आओ, कोई भय नहीं।
डरो ! (हँसता है) जानते नहीं, यह सारी सेना
के पास दृष्टि नहीं। तुम शान्ति से चले जाओ···तुम
ही मैंने सबकी दृष्टि हर ली है। जाओ···चले जा

[कश्यप चला जाता है फिर धीरे-धीरे पूरे रंग
परीक्षित की ओर बढ़ने लगता है।]

उत्तरा : मत डँसो मेरे परीक्षित को, कालसर्प
तुम उसे डँसने आ रहे हो, जिसने
मत डँस, नहीं तो तुझे शरण

[बेहोश हो जाती है।

शुकदेव : विषदंश करो न !

तक्षक : ओह ! यह

विश्वासघात !

शुकदेव : अब मैं

आज तक्षक के अणु-अणु में विष भरा है ! मैं तक्षक से बँध गयी ! (**पुकारने लगती है**) जनमेजय ! जनमेजय !! जल्दी आ, मैं तक्षक से बँधी हूँ !

श्रुतसेन : तक्षक को बाँधे रखिए ! वह बढ़ने न पाए···मैं जनमेजय को ढूँढ़ लाता हूँ।

उत्तरा : नहीं, मत हटो यहाँ से···जनमेजय का बनाया हुआ व्यूह मत तोड़ो, (**रुककर**) वह देखो···सुनो महारथियो ! देखो···वह देखो, तुम्हारा सबसे बड़ा वैद्य कश्यप तक्षक से सन्धि कर रहा है। आक्रमण क्यों नहीं करते उस पर···मारो उसे !

[सहसा रंगमंच का सारा प्रकाश सिमटकर कश्यप और तक्षक पर केन्द्रित हो जाता है, जैसे रंगमंच पर केवलवही दो हैं, शेष अन्धकार में शून्य हो उठता है।]

तक्षक : तो तुम सर्प-विष के इतने बड़े चिकित्सक हो ? हूँ ! क्या चाहते हो ? मुँह माँगा दे सकता हूँ, खुलकर माँग लो।

[कश्यप धन का संकेत करता है।]

तक्षक : बस !·· और कुछ नहीं !

[कश्यप प्रसन्नता से सिर हिलाता है।]

तक्षक : यह लो अपार धन ! इतनी मणियाँ, हीरे-जवाहरात !

[कश्यप ग्रहण करता है।]

तक्षक : चले जाओ यहाँ से ! भागकर छिप जाओ कहीं; ऐसा छिपो कि सूर्य की किरण तुम्हें न पा सके···चले जाओ !

कश्यप : मुझे डर लग रहा है।

तक्षक : किसी का डर नहीं। आओ, कोई भय नहीं। इस सेना के महारथियों से मत डरो ! (**हँसता है**) जानते नहीं, यह सारी सेना अन्धी खड़ी है, आँखें हैं, पर किसी के पास दृष्टि नहीं। तुम शान्ति से चले जाओ···तुम्हें कोई नहीं देख सकता ! आते ही मैंने सबकी दृष्टि हर ली है। जाओ···चले जाओ।

[कश्यप चला जाता है फिर धीरे-धीरे पूरे रंगमंच पर प्रकाश फैल जाता है। तक्षक परीक्षित की ओर बढ़ने लगता है।]

उत्तरा : मत डँसो मेरे परीक्षित को, कालसर्प ! तुझे दो हत्याएँ लगेंगी। सोच लो··· तुम उसे डँसने जा रहे हो, जिसने तुम्हें शरण दी थी। अरी मौत ! तू जीवन को मत डँस, नहीं तो तुझे शरण कौन देगा !

[बेहोश हो जाती है। ज़हरीले फुंकार से तक्षक परीक्षित के पास पहुँच जाता है।]

शुकदेव : विषदंश करो न ! करो विषदंश !

तक्षक : ओह ! यह छल ! मेरे विषदंश के पहले ही परीक्षित मर गया। जीवन का यह विश्वासघात ! मैं बदला लूँगा !

शुकदेव : शव में ही विषदंश करो, तक्षक ! तेरी मर्यादा निभ जाएगी ! पूरा कर लो

ऋषि-पुत्र का शाप ! जानता है, प्रकृति मृत्यु दे सकती है, पर प्राणों को अभिशप्त नहीं कर सकती !

तक्षक : (**पागल-सा, आत्मत्रस्त**) अब मैं अपने विष को कहाँ ले जाऊँ ?

शुकदेव : (**हंसते हुए**) एक क्षण की देरी में जीवन तुझे पीछे छोड़ गया ! तू अब स्वयं जल अपने विष से !

तक्षक : मेरे विष के लिए प्राण चाहिए। तक्षक प्राण चाहता है। प्राण, रक्त, चेतना !

शुकदेव : अब वह यहाँ नहीं है।

तक्षक : (**गिड़गिड़ाकर**) क्षमा महर्षिराज ! बचाओ मुझे ! मैं अपने विष से जला जा रहा हूँ ! बताओ, कहाँ ले जाऊँ इतना विष ! मुझे मार्ग दो, नहीं तो मैं अपने विष से स्वयं भस्म हो जाऊँगा !

[उसी क्षण आवेश में जनमेजय आता है।]

जनमेजय : कहाँ है तक्षक ? कहाँ है ?

तक्षक : मैं हूँ ! मेरा सारा विष मुझी में है ! मुझे प्राण चाहिए, महाबली ! मेरे साथ विश्वासघात हुआ है, मैं बदला लूंगा···!

शुकदेव : जनमेजय ! मृत्यु को प्राण बताओ ! इसके विष का पथ-निर्देश करो परीक्षित पुत्र !

जनमेजय : (**क्रोध से**) जाओ, उस कलियुग को विषदंश करो तक्षक, जिसने परीक्षित के साथ विश्वासघात किया ! ···चलो···अभी बढ़ो···उन सबको डँसो, कालसर्प ! जो मृत्यु का अभिशाप देते हैं ! (**पूरी शक्ति से चलाता हुआ**) चलो तक्षक···चले जाओ, चले जाओ···जाओ !

[क्रोध से जलता हुआ तक्षक बाहर भागता है। उत्तरा को चेतना आती है। सबके ऊपर तेज़ी से परदा गिरता है।]

गाली की शा

पात्र

बिहारी
शान्ति
मासी
शम्भूलाल
रामी
एक आदमी
इंसपेक्टर
लड्डन
नैनू

है, प्रकृति मृत्यु दे सकती है, पर प्राणों को अभिशप्त

अब मैं अपने विष को कहाँ ले जाऊँ ?
ही देरी में जीवन तुझे पीछे छोड़ गया ! तू अब स्वयं

हिए। तक्षक प्राण चाहता है। प्राण, रक्त, चेतना !

विराज ! बचाओ मुझे ! मैं अपने विष से जला जा
इतना विष ! मुझे मार दो, नहीं तो मैं अपने विष

आता है।]

में है ! मुझे प्राण चाहिए, महाबली ! मेरे साथ
ना···!
ओ ! इसके विष का पथ-निर्देश करो परीक्षित

को विषदंश करो तक्षक, जिसने परीक्षित के
···अभी बढ़ो···उन सबको डँसो, कालसर्प !
शक्ति से चलाता हुआ) चलो तक्षक···चले

ता है। उत्तरा को चेतना आती है। सबके

गली की शान्ति

पात्र

बिहारी
शान्ति
मासी
शम्भूलाल
रामी
एक आदमी
इंसपेक्टर
लड्डन
नैनू

[एक शहर में चौक का वह भाग—बल्कि वह गली, जहाँ नीचे सर्राफ़ा है और ऊपर छत के कमरों में अमीर-गरीब वेश्याएँ रहती हैं। ऐसी बस्ती में इस नाटक का परदा बिहारी सोनार की दूकान में उठता है। सामने से ही घर में जाने का दरवाज़ा खुला है। उससे दायीं ओर एक कमरा है, जिसके बन्द किवाड़ पर दो ताले लगे हैं। दूकान छोटी-सी है, फिर भी इसके दो भाग हैं। बन्द कमरे के सामने बिहारी का कारीगर बेनी बैठा है। मुख्य दरवाज़े के इधर ही बिहारी की गद्दी है, जिसके पीछे एक ऊंची बन्द तिजोरी खड़ी है और पास ही एक छोटी खुली तिजोरी में तैयार सोने-चाँदी के गहने लटक रहे हैं। ग्राहकों के बैठने के लिए गद्दी के पास भी प्रबन्ध और नीचे—दूकान के बाहर भी।

दायीं ओर—इस दूकान के बाहर एक पतला-सा ज़ीना ऊपर जाता है।

मार्च का पहला सप्ताह है और शाम होने में कुछ ही देर है। ऐसी स्थिति में नाटक का परदा उठता है। और हम पाते हैं, चालीस वर्ष का बेनी चश्मा लगाए कुछ गहनों को तोड़ रहा है। पास दीवट पर दीया जल रहा है। गद्दी पर बिहारी, जिसकी अवस्था पचास से ऊपर है, बैठा हुआ बड़े ध्यान से कुछ सोना तोल रहा है।]

बेनी : (**चश्मे के किनारे से देखकर**) लालाजी, सुना है—सोने में फिर मद्दी आ गयी।

बिहारी : क्या बताऊँ, कुछ कहा नहीं जाता—अगर इसी तरह भाव आए दिन गिरता रहा तो इनसान की तरह यह सोना भी बे-भाव हो जाएगा। (**रुककर**) एक घण्टा हुआ, बम्बई सर्राफ़ा बाजार के भाव खुले हैं—मैं तो दंग रह गया बेनी ! सोना खुला नब्बे रुपये नौ आने, ऊँचे में इक्यानबे छह आने, नीचे में···

बेनी : (**बीच ही में**) वह कितने पर हुआ ?

बिहारी : इक्यानबे पाँच आने।

[उसी समय मुरादाबादी हुक्के पर चिलम लिए हुए दरवाज़े पर रामी आती है—देखने से लगता है; शाल लपेटे आयी है। बढ़कर बिहारी के पास हुक्का रख देती है और कराहकर उठने लगती है।]

बिहारी : (**अपने में व्यस्त**) गिन्नी का भाव उनसठ दस आने पर आ गिरा। सोना मैसूरी, सोना बुलियन—सब पर मद्दी है।

रामी : (**बीच ही में**) कुछ अपनी मद्दी की ओर ध्यान है ! कुछ पता है !

बिहारी : देख रामी ! तुझे हमेशा समझाया है—जहाँ 'बिजनेस' की बात चल रही हो, तू वहाँ बीच में न टपका कर !

रामी : हाय, मेरी बात तो सुनो !

बिहारी : क्या है ?

रामी : कल होली है !

बिहारी : तो ?

रामी : तो-तो मत करो—मेरी पूरी बात सुनो—कल ह[illegible] होगी···

बिहारी : वह तो होगी ही—बात क्या है ?

रामी : मुलिया कहाइन आज दोपहर को सर्राफ़ा में लोगो[illegible] देने गयी थी। उत्तर की गली वाले, ऊँची पैठ के स[illegible] बड़ी कोठी के घनश्यामदास के घर से मनाही आ[illegible] की औरतें कल पूजा में नहीं आएँगी।

बिहारी : भगवान् से कहो ! पूजा उन्हीं की होगी, मुझसे[illegible]

रामी : सारे लोग कहते हैं कि हमारे यहाँ शान्ति के घर [illegible] उठक-बैठक है कि उसके सामने सारे पट्टीदार झूठ हैं [illegible]

बिहारी : यह तो लोग पन्द्रह वर्ष से कह रहे हैं—क्या [illegible] माँ मुझे भइया कहती थी। वह आने-जाने लगी। अ[illegible] घर घुलमिल गयी। अंग हो गयी।

रामी : मेरी सुभद्रा बेटी की उस बीमारी में कितनी तपस्[illegible]

बिहारी : और सुभद्रा के विवाह में ! ···किस तरह विवा[illegible] कपड़े सिलकर भेंट किए थे। (**रुककर**) बेनी, तुम[illegible] को ? सुभद्रा के विवाह में भी तुम नहीं थे—नहीं[illegible] और क्या व्यवहार थे उसके ! जैसा जानकी मा[illegible]

[रामी चुप उदास खड़ी है।]

बिहारी : क्या सोच रही हो रामी ? (**[illegible]**) [illegible] नुक़सान नहीं देखा जाता ! [illegible]

[रामी चुप है।]

बिहारी : परवाह मत करो ! [illegible] कर रही है। लेकिन [illegible] हैं, दो पड़ोसी हैं—[illegible] हिम्मत किसी में ! [illegible]

रामी : हुक़्क़ा-पानी [illegible]

बिहारी : ([illegible] एक-एक [illegible] ···मुझे [illegible]

तू वहाँ बीच में न टपका कर !

रामी : हाय, मेरी बात तो सुनो !

बिहारी : क्या है ?

रामी : कल होली है !

बिहारी : तो ?

रामी : तो-तो मत करो—मेरी पूरी बात सुनो—कल हमारे यहाँ सत्यनारायण की कथा होगी···

बिहारी : वह तो होगी ही—बात क्या है ?

रामी : मुलिया कहाइन आज दोपहर को सर्राफ़ा में लोगों के यहाँ कल के लिए निमन्त्रण देने गयी थी। उत्तर की गली वाले, ऊँची पैठ के सर्राफ़, गाँठ वाले रूपचन्द और बड़ी कोठी के घनश्यामदास के घर से मनाही आयी है। वे लोग और उनके घर की औरतें कल पूजा में नहीं आएँगी।

बिहारी : भगवान् से कहो ! पूजा उन्हीं की होगी, मुझसे क्या ! कोई न आए !

रामी : सारे लोग कहते हैं कि हमारे यहाँ शान्ति के घर का इतना आना-जाना, इतनी उठक-बैठक है कि उसके सामने सारे पट्टीदार झूठ हैं !

बिहारी : यह तो लोग पन्द्रह वर्ष से कह रहे हैं—क्या करूँ मैं ! **(रुककर)** शान्ति की माँ मुझे भइया कहती थी। वह आने-जाने लगी। अपने-आप न जाने कैसे कब मेरे घर घुलमिल गयी। अंग हो गयी।

रामी : मेरी सुभद्रा बेटी की उस बीमारी में कितनी तपस्या की थी उसने !

बिहारी : और सुभद्रा के विवाह में ! ···किस तरह बिदाई दी थी उसने। कितने नये कपड़े सिलकर भेंट किए थे। **(रुककर)** बेनी, तुमने नहीं देखा था शान्ति की माँ को ? सुभद्रा के विवाह में भी तुम नहीं थे—नहीं तो देखते वह कैसी औरत थी—और क्या व्यवहार थे उसके ! जैसा जानकी नाम था, वैसा ही शील-स्वभाव !

[रामी चुप उदास खड़ी है।]

बिहारी : क्या सोच रही हो रामी ? **(हँसता है)** यह तो भाव का सौदा है, इसमें नफ़ा-नुकसान नहीं देखा जाता ! अब कुछ भी हो—जब हो गया, तब क्या !

[रामी चुप है।]

बिहारी : परवाह मत करो ! सारे लोग, मेरी सारी बिरादरी मुझे पन्द्रह साल से मना कर रही है। लेकिन यह तो प्रीति-व्यवहार की दुनिया है। दो घर हैं, दो परिवार हैं, दो पड़ोसी हैं—मिल गए। क्या कर लेगा कोई। क्या कर सके आज तक ! है हिम्मत किसी में ! गन्दे लोग प्रीति-भाव क्या जानें। गन्दे गन्दा ही सोचेंगे !

रामी : हुक्का-पानी बन्द करने की बात चला रहे हैं।

बिहारी : **(भुँझला उठता है)** सबके घर कहला भेजो रामी, मेरे पीछे न पड़ें वे लोग। एक-एक की हिस्ट्री जानता हूँ—कुछ बोलता नहीं अभी ! उधेड़कर रख दूँगा। ···मुझे खूब पता है, किसके घर क्या पकता है !

[उसी समय सामने से शम्भूलाल, लड्डन और नैनू आते हैं। नैनू की अवस्था शेष दोनों नवयुवकों से दस साल ज्यादा है। तीनों यूँ ही आ खड़े होते हैं—बिहारी उनकी ओर कतई ध्यान नहीं देता। रामी किवाड़ के पीछे चली जाती है।]

तीनों : (**आते ही**) क्या है लाला, क्या बात है ! किस पर बिगड़ रहे हो?

बिहारी : (**आवेश में**) मेरा पाँच पुश्त बीता है इस गली में। पचास वर्ष तो खुद मेरे होश के बीते हैं यहाँ। बहुत नज़दीक से यहाँ इनसानियत देखने को मिली है ! (**हुक्के में दो दम मारता है**) वह क्या जानेगा कि आदमी क्या चीज है, जिसकी आँखों में कोई गहराई ही नहीं—जिसमें कभी हया का पानी ही नहीं उतरा !

नैनू : किसने क्या कह दिया लाला ? क्या बात है !

[बिहारी हुक्का पीने लगता है।]

शम्भू : कल होली है, किसी ने छेड़ दी होगी !

लड्डन : दूकान ही ऐसी है। ऊँचे सौदे पर सबकी निगाह जाती है !

[तीनों हँस पड़ते हैं।]

नैनू : (**गद्दी के पास जा बैठता है**) लाला, मैं एक काम से आया हूँ। कुछ माल खरीद लो···बहुत अच्छे-अच्छे सामान हैं—सब सोने की चीजें हैं।

बिहारी : मेरे लिए सब मिट्टी है। मैं चोरी का सामान नहीं खरीदता !

शम्भू : एक बार खरीद लो लाला, जो भाव चाहो, काट लो !

बिहारी : मैंने कह दिया, इस दूकान पर तुम लोगों का सौदा नहीं हो सकता, सर्राफे में दूकानों की कमी नहीं, चलो यहाँ से ?

नैनू : तुम्हारी दूकान की और बात है लाला !

बिहारी : जाओ यहाँ से, मैं सब समझता हूँ। ये बाल धूप में नहीं पके हैं, इसी गली में पके हैं !

नैनू : तो न लोगे ?

बिहारी : नहीं, कभी नहीं।

[तीनों कुछ क्षण मिलकर आपस में सलाह करते हैं।]

नैनू : लाला, हमें कोई हलकी-सी नथुनी दिखाओ, खरीदेंगे।

शम्भू : हाँ भाई, खरीदो नहीं, बेचोगे तो !

बिहारी : मैं नहीं बेचता ! जाओ यहाँ से !

लड्डन : (**जो कुछ पिये हुए है—नशे में आता है**) फिर क्या बेचते हो लाला ! अभी बहुत मारेगा तुमको !···तुम इस गली का सबसे बड़ा चोर है !

बिहारी : (**खड़ा हो जाता है**) चले जाओ यहाँ से। (**बढ़ आता है**) भागते हो कि नहीं।

नैनू : मुझे पहचानते हो लाला !

बिहारी : खूब ! इस शहर के छँटे हुए गुण्डे हो तुम !
गिरहकट, एक चोर···और बताऊँ ! बिहारी कि
गए ?

[नैनू और शम्भू एक ओर बढ़ जाते हैं।]

लड्डन : (अभी खड़ा है) तुम भी चोर है लाला ! तूने
है। (जाते-जाते) माल बरामद करके छोड़ूँगा।

[बिहारी गद्दी पर रखे हुए सोने तथा गहनों को
लगता है। गली में चहल-पहल बढ़ गयी है। को
घुँघरुओं के स्वर सुनाई पड़ने लगे हैं। उसी समय
मुश्किल से पन्द्रह वर्ष की उम्र होगी। इकहरा
नहीं छूटा है। सफेद साड़ी पहने है और बिलकु
निकलकर अपनी धुन में भागती हुई बाहर जाना च
बिहारी को खड़ा देख रुक जाती है।]

बिहारी : (**स्नेह से**) अरे ! घर में थी !···क्या कर र

शान्ति : मैं नहीं बोलती···चाचीजी की तबीयत खराब
दिन-भर गद्दी पर बैठे-बैठे डाँड़ी मारते हैं !

[बिहारी को हँसी आ जाती है।]

शान्ति : कल होली है न ! उसी की तैयारी कर रही थी

बिहारी : अच्छा, तो कुछ बना रही थी, खब्बू कहीं की !

शान्ति : कल सत्यनारायण भगवान् की कथा भी तो है
बहुत अच्छे कपड़े मिले हैं—*रेशम और साटन*
किया है। देखोगे तो ललचा जाओगे !···**जाओ घर**
रही है, जगाना नहीं, हाँ !

बिहारी : और तू कहाँ जा रही है ?

शान्ति : अरे तुम्हें नहीं बताया **मैंने ! मेरी मु**
सुबह से सोयी पड़ी **हैं—न चाय, न दोपहर**

बिहारी : अरे ! और तूने **बताया तक नहीं !**

शान्ति : अब उठी होंगी, **देख आऊँ !**

[तेजी से **जीने की ओर**
फिर उलटे **पाँव लौट**

बिहारी : **क्या है रे ?**

शान्ति : **पता नहीं,**
बोली !

शम्भूलाल, लड्डन और नैनू आते हैं। नैनू की अवस्था शेष
स साल ज्यादा है। तीनों यूँ ही आ खड़े होते हैं—बिहारी
ान नहीं देता। रामी किवाड़ के पीछे चली जाती है।]

लाला, क्या बात है! किस पर बिगड़ रहे हो?
पाँच पुश्त बीता है इस गली में। पचास वर्ष तो खुद मेरे
बहुत नजदीक से यहाँ इनसानियत देखने को मिली है!
ता है) वह क्या जानेगा कि आदमी क्या चीज है, जिसकी
ही नहीं—जिसमें कभी हया का पानी ही नहीं उतरा!
लाला? क्या बात है!

ता है।]

छेड़ दी होगी!
सौदे पर सबकी निगाह जाती है!

) लाला, मैं एक काम से आया हूँ। कुछ माल खरीद
माल है—सब सोने की चीजें हैं।
। मैं चोरी का सामान नहीं खरीदता!
, जो भाव चाहो, काट लो!
पर तुम लोगों का सौदा नहीं हो सकता, सर्राफे में
हाँ से?
लाला!
हूँ। ये बाल धूप में नहीं पके हैं, इसी गली में

साह करते हैं।]

ओ, खरीदेंगे।

) फिर क्या बेचते हो लाला! अभी
बड़ा चोर है!
आता है) भागते हो कि

बिहारी : खूब! इस शहर के छँटे हुए गुण्डे हो तुम! और ये तुम्हारे दोनों साथी एक गिरहकट, एक चोर···और बताऊँ! बिहारी किसी से नहीं डरता! भाग क्यों गए?

[नैनू और शम्भू एक ओर बढ़ जाते हैं।]

लड्डन : (अभी खड़ा है) तुम भी चोर हो लाला! तूने इस गली की शान्ति चुरा रखी है। (जाते-जाते) माल बरामद करके छोड़ूँगा।

[बिहारी गद्दी पर रखे हुए सोने तथा गहनों को खुली हुई तिजोरी में बन्द करने लगता है। गली में चहल-पहल बढ़ गयी है। कोठों से तबले-हारमोनियम और घुँघरुओं के स्वर सुनाई पड़ने लगे हैं। उसी समय, भीतर से शान्ति निकलती है। मुश्किल से पन्द्रह वर्ष की उम्र होगी। इकहरा बदन, जिसके अंग-अंग से बचपना नहीं छूटा है। सफेद साड़ी पहने है और बिलकुल अलंकार शून्य है। भीतर से निकलकर अपनी धुन में भागती हुई बाहर जाना चाह रही थी, एकाएक सामने बिहारी को खड़ा देख रुक जाती है।]

बिहारी : (स्नेह से) अरे! घर में थी!···क्या कर रही थी?

शान्ति : मैं नहीं बोलती···चाचीजी की तबीयत खराब है, कोई दवा नहीं ला देते! दिन-भर गद्दी पर बैठे-बैठे डाँडी मारते हैं!

[बिहारी को हँसी आ जाती है।]

शान्ति : कल होली है न! उसी की तैयारी कर रही थी!

बिहारी : अच्छा, तो कुछ बना रही थी, खब्बू कहीं की! कहाँ भागी जा रही है?

शान्ति : कल सत्यनारायण भगवान् की कथा भी तो है···दद्दा, मैंने ठाकुरजी के लिए बहुत अच्छे कपड़े सिले हैं—रेशम और साटन की पोशाक। उस पर काम भी किया है। देखोगे तो ललचा जाओगे!···जाओ घर में देख आओ न। चाची सो रही है, जगाना नहीं, हाँ!

बिहारी : और तू कहाँ जा रही है?

शान्ति : अरे तुम्हें नहीं बताया मैंने! मेरी मामीजी की भी तबीयत कुछ खराब है। सुबह से सोयी पड़ी हैं—न चाय, न दोपहर का खाना। न जाने क्या हो गया!

बिहारी : अरे! और तूने बताया तक नहीं! नालायक कहीं की!

शान्ति : अब उठी होंगी, देख आऊँ!

[तेजी से जीने की ओर मुड़ जाती है। बिहारी हुक्का लेकर भीतर चला जाता है, फिर उलटे पाँव लौट आता है। उसी समय घबड़ायी हुई शान्ति लौटती है।]

बिहारी : क्या है रे? कैसी है मामी?

शान्ति : पता नहीं, क्या हो गया! अब तक नहीं उठी। मैंने जगाया, पूछा भी, कुछ नहीं बोली!

[भीतर से रामी की आवाज आती है और वह धीरे-धीरे आकर दहलीज पर बैठ जाती है।]

शान्ति : क्यों, उठ आयी चाची ?

रामी : क्या हो गया तेरी मासी को ?

बिहारी : मैं देखता हूँ।

[चला जाता है। शान्ति चिन्तित हो रामी के पास आ खड़ी होती है—जैसे घबड़ायी हुई बेटी माँ की शरण आ गई हो।]

रामी : आज रात की सुबह होली जलेगी न !

शान्ति : हाँ चाची। तुम अच्छी होती तो हम लोग तुम्हारे संग होली बुझाने चलतीं। (**रुककर**) आज सुबह मेरे पास गुल आयी थी। कहती थी, "मैं भी होली बुझाने चलूँगी और चाचा जी से होरी सीखूँगी : 'ब्रज में होरी मची, आज मेरी कन्हैया से रास रची !"

रामी : (**थकी हँसी के बाद**) सिरदर्द तो ठीक हो रहा है !

शान्ति : गुल से मैंने कह रखा है, आज रात-भर हम दोनों भगवान् से बिनती करेंगे कि हमारी चाची सुबह अच्छी हो जाए।

रामी : तुझे तो वह होरी याद है, तू गुल को बता क्यों नहीं देती ?

शान्ति : पूरी बात याद है चाची; सुभद्रा जिया को खूब याद था। (**रुककर**) चाची, तुम जिया को कब बुलाओगी ? ···न जाने कब बुलाओगी !

रामी : क्या बुलाऊँ बेटी। पुरखे ऐसी गली में आ बसे कि कुछ कहा नहीं जाता। अच्छा है, सुभद्रा बेटी अपने घर रहे ! (**रो पड़ती है, फिर आँसू पीकर**) शान्ति तेरे लिए भी मैं घर ढूंढ़ रही हूँ।

शान्ति : (**आश्चर्यचकित**) मेरे लिए घर ! मुझे घर···

रामी : हाँ-हाँ, तेरे दद्दा बड़ी खोज में हैं।

[उसी समय दायीं ओर से बिहारी के साथ शान्ति की मासी का प्रवेश होता है। मासी की अवस्था पैंतीस वर्ष से ऊपर हो गयी होगी। भरा शरीर, खुला हुआ रंग, पर श्रीहीन। वह निःशब्द रोती हुई आती है।]

बिहारी : सुना रामी, ग़जब हो गया।

[दोनों घबड़ा जाती हैं।]

बिहारी : वह जो चुंगी का इंसपेक्टर है और वह अहमद जो है—वे दोनों जान फैला-कर पिछली रात मासी के सब रुपये ठग ले गए।

[शान्ति रो पड़ती है, और किवाड़ से चिपक जाती है।]

बिहारी : (**डाँट देता है**) रोती है रे ! नालायक कहीं का। चुप हो जाओ···मासी, ख़बरदार जो रोयी। यह गली इस बात को कानों-कान न सुनने पाए कि तुम पर

ऐसी घटना हुई है। (**जैसे चिन्ता से सोचता हु**
जो हो गया उसे आँसू नहीं भर पाएगा; वह तो
भी !

रामी : हाय, यह कैसे हो गया। चोरी हो गई ?

बिहारी : नहीं जी, नोट बनवाने गई थी—एक हजा
है) इसने उन बेईमानों का विश्वास किया जो
पर घूमने वाले ये सफ़ेद चोर !

मासी : मुझे तुम खूब मारो लाला बाबू ! ···जूतों
मैंने तुमसे चोरी की लाला बाबू, तुमसे राय न

[सिसककर रोती रहती है।]

बिहारी : मैं कहता हूँ चुप हो जाओ मासी ! मुझे ल
है। यह पहली चाल है उस साजिश की ! (**सोच**
जाओ···शान्ति ले जा मासी को भीतर···रामी

[शान्ति मासी को सहारा देकर भीतर ले जाती

रामी : (**उठती हुई**) हाय राम, लुट गई बेचारी !

बिहारी : चुप भी रह ! लुटता है वह जो अपने उसू
उसे, कुछ खिला-पिला देना, हाँ ?

[रामी चली जाती है; सहसा दायीं ओर से इंस
बार बिहारी को नमस्ते करके अपनी ओर ध्यान
उसे देखकर भी नहीं देखना चाहता है।]

इंसपेक्टर : मासी का घर क्यों बन्द है ? लालाजी,
सुनो !

बिहारी : (**क्रोध पिए हुए**) सुनाओ क्या है ?

इंसपेक्टर : मासी कहाँ है ?

बिहारी : मैं ठीकेदार हूँ किसी का ! (**आग्नेय दृ**
आए हो ? क्या बाक़ी रह गया ?

इंसपेक्टर : उस नोट बनाने वाले को हमने प

बिहारी : हूँ !···

इंसपेक्टर : (**दूकान में आकर**)

बिहारी : (**पूरी ताक़त से इं**
क़दम रखा तो तोड़
पर डाके डालते

इंसपेक्टर : ज़रा हो

बिहारी : बाब

आवाज़ आती है और वह धीरे-धीरे आकर दहलीज पर बैठ

ाची ?

मासी को ?

न्ति चिन्तित हो रामी के पास आ खड़ी होती है—जैसे
की शरण आ गई हो ।]

होली जलेगी न !

ी होती तो हम लोग तुम्हारे संग होली बुझाने चलतीं।
ेरे पास गुल आयी थी। कहती थी, "मैं भी होली बुझाने
होरी सीखूंगी : 'व्रज में होरी मची, आज मेरी कन्हैया से

सिरदर्द तो ठीक हो रहा है !

, आज रात-भर हम दोनों भगवान् से बिनती करेंगे कि
ो जाए।

ू गुल को बता क्यों नहीं देती ?

ड़ा जिया को खूब याद था। (रुककर) चाची, तुम
न जाने कब बुलाओगी !

गली में आ बसे कि कुछ कहा नहीं जाता। अच्छा
(रो पड़ती है, फिर आँसू पीकर) शान्ति तेरे लिए

र। मुझे घर···

साथ शान्ति की मासी का प्रवेश होता है।
ो गयी होगी। भरा शरीर, खुला हुआ रंग,
है।]

मद जो है—वे दोनों जान फैला-

।]

। चुप हो जाओ···मासी,
सुनने पाए कि तुम पर

ऐसी घटना हुई है। (**जैसे चिन्ता से सोचता हुआ**) जो घट गया है घट जाने दो। जो हो गया उसे आँसू नहीं भर पाएगा; वह तो और खाली कर देगा—बचा-खुचा भी !

रामी : हाय, यह कैसे हो गया। चोरी हो गई ?

बिहारी : नहीं जी, नोट बनवाने गई थी—एक हज़ार के चार हज़ार। (**झुँझला उठता है**) इसने उन बेईमानों का विश्वास किया जो आदमी है ही नहीं—गली-सड़कों पर घूमने वाले ये सफ़ेद चोर !

मासी : मुझे तुम खूब मारो लाला बाबू !···जूतों से उड़ा दो मुझे। मैं भी चोर हूँ—मैंने तुमसे चोरी की लाला बाबू, तुमसे राय न ली, पूछा तक नहीं।

[सिसककर रोती रहती है।]

बिहारी : मैं कहता हूँ चुप हो जाओ मासी ! मुझे लगता है यह कोई बहुत बड़ी साजिश है। यह पहली चाल है उस साजिश की ! (**सोचने लगता है**) जाओ, तुम सब भीतर जाओ···शान्ति ले जा मासी को भीतर···रामी उठो···जाओ सब लोग !

[शान्ति मासी को सहारा देकर भीतर ले जाती है।]

रामी : (**उठती हुई**) हाय राम, लुट गई बेचारी !

बिहारी : चुप भी रह ! लुटता है वह जो अपने उसूलों से गिर जाए, जाओ समझा दो उसे, कुछ खिला-पिला देना, हाँ ?

[रामी चली जाती है; सहसा दायीं ओर से इंसपेक्टर का प्रवेश होता है। वह कई बार बिहारी को नमस्ते करके अपनी ओर ध्यान दिलाना चाहता है, पर बिहारी उसे देखकर भी नहीं देखना चाहता है।]

इंसपेक्टर : मासी का घर क्यों बन्द है ? लालाजी, ओ बिहारीलाल, मेरी बात तो सुनो !

बिहारी : (**क्रोध पिए हुए**) सुनाओ क्या है ?

इंसपेक्टर : मासी कहाँ है ?

बिहारी : मैं ठीकेदार हूँ किसी का ! (**आग्नेय दृष्टि से उसे देखता हुआ**) अब क्या करने आए हो ? क्या बाक़ी रह गया ?

इंसपेक्टर : उस नोट बनाने वाले को हमने पकड़ रखा है, मैं मासी को बुलाने आया हूँ।

बिहारी : हूँ !···

इंसपेक्टर : (**दूकान में आकर**) बुला दो मासी को !

बिहारी : (**पूरी ताक़त से इंसपेक्टर को झटककर दूकान से नीचे कर देता है**) दूकान में क़दम रखा तो तोड़ दूँगा पसलियाँ (**आवेश से**) एक झापड़ के आदमी नहीं, ग़रीबों पर डाके डालते हैं—चोर-बदमाश !···कमीने कहीं के।

इंसपेक्टर : ज़रा होश में रहो लाला !

बिहारी : भाग जाओ यहाँ से ! मैं कहता हूँ भाग जाओ !

[उसी क्षण शराब में चूर लड्डन दिखाई पड़ता है।]

लड्डन : क्या है जी लाला ! ज़रा ख़याल कर दो न !

बिहारी : बेनी ! ढकेल दो कहीं इसे !

लड्डन : मुझे (**हँसता है**) आज होली है लाला !

[बेनी लड्डन को धक्के देकर दूर कर आता है।]

इंसपेक्टर : तुम समझते नहीं लाला, मैं मासी को रुपये देने आया हूँ।

बिहारी : मैं सब समझता हूँ ! हर चाल समझता हूँ ! ख़ैरियत इसी में है कि तुम यहाँ से भाग जाओ !

लड्डन : (**फिर आ पहुँचता है**) लड्डन भागना नहीं जानता ! लड्डन बदमाश है इस पत्ती का।

इंसपेक्टर : मैं चला जाता हूँ—लेकिन ये रुपये मासी तक पहुँचा दो !

[बढ़कर गद्दी पर नोट बिखेर देता है; बिहारी क्रोध में पागल हो उसका गला दबोचकर नीचे झटकने लगता है—दरवाज़े पर भीतर से भागकर मासी, शान्ति और रामी पहुँचती हैं, स्टेज का प्रकाश धीरे-धीरे ग़ायब होने लगता है।]

बिहारी : तेरी यह हिम्मत ! गला घोंट दूँगा ! (**नोट उठाकर उसके मुँह पर फेंक देता है**) यह कोठा नहीं, घर है—ऐसा घर जो तुम्हारे पूरे ख़ानदान को नौकर रख सकता है ! कुत्ते कहीं के !

लड्डन : हमें हमारी शान्ति दो··· (**हँसता है**)

[इंसपेक्टर उठकर बिहारी पर किसी ईंट या पत्थर से हमला करना चाहता है, शान्ति चीख़कर दद्दा के गले से लिपट जाती है। बेनी इंसपेक्टर को दबोचने दौड़ता है, सहसा स्टेज का सारा प्रकाश लुप्त हो जाता है।

कुछ क्षण के अन्धकार और सन्नाटे के उपरान्त रंगमंच का खोया हुआ प्रकाश धीरे-धीरे वापस आता है। होली के कारण दुकान बिलकुल बन्द है। सारी चीज़ें हटा दी गयी हैं। एक तख़्त बिछा है, आसपास दो-तीन मोढ़े रखे हैं। तख़्त पर होली मिलने वालों के स्वागतार्थ चाँदी की तश्तरियों में पान-बीड़ी, इलायची और सिगरेट आदि रखे हैं। प्रकाश आते ही स्पष्ट होता है कि बिहारी अपने होली के सफ़ेद कपड़ों में मुहल्ले के कुछ आदमियों से एक-एक करके होली मिल रहा है। जब मिलने वाले बिदा हो जाते हैं, तब बिहारी दरवाज़े पर रामी को आवाज़ देता है।]

बिहारी : तू घबड़ा रही थी न, देख, सत्यनारायण भगवान् की पूजा भी हो गई और होली भी मन गई !

[रामी दहलीज़ पर चुप खड़ी चुप है।]

बिहारी : कल मैं तुझे अस्पताल ले चलूँगा, देखूँ तो भला तुझे क्या बीमारी है। कल

डॉक्टर को दिखाने के लिए शान्ति मुझ पर क़सम रख गई है !

रामी : मैं कहीं न जाऊँगी।

बिहारी : अच्छा, अब यहाँ से ये तश्तरियाँ उठा ले जा। रात हो आयी, अब कौन मिलने-मिलाने आएगा !

रामी : तुम भी कहीं मिल-मिला आए कि नहीं !

बिहारी : हो तो आया। उनके यहाँ भी गया था, जो आज मेरे यहाँ की पूजा में शरीक नहीं हुए। (**रुककर**) हाँ, एक बात बता—मासी ने होली मनाई है न !

रामी : तुम्हारा कहना पूरा करने के लिए शायद कोई एकाध पकवान बनाया था। (**रुककर**) शान्ति ने यहीं खाया था। मासी के लिए भी मैंने सब कुछ भेज दिया था। पर उसका जी तो बौखलाया हुआ है—करे क्या बेचारी ! वह कहती थी—इंसपेक्टर ने जो रुपया दिया था, लालाजी को चाहिए था वह रुपया उसे वापस न करते। ले लेते। वे मेरे अमानत के रुपये हैं।

बिहारी : नासमझ है मासी, बेवक़ूफ़ कहीं की···अमानत के रुपये, बेवक़ूफ़ औरत !

रामी : पाँच हज़ार रुपया कम नहीं होता, बहुत रो रही थी कल बेचारी !

बिहारी : रोकर क्या होगा !

[सहसा बाहर जीने पर शान्ति की चीख़ उभरती है। बिहारी घूमकर दौड़ना ही चाहता है कि शान्ति डरी हुई मृगी की भाँति उसी क्षण भागकर बिहारी के दामन में छिप जाती है।]

बिहारी : क्या है ? बता क्या है ? रुक, मैं ख़ुद देखता हूँ।

[शान्ति से छुड़ाकर बाहर भागता है, शान्ति डरी हुई रामी के गले में चिपक जाती है और सिसकती रहती है। कुछ ही क्षण बाद बिहारी आवेग में लौटता है। उसके पीछे-पीछे घबड़ायी हुई मासी आती है।]

बिहारी : (**शान्ति के सिर को पकड़ लेता है**) क्या बात हुई, बोलती क्यों नहीं। जब तक बोलेगी नहीं, कुछ नहीं होगा। इस गली में हज़ारों रोती हैं—लेकिन ऐसा रोना बाँझ है जिसमें कोई बोल न हो ! जल्दी बोल सत्ती, नहीं तो मैं तेरा ही गला घोंट दूँगा।

मासी : (**बीच ही में**) वह मुआ इंसपेक्टर आया था।

बिहारी : तुम चुप रहो। बता सत्ती !···तू बता···बोल तू।

शान्ति : (**रुँधे कण्ठ से**) तीन-चार आदमियों के साथ इंसपेक्टर आया था। (**सिसक उठती है**) मासी के सामने ढेर-सा रुपया गिन रहा था। मुझे दो गहने पहनाने लाया था 'बेसर' और 'बाली'। मुझे पकड़ने दौड़ा।

[रोने लगती है।]

बिहारी : (**मासी को देखता है**) रुपये ले लिए न !

मासी : वह कहता था, वे मेरे ही रुपये थे !

बिहारी । उन रुपयों पर तुम्हारी कोई अपनी मुहर थी या सरकार की ! वे गहने किसके थे ?

[मासी सिर झुकाए चुप है ।]

बिहारी : मासी, जवाब दो मुझे ! मैं आज तुमसे जवाब चाहता हूँ !

मासी : मैं बौखला गई हूँ लाला !

बिहारी : तुझे बौखला देने के ही लिए तो तेरे रुपयों की चोरी की गई है ! खूब समझ-बूझकर काम हुआ है ।

मासी : मैं माफ़ी चाहती हूँ !

बिहारी : किस बात की माफ़ी ! कौन देगा माफ़ी ! रुपया किसी को माफ़ नहीं करता । वह एक भँवर बनाता है, जिसमें से कोई नहीं निकल सकता ! (**रुककर**) इस कोठे पर तेरे चार पुश्त बीत गए । हर पुश्त चाहता था कि वह इस गली से बाहर निकल जाए—लेकिन क्यों नहीं निकल सका !

[मासी चुप है ।]

बिहारी : रामी सत्ती को भीतर ले जाओ !

[दोनों चली जाती हैं ।]

बिहारी : तुमने सोचा होगा, चलो खोए हुए रुपयों में से कुछ तो वापस आ रहा है !

मासी : बिलकुल यही बात !

बिहारी : लेकिन वह रुपया सौदे का था । यह एक बहुत बड़ी साजिश है और बहुत बड़े पैमाने पर । न जाने कितने लोगों के हाथ हैं इसमें ! मेरी शान्ति बेटी के पीछे जैसे एक पूरा गिरोह काम कर रहा है । (**रुककर**) यही तुम्हारी परीक्षा है मासी ! शान्ति की माँ मुझसे एक भीख माँग गई है । कोठे से निकलकर मुझे शान्ति को किसी गृहस्थ के घर में देना है । मासी, इस इम्तहान को हमें पास करना है—फिर शान्ति के साथ तुम्हारी मुक्ति है, तुम्हारे उस चार पुश्त की मुक्ति है, जो इसी कोठे में घुट-घुटकर मरे हैं !

[मासी बुरी तरह फफककर रो उठी है ।]

बिहारी : रोओ नहीं मासी ! शान्ति इस पूरे घर की बेटी है ! दुआ दो, वह ज़रूर इस गली से बाहर चली जाएगी—घर मिलेगा उसे ! दुआ दो उसे—बस, जीतना है इस बाज़ी को ! ···रोओ नहीं, जाओ घर में (**जाने लगती है**) शान्ति के सामने मत रोना, खबरदार ।

[मासी चली जाती हैं । बिहारी तख्त पर चिन्ता मारकर बैठता है । भीतर से शांति हुक्क़ा भरकर दे जाती है । बिहारी हुक्क़ा पीने लगता है । कुछ ही क्षण बाद एक एक करके शम्भूलाल, लड्डन, नैनू अहमद और इंसपेक्टर, बिहारी को रहस्यमय दृष्टि से देख-देखकर गुज़रते हैं । बिहारी निर्विकार रूप से बैठा है—द्रष्टा की तरह । कुछ क्षणों के बाद, अन्त में एक अजनबी आदमी प्र
दाढ़ी-मोंछ सफ़ाचट, महीन धोती, कढ़ा हुआ अ
बटन खुले हैं, जिससे उसके गले में सोने की ज़ंजीर
'चेन' वाली घड़ी ।]

आदमी : (**बरबस मोढ़े पर बैठकर**) आप ही हैं लाला

बिहारी : हूँ तो···क्यों क्या बात है ?

आदमी : मासी और जानकी बाई की लड़की शान्ति

बिहारी : नहीं तो, यह किसने बताया !

आदमी : बताया नहीं, यह सच है !

बिहारी : तुमसे मतलब ! कौन हो तुम मुझसे ऐसी बा

आदमी : मैं एक आदमी हूँ । बम्बई में मेरा व्यापार
कीजिए लालाजी—इतमीनान रखिए । मैं यहाँ अ
आया हूँ । ज़रा मासी को बुलाइए !

बिहारी : बात क्या है ?

आदमी : यक़ीन करेंगे ? मासी को बुला लीजिए, तब
बारह वर्ष हुए शान्ति के नाम पर मासी ने मुझ
निकालता है) कागज देखिए—कुल रक़म यहाँ
नहीं । देखिए, चारों ओर मासी के दस्तख़त हैं—

बिहारी : तो !

आदमी : शान्ति का सौदा हो चुका है—बारह साल प
उसे यहाँ से ले जाने के लिए आया हूँ । बम्बई में

बिहारी : हूँ ! होगा, 'कंसर्न' तुम्हारा—(**कटुता से**)
हज़ार आदमी इस गली में घूमते हैं । चार सौ बीस

आदमी : (**हँसता है**) लालाजी, ज़रा होश में आइए !
क्या ?

बिहारी : मैं रोज ही पीता हूँ ।

आदमी : मेरे पास सबूत है लाला ! (**और कागज़**
लिखे हुए कागज़ात !

[बिहारी ग़ौर से देखने लगता है ।
सारा रंग उड़ जाता है । मासी की
को देखते ही डर से पीला पड़

बिहारी : डरो नहीं—ख़बरदार

मासी : (**त्रस्त स्वर में**) यह
लिए हैं···यही है
हँसता है ।)

कोई अपनी मुहर थी या सरकार की ! वे गहने किसके

]

आज तुमसे जवाब चाहता हूँ !

तो तेरे रुपयों की चोरी की गई है ! खूब समझ-

बेवा माफ़ी ! रुपया किसी को माफ़ नहीं करता ।
कोई नहीं निकल सकता ! (रुककर) इस कोठे
चाहता था कि वह इस गली से बाहर निकल
!

रुपयों में से कुछ तो वापस आ रहा है !

बहुत बड़ी साजिश है और बहुत
हैं इसमें ! मेरी शान्ति बेटी के पीछे
) यही तुम्हारी परीक्षा है मासी !
से निकलकर मुझे शान्ति को
को हमें पास करना है—फिर
की मुक्ति है, जो इसी कोठे

! बुला दो, वह ज़रूर इस
उसे—बस, जीतना है
है) शान्ति के सामने

है। भीतर से शांति
ही क्षण बाद एक
रहस्यमय दृष्टि
तरह । कुछ

क्षणों के बाद, अन्त में एक अजनबी आदमी प्रवेश करता है—घुंघराली जुल्फ़ें, दाढ़ी-मोंछ सफ़ाचट, महीन धोती, कढ़ा हुआ आबेरवाँ का कुरता जिसके सारे बटन खुले हैं, जिससे उसके गले में सोने की ज़ंजीर दिख रही है। कलाई में सोने की 'चेन' वाली घड़ी ।]

आदमी : **(बरबस मोढ़े पर बैठकर)** आप ही हैं लाला बिहारीलाल ?

बिहारी : हूँ तो···क्यों क्या बात है ?

आदमी : मासी और जानकी बाई की लड़की शान्ति के सरपरस्त हैं आप !

बिहारी : नहीं तो, यह किसने बताया !

आदमी : बताया नहीं, यह सच है !

बिहारी : तुमसे मतलब ! कौन हो तुम मुझसे ऐसी बात करने वाले ?

आदमी : मैं एक आदमी हूँ । बम्बई में मेरा व्यापार चलता है ! ज़रा क़ायदे से बातें कीजिए लालाजी—इतमीनान रखिए। मैं यहाँ अपने एक निहायत ज़रूरी काम से आया हूँ। ज़रा मासी को बुलाइए !

बिहारी : बात क्या है ?

आदमी : यक़ीन करेंगे ? मासी को बुला लीजिए, तब यक़ीन होगा। **(रुककर)** आज बारह वर्ष हुए शान्ति के नाम पर मासी ने मुझसे इतने रुपये लिए हैं; **(कागज निकालता है)** कागज देखिए—कुल रक़म यहाँ लिखी है। यह कोई फ़रज़ी काम नहीं । देखिए, चारों ओर मासी के दस्तख़त हैं—तारीखें भी देखिए !

बिहारी : तो !

आदमी : शान्ति का सौदा हो चुका है—बारह साल पहले हो चुका है—और आज मैं उसे यहाँ से ले जाने के लिए आया हूँ। बम्बई में मेरा बहुत बड़ा 'कंसर्न' है !

बिहारी : हूँ ! होगा, 'कंसर्न' तुम्हारा—**(कटुता से)** लेकिन तुम जैसे तीन लाख पैंसठ हज़ार आदमी इस गली में घूमते हैं। चार सौ बीस और बिहारीलाल से !

आदमी : **(हँसता है)** लालाजी, ज़रा होश में आइए ! आज होली थी, कुछ पी रखी है क्या ?

बिहारी : मैं रोज़ ही पीता हूँ ।

आदमी : मेरे पास सबूत है लाला ! **(और कागज निकालता है)** यह देखिए मासी के लिखे हुए कागज़ात !

[बिहारी ग़ौर से देखने लगता है। आदमी हँसता रहता है। बिहारी के मुख का सारा रंग उड़ जाता है। मासी को पुकारता है। मासी आती है और उस आदमी को देखते ही डर से चीख पड़ती है और बिहारी के क़दमों में छिपने लगती है ।]

बिहारी : डरो नहीं—खबरदार मासी ! यह क्या है—देखो इसे ।

मासी : **(त्रस्त स्वर में)** यह आदमी है···वही है···वही···जिसने मेरे सारे नोट चुरा लिए हैं···यही है वह नोट बनाने वाला ! पुलिस बुलाओ लाला ! **(आदमी केवल हँसता है ।)**

मासी : पुलिस···पुलिस ! मैं पहचान रही हूँ···तब इसने अपना चेहरा बदल रखा था ···मैं पहचान रही हूँ।

बिहारी : डरो नहीं, क़ायदे में रहो। इन काग़ज़ों को देखो—झूठ मत बोलना, क्या यह सच है !

[मासी चुप है। दरवाज़े पर रामी के संग शान्ति दिखाई देती है—बिहारी उन्हें डाँटकर भीतर भगा देता है और बाहर से किवाड़ बन्द कर लेता है।]

बिहारी : हूँ···तो ये काग़ज़ात सच हैं !

मासी : (**बिहारी के पैर पकड़ लेती है**) पर यह भी सच है कि मैंने अपने उन सब रुपयों को उसी दिन के लिए जोड़ रखा था। (**रो पड़ती है**) मैं इस आदमी के सारे रुपये चुका देती ! लेकिन इसने तो···(**सहसा गम्भीर और कटु हो जाती है**) क्या पुलिस इसे गिरफ्तार नहीं कर सकती !···

आदमी : पुलिस ! (**हँसता है**) पुलिस सबूत चाहेगी ! (**हँसता है।**)

मासी : दूँगी मैं सबूत !

आदमी : पहले मेरा सौदा चुकाओ !

बिहारी : मैं चुकाता हूँ !

[उठता है, बन्द तिजोरी में से नोटों के बण्डल गिनने लगता है।]

आदमी : मैं रुपये नहीं, अपना माल लेने आया हूँ !

बिहारी : ले लो रुपये, बिहारीलाल तुमसे हाथ जोड़ रहा है···किसी आदमी से नहीं जोड़ा था। मान जाओ मेरी बात ! मैं एहसानमन्द रहूँगा।

आदमी : लेकिन रुपया सूद दर सूद के साथ लूँगा। बारह साल के सूद-दर-सूद ! मूलधन के साथ सूद कौन भरेगा ?

मासी : मैं भरूँगी (**आगे बढ़ती है**) आओ कोठे पर चलो, उठो। लाला बाबू तब तक तुम मूलधन गिन डालो सूद-दर-सूद के लिए मेरे पास अब भी कुछ रकम है। मैं दूँगी, चलो।

[आदमी को उठा ले जाती है। बिहारी काग़ज़ात देख-देखकर नोट के बण्डल सहेजता है। कुछ ही क्षणों के बाद मासी लौटती है—चेहरा बिलकुल सफ़ेद पड़ गया है। आँखें फटी-फटी हैं, जैसे अभी बेहोश हो जाएगी !]

मासी : मैंने सब चुकता कर दिया लाला बाबू ! ···वह चला गया। रखो ये रुपये मेरे लाला बाबू···वह चला गया, सूद-दर-सूद के साथ चला गया।

[काग़ज़ उठाकर फाड़ने लगती है।]

बिहारी : मासी !

मासी : वह मर गया ! (**बिहारी विस्फारित नेत्रों से ताकता रह जाता है**) एक बीड़े पान में मर गया। आज सुबह वह ज़हर मैं अपने लिए लाई थी।

[बिहारी बन्द किवाड़ को घबड़ाहट के साथ खो

मासी : उस जहर को मैंने अपने लिए रख छोड़ा था !

बिहारी : यह क्या किया तूने ?

मासी : मैंने किया, और मैं क़बूल कर लूँगी लाला बा

है मेरी शान्ति ! मैं बाज़ी जीत गई न लाला बा

[भीतर से रामी के साथ शान्ति आती है, मासी

जाती है। तेज़ी से परदा गिरता है।]

मैं पहचान रही हूँ···तब इसने अपना चेहरा बदल रखा था

मैं रहो। इन काग़ज़ों को देखो—झूठ मत बोलना, क्या यह

पर रामी के संग शान्ति दिखाई देती है—बिहारी उन्हें
ता है और बाहर से किवाड़ बन्द कर लेता है।]

त सच है!

लेती है) पर यह भी सच है कि मैंने अपने उन सब रुपयों
ोड़ रखा था। (रो पड़ती है) मैं इस आदमी के सारे रुपये
ने तो···(सहसा गम्भीर और कटु हो जाती है) क्या
कर सकती!···

पुलिस मंज़ूर चाहेगी! (हँसता है।)

ो!

नोटों के बण्डल गिनने लगता है।]

मैंने आया हूँ!

से हाथ जोड़ रहा है···किसी आदमी से नहीं
! मैं एहसानमन्द रहूँगा।

साथ लूँगा। बारह साल के सूद-दर-सूद!

कोठे पर चलो, उठो। लाला बाबू तब तक
लिए मेरे पास अब भी कुछ रकम है। मैं

कागज़ात देख-देखकर नोट के बण्डल
टती है—चेहरा बिलकुल सफ़ेद पड़
हो जाएगी!]

चला गया। रखो ये रुपये मेरे
चला गया।

रह जाता है) एक
ाई थी।

[बिहारी बन्द किवाड़ को घबड़ाहट के साथ खोलता है।]

मासी : उस जहर को मैंने अपने लिए रख छोड़ा था! अब मैं न मरूँगी।

बिहारी : यह क्या किया तूने?

मासी : मैंने किया, और मैं क़बूल कर लूँगी लाला बाबू! मैं क़बूल करूँगी। अब मुक्त है मेरी शान्ति! मैं बाज़ी जीत गई न लाला बाबू!

[भीतर से रामी के साथ शान्ति आती है, मासी चीखकर शान्ति के गले से लिपट जाती है। तेज़ी से परदा गिरता है।]

चौथा आदमी

पात्र

पहला आदमी
दूसरा आदमी
तीसरा आदमी
चौथा आदमी
एक अन्धा भिखारी

[मध्यम कोटि के शहर में घनी बस्ती का एक तिर
घण्टे की देर है। पृष्ठ भूमि में खोंचे वाले, फल-
खिलौने, सीटी-बाजेवाले आदि की विभिन्न स्तर
रहती हैं।

परदा उठते ही एक ओर से मझोले क़द का
में तेज़ी से दौड़ा आता है और तिराहे पर खड़ा हो
पास से गुज़रते हुए लोगों से—रंगमंच पर केवल क
है।]

पहला आदमी : सुनो मेरे बाबू !
महज़ एक सवाल है
महज़ एक सवाल है।
सुनो मेरे भइया !
महज़ एक सवाल है
महज़ एक सवाल है।
रुको मेरे बाबू,
रुको मेरे भइया,
देखो क्या हाल है
पेट का सवाल है।
महज़ यही सवाल है
महज़ यही सवाल है।
सुनो मेरे बाबू
रुको मेरे भइया,
सुनो मेरे मालिक
रुको मेरे राजा।
देखो मेरी हालत
भेजो मेरी लानत
पेट का सवाल है !
सुनो मेरे बाबू
रुको मेरे भइया !
देखो मेरे कपड़े

चौथा आदमी

पात्र

पहला आदमी
दूसरा आदमी
तीसरा आदमी
चौथा आदमी
अन्धा भिखारी

[मध्यम कोटि के शहर में घनी बस्ती का एक तिराहा। सन्ध्या होने में अभी एक घण्टे की देर है। पृष्ठ भूमि में खोंचे वाले, फल-सब्जी वाले तथा बच्चों के लिए खिलौने, सीटी-बाजेवाले आदि की विभिन्न स्तर की आवाजें इधर-उधर उभरती रहती हैं।

परदा उठते ही एक ओर से मझोले क़द का एक आदमी अजीब फटी हालत में तेज़ी से दौड़ा आता है और तिराहे पर खड़ा हो दोनों हाथ फैला-फैलाकर (आस पास से गुज़रते हुए लोगों से—रंगमंच पर केवल कल्पना) बेतहाशा कहने लगता है।]

पहला आदमी : सुनो मेरे बाबू !
महज़ एक सवाल है
महज़ एक सवाल है।
सुनो मेरे भइया !
महज़ एक सवाल है
महज़ एक सवाल है।
रुको मेरे बाबू,
रुको मेरे भइया,
देखो क्या हाल है
पेट का सवाल है।
महज़ यही सवाल है
महज़ यही सवाल है।
सुनो मेरे बाबू
रुको मेरे भइया,
सुनो मेरे मालिक
रुको मेरे राजा।
देखो मेरी हालत
भेजो मेरी लानत
पेट का सवाल है !
सुनो मेरे बाबू
रुको मेरे भइया !
देखो मेरे कपड़े

देखो मेरी काया !
दो दिन हुए हैं
कुछ नहीं खाया
कुछ नहीं खाया !
देखो मेरा पेट,
देखो मेरी काया
रुको मेरे बाबू,
सुनो मेरे भइया !

[जैसे कोई उसकी हथेली पर दो पैसे रखता है, और अभिनय से उसे वह स्वीकार करता है ।]

सुनो मेरे बाबू !
देखो मेरे भइया !
कोई खास सवाल नहीं
कोई बड़ी माँग नहीं
रुपया दो रुपया नहीं
रुपया-अठन्नी नहीं
अठन्नी चवन्नी नहीं
चवन्नी दुअन्नी नहीं
पीली एकन्नी भी नहीं
महज़ दो पैसा,
महज़ दो पैसा,
पेट का सवाल है
महज यही हाल है !

[जैसे कोई पास जाते हुए कुछ फेंककर देता है और यह आदमी अभिनय से उसे लोक लेता है ।]

सुनो मेरे बाबू !
सुनो मेरे मालिक !
ऐसे न दो मुझे भइया,
ऐसे फेंको न रुपैया !
बड़ी खींच-तान
बड़ा मुश्किल ज़माना है,
आपके लिए पैसे-दो पैसे
चार पैसे की क्या बात
मेरे लिए तो यही कारूँ का खज़ाना है !

[फिर कुछ पाने का अभिनय करता है ।]

खुश रहो
दुआ लो इस भूखे ग़रीब से ।
सुनो मेरे बाबू
सुनो मेरे भइया !
सुनो तो, चाहे मानो न मानो
इस भूखी काया में
खुदा परवरदिगार बैठा है !
फ़कीर बैठा है
साधू बैरागी
मज़ार का पीर बैठा है !
खुश रहो
दुआ लो इस भूखे ग़रीब से ।

[जैसे लगातार कई लोगों से उसे पैसे मिलते हैं ।]

मैं कोई भिखमंगा भिखारी नहीं,
बस, दुर्दिन का फेर है
दो दिन की देर है !
लिखा है घर को
मँगाया है रुपया
क्या कहूँ
किससे कहूँ
कोई नहीं सुनता
कोई यक़ीन नहीं करता !
बीमार था
उतरा स्टेशन पर
बुखार की बेहोशी में सो गया
काट ली किसी ने जेब
सब कुछ ले गया
महज़ पेट छोड़ गया !
महज भूख छोड़
सुनो मेरे बाबू !
सुनो मेरे
महज पेट

[जैसे

पर दो पैसे रखता है, और अभिनय से उसे वह स्वीकार

ा है और यह आदमी अभिनय से उसे

[फिर कुछ पाने का अभिनय करता है।]

खुश रहो
दुआ लो इस भूखे ग़रीब से।
सुनो मेरे बाबू
सुनो मेरे भइया !
सुनो तो, चाहे मानो न मानो
इस भूखी काया में
खुदा परवरदिगार बैठा है !
फ़क़ीर बैठा है
साधू बैरागी
मज़ार का पीर बैठा है !
खुश रहो
दुआ लो इस भूखे ग़रीब से।

[जैसे लगातार कई लोगों से उसे पैसे मिलते हैं।]

मैं कोई भिखमंगा भिखारी नहीं,
बस, दुर्दिन का फेर है
दो दिन की देर है !
लिखा है घर को
मँगाया है रुपया
क्या कहूँ
किससे कहूँ
कोई नहीं सुनता
कोई यक़ीन नहीं करता !
बीमार था
उतरा स्टेशन पर
बुखार की बेहोशी में सो गया
काट ली किसी ने जेब
सब कुछ ले गया
महज़ पेट छोड़ गया !
महज़ भूख छोड़ गया !
सुनो मेरे बाबू !
सुनो मेरे भइया
महज़ पेट छोड़ गया !

[जैसे ज़मीन पर कुछ पैसे फेंके हैं उन्हें उठाता हुआ।)

अब बहुत है
बहुत है अब
भर लूंगा पेट
कट जाएगा दिन !

[जाने लगता है।]

इस शहर को दुआ
इस मुहल्ले को दुआ
इस तिराहे को दुआ
नन्हे-मुन्नों को दुआ
आदमी-औरत को दुआ !

[अदृश्य हो जाता है, पृष्ठभूमि की आवाज़ों से सारा वातावरण कुछ क्षणों के लिए भर जाता है। एक ओर से बायें हाथ में छोटी-सी घण्टी बजाता हुआ दूसरा आदमी आता है, साधारण आदमी-जैसे कपड़े पहने हुए।

रंगमंच पर आता है और चुपचाप, दायीं हथेली फैलाये घण्टी बजाता रहता है, कुछ क्षणों बाद एक तीसरा आदमी, सफ़ेद धोती और कुरता पहने विंग के पास आता है।]

तीसरा आदमी : क्या है ?
यह क्या बजा रहा है ?
पागल है क्या ?

[दूसरा आदमी सिर हिलाता है, और अपना मुंह दिखाता है। तीसरे आदमी का प्रवेश।]

तीसरा आदमी : **(बिलकुल पास आकर)**
क्या है ? बोल नहीं पाता !
क्या ?
अरे ! जबान ही नहीं है ?

[दूसरा आदमी हाथ से अपनी ज़बान चटकाता है।]

तीसरा आदमी : जबान तालू में मिली है ?
फिर कैसे कहेगा ?
कैसे समझाएगा ?

[दूसरा आदमी हाथ और मुँह के मूक इशारे से बताता है।]

तीसरा आदमी : हाँ, हाँ ! मुझे पता है
तेरे यहाँ श्रीमद्भागवत बैठेगी
ढाई सौ ब्राह्मण का भोजन !

[दूसरा आदमी आनन्द से स्वीकार करता है
लगता है।]

तीसरा आदमी : भाइयो ! सज्जनो !
एक क्षण के लिए सुनो
धर्म कहता है, उसको ज़रूर सुनो--
जो कुछ कह नहीं पाता
जो जन्मजात गूँगा है
बेज़बान है !
बात यह है कि **(विराम)**
यह कोई भिखमंगा नहीं,
मुफ़लिस या भूखा-नंगा नहीं !
यह कोई धोखा नहीं, स्टण्ट नहीं
और भाइयो ! मैं इसका कोई एजेण्ट नहीं !
महज़ जानता हूँ इसे। **(विराम)**
ऐसा हुआ कि
इस बेज़बान, गूंगे अपाहिज पर
तीन किता मुक़दमा चला
दो पुलिस का
और तीसरा दीवानी का !
तब यह ग़रीब भगवान् की शरण गया
जो सच्चिदानन्द है
सर्वघटव्यापी
आनन्दकन्द है
और मनौती की उससे
हे मालिक ! हे परमेश्वर !!
अगर जिता दे तू तीनों मुक़दमे
मैं तेरे बन्दों से भीख माँग-माँग
तेरी महिमा सुनूँगा !

[दूसरा आदमी बैठे ...

तीसरा आदमी : और ...
आखिर सुन ...
और यह ...

[दूसरा ...

तीसरा ...

[दूसरा आदमी आनन्द से स्वीकार करता है और बीच-बीच में घण्टी बजाने लगता है।]

तीसरा आदमी : भाइयो ! सज्जनो !
एक क्षण के लिए सुनो
धर्म कहता है, उसको जरूर सुनो--
जो कुछ कह नहीं पाता
जो जन्मजात गूँगा है
बेज़बान है !
बात यह है कि (**विराम**)
यह कोई भिखमंगा नहीं,
मुफ़लिस या भूखा-नंगा नहीं !
यह कोई धोखा नहीं, स्टण्ट नहीं
और भाइयो ! मैं इसका कोई एजेण्ट नहीं !
महज़ जानता हूँ इसे। (**विराम**)
ऐसा हुआ कि
इस बेज़बान, गूँगे अपाहिज पर
तीन किता मुक़दमा चला
दो पुलिस का
और तीसरा दीवानी का !
तब यह ग़रीब भगवान् की शरण गया
जो सच्चिदानन्द है
सर्वघटव्यापी
आनन्दकन्द है
और मनौती की उससे
हे मालिक ! हे परमेश्वर !!
अगर जिता दे तू तीनों मुक़दमे
मैं तेरे बन्दों से भीख माँग-माँग
तेरी महिमा सुनूँगा !

[दूसरा आदमी जैसे आनन्दविभोर हो बड़ी तेज़ी से घण्टी बजा उठता है।]

तीसरा आदमी : और असंख्य कान वाले ने
आख़िर सुन ही ली इस बेज़बान की बात !
और यह तीनों क़िता जीत गया !

[दूसरा आदमी फिर घण्टी बजाता है और कुछ गूँगे स्वर में संकेत करता है।]

तीसरा आदमी : हाँ-हाँ ! घबड़ा नहीं,

बहुत मिलेगा तुझे !
ले ! पहले मुट्ठी में ले

[पाकेट से निकाल कर कुछ देता है ।]

ले ले बढ़कर सब सज्जनों से
सब दे रहे हैं !
बढ़ जा ! (**विराम**)
सज्जनो, गुंगे का स्वर है ।

तुलसी पंछिन के पिए घटे न सरिता नीर,
दान दिए धन न घटे, जो सहाय रघुवीर ।

[दूसरा आदमी झोली फैलाए आगे-आगे बढ़ता है, उसके पीछे-पीछे तीसरा आदमी जाता है । पृष्ठभूमि की विभिन्न आवाज़ों से फिर वातावरण भर जाता है । कुछ क्षणों बाद चौथे आदमी का प्रवेश । दायें हाथ में सहारे की लकड़ी, बायें हाथ में भिक्षापात्र । ग़रीब फटे कपड़ों में ।]

चौथा आदमी : (**बहुत ही मोटे स्वर में, जैसे दर्द घोलकर**)
बेसहारा
अन्धा ग़रीब मुहताज !
क़िस्मत का मारा
अन्धा ग़रीब मुहताज !
खुदा के खुशनसीब बन्दे
हैं दो दुनिया तुम्हारे पास
एक अपनी, एक देखने की,
मेरे पास एक भी नहीं
दोनों लुट गयीं कब की !

[जैसे कोई पैसे डालता है ।]

खुश रहो !
मेहरबान हो खुदा तुम पर ।
खुशियाँ आएँ
दौलत बरसे !
सीताराम ! सीताराम !
श्री सीताराम ! जो दे उसका भी भला
जो न दे उसका भी भला ।
मेरी रोशनी ले ली खुदा तूने
पर सब पर करम रख जिल्लेइलाही तू !

[फिर जैसे कोई पैसे डालता है ।]

राहत दे खुदा सबको,
इज्जत दे खुदा सबको !
न हो कोई मुझ-सा ग़रीब,
न हो कोई मुझ-सा बदनसीब !
न पड़े मेरा साया किसी पर,
न हो ऐसी दाया किसी पर !

[फिर जैसे कोई देता है ।]

तभी खुदा ने कहा एक दिन,
मुझसे मेरा बन्दा बड़ा है !
मैं सच्चा गवाह हूँ उसका
मैं बेपनाह हूँ उसका !
पनाह देनेवालो !
लेना हश्र के दिन
मेरी गवाही !

[उसी समय पृष्ठभूमि से यह स्वर उभरता है—'मे
और क्षण-भर बाद एक अन्धा भिखारी प्रविष्ट होता
हुआ ।]

भिखारी : अब न जिला
उठा ले मेरे मौला !
हे अन्धे की लकड़ी
अन्धों के राम !

[रुककर टटोलने *लगता है ।*]

तुलसी यह जग आय के
न जाने केहि भेस में

कौन हो भाई ?
राम राम, जै सीताराम !

चौथा आदमी : तुम कौन हो
भिखारी : कोई नहीं राम
चला आया इधर
तुम्हारी बोल सुनकर
बड़ा ही दर्द था
चौथा आदमी : कैसे
भिखारी : सुनकर
क्या कुछ

कुछ देता है।]

ों से

।

छिन के पिए घटे न सरिता नीर,
धन न घटे, जो सहाय रघुवीर।

ए आगे-आगे बढ़ता है, उसके पीछे-पीछे तीसरा आदमी
भिन्न आवाजों से फिर वातावरण भर जाता है। कुछ
वेश। दायें हाथ में सहारे की लकड़ी, बायें हाथ में
में।]

र में, जैसे दर्द घोलकर)

राहत दे खुदा सबको,
इज़्ज़त दे खुदा सबको !
न हो कोई मुझ-सा ग़रीब,
न हो कोई मुझ-सा बदनसीब !
न पड़े मेरा साया किसी पर,
न हो ऐसी दाया किसी पर !

[फिर जैसे कोई देता है।]

तभी खुदा ने कहा एक दिन,
मुझसे मेरा बन्दा बड़ा है !
मैं सच्चा गवाह हूँ उसका
मैं बेपनाह हूँ उसका !
पनाह देनेवालो !
लेना हश्र के दिन
मेरी गवाही !

[उसी समय पृष्ठभूमि से यह स्वर उभरता है—'मेरी गवाही अन्धों के मौला !' और क्षण-भर बाद एक अन्धा भिखारी प्रविष्ट होता है, लकड़ी के सहारे टटोलता हुआ।]

भिखारी : अब न जिला
उठा ले मेरे मौला !
हे अन्धे की लकड़ी
अन्धों के राम !

[रुककर टटोलने लगता है।]

तुलसी यह जग आय के सबसे मिलिए धाय।
न जाने केहि भेस में नारायण मिल जाय॥

कौन हो भाई ?
राम राम, जै सीताराम !

चौथा आदमी : तुम कौन हो ?

भिखारी : कोई नहीं राम !
चला आया इधर
तुम्हारी बोल सुनकर राम,
बड़ा ही दर्द था तुम्हारी बोल में राम !

चौथा आदमी : कैसे पहचाना ?

भिखारी : सुनकर राम !
क्या कुछ आज मिला नहीं राम ?

लो मुझसे लो राम।

[अन्धा भिखारी अपनी मुट्ठी की सारी कमाई उसके पात्र में डाल देता है।]

चौथा आदमी : कौन ?

[एकाएक आँखें खुल जाती हैं।]

अन्धा भिखारी : कोई नहीं !
महज़ एक छाया मेरे राम !

[उसी क्षण परदा गिरता है। कुछ क्षणों बाद फिर परदा उठता है। चारों ओर सन्नाटा है, बहुत मद्धिम रोशनी। एक ओर से पहला, दूसरा और तीसरा आदमी बिलकुल साफ़ कपड़ों में स्वस्थ-प्रसन्नचित प्रवेश करते हैं। पहले आदमी के गले में फूलों की माला है।]

पहला आदमी : कल कोई और तिराहा।

दूसरा आदमी : अब चौराहा क्यों नहीं ?

तीसरा आदमी : पहले सब तिराहे ख़त्म कर लो, हाँ !

पहला आदमी : तो कल कोई और तिराहा।

दूसरा आदमी : पर मुहल्ला यही।

तीसरा आदमी : बिलकुल यही।

पहला आदमी : तो पहली बात पास। दूसरी बात यह कि ड्यूटी चेंज, तरीके चेंज। यानी तुम बनोगे दवाफ़रोश और तुम होगे भिखारी और मैं रहूँगा अन्धा। और वह कहाँ गया ? कहाँ रह गया ?

[चौथे आदमी का प्रवेश। उन्हीं गन्दे फटे कपड़ों में आकर खड़ा हो जाता है।]

पहला आदमी : अबे तूने क्या सूरत बना रखी है ? जैसे अब तू सदा इसी अन्धे का ही पार्ट अदा करेगा।

दूसरा आदमी : 'मेक-अप' तो बदस्तूर है।

तीसरा आदमी : अरे क्यों नहीं, बड़ी कमाई की है आज इसने अन्धे की पार्ट में।

पहला आदमी : अपना कानपुर बड़ी बुरी जगह थी। खाँसते-छींकते पुलिस ! है तो शहर छोटा ही, पर अपनी ज़िन्दगी काटने को काफ़ी है ! बड़े सीधे-सादे लोग हैं यहाँ के !

दूसरा आदमी : कोई शुबहा नहीं करता। कोई छानबीन नहीं, कोई सवाल-जवाब नहीं !

तीसरा आदमी : कानपुर में तो छोटे-छोटे लौंडे भी कहते थे, 'लाओ देखें पहले ज़बान', 'आँख खोलो पहले'।

पहला आदमी : **(चौथे आदमी का कन्धा पकड़ कर)** अरे बोल भाई, बात क्या है ? ले, तेरे लिए मैं यह हार लाया हूँ।

[आगे बढ़कर हार पहना देता है, चौथा आदमी हा
देता है।]

चौथा आदमी : मज़ाक मत करो उस्ताद !

पहला आदमी : क्या बात हुई भाई ! किसी ने कुछ कहा-
बात है ?

दूसरा आदमी : कल भी यह अन्धा भिखारी बनना चाहत

चौथा आदमी : चुप रहो जी !

तीसरा आदमी : वरना ?

चौथा आदमी : ज़बान खींच लूँगा, अगर फिर ऐसा मज़ाक

पहला आदमी : मज़ाक !

[तीनों हँसते हैं।]

पहला आदमी : अजी क्या हो गया तुम्हें ? किसी ने कुछ

चौथा आदमी : आज से मैंने अपना पेशा छोड़ दिया !

पहला आदमी : **(आश्चर्य से)** क्या ?

शेष दोनों : क्या कहा जी ?

चौथा आदमी : आज से मैंने अपना पेशा छोड़ दिया ! अ
रहूँगा !

पहला आदमी : अजी, मज़ाक कर रहा है मज़ाक ! छोकड़ा

चौथा आदमी : छोकड़ा नहीं, मुरदा हो गया आज !
पेशा भी अख्तियार किया तो ठगहारी का ! और
रास्ते पर आकर ! और भिखमंगा भी कैसा,
विश्वासघात !

पहला आदमी : अरे यह तो फ़िलासफ़र हो

[चौथा आदमी आगे बढ़कर पहने
है।]

पहला आदमी : **(गुस्से से)**

चौथा आदमी : विश्वासघा
पर और रहीम के नाम
चीखकर पुकारना
कानपुर से आए
रात को चोरी-

[तीनों डर

[आगे बढ़कर हार पहना देता है, चौथा आदमी हार को उतार कर एक ओर फेंक देता है ।]

चौथा आदमी : मज़ाक मत करो उस्ताद !

पहला आदमी : क्या बात हुई भाई ! किसी ने कुछ कहा-सुना ? कोई तकलीफ़ ! क्या बात है ?

दूसरा आदमी : कल भी यह अन्धा भिखारी बनना चाहता है उस्ताद !

चौथा आदमी : चुप रहो जी !

तीसरा आदमी : वरना ?

चौथा आदमी : ज़बान खींच लूँगा, अगर फिर ऐसा मज़ाक किया !

पहला आदमी : मज़ाक़ !

[तीनों हँसते हैं ।]

पहला आदमी : अजी क्या हो गया तुम्हें ? किसी ने कुछ जादू-टोना तो··· !

चौथा आदमी : आज से मैंने अपना पेशा छोड़ दिया !

पहला आदमी : (**आश्चर्य से**) क्या ?

शेष दोनों : क्या कहा जी ?

चौथा आदमी : आज से मैंने अपना पेशा छोड़ दिया ! अब मैं तुम लोगों के संग नहीं रहूँगा !

पहला आदमी : अजी, मज़ाक़ कर रहा है मज़ाक़ ! छोकड़ा है न अभी !

चौथा आदमी : छोकड़ा नहीं, मुरदा हो गया आज ! रोज़ी भी की, तो चोरी की ! पेशा भी अख्तियार किया तो ठगहारी का ! और चोरी भी कैसी, भिखमंगों के रास्ते पर आकर ! और भिखमंगा भी कैसा, गूँगे और अन्धे भिखारियों के प्रति विश्वासघात !

पहला आदमी : अरे यह तो फ़िलासफ़र हो गया !

[चौथा आदमी आगे बढ़कर पहले आदमी के मुँह पर एक थप्पड़ मार बैठता है ।]

पहला आदमी : (**गुस्से से**) पकड़ लो हरामज़ादे को !

चौथा आदमी : विश्वासघात भी तो अन्धे-गूँगे भिखारियों के प्रति ! जेबकतरों के नाम पर और रहीम के नाम पर ! ···लो पकड़ लो मुझे ! पकड़ो नहीं तो मैं यहीं चीख़-चीख़कर पुकारूँगा इस सोये हुए मुहल्ले को—कि हम चोर हैं भिखमंगों के भेष में ! कानपुर से आए हैं—दिन-भर यहाँ गिरोह बाँधकर चार सौ बीसी करते हैं और रात को चोरी-डाका सीनाज़ोरी ।

[तीनों डर से एक-दूसरे को देखते रह जाते हैं ।]

चौथा आदमी : उस अन्धे भिखारी ने मेरी नक़ली आवाज़ पहचान ली ! मुझे चीरकर दो टुकड़े कर दिए उसने !

[तीनों भागते हैं ।]

चौथा आदमी : (**गुस्से से**) भाग गए ! मुझसे भागकर बच सकोगे ? चोर चोर से नहीं बच सकता ! (**रुककर उसी दिशा में देखता हुआ**) भागो, भागो ! मैं देख रहा हूँ तुम लोगों को ! (**चिल्लाता हुआ**) पुलिस ! पुलिस ! पुलिस !

[उसी दिशा में तेज़ी से भागता है, परदा गिरता है ।]

□

काल-पुरुष और अजन्त

पात्र

अनूप

चन्दू

प्रभा

मुन्नी

एक मेहमान

...नक़ली आवाज़ पहचान ली ! मुझे चीरकर

...भागकर बच सकोगे ? चोर चोर से नहीं
...(देखता हुआ) भागो, भागो ! मैं देख रहा हूँ
...! पुलिस ! पुलिस !

...गिरता है ।]

□

काल-पुरुष और अजन्ता की नर्त्तकी

पात्र

अनूप
चन्दू
प्रभा
मुन्नी
एक मेहमान

पहला दृश्य

समय : दो बजे दिन।

स्थान : एकाउण्ट्स ऑफ़िसर श्री अनूप कुमार के बँगले का कमरा।

[ऐसा कमरा जिसके पीछे अर्थात् दर्शकों के सामने कोई दरवाज़ा नहीं, केवल दायें-बायें ही दरवाज़े। दूर से कहीं लड़के-बच्चों का शोर सुनाई देता है। दायीं ओर के दरवाज़े से चन्दू का प्रवेश। अवस्था प्रायः पैंतालीस वर्ष।]

चन्दू : चलो दूर भागो ! मत शोर करो यहाँ ! (**गुस्से से**) गूँगी ! ओरे गूँगी ! भाग यहाँ से ! भागती है कि नहीं, अभी···।

[फेंककर मारने के लिए कुछ उठाने लगता है, तभी बायीं ओर बाथरूम से अनूप का प्रवेश। अवस्था तीस-बत्तीस वर्ष।]

अनूप : (**तौलिया चन्दू की ओर फेंककर, टाई की गाँठ ठीक करते हुए**) क्या है ?

चन्दू : जी, वही पगली गूँगी है साहब ! ऐसी खड़ी होती है कि हटने का नाम नहीं लेती ! और ये लड़के हैं कि खामखा शोर मचाते हैं उसके पीछे ! डाँटने पर अब भगे हैं !

अनूप : सुनो ! गूँगी को बुलाओ तो ज़रा ! यह क्यों आती है यहाँ ? तुम फाटक बन्द नहीं रखते क्या ?

चन्दू : जी, आप डेढ़ बजे लंच के लिए फाटक से भीतर आए न, लगता है उसके पीछे ही वह चली आयी। (**घूमकर पुकारता है**) चल गूँगी इधर आ ! (**रुककर**) गूँगी को यहाँ कमरे में बुला लूँ साहब ?

अनूप : नहीं ! पूछो उससे ! यह आए दिन क्यों आ टपकती है यहाँ ? इसे क्या चाहिए, पूछो ! चार-छह-दस जितने रुपये यह माँगे इसे दे दो और कह दो फिर कभी यहाँ न आए।

चन्दू : बोल रे (**संकेत से**) क्या चाहिए तुझे ? (**इशारे से**) कितने चाहिए ? चार ! चार रुपये चाहिए ! लेकिन फिर कभी यहाँ नहीं आएगी न ? आएगी तो बस !

[दाँत पीसकर रह जाता है।]

अनूप : लो, दे आओ ! (**चार रुपये देता है चन्दू को**) बाँध देना उसके कपड़े में ! और लड़कों को डाँट देना !

[चन्दू का प्रस्थान। टेलीफ़ोन की घण्टी बजती है

अनूप : (**फ़ोन पर**) जी ! मैं अनूप एकाउण्ट्स ऑफ़ि
थोड़ी देर में ! ठीक है ! हाँ, एक मेरे मेहमान आ
आए नहीं। शायद कुछ कह नहीं सकता ! जी !

[टेलीफ़ोन रख देते हैं। चन्दू लौटकर आता है।]

अनूप : बहूजी ने कब तक आने को कहा है चन्दू ?

चन्दू : साहब, बस आ ही रही होंगी। (**प्रसन्नता से**)

[दायें दरवाज़े से चन्दू का प्रस्थान। सामने से प्र

प्रभा : (**स्नेह-स्निग्ध स्वर में**) मे आइ कम इन सर !

अनूप : स्वागत हे ऋतुराज ! नहीं, अजन्ता की नर्त्तकी

प्रभा : धन्य हो महाप्रभु गन्धर्वराज !

[दोनों की उन्मुक्त हँसी।]

प्रभा : लंच ले लिया न ! बहुत अच्छे, शाबाश ! लो,
हूँ ! मुँह खोलो ! खोलो मुँह !

अनूप : एक शर्त ! अजन्ता की उसी नर्त्तकी की मुद्रा

प्रभा : मंजूर ! लेकिन तुम भी पद्मपाणि की मुद्रा में
बी रेडी ! मुँह खोलो ! शाबाश···!

अनूप : ऑल राइट !

[अनूप साहब उस मुद्रा में खड़ा होना चाहते हैं

प्रभा : प्लीज बी सीरियस ! रेडी···स्टेडी···!

अनूप : आप भी तो तब तक सीरियसली नाच

प्रभा : लीजिए ! चलिए आप मुद्रा बनाइए !

[प्रभा नृत्य की परिक्रमा पूरी कर
डालने को है, दरवाज़े पर चन्दू
मारे शर्म के अपनी ज़बान

प्रभा : (**चन्दू को देखकर**)

चन्दू : जी बदतमीज़ी नहीं !

प्रभा : अच्छा जाओ तुम !
बताइए, मैं यह क्या
दिमाग़ काम करेगा

अनूप : एक चीज़ है !

प्रभा : हार मानो

अनूप : अच्छा तु

[चन्दू का प्रस्थान । टेलीफ़ोन की घण्टी बजती है ।]

अनूप : **(फ़ोन पर)** जी ! मैं अनूप एकाउण्ट्स ऑफ़िसर बोल रहा हूँ ! क्या ? जी, थोड़ी देर में ! ठीक है ! हाँ, एक मेरे मेहमान आने वाले थे । कल ही आने को थे, आए नहीं । शायद कुछ कह नहीं सकता ! जी !

[टेलीफ़ोन रख देते हैं । चन्दू लौटकर आता है ।]

अनूप : बहूजी ने कब तक आने को कहा है चन्दू ?

चन्दू : साहब, बस आ ही रही होंगी । **(प्रसन्नता से)** वह देखिए आ भी गयीं !

[दायें दरवाज़े से चन्दू का प्रस्थान । सामने से प्रभा का प्रवेश ।]

प्रभा : **(स्नेह-स्निग्ध स्वर में)** मे आइ कम इन सर !

अनूप : स्वागत है ऋतुराज ! नहीं, अजन्ता की नर्त्तकी ! तुम्हारा शत-शत स्वागत !

प्रभा : धन्य हो महाप्रभु गन्धर्वराज !

[दोनों की उन्मुक्त हँसी ।]

प्रभा : लंच ले लिया न ! बहुत अच्छे, शाबाश ! लो, तुम्हारी वाली टॉफ़ी ले आयी हूँ ! मुँह खोलो ! खोलो मुँह !

अनूप : एक शर्त ! अजन्ता की उसी नर्त्तकी की मुद्रा में टॉफ़ी डालो मेरे मुँह में !

प्रभा : मंजूर ! लेकिन तुम भी पद्मपाणि की मुद्रा में खड़े होकर मुँह खोलो ! चलो, बी रेडी ! मुँह खोलो ! शाबाश…!

अनूप : ऑल राइट !

[अनूप साहब उस मुद्रा में खड़ा होना चाहते हैं, पर हँसी आ जाती है ।]

प्रभा : प्लीज बी सीरियस ! रेडी…स्टेडी…!

अनूप : आप भी तो तब तक सीरियसली नाचकर मुद्रा बनाइए ! चलिए…।

प्रभा : लीजिए ! चलिए आप मुद्रा बनाइए !

[प्रभा नृत्य की परिक्रमा पूरी कर उसी नर्त्तकी की मुद्रा में अनूप के मुँह में टॉफ़ी डालने को है, दरवाज़े पर चन्दू साहब कॉफ़ी का प्याला लिए खड़े रह जाते हैं और मारे शर्म के अपनी जबान निकाले रह जाते हैं ।]

प्रभा : **(चन्दू को देखकर)** अयँ ! यह क्या बदतमीज़ी है ?

चन्दू : जी बदतमीज़ी नहीं ! कॉफ़ी है कॉफ़ी !

प्रभा : अच्छा जाओ तुम ! **(रुककर अपने संग लाए हुए पैकेट को उठाकर)** अच्छा, बताइए, मैं यह क्या लायी हूँ ? बोलिए यह क्या चीज़ है ? कॉफ़ी पीते चलिए, दिमाग़ काम करेगा आपका !

अनूप : एक चीज़ है ! **(कॉफ़ी पीकर)** जानता हूँ मैं ।

प्रभा : हार मानो हार ! तुम कभी नहीं जान सकते जी !

अनूप : अच्छा तुम इतना बता दो कि तुम सिविल लाइन्स गयी थीं या चौक ?

प्रभा : ऊँहूँ ! मैं कुछ नहीं बताऊँगी ! और यह दिखाऊँगी भी नहीं !

अनूप : अच्छा ! अब मैं जान गया !

प्रभा : बताओ ! एक···दो···

अनूप : कुछ नहीं ! क्यों बताऊँ ? नहीं बताता !

प्रभा : तो हार मान गए ! तो यह देखो ! अरे रे, रुको तो ! खोलने तो दो !

अनूप : अरे ! यह क्या है ? अयँ क्या है यह ?

प्रभा : अब भी न जान सके ! हे पुरुष ! तुम रह गए बुद्धू के बुद्धू ! अजी तसवीर है तसवीर ! माताजी के चित्र की ऑयल पेण्टिंग !

अनूप : ऑयल पेण्टिंग ! इसका ओरिजनल फोटोग्रैफ़ कहाँ मिला तुम्हें ?

प्रभा : सही-सही बता दूँ ? उस दिन, उस दिन, जब (**हँस पड़ती है**) उस दिन दोपहर को, जब मैं आपके गरम कपड़ों को बड़े बॉक्स में से निकालकर धूप में फैला रही थी न, उस समय बॉक्स में सबसे नीचे एक बन्द लिफ़ाफ़े में यह छोटा-सा चित्र मिला ! है न माताजी का ? मेरा मन कह गया, हो न हो, यह माताजी का चित्र है ! (**रुककर**) यह उसी का तो एनलार्जमेण्ट है !

[अनूप चुप है ।]

प्रभा : तुमने अब तक मुझे बताया क्यों नहीं कि घर में माताजी का फ़ोटो है !

अनूप : अब तो पा गयीं न ! अब कैसी शिकायत !

प्रभा : लेकिन तुमने तो नहीं दिया ! मैं इस चित्र को अपने कमरे में लगाऊँगी ! इसकी रोज़ पूजा करूँगी ! जिस माँ को मैं अपनी कल्पना में देखती थी उसे पा गयी मैं !

अनूप : कल्पना में हर चीज़ सुन्दर होती है !

प्रभा : क्या कहा ? फिर से तो कहो ! बड़े आए शाइरी करने !

अनूप : लेकिन प्रभा तुमने बेकार··· बेकार !

प्रभा : बेकार ! बेकार क्या ? क्या हो जाता है आपको ? मिनिट भर में अच्छा-खासा मुँह बना लेते हैं—गोलगप्पा !

[**टेलीफ़ोन की घण्टी बजती है । प्रभा बढ़कर टेलीफ़ोन पर ।**]

प्रभा : हलो ! जी हाँ ! साहब नहीं जाएँगे दफ़्तर ! जी हाँ, मैं मेमसाहब बोल रही हूँ ।

अनूप : नहीं, नहीं ! मुझे जाना है भई ! बहुत काम पड़ा हुआ है ।

प्रभा : (**टेलीफ़ोन रखकर**) नहीं जाना है जी ! कह तो दिया, नहीं जाना है । तुम दफ़्तर के अफ़सर ! मैं तुम्हारा अफ़सर !

अनूप : अच्छी बात है ! जो आज्ञा ! खुश ?

प्रभा : और तुम भी खुश ?

[अनूप चुप रह जाता है ।]

प्रभा : आखिर ऐसी भी क्या बात ! माताजी का ही तो चित्र है !

अनूप : किसी का भी हो ! मुझे दीवारों पर चित्र लटकाना बिलकुल नापसन्द है । यह

टेस्ट ही मुझे गन्दा लगता है !

प्रभा : 'टेस्ट' की बात यह कहाँ है ? यह तो धर्म की बा
सत्य है जिसके सामने हमारे लिए दुनिया को स
न्योछावर है । सोचो न, यह न होतीं तो आज मैं तु

अनूप : प्रभा, देखो तुम मुझसे ज़िद न किया करो । ले
ले जाओ ! देखो, हाथ जोड़ रहा हूँ तुम्हारे !

प्रभा : पर कहाँ ले जाऊँ ? जिस स्वर्गीया माँ की
दुनिया-भर में जिसकी स्तुति गाते हम नहीं अघा
इतनी पूजा है, उसके चित्र से तुम्हें इस तरह क्यों

अनूप : छोड़ो इसे, कुछ और बात करो ! मैं शाम
लाऊँगा ! बेहतरीन और क़ीमती । वह जो चित्र
में से । फिर खूब लगाना चित्र : एक ड्राइंगरूम में

प्रभा : और एक अपने सिर पर !

[हँस पड़ती है ।]

अनूप : और एक मेरे भी सिर पर !

[दोनों हँसते हैं ।]

प्रभा : जाओ, मैं कोई चित्र नहीं लगाऊँगी !

[पैकेट लिए भीतर जाने लगती है ।]

अनूप : (**रास्ता रोककर**) मेरे भी चित्र को नहीं ?

प्रभा : नहीं । बड़े बन के आए ! इनका चित्र ! माँ के

[हँस देती है ।]

अनूप : तब मेरी माँ का ही चित्र क्यों ?

प्रभा : अकेली तुम्हारी माँ क्यों ? वह मेरी भी तो माँ हुई
चित्र ! माँ, फिर··· ।

अनूप : आखिर क्यों ?

प्रभा : पता नहीं । मुझे जाने दो न ? छोड़ो मेरा रास्ता

अनूप : ज़िद्दी हो तुम, इसलिए ! **मेरी माँ अन्धी**

प्रभा : (**चीखकर अनूप का मुँह थाम लेती है**)
क्या कह डाला ?

अनूप : तुम उसे **नुमाइश की**
अपना है, **दर्द की**
मेरी **माँ** जो···!

प्रभा : (**फिर**

टेस्ट ही मुझे गन्दा लगता है !

प्रभा : 'टेस्ट' की बात यह कहाँ है ? यह तो धर्म की बात है। फिर तो यह चित्र वह सत्य है जिसके सामने हमारे लिए दुनिया की सारी खूबसूरती, सारा 'टेस्ट' न्योछावर है। सोचो न, यह न होतीं तो आज मैं तुम्हें कहाँ पाती ?

अनूप : प्रभा, देखो तुम मुझसे जिद न किया करो। ले जाओ यहाँ से यह तसवीर ! ले जाओ ! देखो, हाथ जोड़ रहा हूँ तुम्हारे !

प्रभा : पर कहाँ ले जाऊँ ? जिस स्वर्गीया माँ की तुम इतनी प्रशंसा करते हो, दुनिया-भर में जिसकी स्तुति गाते हम नहीं अघाते, मन में जिस अपूर्व माँ की इतनी पूजा है, उसके चित्र से तुम्हें इस तरह क्यों आपत्ति हो रही है ?

अनूप : छोड़ो इसे, कुछ और बात करो ! मैं शाम को तुम्हारे लिए ऑएल पेण्टिंग लाऊँगा ! बेहतरीन और क़ीमती। वह जो चित्रकला प्रदर्शनी हुई थी न, उन्हीं में से। फिर खूब लगाना चित्र : एक ड्राइंगरूम में, एक बेडरूम में···।

प्रभा : और एक अपने सिर पर !

[हँस पड़ती है।]

अनूप : और एक मेरे भी सिर पर !

[दोनों हँसते हैं।]

प्रभा : जाओ, मैं कोई चित्र नहीं लगाऊँगी !

[पैकेट लिए भीतर जाने लगती है।]

अनूप : **(रास्ता रोककर)** मेरे भी चित्र को नहीं ?

प्रभा : नहीं। बड़े बन के आए ! इनका चित्र ! माँ के सामने···!

[हँस देती है।]

अनूप : तब मेरी माँ का ही चित्र क्यों ?

प्रभा : अकेली तुम्हारी माँ क्यों ? वह मेरी भी तो माँ हुईं ! मैं लगाऊँगी तो केवल यही चित्र ! माँ, फिर···।

अनूप : आखिर क्यों ?

प्रभा : पता नहीं। मुझे जाने दो न ? छोड़ो मेरा रास्ता ?

अनूप : जिद्दी हो तुम, इसलिए ! मेरी माँ अन्धी भिखारिन थी; इसीलिए !

प्रभा : **(चौंककर अनूप का मुँह थाम लेती है)** अनूप ! यह क्या कह डाला तूने ? यह क्या कह डाला ?

अनूप : तुम उसे नुमाइश की चीज समझती हो न ! **(कण्ठ भर आता है)** जो नितान्त अपना है, दर्द की तरह जो भोगा गया है, वह किसी को दिखाने की चीज नहीं है ! मेरी माँ जो···!

प्रभा : **(फिर उसके मुँह पर हाथ रख देती है)** खबरदार ! कैसी भी हो वह माँ !

कितना महान् पद है उसका ! और फिर यह माँ, जिसने तुम-जैसे पुरुष को जन्म दिया !

अनूप : तो कौन-सा कमाल कर दिया जन्म देकर ?

प्रभा : उसे मैं जानती हूँ !

अनूप : जानती हो तो अपने आप में रखो ? ईश्वर के लिए उसकी विज्ञप्ति न दो !

प्रभा : कैसे-कैसे बोल रहे हो तुम आज ? ऐसे न बोला करो अनूप ! तुम्हारे पाँव···

[आँचल में मुँह छिपा लेती है। सहसा पृष्ठभूमि में फिर गूँगी की आवाज़।]

अनूप : चन्दू ! चन्दू !

चन्दू : (**दौड़कर**) क्या सरकार !

अनूप : वह देख गूँगी फिर आ गयी ! मौत की तरह खड़ी-खड़ी हँस रही है ! मार के भगा दे उसे !

चन्दू : (झपटता है) आज इसकी गरदन ही तोड़ दूँगा ! (**दूर से आवाज़**) अब भागती क्यों है ? पकड़ ले इसे !

प्रभा : कौन है ? क्या बात है ?

अनूप : कुछ नहीं ! तुम खुश हो जाओ ! ऐसे न देखो मुझे ! प्रभा, तुमने जितना मुझे दिया उससे हज़ार गुना अधिक मेरी माँ को दिया ! उस दिवंगत आत्मा को तुमसे कितनी स्वर्गिक शान्ति मिली होगी इसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते !

प्रभा : मत करो पागलों-जैसी बातें ! तुम्हें कई बार समझाया है। जो तुम हो, वही तो मैं भी हूँ ! तुमसे अलग मेरी कहाँ सत्ता है ? तुम्हारे लिए तो मैंने सबको छोड़ दिया !

अनूप : एक्सक्यूज़ मी डियर ! तुमसे मैं केवल यही चाहता हूँ—कुछ ऐसा करो प्रभा, कुछ ऐसा करो, जिससे मेरा अतीत मुझसे भूल जाए ! जो बीता है, बीत गया है, उससे मेरा पिण्ड छूट जाए !

प्रभा : फिर वही बातें ! जाओ अब मैं नहीं बोलूँगी ?

अनूप : नहीं। (**प्रभा को कन्धे से थाम लेता है**) मेरा अतीत मुझे थकाता है, शक्तिहीन कर देता है। मैं निस्तेज पड़ जाता हूँ ! मैं यह याद भी नहीं करना चाहता कि मैं···मैं···मैं एक गली की अन्धी भिखारिन का पुत हूँ···अशुभ···निरीह···निराधार···त्याज्य···!

[प्रभा के अंक में मुँह छिपा लेता है।]

प्रभा : अच्छा ! अच्छा ! शान्त हो जाओ ! बिलकुल बच्चों-जैसे होने लगते हो !

अनूप : मेरा यह सत्य कोई मामूली नहीं जो किसी भी घूँट में पी लिया जाए ! मेरा यह सत्य अद्भुत है ! अद्भुत है !

प्रभा : नहीं चुप होगे ? अब कुछ न बोलो !

अनूप : यह तो तुम थीं प्रभा कि पता नहीं किस आकर्षण से, मेरे किस भाग्य से, तुमने

अपने सारे परिवार को, समाज की सारी मान्यत
मुझे वरण किया !

प्रभा : (**जैसे चीख़कर रो देगी**) अनूप ! चुप हो जाओ
आती हूँ !

अनूप : तुमने मुझे इतनी ममता दी है, इतना आदर, प्रे
कि···।

प्रभा : नहीं चुप होगे ! जाओ कुट्टी ! कुट्टी !

[बच्चों की तरह कुट्टी करने लगती है।]

अनूप : (**उसके हाथों को अपनी आँखों में बाँधकर**)
मिल्ली करो !

[हँसते-हँसते दोनों शिशुवत् मिल्ली करते हैं।]

प्रभा : फिर तो ऐसी बातें कभी नहीं करोगे न ?

अनूप : कभी नहीं !

प्रभा : सच ! सच !

अनूप : हाँ, आज के बाद कभी नहीं ! मैं तो स्वयं चा
अतीत क्या, पिछले 'कल' तक को भी छोड़ दें।

प्रभा : फिर वही बात !

अनूप : नहीं-नहीं, वह नहीं ! (**प्रीति भरे स्वर में**) मेरी

प्रभा : देखिए, आज से आप मुझे अजन्ता की नर्तकी भी

अनूप : क्यों ?

प्रभा : याद है न, अजन्ता की उस गुफा में गाइड ने क्या
के बारे में ?

अनूप : कितनी सुन्दर थी उस नर्तकी की मुद्रा !
व्यक्तित्व में ! ठीक जैसी तुम हो !

[दोनों की स्निग्ध हँसी।]

प्रभा : नहीं-नहीं मुझे अब अजन्ता की

अनूप : डर लगता है ? नहीं-नहीं !

प्रभा : देखो, गाइड ने बताया था
राजा कैसा निर्मम
की नर्तकी अपने सम्पूर्ण
राजा से प्राणदान

अनूप : वह तो राजा था

प्रभा : पर पुरुष
हो !

र फिर यह माँ, जिसने तुम-जैसे पुरुष को जन्म

म देकर ?

? ईश्वर के लिए उसकी विज्ञप्ति न दो !

ऐसे न बोला करो अनूप ! तुम्हारे पाँव···

पृष्ठभूमि में फिर गूँगी की आवाज़ ।]

की तरह खड़ी-खड़ी हँस रही है ! मार के

छोड़ दूँगा ! (दूर से आवाज़) अब भागती

न देखो मुझे ! प्रभा, तुमने जितना मुझे
दिया ! उस दिवंगत आत्मा को तुमने
तुम कल्पना भी नहीं कर सकते !
र समझाया है । जो तुम हो, वही तो
तुम्हारे लिए तो मैंने सबको छोड़

चाहता हूँ—कुछ ऐसा करो प्रभा,
ए ! जो बीता है, बीत गया है,

अतीत मुझे थकाता है, शक्तिहीन
भी नहीं करना चाहता कि
हूँ···अशुभ···निरीह···

होने लगते हो !
लिया जाए ! मेरा यह

हास्य से, तुमने

अपने सारे परिवार को, समाज की सारी मान्यताओं और विरोधों को कुचलकर, मुझे वरण किया !

प्रभा : (जैसे चीखकर रो देगी) अनूप ! चुप हो जाओ ! मैं इस चित्र को वापस कर आती हूँ !

अनूप : तुमने मुझे इतनी ममता दी है, इतना आदर, प्रेम, विश्वास ! इतना कृतज्ञ हूँ मैं कि···।

प्रभा : नहीं चुप होगे ! जाओ कुट्टी ! कुट्टी !

[बच्चों की तरह कुट्टी करने लगती है ।]

अनूप : (उसके हाथों को अपनी आँखों में बाँधकर) कुट्टी नहीं, मिल्ली ! चलो मिल्ली करो !

[हँसते-हँसते दोनों शिशुवत् मिल्ली करते हैं ।]

प्रभा : फिर तो ऐसी बातें कभी नहीं करोगे न ?

अनूप : कभी नहीं !

प्रभा : सच ! सच !

अनूप : हाँ, आज के बाद कभी नहीं ! मैं तो स्वयं चाहता हूँ कि हम 'आज' में जियें; अतीत क्या, पिछले 'कल' तक को भी छोड़ दें ।

प्रभा : फिर वही बात !

अनूप : नहीं-नहीं, वह नहीं ! (प्रीति भरे स्वर में) मेरी अजन्ता की नर्त्तकी !

प्रभा : देखिए, आज से आप मुझे अजन्ता की नर्त्तकी भी न कहिए !

अनूप : क्यों ?

प्रभा : याद है न, अजन्ता की उस गुफा में गाइड ने क्या कहा था उस नर्त्तकी और राजा के बारे में ?

अनूप : कितनी सुन्दर थी उस नर्त्तकी की मुद्रा ! क्या छवि और कला थी उसके व्यक्तित्व में ! ठीक जैसी तुम हो !

[दोनों की स्निग्ध हँसी ।]

प्रभा : नहीं-नहीं मुझे अब अजन्ता की नर्त्तकी मत कहो । मुझे डर लगता है !

अनूप : डर लगता है ? नहीं-नहीं ! मिल्ली करके फिर···

प्रभा : देखो, गाइड ने बताया था न कि नृत्य में ज़रा-सी भी कभी चूक हो जाने पर राजा कैसा निर्मम दण्ड देता था उस नर्त्तकी को ! याद है न फ्रेस्को में वह अजन्ता की नर्त्तकी अपने सम्पूर्ण लावण्य से नृत्य की अद्भुत मुद्रा में किस प्रकार नतशिर हो राजा से प्राणदान माँग रही थी—ज़रा-सी चूक पर !

अनूप : वह तो राजा था न !

प्रभा : पर पुरुष वह भी था ! (हँस पड़ती है) अच्छा हटाओ । तुम वैसे पुरुष थोड़े हो !

अनूप : (**हँसता हुआ**) हाँ, गोली मारो उस राजा को।

प्रभा : और उस नर्त्तकी को भी जो उस राजा के हाथ बिकी हुई थी।

अनूप : यहाँ तो राजा बिका हुआ है ! क्यों ?

[दोनों की जीवनपूर्ण हँसी। एकाएक कॉलबेल बजती है। डाकिये की आवाज़ आती है—रजिस्ट्री ! चन्दू का प्रवेश।]

अनूप : दौड़कर चिट्ठी लाओ।

प्रभा : और उससे कह दो कि इस तरह घण्टी न बजाया करे !

[चन्दू बाहर जाता है।]

अनूप : फिर किस तरह बजाया करे ?

प्रभा : अपना गाल फुलाओ तो बताऊँ !

[फूले गाल पर प्रभा एक उँगली से चपत मार देती है।]

प्रभा : इस तरह !

अनूप : नाउ माइ टर्न !

प्रभा : टाइम इज़ ओवर !

[चन्दू का पत्र लिए प्रवेश, बहूजी को पत्र देकर भीतर चला जाता है।]

अनूप : अच्छा, तब तक तुम अपनी चिट्ठी पढ़ लो। मैं अभी आया।

[अनूप भीतर चला जाता है, प्रभा पत्र पढ़ते-पढ़ते फूटकर हँस पड़ती है।]

प्रभा : अरे सुनो तो ! बड़ी मज़ेदार बात है ! जल्दी आओ ! चलो···।

अनूप : (**सिगरेट दागता हुआ प्रविष्ट होता है**) क्या है ? अरे ! इतनी हँसी का यह ख़त है !

[प्रभा हँसती-हँसती लोटपोट हुई जा रही है।]

अनूप : अरे ! अरे ! कुछ बात भी तो बताओ भई !

प्रभा : यह एक मेरे पुराने साथी का पत्र है ! डफ़र फ़ूलिश ऐण्ड ईडियट फ्रेण्ड ऑव माइन ! (**फिर हँसी फूट पड़ती है**) एक बार मैंने तुम्हें बताया था न, जब मैं इण्टरमीडिएट में पढ़ रही थी !

[फिर हँसी आ जाती है।]

अनूप : अच्छा बाबा, पहले तुम पेट भरकर हँस लो !

प्रभा : वह क़िस्सा मैंने तुम्हें बताया था न ! वही हजारीलाल वाला क़िस्सा ! जब मैं इण्टरमीडिएट में थी।

अनूप : अच्छा-अच्छा, जब तुम वहाँ पढ़ रही थीं अपने पापा के संग।

प्रभा : हाँ ! हाँ ! ! एक शाम हजारीलाल अपने पिता की
दिखाने ले गया। नुमाइश दिखाने के बाद उसने मुझे
बेवक़ूफ़ नम्बर एक मुझे सीधे लखनऊ ले आया, अ
हम लोग चौथे दिन घर लौटे ! मेरे पापा और हजा
हुई। हजारीलाल तो ख़ूब पिटा ! (**हँसी आ जाती**

अनूप : पापा ने कुछ नहीं कहा ?

प्रभा : कुछ नहीं ! कुछ नहीं ! बस यही कि उन्होंने व
लिया। हम लोग रायबरेली से शाहजहाँपुर चले आ

अनूप : अच्छा तो तुम लोग चौथे दिन लखनऊ से वापस

प्रभा : (**शिशुवत् सरल हँसी**) बड़ा बेवक़ूफ़ था वह ईडि

अनूप : क्या लिखा है उसने ? तब से उसकी यह पहली

प्रभा : नहीं, एक बार और लिखा था उसने। जब हमारी
पता नहीं उस मूर्ख को मेरा पता कैसे मिल गया थ

अनूप : मिल जाता है ! खोजने से हर चीज़ मिल जाती

प्रभा : मज़ाक़ मत करो हाँ ! लो पढ़ो चिट्ठी ! देखो न,
बेवक़ूफ़ होते हैं पुरुष ! देखो ! पढ़ो न !

अनूप : ओहो ! पढ़ लिया, पढ़ लिया !

प्रभा : नहीं-नहीं, पढ़ना पड़ेगा ! क्यों नहीं पढ़ोगे ?

अनूप : (**हँसता-सा**) अजीब बात है ! ज़बरदस्ती पढ़ाओ

प्रभा : अभी पढ़ो, नहीं तो मैं फाड़ दूँगी, हाँ !

अनूप : जैसी आपकी इच्छा !

प्रभा : आप ! आप ! हरदम *आप* !

[*चिट्ठी फाड़कर टुकड़े-टुकड़े कर देती है।*]

अनूप : प्रभा !

[प्रभा अन्दर चली *जाती है। बाहर की*
बढ़ता है।]

अनूप : अरे ! मुनी ! कम इन···कम इन !
हम लोग तो समझ बैठे थे कि अब

मुनी : अजी, अतिथि के तो

अनूप : (*पुकारता हुआ*) चन्दू !

चन्दू : (*प्रवेश कर*) जी

अनूप : जाओ साहब

[चन्दू बाहर जाता

मुनी : भई, कल मेरे

प्रभा : हाँ ! हाँ ! ! एक शाम हजारीलाल अपने पिता की कार में मुझे बिठाकर नुमाइश दिखाने ले गया। नुमाइश दिखाने के बाद उसने मुझे घर नहीं लौटाया, बल्कि वह बेवक़ूफ़ नम्बर एक मुझे सीधे लखनऊ ले आया, अपनी एक बुआ के यहाँ ! फिर हम लोग चौथे दिन घर लौटे ! मेरे पापा और हजारीलाल के पिता में खूब लड़ाई हुई। हजारीलाल तो खूब पिटा ! **(हँसी आ जाती है)** मैं बाल-बाल बच गयी !

अनूप : पापा ने कुछ नहीं कहा ?

प्रभा : कुछ नहीं ! कुछ नहीं ! बस यही कि उन्होंने वहाँ से अपना तबादला करा लिया। हम लोग रायबरेली से शाहजहाँपुर चले आए।

अनूप : अच्छा तो तुम लोग चौथे दिन लखनऊ से वापस आए ?

प्रभा : **(शिशुवत् सरल हँसी)** बड़ा बेवक़ूफ़ था वह ईडियट ! बुद्धू !

अनूप : क्या लिखा है उसने ? तब से उसकी यह पहली चिट्ठी मिली है तुम्हें ?

प्रभा : नहीं, एक बार और लिखा था उसने। जब हमारी शादी के संघर्ष चल रहे थे। पता नहीं उस मूर्ख को मेरा पता कैसे मिल गया था !

अनूप : मिल जाता है ! खोजने से हर चीज़ मिल जाती है !

प्रभा : मज़ाक़ मत करो हाँ ! लो पढ़ो चिट्ठी ! देखो न, क्या-क्या लिखा है ? कितने बेवक़ूफ़ होते हैं पुरुष ! देखो ! पढ़ो न !

अनूप : ओहो ! पढ़ लिया, पढ़ लिया !

प्रभा : नहीं-नहीं, पढ़ना पड़ेगा ! क्यों नहीं पढ़ोगे ?

अनूप : **(हँसता-सा)** अजीब बात है ! ज़बरदस्ती पढ़ाओगी ? रखो न !

प्रभा : अभी पढ़ो. नहीं तो मैं फाड़ दूँगी, हाँ !

अनूप : जैसी आपकी इच्छा !

प्रभा : आप ! आप ! हरदम आप !

[चिट्ठी फाड़कर टुकड़े-टुकड़े कर देती है।]

अनूप : प्रभा !

[प्रभा अन्दर चली जाती है। बाहर की घण्टी फिर बजती है। अनूप सामने बढ़ता है।]

अनूप : अरे ! मुनी ! कम इन···कम इन ! खूब आए ! आखिर तुम आ ही गए ! हम लोग तो समझ बैठे थे कि अब क्या आओगे तुम !

मुनी : अजी, अतिथि के तो मतलब ही होते हैं बिना तिथि के आनेवाला !

अनूप : **(पुकारता हुआ)** चन्दू ! चन्दू !

चन्दू : **(प्रवेश कर)** जी सरकार !

अनूप : जाओ साहब का सामान उतारो !

[चन्दू बाहर जाता है।]

मुनी : भई, कल मेरी गाड़ी छूट गई ! मुझे बड़ा दुःख है, तुम स्टेशन गए होगे ! आइ

एम वेरी सॉरी !

अनूप : जी हाँ ! प्रभा भी गई थी !

मुनी : भाभी ! ओहो !

[अनूप प्रभा को पुकारता है—]

अनूप : प्रभा देखो कौन आ गया ? कल गाड़ी छूट गई थी इनकी।···प्रभा!

मुनी : शरमा रही होंगी भाई ! पहली बार देखूँगा भाभी को !

अनूप : बैठो ! मैं लाता हूँ !

[अनूप अन्दर जाता है, प्रभा को अपने संग लेकर आता है।]

अनूप : माइ फ्रेण्ड मुनी ! ऐण्ड माइ वाइफ़ प्रभा !

[परस्पर अभिवादन, सामने से हैण्डबैग लिए चन्दू का प्रवेश—तेज़ी से परदा गिरता है।]

दूसरा दृश्य

[वही दृश्य, वही स्थान, तीन दिन बाद, सन्ध्या के साढ़े पाँच बजे हैं। प्रभा सोफ़े पर औंधी पड़ी है।]

चन्दू : (**भीतर से कॉफ़ी का प्याला लिए आता है**) बहूजी ! बहूजी ! बहूरानी ! बहूरानी !

[प्रभा एक बार सिर उठाकर देखती है, सारा मुँह आँसुओं से तर है, फिर मुँह छिपा लेती है।]

चन्दू : रानी बहू ! ठण्डी हो जाएगी कॉफ़ी ! उठो बहूरानी !—तो नहीं पियोगी बहू, चन्दू के हाथ की कॉफ़ी ! (**उठाकर जाने लगता है**) न पियो ! आखिर मैं भी तो इसी घर में था ! अच्छा है, न पियो मेरे हाथ की···।

प्रभा : चन्दू ! लाओ ! देखो, बेकार की बातें मत किया करो !

[कॉफ़ी का प्याला होंठों से लगाती है।]

प्रभा : चन्दू ! ऐसे क्यों देख रहा है रे ?

चन्दू : अच्छा नहीं लग रहा है आज मेरा घर ! साहब का दोस्त बनकर आया था ! कहीं ऐसे होते हैं मेहमान ! मेरा बस चलता तो मैं उसे घुसने न देता। पाजी, बेईमान···!

प्रभा : (**कॉफ़ी पी चुकती है**) तीन दिनों तक यही कमरा साहब के मेहमान की काली

छाया से भरा हुआ था। अपने मित्र के साथ तुम्हारे

उस छोटी-सी घटना को अपने विकारों के आतशी

चन्दू ! इस तरह सिर दर्द कर रहा है कि चीखूँ

दरवाज़ों को !

चन्दू : और कॉफ़ी लाता हूँ बहू ! बिलकुल तैयार है !

प्रभा : नहीं-नहीं, बस सब ठीक है ! (**मुसकराती है,**

क़िस्सा सुनोगे ! बहुत अच्छा क़िस्सा है !

चन्दू : जी !

प्रभा : एक था राजा, एक थी रानी ! रानी को अपने पति

और राजा को भी अपनी रानी पर गर्व था !

चन्दू : साहब आ गए बहू ! बहू फिर सुनूंगा यह क़िस्सा

प्रभा : अच्छा, तब तक अगर भूल जाऊँ तो ! अच्छा याद

[चन्दू का प्रस्थान, अनूप का प्रवेश।]

अनूप : प्रभा ! प्रभा !! इस तरह क्यों बैठी हो ? बोलो

[प्रभा देखकर चुप रह जाती है।]

अनूप : आओ चलो यहाँ से ! यहाँ क्या कर रही हो ?

प्रभा : कुछ सुन रही हूँ !

अनूप : क्या ?

प्रभा : कुछ देख रही हूँ ! अनुभूति भी कर रही हूँ !

अनूप : क्या ? कैसी बातें कर रही हो ?

प्रभा : (**हँस पड़ती है**) तुम्हारा वह दोस्त ! जो

हुआ है—उसकी और तुम्हारी की हुई सारी

ठीक ही सिद्ध किया ! वह भी ठीक

आँचल में दाग़ है !

(गाते-गाते हँसने

अनूप : (**घबड़ा जाता है**)

चन्दू : जी सरकार !

अनूप : क्या हो

प्रभा : कुछ नहीं !

पागल नहीं

हूँ !

अनूप : प्रभा

प्रभा : मैं

छाया से भरा हुआ था। अपने मित्र के साथ तुम्हारे साहब ने इसी कमरे में मेरी उस छोटी-सी घटना को अपने विकारों के आतशी शीशे में बढ़ाकर देखा था !··· चन्दू ! इस तरह सिर दर्द कर रहा है कि चीखूँ इसी कमरे में ! तोड़ दूँ इन दरवाज़ों को !

चन्दू : और कॉफ़ी लाता हूँ बहू ! बिलकुल तैयार है ! तबीयत ठीक हो जाएगी बहू !

प्रभा : नहीं-नहीं, बस सब ठीक है ! (**मुसकराती है, फिर हँस पड़ती है**) चन्दू, एक क़िस्सा सुनोगे ! बहुत अच्छा क़िस्सा है !

चन्दू : जी !

प्रभा : एक था राजा, एक थी रानी ! रानी को अपने पति के ऊपर बहुत अहंकार था और राजा को भी अपनी रानी पर गर्व था !

चन्दू : साहब आ गए बहू ! बहू फिर सुनूँगा यह क़िस्सा ! बड़ा मज़ेदार होगा !

प्रभा : अच्छा, तब तक अगर भूल जाऊँ तो ! अच्छा याद कर लूँगी !

[चन्दू का प्रस्थान, अनूप का प्रवेश।]

अनूप : प्रभा ! प्रभा !! इस तरह क्यों बैठी हो ? बोलो न, बात क्या है ?

[प्रभा देखकर चुप रह जाती है।]

अनूप : आओ चलो यहाँ से ! यहाँ क्या कर रही हो ?

प्रभा : कुछ सुन रही हूँ !

अनूप : क्या ?

प्रभा : कुछ देख रही हूँ ! अनुभूति भी कर रही हूँ !

अनूप : क्या ? कैसी बातें कर रही हो ?

प्रभा : (**हँस पड़ती है**) तुम्हारा वह दोस्त ! जो तीन दिनों के बाद आज यहाँ से बिदा हुआ है—उसकी और तुम्हारी की हुई सारी बातें इस कमरे में गूँज रही हैं। तुमने ठीक ही सिद्ध किया ! वह भी ठीक ही समझ रहा था। (**हँस देती है**) मेरे आँचल में दाग़ है ! (**गा पड़ती है**) 'मेरी चुनरी में पड़ि गयो दाग़ पिया !' (**गाती-गाती हँसने लगती है**)

अनूप : (**घबड़ा जाता है**) चन्दू ! चन्दू !!

चन्दू : जी सरकार !

अनूप : क्या हो गया प्रभा को ?

प्रभा : कुछ नहीं ! चन्दू जाओ तुम यहाँ से ! (**चन्दू का प्रस्थान**) घबड़ाओ नहीं, मैं पागल नहीं हो गयी ! मैं तो अजन्ता की नर्त्तकी हूँ न ! मैं कैसे पागल हो सकती हूँ ! मुझे तो नाचना है न !

अनूप : प्रभा ! मेरी बात सुनो ! सुनो एक बात ! मेरी ओर देखो ! देखो न !

प्रभा : मैं सुन रही हूँ ! मेरे आँचल में छोटा-सा दाग़ है ! मैं हज़ारीलाल के संग एक बार भाग गई थी न ! तुमने बिलकुल सही समझा है !

अनूप : प्रभा ! मत बोलो इस तरह ! यह सब तुम कह रही हो, बहुत बुरी बात है !

प्रभा : जी हाँ, बुरी बात है यह ! सरासर पाप है—कोई लड़की किसी लड़के के संग चली जाए—यह बुरी बात तो है ही ! इसकी कहाँ माफ़ी है ?

अनूप : मैं जितना ही तुमसे चुप रहता हूँ, बचाता हूँ, उतना ही तुम मुझे झुकाती चलती हो ! क्या यही न्याय है तुम्हारा ?

प्रभा : सच कहते हो तुम ! सचमुच तुम मुझसे चुप रहते हो ! मुझसे बचते हो—जैसे कोई कलंक और पाप से बचता हो ! यह मैं उस दिन से अनुभव कर रही हूँ जिस दिन मैं माताजी की ऑयल पेण्टिंग ले आयी थी, जिस दिन वह हजारीलाल का रजिस्टर्ड लेटर मेरे पास आया था।

अनूप : बेकार बकती हो तुम !

[टेलीफ़ोन की घण्टी बजती है। प्रभा बढ़कर फ़ोन नीचे रख देती है।]

प्रभा : तुम्हारा मेहमान तुमसे ठीक ही कह गया है। मुझसे शादी करके तुमने मुझे मुक्ति दी है ! स्वार्थ मेरा था, तुम्हारा नहीं ! तुम दोनों ने यही फ़ैसला किया है न ? बहुत ऊँचा न्याय है तुम्हारा !

अनूप : झूठ है सब ! सरासर झूठ ! मैंने ऐसा कुछ नहीं कहा ! मेहमान ने कहा, आपस में हँसी-मज़ाक कौन नहीं करता ? दुनिया करती है।

प्रभा : तुम्हारी दुनिया करती होगी ! लेकिन मैं वैसी असत्य दुनिया में नहीं रहती—जो बाहर-भीतर दो टुकड़ों में बँटी हो। बाहर कुछ ! भीतर कुछ !! जहाँ कुछ विष-जैसा घुटा-घुटा हो। जहाँ बुज़दिल बसते हों ! जहाँ···!

अनूप : प्रभा ! होश में बातें करो !

प्रभा : (हँसते हुए) खूब होश में हूँ !

[पृष्ठभूमि में फिर लड़के-बच्चों का कोलाहल, चन्दू निकलकर दौड़ता है।]

अनूप : क्या है चन्दू ? देखो, कैसा शोर है यह ?

चन्दू : (प्रवेश कर) साहब ! वह जो गूँगी भिखमंगी थी न, वह मर गयी ! म्युनिस्पैलिटी वाले उसकी लाश को ठेले पर ले जा रहे हैं ! लड़के छीन रहे हैं। कह रहे हैं कि वे खुद गूँगी की दाह-क्रिया करेंगे। गूँगी उनकी है। वह लावारिस नहीं है कि···।

अनूप : ठीक है मर गयी वह, अच्छा हुआ !

[प्रभा बढ़कर बाहर देख रही है। अनूप टेलीफ़ोन ठीक करता है।]

अनूप : यह टेलीफ़ोन किसने रखा था ? अजीब बात है।

प्रभा : मैंने ! मैंने ! एक अजीब ने। मुझे अपनी बात कहनी थी तुमसे ! बस, अब खूब करो टेलीफ़ोन ! तुम्हें यन्त्र चाहिए, स्त्री नहीं !

[अन्दर जाती है। अनूप नम्बर मिलाता है।]

अनूप : हलो क्लब ! जी हाँ ! आया होगा टेलीफ़ोन। दरअसल वह नीचे गिर गया था।

जी हाँ ! मैं अभी आया। पर मैं वहाँ रुक नहीं सकूँग
कॉस्ट ! कोई खास बात नहीं—यूँ ही···थैंक्यू !

चन्दू : (तेज़ी से प्रवेश कर) साहब ! साहब !!

अनूप : क्या है ? बोलता क्यों नहीं, बात क्या है ?

चन्दू : बहूरानी जा रही हैं ! बहूरानी चली जा रही हैं !
आपने भी ? वह मेहमान···वह मेहमान···

[अनूप चुप है, चन्दू पागलों-सा बार-बार अपनी ब

अनूप : तो क्या करूँ ! क़दमों पर जा गिरूँ क्या ?

प्रभा : (प्रविष्ट होती है, हाथ में केवल चित्र का वही
पर। तुम तो काल-पुरुष हो ! नर्तकी तो मैं हूँ। तु
गिरूँ ! यही तो तुम्हारी कला और संस्कृति है न ?

[आगे बढ़ती है]

अनूप : कहाँ जा रही हो तुम ?

प्रभा : क्यों ? रोकोगे मुझे ? है हिम्मत ?

अनूप : तो तुम मुझे सज़ा देने चली हो ? तभी सब कुछ
चित्र लिए जा रही हो ?

प्रभा : ठीक है, तुम भी कुछ सोच सकते हो।

अनूप : मुझे दो यह पेण्टिंग !

प्रभा : नहीं दूँगी · सब कुछ देकर, केवल यही लिए जा रह

अनूप : मैं कहता हूँ, वह चित्र मुझे दो।

प्रभा : मुझे पता है तुम इस चित्र को सदा के लिए नष्ट
दूँगी इसे। नहीं दूँगी।

अनूप : नहीं दोगी ?

प्रभा : जिस भाव से तुम माँग रहे हो उस भाव से

अनूप : हूँ ! कोई परवाह नहीं। मेरे पास भी
यह देखो। पहचान लिया न ?
का ऑयल पेण्टिंग कराऊँगा !

[कहते-कहते अन्दर

प्रभा : ज़रूर कराओ
होगी। तुम्हारी
अच्छा भी र
तुम्हारे बसे मैं

[प्रभा

इस तरह ! यह सब तुम कह रही हो, बहुत बुरी बात है !
यह ! सरासर पाप है—कोई लड़की किसी लड़के के संग
बात तो है ही ! इसकी कहाँ माफ़ी है ?
चुप रहता हूँ, बचाता हूँ, उतना ही तुम मुझे झुकाती चलती
है तुम्हारा ?
! सचमुच तुम मुझसे चुप रहते हो ! मुझसे बचते हो—जैसे
से बचता हो ! यह मैं उस दिन से अनुभव कर रही हूँ जिस
आँयल पेण्टिंग ले आयी थी, जिस दिन वह हजारीलाल का
आया था।
म !
बजती है। प्रभा बढ़कर फ़ोन नीचे रख देती है।]
ठीक ही कह गया है। मुझसे शादी करके तुमने मुझे मुक्ति
तुम्हारा नहीं ! तुम दोनों ने यही फ़ैसला किया है न ?
!
! मैंने ऐसा कुछ नहीं कहा ! मेहमान ने कहा, आपस
? दुनिया करती है।
! लेकिन मैं वैसी असत्य दुनिया में नहीं रहती—जो
हो। बाहर कुछ ! भीतर कुछ ! ! जहाँ कुछ विष-
बसते हों ! जहाँ···!

कोलाहल, चन्दू निकलकर दौड़ता है।]
?
थी न, वह मर गयी ! म्युनिस्पैलिटी
! लड़के छीन रहे हैं। कह रहे हैं कि
है। वह लावारिस नहीं है कि···।

करता है।]

तुमसे ! बस, अब खूब

गिर गया था।

जी हाँ ! मैं अभी आया। पर मैं वहाँ रुक नहीं सकूँगा ! मुझे घर रहना है, एट एनी कॉस्ट ! कोई खास बात नहीं—यूँ ही···थैंक्यू !

चन्दू : (**तेज़ी से प्रवेश कर**) साहब ! साहब ! !

अनूप : क्या है ? बोलता क्यों नहीं, बात क्या है ?

चन्दू : बहूरानी जा रही हैं ! बहूरानी चली जा रही हैं ! रोकिए उन्हें ! क्या कह दिया आपने भी ? वह मेहमान···वह मेहमान···

[अनूप चुप है, चन्दू पागलों-सा बार-बार अपनी बात दोहरा रहा है।]

अनूप : तो क्या करूँ ! क़दमों पर जा गिरूँ क्या ?

प्रभा : (**प्रविष्ट होती है, हाथ में केवल चित्र का वही पैकेट**) तुम क्यों गिरोगे क़दमों पर। तुम तो काल-पुरुष हो ! नर्त्तकी तो मैं हूँ। तुम चाहे जो करो, चरणों पर मैं गिरूँ ! यही तो तुम्हारी कला और संस्कृति है न ?

[आगे बढ़ती है]

अनूप : कहाँ जा रही हो तुम ?

प्रभा : क्यों ? रोकोगे मुझे ? है हिम्मत ?

अनूप : तो तुम मुझे सज़ा देने चली हो ? तभी सब कुछ छोड़कर केवल मेरी माँ का चित्र लिए जा रही हो ?

प्रभा : ठीक है, तुम भी कुछ सोच सकते हो।

अनूप : मुझे दो यह पेण्टिंग !

प्रभा : नहीं दूँगी · सब कुछ देकर, केवल यही लिए जा रही हूँ।

अनूप : मैं कहता हूँ, वह चित्र मुझे दो।

प्रभा : मुझे पता है तुम इस चित्र को सदा के लिए नष्ट कर देना चाहते हो। मैं नहीं दूँगी इसे। नहीं दूँगी।

अनूप : नहीं दोगी ?

प्रभा : जिस भाव से तुम माँग रहे हो उस भाव से तो कभी नहीं !

अनूप : हूँ ! कोई परवाह नहीं। मेरे पास भी एक चित्र है। (**निकालकर दिखाते हुए**) यह देखो। पहचान लिया न ? जब तुम इण्टरमीडियेट में थीं ! मैं भी इस चित्र का ऑएल पेण्टिंग कराऊँगा !

[कहते-कहते अन्दर जाने लगता है।]

प्रभा : ज़रूर कराओ पर याद रखना, वह पेण्टिंग मेरी नहीं होगी, तुम्हारे विकारों की होगी। तुम्हारी होगी, तुम्हारे झूठे व्यक्तित्व की होगी। (**कण्ठ भर आता है**) अच्छा भी रहेगा जो भयानक चित्र तुम्हारे भीतर है वह ऑएल पेण्टिंग बनकर तुम्हारे गले में लटका करेगी ! अच्छी पहचान रहेगी।

[प्रभा शून्य में देखती खड़ी रह जाती है, भीतर से चन्दू का प्रवेश।]

चन्दू : बहूरानी ! बहूरानी !

प्रभा : अयँ ! क्या कहा ? बहूरानी ! नहीं । सुनो चन्दू, तुम्हारे साहब कहाँ गए ?

चन्दू : क्लब में कोई बहुत ज़रूरी काम था, अभी आ रहे हैं ।

प्रभा : यह लो चित्र । मैं कुछ नहीं ले जाऊँगी यहाँ से ।

चन्दू : बहूरानी !

प्रभा : नहीं, कुछ नहीं । कुछ नहीं । तुम भीतर जाओ चन्दू । मैं चली जाऊँ तो भीतर से दरवाज़ा बन्द कर लेना । यह क्या करते हो ? जाओ अन्दर ।

[चन्दू भीतरी दरवाज़े से चिपककर खड़ा रहता है । सहसा बाहर की घण्टी बजती है । जैसे कोई सुनने वाला नहीं है । प्रभा जाते-जाते दहलीज में रुक गई है । कुछ क्षणों बाद अनूप के मेहमान मुनी का प्रवेश ।]

चन्दू : (**आवेश में**) फिर आ गए तुम ? क्यों आए ? अब क्या है यहाँ ?

मुनी : अरे··· रे···अरे ! अक़्ल मारी गयी है क्या तेरी ? पता है गाड़ी छूट गयी ! रिक्शा लाने में तूने ही तो देर की थी !

[प्रभा सहसा दौड़कर भीतर जाती है ।]

मुनी : प्रणाम भाभीजी ! एक गिलास पानी लाओ चन्दू ! साहब अन्दर हैं क्या ? (**पुकारने लगता है**) अनूप ! ओ अनूप !

चन्दू : कोई नहीं है यहाँ ? तुम जाओ यहाँ से ।

प्रभा : (**कठोर भाव से एकाएक प्रविष्ट हो**) शोर मत करो । उसी तरह फुसफुसाकर बातें करो, जैसे पिछले दिनों इस कमरे में अनूप के संग कर रहे थे !

मुनी : (**डर से चीख पड़ता है**) भाभी ! यह पिस्टल ! नहीं···नहीं !

प्रभा : डर गए ? लो मैं पिस्टल छिपा लेती हूँ । अब बोलो । तुम दोस्त हो अनूप के ?

मुनी : भाभी !

प्रभा : खबरदार जो फिर भाभी कहा मुझे ! मैं हजारीलाल के संग भागी हुई एक लड़की हूँ, जब मैं इण्टरमीडिएट में थी ! बोलो, ठीक है न ?

मुनी : नहीं-नहीं, मैंने कुछ नहीं कहा । सब अनूप का वहम है । मैंने तो···।

प्रभा : वह चित्र भी तुमने नहीं दिया ? क्यों ठीक है न ?

मुनी : कैसा चित्र ? मुझे नहीं मालूम ! मैंने कुछ नहीं दिया ।

[इधर-उधर देखकर भागने की कोशिश करता है ।]

प्रभा : झूठे ! बुज़दिल ! भागने की ज़रा भी कोशिश की तो···!

मुनी : मुझे माफ़ करो । मैं मेहमान हूँ ! मैं चला जाता हूँ । मेरी गाड़ी छूट गयी, नहीं तो···।

प्रभा : तुम्हारी हमेशा गाड़ी छूट जाती है ।

मुनी : क्षमा···मैं मेहमान हूँ !

प्रभा : और मैं ?

मुनी : आप महान् हैं ! अनूप को आपने अनूप बनाया, न

प्रभा : तो तुम इसी तरह बोलते जाओगे ? चुप नहीं बोलना···।

[पिस्टल सामने तान लेती है । मुनी डर से काँपने प्रवेश ।]

अनूप : अयँ ! यह क्या ?

[मुनी अनूप से लिपट जाता है ।]

मुनी : बचाओ ! बचाओ ! मुझे बचा लो !

अनूप : प्रभा ! प्रभा ! ! ऐसा न करो । मुझे दो पिस्टल पिस्टल···। लो मुझे मार दो···!

प्रभा : छूना नहीं मुझे, खबरदार ! एक ही संग प्रेम, दय हो ? एक दया और ?

अनूप : पिस्टल मुझे दो प्रभा ! मैं दया की भीख माँगता

प्रभा : वह स्वभाव है तुम्हारा ! तुम्हारे रक्त में कहीं-न- है, जो···नहीं-नहीं, कुछ नहीं ! कुछ नहीं···। (**काँप से छूटकर नीचे गिर जाता है**) ···कुछ नहीं···कुछ

[मुड़कर धीरे से बाहर निकल जाती है]

[परदा गिरता है ।]

...! नहीं। सुनो चन्दू, तुम्हारे साहब कहाँ गए?
...म था, अभी आ रहे हैं।
...जाऊँगी यहाँ से।

...भीतर जाओ चन्दू। मैं चली जाऊँ तो भीतर से
...करते हो? जाओ अन्दर।

...खड़ा रहता है। सहसा बाहर की घण्टी बजती
...प्रभा जाते-जाते दहलीज में रुक गई है। कुछ
...प्रवेश।]

...आए? अब क्या है यहाँ?
...है क्या तेरी? पता है गाड़ी छूट गयी!

...चन्दू! साहब अन्दर हैं क्या?

...मत करो। उसी तरह फुसफुसाकर
...के संग कर रहे थे!
...! नहीं···नहीं!
...बोलो। तुम दोस्त हो अनूप के?

...रीलाल के संग भागी हुई एक
...है न?
...है। मैंने तो···।

...छूट गयी, नहीं

मुनी : आप महान् हैं! अनूप को आपने अनूप बनाया, नहीं तो उसे···।

प्रभा : तो तुम इसी तरह बोलते जाओगे? चुप नहीं रहोगे? बोलना···बोलना···बोलना···।

[पिस्टल सामने तान लेती है। मुनी डर से काँपने लगता है। सहसा अनूप का प्रवेश।]

अनूप : अयँ! यह क्या?

[मुनी अनूप से लिपट जाता है।]

मुनी : बचाओ! बचाओ! मुझे बचा लो!

अनूप : प्रभा! प्रभा!! ऐसा न करो। मुझे दो पिस्टल। क्षमा कर दो सब। मुझे दो पिस्टल···। लो मुझे मार दो···!

प्रभा : छूना नहीं मुझे, खबरदार! एक ही संग प्रेम, दया और झूठ। मुक्ति देने आए हो? एक दया और?

अनूप : पिस्टल मुझे दो प्रभा! मैं दया की भीख माँगता हूँ तुमसे!

प्रभा : वह स्वभाव है तुम्हारा! तुम्हारे रक्त में कहीं-न-कहीं वह भिखारी जरूर बैठा है, जो···नहीं-नहीं, कुछ नहीं! कुछ नहीं···। (**काँपने-सी लगती है। पिस्टल हाथ से छूटकर नीचे गिर जाता है**) ···कुछ नहीं···कुछ नहीं!

[मुड़कर धीरे से बाहर निकल जाती है]

[परदा गिरता है।]

मैं आईना हूँ

पात्र

शिवचन्द	:	(शीबू) उम्र प्रायः चौबीस वर्ष
लक्ष्मीचन्द	:	शीबू का बड़ा भाई, तीस वर्ष के लगभग
पिताजी	:	उम्र प्रायः पचास वर्ष
डॉक्टर जैन	:	उम्र प्रायः पचपन वर्ष
परकाश	:	शीबू का मित्र

पुलिस-अफ़सर, नौकर, कम्पाउण्डर तथा एक डॉक्टर

[डॉक्टर जैन के बैठने का कमरा। उनके बैठने क
जिसके आस-पास कुल पाँच कुरसियाँ और रखी हैं
डॉक्टरी सामान और दीवारों पर टँगी हुई तस
स्पष्ट है कि डॉक्टर जैन का स्तर ऊँचा है।

कमरे से दायीं ओर का दरवाज़ा डिस्पें
दरवाज़े पर परदा पड़ा है।

कमरे के पीछे दो दरवाज़े हैं, जो घर में खुल
दिसम्बर के दिन हैं और रात के दस बजने वाले हैं

जब परदा उठता है, डॉक्टर का यह कमर
दायीं ओर से डॉक्टर निकलता है। उसी समय पीछे
नौकर आकर डॉक्टर को एक कप कॉफ़ी दे आता
है; दायीं ओर से दीवार के सहारे शीबू आता है।
बँधी है।]

डॉक्टर : (जैसे ही शीबू पर दृष्टि पड़ती है) यह क्या है
यहाँ से···जाओ भीतर···।

शीबू : (मेज़ के पास आकर) डॉक्टर !

[देखता रह जाता है।]

डॉक्टर : क्या है ?···बोलो···क्या है ?

[शीबू रो पड़ता है। डॉक्टर उसे
बिठा देता है।]

शीबू : डॉक्टर !

डॉक्टर : कॉफ़ी पियोगे ?

शीबू : (सिर हिलाता है)

डॉक्टर : यह हमारे
था कि तुमने अपने
(रुककर) यह
है वह !

[शीबू चुप है।

…ाईना हूँ

…पात्र

…) उम्र प्राय: चौबीस वर्ष
…बड़ा भाई, तीस वर्ष के लगभग
…: पचास वर्ष
…: पचपन वर्ष
…मित्र
…म्बर तथा एक डॉक्टर

[डॉक्टर जैन के बैठने का कमरा। उनके बैठने की कुरसी के सामने एक मेज है, जिसके आस-पास कुल पाँच कुरसियाँ और रखी हैं। मेज पर और कमरे में रखे हुए डॉक्टरी सामान और दीवारों पर टँगी हुई तसवीरों और मेडिकल चार्टों से यह स्पष्ट है कि डॉक्टर जैन का स्तर ऊँचा है।

कमरे में दायीं ओर का दरवाज़ा डिस्पेंसरी और आपरेशन रूम का है। दरवाज़े पर परदा पड़ा है।

कमरे के पीछे दो दरवाज़े हैं, जो घर में खुलते हैं। इन पर भी परदे पड़े हैं। दिसम्बर के दिन हैं और रात के दस बजने वाले हैं।

जब परदा उठता है, डॉक्टर का यह कमरा बिलकुल सूना पड़ा है। सहसा दायीं ओर से डॉक्टर निकलता है। उसी समय पीछे के दरवाज़े से अर्थात् भीतर से नौकर आकर डॉक्टर को एक कप कॉफ़ी दे जाता है। ज्यों ही नौकर घर में जाता है; दायीं ओर से दीवार के सहारे शीबू आता है। सिर, बाँह और सीने पर पट्टी बँधी है।]

डॉक्टर : (**जैसे ही शीबू पर दृष्टि पड़ती है**) यह क्या है? यहाँ क्यों चले आए? चलो यहाँ से…जाओ भीतर…।

शीबू : (**मेज के पास आकर**) डॉक्टर!

[देखता रह जाता है।]

डॉक्टर : क्या है?…बोलो…क्या है?

[शीबू रो पड़ता है। डॉक्टर उसे सम्हालकर पास के गद्देदार काउचनुमा सीट पर बिठा देता है।]

शीबू : डॉक्टर!

डॉक्टर : कॉफ़ी पियोगे?

शीबू : (**सिर हिलाता है**)…मुझे जीना नहीं है!

डॉक्टर : यह हमारे वश की बात नहीं! (**कप खाली करके**) तुम्हारे वश में केवल यही था कि तुमने अपने ऊपर पिस्टल चला ली—लेकिन मौत तुम्हारे वश में नहीं। (**रुककर**) यह उसी के वश में है, जो सबको जिलाता है। (**हँस पड़ता है**) ईश्वर है वह!

[शीबू चुप है। डॉक्टर मुसकराकर रह जाता है।]

शीबू : (**एकाएक खड़ा हो जाता है**) तो तुमने मुझे जिला लिया ! अब तुम मुझे नहीं मरने दोगे ?

[डॉक्टर उसे देखता हुआ चुप है।]

शीबू : (**कटुता से**) नहीं मरने दोगे ?

डॉक्टर : जाओ सो जाओ ! अभी तुम्हें खूब आराम करना चाहिए ?

शीबू : मैं जेल तो जाऊँगा न ?

डॉक्टर : वह क्यों ?

शीबू : आत्महत्या जो कर रहा था ?

[डॉक्टर मुसकराकर सिर हिलाता है।]

शीबू : तो तुम लोगों ने पुलिस को भी धोखा दे दिया (**रुककर**) झूठ, धोखा और तुम सब और यह बेमानी जिन्दगी।

डॉक्टर : सो जाओ अब ! चलो, मैं तुम्हें अब सुला देता हूँ !

शीबू : जैसे सो जाना कोई खेल है, जब चाहा तब सो लिया। बड़े भाग्य से नींद आती है !

डॉक्टर : ईश्वर के नाम पर सो जाओ !

शीबू : उसके नाम पर तो मैं मरना चाहता था।···मरना चाहता था।

[दो-चार कदम इधर-उधर डोलकर वह पीछे—दोनों दरवाज़ों के बीच में खड़ा हो जाता है—स्थिर, मूक और निस्पन्द।]

डॉक्टर : उठ के यहाँ बैठो ! चलो। (**उठकर पास जाता है**) यूँ नहीं खड़े रहते। (**लाकर फिर उसी सीट पर बिठाता है**) क्या है ?···क्या सोच रहे हो ?···अब नहीं बोलोगे ?···अच्छा है न बोलो···बोलने से प्राणशक्ति नष्ट होती है !··· अच्छे लड़के हो। अच्छा, अब सो जाओ ! (**उसे सुलाने लगता है; पर शीबू जड़वत् बैठा रहता है**) लेटोगे नहीं ? यूँ ही चुपचाप बैठे रहोगे। (**रुककर**) कब तक इस तरह बैठे रहोगे ?···अच्छा, कुछ बोलो ही ! चलो, बातें करें ! ···बोलो शिवचन्द !···शीबू।

[शीबू पत्थर की मूर्ति जैसा डॉक्टर को अपलक देख रहा है, धीरे-धीरे स्टेज की सारी रोशनी ग़ायब हो जाती है। क्षण-भर बाद जब धीरे-धीरे प्रकाश लौटता है, तब डॉक्टर के पास शीबू के पिताजी—रायसाहब चिन्ता में डूबे बैठे मिलते हैं। पास ही लक्ष्मीचन्द खड़ा है। दृश्य में शीबू नहीं है।]

डॉक्टर : लेकिन यह मुझसे तो बातें कर रहा था !

पिताजी : (**अतुल जिज्ञासा**) क्या कहता था ?

डॉक्टर : बस; कुछ ही शब्द !

[सब चुप होकर शीबू को निहारते रह जाते हैं।]

पिताजी : मेरे भाग्य का ही सारा दोष है डॉक्टर साहब

लक्ष्मीचन्द : इसमें भाग्य की क्या बात ! शीबू नहीं बो

वह चुप रह लेता है !

पिताजी : तीन दिन तो हो गए ! क्यों नहीं बोला अब

लक्ष्मीचन्द : सरासर बदमाशी है उसकी। पूरे घर को

है।

पिताजी : मत बोलो लक्ष्मीचन्द···ऐसा न बोलो।

लक्ष्मीचन्द : तो मैं भी चुप हो जाऊँ शीबू की तरह ?

पिताजी : नहीं, मुझे भी चुप कर दो !

डॉक्टर : इस तरह लड़ने से कोई फ़ायदा नहीं ! अ

मिलकर किसी तरह यह पता लगाते कि वह चुप

लक्ष्मीचन्द : यह तो वही जाने डॉक्टर साहब ! कौन ज

समझ में नहीं आता, आजकल के ये लौंडे हैं क्या

हैं।

पिताजी : यूँ न बोलो लक्ष्मीचन्द ! शीबू चुप है—कुछ

तो है—हमें सुन रहा है वह, देखता भी है !

डॉक्टर : यही तो मुसीबत है !

लक्ष्मीचन्द : कुछ भी नहीं है। मेरा वश चले तो मैं मिन

बोलने की कौन कहे।

डॉक्टर : लेकिन चिल्लाने और बोलने में फ़र्क है लक्ष्मी

लक्ष्मीचन्द : अभी बोलने लगे—कस-कसकर चार बेंत म

डॉक्टर : (**बिगड़ जाता है**) मैं कहता हूँ चुप रहो···**बसे**

नहीं है—चले जाओ !

लक्ष्मीचन्द : मैं खुद जा रहा हूँ। मेरे पास इतनी फ़ुर

उठाता फिरूँ ! (**रुककर**) मेरे ऊपर तो सारी

(**जाते-जाते**) नमस्ते, डॉक्टर साहब !

डॉक्टर : मुझे आपके इस लड़के का रुख पसन्द

पिताजी : नहीं, नहीं यह बात नहीं डॉक्टर सा

पर। अपने पास लोहे और चमड़े

लक्ष्मीचन्द देखता है।

डॉक्टर : तो इसके यह अर्थ नहीं कि वह

ही लिए है रायसाहब !

पिताजी : बेशक ! बेशक ! लक्ष्मी

इतना परेशान है।

[उसी समय दायीं ओर के

पिताजी : मेरे भाग्य का ही सारा दोष है डॉक्टर साहब !

लक्ष्मीचन्द : इसमें भाग्य की क्या बात ! शीबू नहीं बोलता, न बोले ! देखें, कब तक वह चुप रह लेता है !

पिताजी : तीन दिन तो हो गए ! क्यों नहीं बोला अब तक ?

लक्ष्मीचन्द : सरासर बदमाशी है उसकी। पूरे घर को इस तरह तबाह करना चाहता है।

पिताजी : मत बोलो लक्ष्मीचन्द···ऐसा न बोलो।

लक्ष्मीचन्द : तो मैं भी चुप हो जाऊँ शीबू की तरह ?

पिताजी : नहीं, मुझे भी चुप कर दो !

डॉक्टर : इस तरह लड़ने से कोई फ़ायदा नहीं ! अच्छा तो यह होता कि हम सब मिलकर किसी तरह यह पता लगाते कि वह चुप है क्यों ?

लक्ष्मीचन्द : यह तो वही जाने डॉक्टर साहब ! कौन जान सकेगा उसे ! **(परेशान-सा)** समझ में नहीं आता, आजकल के ये लौंडे हैं क्या ! गूँगे के गुड़—पता नहीं क्या हैं।

पिताजी : यूँ न बोलो लक्ष्मीचन्द ! शीबू चुप है—कुछ नहीं बोलता, लेकिन वह चेतन तो है—हमें सुन रहा है वह, देखता भी है !

डॉक्टर : यही तो मुसीबत है !

लक्ष्मीचन्द : कुछ भी नहीं है। मेरा वश चले तो मैं मिनटों में शीबू को चिल्लवा दूँ—बोलने की कौन कहे।

डॉक्टर : लेकिन चिल्लाने और बोलने में फ़र्क़ है लक्ष्मीचन्द !

लक्ष्मीचन्द : अभी बोलने लगे—कस-कसकर चार बेंत मारे बस, तूती बोल उठे !

डॉक्टर : **(बिगड़ जाता है)** मैं कहता हूँ चुप रहो···चले जाओ यहाँ से। कोई ज़रूरत नहीं है—चले जाओ !

लक्ष्मीचन्द : मैं ख़ुद जा रहा हूँ। मेरे पास इतनी फ़ुरसत ही कहाँ जो झूठ-मूठ का नाज़ उठाता फिरूँ ! **(रुककर)** मेरे ऊपर तो सारी ज़िम्मेदारियाँ और लाखों काम हैं। **(जाते-जाते)** नमस्ते, डॉक्टर साहब !

डॉक्टर : मुझे आपके इस लड़के का रुख़ पसन्द नहीं आया रायसाहब !

पिताजी : नहीं, नहीं यह बात नहीं डॉक्टर साहब ! सब बड़ी ज़िम्मेदारियाँ हैं लक्ष्मीचन्द पर। अपने पास लोहे और चमड़े की दो फ़ॅर्म्स हैं—और सारा काम अकेला लक्ष्मीचन्द देखता है।

डॉक्टर : तो इसके यह अर्थ नहीं कि वह सबको काटता फिरे ! यह सब कुछ जीवन के ही लिए है रायसाहब !

पिताजी : बेशक ! बेशक ! लक्ष्मीचन्द अपने शीबू को बहुत प्यार करता है—तभी वह इतना परेशान है।

[**उसी समय दायीं ओर से शीबू का प्रवेश। वह चुपचाप दीवार से सटकर खड़ा हो**

जाता है, जैसे कोई मूर्ति खड़ी रख दी गयी हो।]

डॉक्टर : आ जाओ शीबू···आओ मेरे पास बैठो···चलो !

पिताजी : क्या हो गया तुम्हें बेटा शिवचन्द ! मुझे देखो न ! सारा घर परेशान है बेटा ! कुछ बोलोगे नहीं तो कैसे कोई क्या करेगा ! बोलो न तो कुछ लिखकर ही बता दो !

डॉक्टर : और क्या ! अपनी वह परेशानी, वह दर्द, वह द्वन्द्व हमें बाँट दो ! तुम अपने को अकेला क्यों सोचते हो !

पिताजी : और क्या !···बोलो बेटा ! देखो, कई दिन हो गए ! हम सबके साथ यह डॉक्टर साहब कितने परेशान हैं ?

डॉक्टर : (उठकर टहलने-सा लगता है) पता नहीं, आपका यह बेटा ज़िन्दगी से क्यों इस तरह ऊब गया है !

पिताजी : यह कुछ बताए न ! मैं उसे हर सूरत से पूरा करने को तैयार हूँ !

डॉक्टर : बताओ शीबू ! तुम किसी बुरे मर्ज़ में तो नहीं फँस गए हो ? या किसी मुहब्बत में हार खाकर ऊब गए हो ? या कोई असफलता है जो तुम्हें जीवन से नफ़रत करा रही है।

पिताजी : मैं तो डॉक्टर साहब, यहाँ तक कहता हूँ, यह जो कुछ इच्छा करे, मैं भरसक उसे पूरा करने का वादा करता हूँ।

डॉक्टर : आपने इस बेटे को बेकार बना रखा है। इसे दूकान पर बैठाते या दौड़-धूपकर किसी नौकरी में लगा देते !

पिताजी : (दुःख से) च···च···च···ओ हो···हो ! कितना समझाया कि यह किसी दूकान पर बैठे। एक नहीं, कई नौकरियाँ दिलायीं इसे ! पर 'नहीं' छोड़कर इसके जीवन में जैसे 'हाँ' है ही नहीं !

डॉक्टर : (शीबू के पास जाकर अत्यन्त स्नेह से) किससे यह प्रतिक्रिया हुई तुम्हें ? क्या गाँठ है तुम्हारे मन में ? कहाँ चोट है तुम्हें ? मैं डॉक्टर हूँ—आदमी भी हूँ—मुझे बताओ। और तुम इस घुटन को चीरकर निकल जाओ !···बढ़ो, मैं तुम्हें उत्साह देता हूँ; और ज़िम्मेदार होता हूँ !

[सामने से परकाश का प्रवेश।]

पिताजी : आओ परकाश ! देखो, शीबू अब तक उसी तरह चुप है ! (रुककर) डॉक्टर साहब, यह परकाश मेरे शीबू का एकमात्र दोस्त है। दोनों ने साथ-साथ लिटरेचर में एम० ए० किया है।

डॉक्टर : मुझे पता है ! यह तो दिन में तीन-चार बार अपने दोस्त को देखने आते हैं !

परकाश : (शीबू के पास जाकर) शीबू ! आओ मेरे साथ चलो···चलो कहीं टहल आएँ !

[शीबू मूर्तिवत्-निर्विकार रूप से स्थिर है।]

डॉक्टर : (हँस पड़ता है) कुछ बातें करो न तुम लो
चुप, उदास—अरे, मस्त रहो ! क्या किया तुम
(रुककर) यह आर्ट-लिट्रेचर क्या है ? जीवन क
कल्पना—ये सब ज़िन्दगी को सुहागन बनाती है

[मन्द हँसी बिखेर देता है।]

परकाश : शीबू, क्या बात ?

डॉक्टर : आइए रायसाहब, हम लोग यहाँ से चलें !
क्यों ?

[डॉक्टर रायसाहब के संग भीतर चला जाता है

परकाश : बोलो शीबू ! बुरी बात है यह ! अजीब ड़ा

परकाश : पता नहीं क्या बात है ! तूने मुझे भी तो कुछ
क्या तुम ? कहने-बताने लायक तुम्हारी ज़िन्द
साधु आदमी तुम ! न कभी किसी से मुहब्बत की
न कुछ कमाया न खोया ! (रुककर) तुम्हें तो
रहना चाहिए !

[दोनों एक-दूसरे को देखते रह जाते हैं।]

परकाश : शीबू तुम्हें याद है न ! बचपन में जो साथ-स
सिर से टोपी उड़ा दिया करते थे; और उसके
तुम्हें हँसी नहीं आई ! यार ! एक बार तो हँसो
तुझे गुदगुदी लगाऊँगा ! (गुदगुदाने लगता है)
तुम्हारे !···अब मैं नहीं हँसाऊँगा तुम्हें ! मा

[उसी क्षण भीतर से डॉक्टर के साथ पिता

डॉक्टर : (हँसता हुआ आया है) नहीं बुला
शाबाश ! अच्छा हुआ ! रोओ···खूब
ही मुक्ति दे जाते हैं।

परकाश : इसने मुझे भी कुछ नहीं
खामोश आदमी है !

[डाक्टर चुप है, पिता

परकाश : ऐसा नेकदिल

डॉक्टर : तभी···तभी

पिताजी : मैं आपके

[दोनों का

डॉक्टर : (अब

डॉक्टर : (**हँस पड़ता है**) कुछ बातें करो न तुम लोग । इतने हसीन नौजवान होकर चुप, उदास—अरे, मस्त रहो ! क्या किया तुम लोगों ने इतना पढ़-लिखकर ! (**रुककर**) यह आर्ट-लिट्रेचर क्या है ? जीवन को रसमय देखना है—सत्य, सौंदर्य-कल्पना—ये सब ज़िन्दगी को सुहागन बनाती हैं !

[मन्द हँसी बिखेर देता है ।]

परकाश : शीबू, क्या बात ?

डॉक्टर : आइए रायसाहब, हम लोग यहाँ से चलें ! नौजवान दोस्तों के बीच हम बुड्ढे क्यों ?

[डॉक्टर रायसाहब के संग भीतर चला जाता है ।]

परकाश : बोलो शीबू ! बुरी बात है यह ! अजीब ड्रामा बना रखा है तूने ! (**विराम**)

परकाश : पता नहीं क्या बात है ! तूने मुझे भी तो कुछ नहीं बताया ! और बताओगे भी क्या तुम ? कहने-बताने लायक तुम्हारी ज़िन्दगी में कोई बात भी तो हो ! साधू आदमी तुम ! न कभी किसी से मुहब्बत की, न नफ़रत ! न लड़े, न झगड़े ! न कुछ कमाया न खोया ! (**रुककर**) तुम्हें तो दुनिया-भर में सबसे ज्यादा खुश रहना चाहिए !

[दोनों एक-दूसरे को देखते रह जाते हैं ।]

परकाश : शीबू तुम्हें याद है न ! बचपन में जो साथ-साथ हम लोग अपने हेडमास्टर के सिर से टोपी उड़ा दिया करते थे; और उसके गंजे सिर पर (**हँसी आ जाती है**) तुम्हें हँसी नहीं आई ! यार ! एक बार तो हँसा ! कुछ बोलो ! नहीं तो मैं अब तुझे गुदगुदी लगाऊँगा ! (**गुदगुदाने लगता है**) अरे ! तुम रोने लगे···यह आँसू तुम्हारे !···अब मैं नहीं हँसाऊँगा तुम्हें ! माफ़ कर दो मुझे !

[उसी क्षण भीतर से डॉक्टर के साथ पिताजी आते हैं ।]

डॉक्टर : (**हँसता हुआ आया है**) नहीं बुला सके !···आँखें तो गीली कर दीं तुमने ! शाबाश ! अच्छा हुआ ! रोओ···खूब जी भरकर रो लो शीबू ! कभी-कभी आँसू ही मुक्ति दे जाते हैं ।

परकाश : इसने मुझे भी कुछ नहीं बताया !···यूँ अपनी ज़िन्दगी में भी यह बहुत खामोश आदमी है ! मतलब से ज्यादा कभी एक शब्द भी नहीं बोलता !

[डाक्टर चुप है, पिताजी सिर थामकर बैठ गए हैं ।]

परकाश : ऐसा नेकदिल आदमी मैंने अपनी ज़िन्दगी में नहीं देखा !

डॉक्टर : तभी···तभी ! (**रुककर**) अच्छा, अब आप लोग जाइए ! जाइए ! नमस्ते !

पिताजी : मैं आपके इस एहसान को ता-ज़िन्दगी नहीं भूलूँगा डॉक्टर साहब !

[दोनों का प्रस्थान ।]

डॉक्टर : (**अन्दर जाता है, और प्लेट में कुछ फल लाता है**) लो यह फल खाओ !

आओ, भूखे होगे तुम ! नहीं खाओगे ? रूठे हो ! तुम्हें कोई मानता नहीं ! सब यूँ ही परेशान करते हैं तुम्हें ! जो रूठता है, उसे मनाया जाता है—जैसे माँ मनाती है ! तुम्हारी माँ नहीं है शीबू ! ···तभी तुम्हें···तभी कोई नहीं मनाता ! लो मैं मनाता हूँ !

[प्यार से लाकर उसी सीट पर बिठा लेता है और कटे हुए फल का एक टुकड़ा उसके होंठ पर रख देता है।]

डॉक्टर : शाबाश ! लो और खाओ ! लो खाते रहो···मैं कॉफ़ी मँगाता हूँ **(पीछे दीवार के पास जाकर घण्टी देता है)** हम दोनों साथ-साथ कॉफ़ी पिएँगे ! **(नौकर दो कप कॉफ़ी लाता है और मेज़ पर रखकर चला जाता है)** लो पियो ! ···तो तुम माँ-विहीन हो ! 'मदर' व्हाट ए ब्युटीफुल क्रियेशन।' एक साँस में न पियो, धीरे-धीरे घूँट में पियो ! जैसे आदमी मन के दर्द को पीता है। **(कॉफ़ी पीता हुआ)** आदमी सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि वह दर्द में पलता है। वह सोचता है, यही दर्द है उसका !

[दोनों चुपचाप पीते रहते हैं।]

डॉक्टर : तुम रो रहे हो ! ···मत रोओ···आँसुओं को वाणी दे दो। वाणी दो—कर्म दूंगा, फिर तुम कर्ममय हो जाओगे !

शीबू : **(हाथ से प्याला छूटकर फ़र्श पर टूट जाता है)** डॉक्टर !

डॉक्टर : हाँ, हाँ ! बोलो ! बोलो यहाँ और कोई नहीं है ! केवल हम हैं !

शीबू : हम हैं लेकिन मैं नहीं हूँ !

डॉक्टर : अभी तुम हो !

शीबू : होना और बात है, जीना और बात !

डॉक्टर : **(प्यार से हंसता है)** बेहद प्यारे बच्चे हो ! सोचो, अगर तुम न होते, तो तुम मुझे कहाँ से मिलते ! ···यही जीना है !

शीबू : झूठ ! बिलकुल झूठ !

[डॉक्टर चुप है।]

शीबू : मैं अपने इस जीवन से घृणा करता हूँ। इसके पीछे कोई बहुत बड़ा कारण नहीं है। मैं कारण ढूँढ़कर खुद हार गया हूँ ! **(डॉक्टर कॉफी पी चुकता है)** घर और बाहर मुझे सब कुछ देता है—पर वह मुझे प्यार और इज्ज़त नहीं देता ! जो उसे अच्छा लगता है, वह मुझे खूब देता है, लेकिन जो मैं चाहता हूँ—वह मुझे कभी नहीं देता। बस, उसकी प्रतिक्रिया देता है ! प्यार और इज्ज़त—जैसे यही न देकर वह मेरे होने का मूल्य चुका लेता है ! वह मुझसे भी नहीं चाहता कि मैं उसे प्यार और इज्ज़त दूँ। पता नहीं, वह मुझसे क्या चाहता है। खुलकर कोई कुछ कहता भी तो नहीं ! बस, ठण्डी लड़ाई छेड़कर बैठा रहता है।

डॉक्टर : यू मीन कोल्ड वार !

शीबू : जी ! वह मुझे बाँधकर भी अपने से अलग किए
व्यक्ति उन्हें अछूत है, अपमानित है ! डॉक्टर ! मु
मेरे चारों ओर कोई साजिश चल रही है !—मुझे
है) मैं सबका हूँ, पर सबसे अस्वीकृत हूँ !

डॉक्टर : दर्द में मत बोलो शीबू ! ज़रा प्यार से बोलो न

शीबू : वह तो कब का मर गया !

डॉक्टर : तुम सोचते बहुत हो ! **(मुसकराने लगता है)**

शीबू : वह पूरा माहौल, जिसमें मेरा घर है—लखपती बा
है कि पहले मैं उन्हीं की तरह हो जाऊँ ! अपने मूल-
एक कटु स्वर में) डाक्टर, तुम चुप क्यों हो गए ?
कोरा अहंकार है—'परवरटेट इगो !'

डॉक्टर : जज नॉट···।

शीबू : ईसा मसीह तक मत उड़ो डॉक्टर ! मुझे सम

[डॉक्टर चुप हो जाता है। अपलक उसे देख

शीबू : मेरा भाई लक्ष्मीचन्द मुझे काम नहीं कर
बेकार रहूँ ! पूरा घर मुझे लाचार देखना
दया करे ! सबके सब मुझ पर दया करते
उपेक्षा है—कहीं भी करुणा या सहानुभूति
चाहने लगा हूँ !

[डॉक्टर चुप है।]

शीबू : पिता और भाई मुझे ज़िम्मेदार दे
वे मुझसे विश्वास चाहते हैं, पर
है) वे मुझसे भाई चाहते हैं,
धुआँधार कमाई वाला
डॉक्टर ! वे मुझे नहीं
सबसे अपने को दूर
पड़े !

डॉक्टर : (उठकर
मैं कुछ नहीं सुनूँ

शीबू : भूख उन्हें

[सहसा पर

शीबू : आओ पर

परकाश : (

बधाई

शीबू : जी ! वह मुझे बाँधकर भी अपने से अलग किए रहता है, जैसे मेरा स्वतन्त्र व्यक्ति उन्हें अछूत है, अपमानित है ! डॉक्टर ! मुझे हरदम महसूस होता है, जैसे मेरे चारों ओर कोई साजिश चल रही है ! —मुझे छोड़ देने के लिए ! (**खाँसता है**) मैं सबका हूँ, पर सबसे अस्वीकृत हूँ !

डॉक्टर : दर्द में मत बोलो शीबू ! ज़रा प्यार से बोलो न !

शीबू : वह तो कब का मर गया !

डॉक्टर : तुम सोचते बहुत हो ! (**मुसकराने लगता है**)

शीबू : वह पूरा माहौल, जिसमें मेरा घर है—लखपती बाप का घर—वह मुझसे चाहता है कि पहले मैं उन्हीं की तरह हो जाऊँ ! अपने मूल-स्वत्व को मिटा दूँ ! (**एका-एक कटु स्वर में**) डाक्टर, तुम चुप क्यों हो गए ? कहते क्यों नहीं कि मेरा यह कोरा अहंकार है—'परवरटेट इगो !'

डॉक्टर : जज नॉट···।

शीबू : ईसा मसीह तक मत उड़ो डॉक्टर ! मुझे समझने के लिए ज़मीन पर उतरो !

[डॉक्टर चुप हो जाता है। अपलक उसे देखता रहता है।]

शीबू : मेरा भाई लक्ष्मीचन्द मुझे काम नहीं करने देता ! चाहता है मैं बैठा रहूँ—बेकार रहूँ ! पूरा घर मुझे लाचार देखना चाहता है, जिससे वह खुलकर मुझ पर दया करे ! सबके सब मुझ पर दया करते हैं; और इन दया-दृष्टियों में एक अजीब उपेक्षा है—कहीं भी करुणा या सहानुभूति नहीं।···डॉक्टर ! तभी मैं अपना पतन चाहने लगा हूँ !

[डॉक्टर चुप है।]

शीबू : पिता और भाई मुझे ज़िम्मेदार देखना चाहते हैं, पर मुझे ज़िम्मेदारी नहीं देते ! वे मुझसे विश्वास चाहते हैं, पर मुझ पर विश्वास नहीं करते ! (**उठ खड़ा होता है**) वे मुझसे भाई चाहते हैं, बेटा चाहते हैं, किसी दुलहिन का पति चाहते हैं, अन्धी-धुआँधार कमाई वाला आदमी चाहते हैं—न जाने क्या-क्या कितना चाहते हैं—पर डॉक्टर ! वे मुझे नहीं चाहते। तभी मैं अपने को इतना चाहने लगा हूँ कि मैं इन सबसे अपने को दूर हटा ले जाऊँ ! इतनी दूर कि इनकी छाया तक मुझ पर न पड़े !

डॉक्टर : (**उठकर स्नेह से**) अब चलो भोजन करने चलें। भूख लगी होगी तुम्हें ! अब मैं कुछ नहीं सुनूँगा···चलो मेरे संग ! तुम्हें भूख लगी है !

शीबू : भूख उन्हें लगती है जो जीते हैं।

[सहसा परकाश का प्रवेश।]

शीबू : आओ परकाश !

परकाश : (**प्रसन्नता से पागल हो शीबू को गले से लगा लेता है**) लवली डाक्टर ! बधाई देता हूँ !

डॉक्टर : (**हँसकर फ़ोन उठाता है**) जी हाँ, मैं डॉक्टर जैन हूँ ! रायसाहब, जी हाँ !··· बिलकुल···आप झट आ जाइए।···लक्ष्मीचन्द, ओह आप···खैर, आ भी सकते हैं ! क्यों नहीं ? आ जाइए !

[फ़ोन रख देता है।]

डॉक्टर : शीबू ! आज तक तुम मेरे अतिथि थे—मेहमान ! आज रात-भर तुम मेरे साथ और रहोगे ! और सुबह अपने घर जाओगे !

शीबू : (**बीच में ही घबड़ाकर**) इसीलिए मुझे जिलाया है ! नहीं···कभी नहीं !

डॉक्टर : ओह हो ! पहले मेरी पूरी बात तो सुनो। तुम यहाँ एक दिन रात को बेहोश होकर आए थे—रात में आए थे अब भोर में जाओगे ! घायल-बेहोश आए थे, अब स्वस्थ और चेतन होकर लौटोगे। तब अपने माथे पर खून के धब्बे, आत्महत्या के अभिशाप लेकर आए थे, अब जीवन-पर्व का मंगल-तिलक लगाकर जाओगे।

शीबू : नहीं···नहीं डॉक्टर ! ऐसा धोखा न करो मेरे साथ।

डॉक्टर : मेरे प्रति तुम ऐसा कहोगे ? ख़बरदार ! (**देखते रह जाते हैं**) तुम मेरे बेटे की तरह हो क्योंकि तुम्हें नया जन्म मिला है—पवित्र और बिलकुल नया। और अब इसका मालिक मैं हूँ, तुम नहीं। तुम्हारा जीवन अब मेरा है।

[शीबू चुप है।]

डॉक्टर : तुम मेरी बात नहीं काट सकते ! (**रुककर**) सुनो, तुम नये उत्साह और विश्वास के साथ अपने घर जाओगे। अपने को कर्मरत कर दोगे। तुम्हें जो-जो नहीं मिला है, एक-एक करके मिलेगा, मैं जिम्मेदार होता हूँ। और तुम्हें भी अपने पुरुषार्थ का हिसाब देना होगा। तुम्हें वह सब मिलेगा, जिससे वास्तव में जिया जाता है। मैं साक्षी रहूँगा।

[पृष्ठभूमि में कार रुकने की आवाज़ होती है।]

डॉक्टर : आ गए तुम्हारे पिता और भाई ! मैंने बुलाया है उन्हें। तुम्हारे सामने ही उनके संकल्प होंगे, और साक्षी मैं रहूँगा। झूठ-सच का जिम्मेदार मैं होता हूँ।

[पिताजी और लक्ष्मीचन्द का प्रसन्नता से प्रवेश। सब डाक्टर के पास खड़े हो जाते हैं। सब प्रसन्न हैं, हँसमुख हैं। डॉक्टर अपनी बात कहने चलता है; और इधर स्टेज की रोशनी एकाएक बहुत तेज़ हो जाती है और उसी पर पर्दा गिरता है।

कुछ ही क्षण बाद, परदा पिताजी (रायसाहब) की बैठक में उठता है। भीतर से झुँझलाया हुआ लक्ष्मीचन्द प्रवेश करता है।]

लक्ष्मीचन्द : तुम्हें क्या पता, जो कमाता है, उसे अखरता है ! तुम्हें क्या मालूम कि रुपये में कितने आने होते हैं। (रुककर) मुफ़्त में देखते-देखते सात सौ रुपये ख़र्च हो गए।

[शीबू प्रवेश करता है, पर दरवाज़े पर ही रुक जाता है।]

शीबू : (**आते ही**) किसने कहा था रुपये ख़र्च करने के लिए

लक्ष्मीचन्द : हमें अपने कुल-परिवार की शर्म-हया है !

शीबू : रुपये तुम्हारे ही नहीं हैं—सारे रुपये घर के हैं; औ

लक्ष्मीचन्द : कभी एक कौड़ी कमायी भी है !

शीबू : तुमसे भीख नहीं माँगता !

लक्ष्मीचन्द : माँगोगे, अगर यही दशा रही।

शीबू : (**क्रोध से चीख उठता है**) चुप रहो ! भाग जाओ मे

[स्वयं भीतर चला जाता है।]

लक्ष्मीचन्द : (**व्यंग्य से**) ओह ! यह दिमाग ! भाग क्यों
चलाकर डराते हैं ! मरने के लिए हिम्मत चाहिए
हैं !

[उसी बीच भीतर से पिताजी आते हैं।]

पिताजी : क्या हो गया ! क्या है लक्ष्मीचन्द !

लक्ष्मीचन्द : जब से शीबू डॉक्टर जैन के यहाँ से लौटा है,
गया है ! पहले से भी ख़राब !

पिताजी : कहाँ गया ?

लक्ष्मीचन्द : क्या पता !

पिताजी : हमें चाहिए कि उसे समझा-बुझाकर रखें !
'सेंसिटिव' है, उसे अच्छे भाव मिलने चाहिए।

लक्ष्मीचन्द : अच्छे भाव पाने के लिए करनी अच्छी
जैन के अनुसार आपने उसे लोहे वाली फ़र्म पर
लेकिन क्या हुआ, एक ही महीने में साढ़े
देखकर आ रहा हूँ। सारा काम चौपट

पिताजी : पता नहीं, कब सम्हलेगा !
क़दम आगे रहता।

लक्ष्मीचन्द : आप जानिए, आपका

पिताजी : सुनो लक्ष्मीचन्द !

लक्ष्मीचन्द : (**जाते-जाते**) बस,
नहीं !

[भीतर चला जाता है

पिताजी : (**दुःख से**)
भी पर दुनिया

शीबू : (**सहसा**

शीबू : (**आते ही**) किसने कहा था रुपये खर्च करने के लिए !

लक्ष्मीचन्द : हमें अपने कुल-परिवार की शर्म-हया है !

शीबू : रुपये तुम्हारे ही नहीं हैं—सारे रुपये घर के हैं; और घर में मेरा हिस्सा है।

लक्ष्मीचन्द : कभी एक कौड़ी कमायी भी है !

शीबू : तुमसे भीख नहीं माँगता !

लक्ष्मीचन्द : माँगोगे, अगर यही दशा रही।

शीबू : (**क्रोध से चीख उठता है**) चुप रहो ! भाग जाओ मेरे सामने से !

[स्वयं भीतर चला जाता है।]

लक्ष्मीचन्द : (**व्यंग्य से**) ओह ! यह दिमाग ! भाग क्यों गए ? बुज़दिल ! पिस्टल चलाकर डराते हैं ! मरने के लिए हिम्मत चाहिए ! झूठ-मूठ का ड्रामा करते हैं !

[उसी बीच भीतर से पिताजी आते हैं।]

पिताजी : क्या हो गया ! क्या है लक्ष्मीचन्द !

लक्ष्मीचन्द : जब से शीबू डॉक्टर जैन के यहाँ से लौटा है, उसका दिमाग कुछ और हो गया है ! पहले से भी खराब !

पिताजी : कहाँ गया ?

लक्ष्मीचन्द : क्या पता !

पिताजी : हमें चाहिए कि उसे समझा-बुझाकर रखें ! डॉक्टर जैन ने कहा था, शीबू 'सेंसिटिव' है, उसे अच्छे भाव मिलने चाहिए।

लक्ष्मीचन्द : अच्छे भाव पाने के लिए करनी अच्छी होनी चाहिए ! (**रुककर**) डॉक्टर जैन के अनुसार आपने उसे लोहे वाली फ़र्म पर काम देखने के लिए बैठा रखा था लेकिन क्या हुआ, एक ही महीने में साढ़े सात सौ का नुकसान। मैं अभी हिसाब देखकर आ रहा हूँ। सारा काम चौपट हुआ, यह ऊपर से !

पिताजी : पता नहीं, कब सम्हलेगा ! शिवचंद को तो चाहिए था कि तुमसे भी चार क़दम आगे रहता।

लक्ष्मीचन्द : आप जानिए, आपका काम जाने ! (**जाने लगता है।**)

पिताजी : सुनो लक्ष्मीचन्द ! सब्र से काम लो ज़रा !

लक्ष्मीचन्द : (**जाते-जाते**) बस, शीबू को आप सिर पर लिए घूमिए ! मेरे पास फ़ुरसत नहीं !

[भीतर चला जाता है।]

पिताजी : (**दुःख से**) परेशान है तबीयत शीबू से ! दुनिया में बहुत लड़के हैं, बहुत देखा भी पर दुनिया के सारे लड़के नौजवान इससे नीचे-नीचे !

शीबू : (**सहसा प्रकट होकर**) चलो, मैं आपकी नज़र में कहीं तो बड़ा हूँ !

पिताजी : बड़ा बनने के लिए बड़े खयालात पैदा करो बेटे ! देखो न, बड़ा है तेरा लक्ष्मीचन्द !

शीबू : क्योंकि उनके पैरों के नीचे रुपयों की ढेरियाँ हैं।

पिताजी : क्या तुम रुपयों की ढेरियों पर नहीं खड़े हो सकते ? तुममें क्या कमी है !

शीबू : यही जानता तो क्या था !

पिताजी : सीखो ! मुझसे सीखो, रुपया कैसे पैदा किया जाता है ! मैं तुम्हारा बाप हूँ।

शीबू : यह भी बताने की जरूरत पड़ गई।

पिताजी : कैसे होते जा रहे हो तुम ?

शीबू : जैसा आप लोग बनाते चल रहे हैं !

पिताजी : देखा नहीं, तुम कितने बच्चे हो ! एक ही महीना फ़र्म पर बैठे और सात सौ से ऊपर का नुक़सान हो गया।

शीबू : झूठा है लक्ष्मीचन्द।

पिताजी : चुप रहो ! यही है तुम्हारी तहज़ीब।

शीबू : नहीं चाहिए मुझे ऐसी तहज़ीब ! **(जाने लगता है।)**

पिताजी : कहाँ चले ! मेरी एक बात सुनो !

शीबू : क्या सुनूँ ! तुम लोग जो कहते हो, शायद उसके अर्थ नहीं जानते। यह भी नहीं जानते कि उनमें कितनी चोट है !

पिताजी : अजीब हो तुम।

शीबू : अजीब नहीं, घायल हूँ मैं ! जो पिस्टल मैंने एक दिन अपने ऊपर चलाई थी, उसके घाव फिर ताज़े हो रहे हैं।

पिताजी : तुम्हें कोई बीमारी है। मैं किसी ख़ास डॉक्टर को दिखाकर इलाज कराऊँगा।

शीबू : हूँ···क्यों नहीं ! उस बार मुझ पर साढ़े सात सौ रुपये ख़र्च हुए थे वे अब भी सीने पर पत्थर की तरह रखे हैं !

पिताजी : क्या बकते हो ?

शीबू : अपने लायक़ बेटे लक्ष्मीचन्द से पूछिए। उसने बीसियों बार मुझसे कहा है। वे रुपये मेरे नाम पर एक 'बिल' हैं। मैं चुका दूंगा उसे।

[कुछ काग़जात लिए भीतर से लक्ष्मीचन्द आता है।]

लक्ष्मीचन्द : (काग़जात उलटता हुआ) इनसे पूछिए यह भोजन क्यों नहीं करते ! घर के लोग शाम तक इनका भोजन लिए बैठे रहें और यह···

पिताजी : क्यों शीबू !···क्यों इस तरह परेशान कर रहे हो ?

[शीबू चुप है।]

पिताजी : बोलते क्यों नहीं ? क्या बात है ?

लक्ष्मीचन्द : मुझे मालूम है क्या बात है ! मस्ती है मस्ती ! बैठे-बैठे खाना, कपड़ा और और ऐश करने को मिले तो क्या न हो जाए !

[शीबू दरवाजे से मुड़ता है—भीतर जाता है
गायब हो जाता है। पिताजी बाहर बढ़कर
लक्ष्मीचन्द भीतर चला जाता है। एकाएक स्टेज प
उसी अन्धकार में भागते हुए शीबू को परकाश प

परकाश : कहाँ भाग रहे हो ? तुम परकाश से भागकर

शीबू : (उसे छुड़ाता हुआ) लेकिन तुम मेरी गति नही

परकाश : अब तुम आगे नहीं बढ़ सकते ! अगर बढ़ भी
छोड़ सकता !···मैं नहीं छोड़ने को।

शीबू : मुझे छोड़ दो परकाश ! नहीं तो यह सिद्ध हो
दोस्ती झूठी थी, विश्वासघात था ! मुझे छोड़ दो

[छुड़ाकर शीबू भाग जाता है। परकाश वहीं हतप्र
क्षणों बाद फिर भी आगे चल पड़ता है, लेकिन अब
बुरी तरह घायल कर दिया हो।

स्टेज की रोशनी जब लौटती है, फिर हमें डॉ
पड़ता है—दीवार की घड़ी में शाम के चार बज
पर फ़ोन लगाए बड़ी तेज़ी से कुछ लिखते मिलते हैं।
की आवाज़ उठती है—"झूठा डॉक्टर ! झूठा···
एकाएक दायें हाथ में पिस्टल ताने शीबू आवेश में

डॉक्टर : (प्यार से) क्या है शीबू !···यह हाथ में क्या
आ जाओ !

[शीबू अचानक पिस्टल चला देता है। डॉक्टर
देखकर शीबू चिल्ला उठता है।]

शीबू : (डॉक्टर से लिपट जाता है) डॉक्टर !
(पुकारता है) कम्पाउण्डर ! दौड़ो क

[कम्पाउण्डर और नौकर दौड़े आते

शीबू : सिविल हॉस्पिटल···सर्जन
लो···बचाओ उसे ! (
का खून ! हत्यारा पकड़

[उसी क्षण भागकर

परकाश : (त्रस्त-सा)

[बेहोश डॉक्टर,

परकाश : (शीबू

[शीबू दरवाज़े से मुड़ता है—भीतर जाता है और तेज़ी से बाहर निकलकर गायब हो जाता है। पिताजी बाहर बढ़कर शीबू को पुकारते रह जाते हैं। लक्ष्मीचन्द भीतर चला जाता है। एकाएक स्टेज पर अन्धकार छा जाता है और उसी अन्धकार में भागते हुए शीबू को परकाश पकड़ लेता है।]

परकाश : कहाँ भाग रहे हो ? तुम परकाश से भागकर कहीं नहीं जा सकते।

शीबू : (उसे छुड़ाता हुआ) लेकिन तुम मेरी गति नहीं पकड़ सकते !

परकाश : अब तुम आगे नहीं बढ़ सकते ! अगर बढ़ भी जाओगे, तो मैं तुम्हारा संग नहीं छोड़ सकता !···मैं नहीं छोड़ने का।

शीबू : मुझे छोड़ दो परकाश ! नहीं तो यह सिद्ध हो जाएगा कि हमारी इतनी लम्बी दोस्ती झूठी थी, विश्वासघात था ! मुझे छोड़ दो !

[छुड़ाकर शीबू भाग जाता है। परकाश वहीं हतप्रभ खड़ा रह जाता है। और कुछ क्षणों बाद फिर भी आगे चल पड़ता है, लेकिन अब थके पाँव से; जैसे शीबू ने उसे बुरी तरह घायल कर दिया हो।

स्टेज की रोशनी जब लौटती है, फिर हमें डॉक्टर जैन का वही कमरा दीख पड़ता है—दीवार की घड़ी में शाम के चार बज रहे हैं। और डॉक्टर जैन कान पर फ़ोन लगाए बड़ी तेज़ी से कुछ लिखते मिलते हैं। कमरे के बाहर एकाएक शीबू की आवाज़ उठती है—"झूठा डॉक्टर ! झूठा···डॉक्टर जैन झूठा है।" और एकाएक दायें हाथ में पिस्टल ताने शीबू आवेश में प्रविष्ट होता है।]

डॉक्टर : (प्यार से) क्या है शीबू !···यह हाथ में क्या ले आए ?···आओ मेरे पास आ जाओ !

[शीबू अचानक पिस्टल चला देता है। डॉक्टर फ़र्श पर गिरता है और वह दृश्य देखकर शीबू चिल्ला उठता है।]

शीबू : (डॉक्टर से लिपट जाता है) डॉक्टर ! डॉक्टर ! यह क्या हो गया तुझे ! (पुकारता है) कम्पाउण्डर ! दौड़ो कम्पाउण्डर···कम्पाउण्डर !

[कम्पाउण्डर और नौकर दौड़े आते हैं, शीबू फ़ोन उठा लेता है।]

शीबू : सिविल हॉस्पिटल···सर्जन···दौड़ो···डॉक्टर जैन पर पिस्टल चल गयी। बचा लो···बचाओ उसे ! (रुककर) पुलिस ! पुलिस ! जल्दी आओ···डॉक्टर जैन का खून ! हत्यारा पकड़ा गया।

[उसी क्षण भागकर आते हुए परकाश का प्रवेश होता है।]

परकाश : (त्रस्त-सा) यह क्या कर डाला शीबू तूने ! यह क्या कर डाला !

[बेहोश डॉक्टर दायीं ओर के दरवाज़े से भीतर ले जाया जाता है।]

परकाश : (शीबू को पकड़कर) तूने क्या किया ! आपने डॉक्टर पर पिस्टल ! मर

जाएगा तेरा डॉक्टर ! **(पिस्टल चुरा लेता है।)**

शीबू : **(पागल-सा)** मर जाएगा ! मर जाएगा डॉक्टर जैन ! नहीं···नहीं। मैं नहीं मरने दूँगा।···परकाश ! किसने मारा मेरे डॉक्टर को ? बता वह हत्यारा कहाँ है ?

[बाहर से दो डॉक्टर दौड़कर आते हैं और दायीं ओर मुड़ जाते हैं।]

शीबू : बचाओ ! बचाओ मेरे डॉक्टर को ! रोक दो ! ख़ून !···मैंने ख़ून किया है डॉक्टर जैन का ! गिरफ़्तार कर लो मुझे ! बाँध लो मुझे ! डॉक्टर ! अब मैं नहीं मरूँगा···सच अब मैं नहीं मरूँगा···कभी नहीं···।

[उसी दरवाज़े से लग कर रोने लगता है।]

परकाश : शीबू !···शीबू ! तू भाग जा यहाँ से !

शीबू : बेईमान कहीं का ! मुझे भगाता है !···मैं नहीं भागूँगा···**(रोता है)** परकाश ! ओ परकाश !! तू भीतर जा, मेरे डॉक्टर के कान में कह आ···अब शीबू नहीं मरेगा···कभी नहीं···जा कह आ, तब मेरा डॉक्टर जी जाएगा। वह ज़रूर···

[बेहोश होकर वहीं गिर पड़ता है, पृष्ठभूमि में पुलिस 'जीप' रुकती है और एक पुलिस अफ़सर का प्रवेश। पीछे-पीछे दो कान्स्टेबिल भी हैं। इसी पर तेज़ी से परदा गिरता है और कुछ ही क्षण बाद फिर उठ जाता है। दीवार की घड़ी में सात बज गए हैं। बेहोश शीबू पुलिस से घिरा हुआ गद्देदार सीट पर लिटा दिया गया है। परदा उठने के कुछ ही क्षण बाद डॉक्टर और कम्पाउण्डर के सहारे चलकर डॉक्टर जैन आते हैं और एक आरामकुरसी पर बैठा दिए जाते हैं।]

डॉक्टर : शीबू कहाँ है ?

कई लोग : यह बेहोश पड़ा है !

डॉक्टर : **(पुलिस को देखकर)** आप लोग कैसे खड़े हैं ?

पुलिस अफ़सर : इसे गिरफ़्तार करने !

डॉक्टर : बेहोश···और गिरफ़्तार ! **(दर्द हो आता है। कराहकर दवा लेता है)** **(डॉक्टर और कम्पाउण्डर से)** इसे झट होश में लाओ ! **(डॉक्टर और कम्पाउण्डर शीबू को इंजेक्शन, दवा आदि देने में लग जाते हैं)** कहिए कोतवाल साहब, कैसे तकलीफ़ की आपने ?

कोतवाल : मुल्ज़िम को गिरफ़्तार करने !

डॉक्टर : मुल्ज़िम ! कैसा मुल्ज़िम ? किस क़सूर का मुल्ज़िम ?

कोतवाल : आप पर पिस्टल चलाने वाला···।

डॉक्टर : लेकिन इसने तो नहीं चलाई ! किसने आपको यह झूठी खबर दी ?

कोतवाल : यह तो बिलकुल सही है !

डॉक्टर : झूठ !···यह तो मेरा दोस्त है ! **(रुककर)** बात यह हुई कि चार बजे हम दोनों बैठे बातें कर रहे थे। कार से दो आदमी आए। एक क़रीब मेरी उमर का,

एक नौजवान। दोनों के हाथ में पिस्टलस थीं और
उसी क्षण गोलियाँ चला दीं ! मुझे गोली ज़रूर ल
मैं !

परकाश : **(बीच में ही)** और आप ही का ख़ून देखकर

डॉक्टर : बिलकुल यही बात !

कोतवाल : तो उन दोनों को पहचाना है आपने ?

डॉक्टर : जी, मैंने उन्हें पहचान लिया है—वही मुल्ज़िम

कोतवाल : तो उनके नाम और पते दीजिए !

डॉक्टर : पता तो नहीं जानता; महज उन्हें पहचानता हू

कोतवाल : तब कैसे क्या होगा ! कैसे उनकी गिरफ़्तारी

डॉक्टर : भविष्य पर छोड़ दीजिए ! वे ज़रूर एक दिन
माफ़ कीजिए···आज यही उनकी सजा है !

[कोतवाल पुलिस के संग लौटने लगता है।]

नमस्ते ! आप मुझे भी माफ़ करेंगे ? बड़ी ज़हमत

[पुलिस अफ़सर का प्रस्थान।]

डॉक्टर : होश नहीं हुआ ?···*अब तक नहीं ?*···
हथेलियाँ मुझे दो !···तुम सब जाओ यहाँ

[सबका प्रस्थान।]

डॉक्टर : (प्यार से हँसता है) *शीबू ! ओ*
होश में आओ ! जल्दी *आँख खोलो*
'कॉफी पिएँगे। *तुम डर गए !*
जब मैं ख़ून में डूबा था; *तब भी*
अब।' फिर बोलो शीबू !
मैं आइना हूँ शीबू !
आनी हैं जो अपरा
तसवीरें खो जाएँ !
था, जब तुम चार
हो !···शीबू···

[शीबू को हो

डॉक्टर : (हँस
रुको 'कॉ

[उठ
गिरता

(पिस्टल चुरा लेता है।)

एगा ! मर जाएगा डॉक्टर जैन ! नहीं···नहीं। मैं नहीं
! किसने मारा मेरे डॉक्टर को ? बता वह हत्यारा कहाँ

ड़कर आते हैं और दायीं ओर मुड़ जाते हैं।]

डॉक्टर को ! रोक दो ! खून !···मैंने खून किया है
तार कर लो मुझे ! बाँध लो मुझे ! डॉक्टर ! अब मैं नहीं
मरूँगा···कभी नहीं···।

र रोने लगता है।]

भाग जा यहाँ से !

भगाता है ! ···मैं नहीं भागूँगा··· (रोता है) परकाश !
आ, मेरे डॉक्टर के कान में कह आ···अब शीबू नहीं
कह आ, तब मेरा डॉक्टर जी जाएगा। वह ज़रूर···

ता है, पृष्ठभूमि में पुलिस 'जीप' रुकती है और एक
पीछे-पीछे दो कान्स्टेबिल भी हैं। इसी पर तेज़ी से
क्षण बाद फिर उठ जाता है। दीवार की घड़ी में
पुलिस से घिरा हुआ गद्देदार सीट पर लिटा दिया
ही क्षण बाद डॉक्टर और कम्पाउण्डर के सहारे
एक आरामकुरसी पर बैठा दिए जाते हैं।]

कैसे खड़े हैं ?

होश आता है। कराहकर दवा लेता है)
में लाओ ! (डॉक्टर और कम्पाउण्डर
जाते हैं) कहिए कोतवाल साहब, कैसे

मुल्जिम ?

झूठी खबर दी ?

हुई कि चार बजे हम
करीब मेरी उमर का,

एक नौजवान। दोनों के हाथ में पिस्टल्स थीं और दोनों ने हम पर हमला कर उसी क्षण गोलियाँ चला दीं ! मुझे गोली ज़रूर लग गई। बेहोश भी शायद हो गया मैं !

परकाश : (**बीच में ही**) और आप ही का खून देखकर शीबू भी बेहोश हो गया !

डॉक्टर : बिलकुल यही बात !

कोतवाल : तो उन दोनों को पहचाना है आपने ?

डॉक्टर : जी, मैंने उन्हें पहचान लिया है—वही मुल्जिम हैं !

कोतवाल : तो उनके नाम और पते दीजिए !

डॉक्टर : पता तो नहीं जानता; महज़ उन्हें पहचानता हूँ ! खूब पहचानता हूँ।

कोतवाल : तब कैसे क्या होगा ! कैसे उनकी गिरफ़्तारी हो ?

डॉक्टर : भविष्य पर छोड़ दीजिए ! वे ज़रूर एक दिन खूब गिरफ़्तार होंगे ! ···आज माफ़ कीजिए···आज यही उनकी सज़ा है !

[कोतवाल पुलिस के संग लौटने लगता है।]

नमस्ते ! आप मुझे भी माफ़ करेंगे ? बड़ी ज़हमत उठानी पड़ी आपको !

[पुलिस अफ़सर का प्रस्थान।]

डॉक्टर : होश नहीं हुआ ? ···अब तक नहीं ? ···लाओ मेरे पास खींच दो ! इसकी हथेलियाँ मुझे दो ! ···तुम सब जाओ यहाँ से ! जाओ, ड्राइंग रूम में बैठो ?

[सबका प्रस्थान।]

डॉक्टर : (**प्यार से हँसता है**) शीबू ! ओ बेटे शीबू ! (**हथेलियाँ मलता रहता है**) होश में आओ ! जल्दी आँख खोलो। मैं तुमसे बातें करूँगा ! अभी साथ-साथ 'कॉफी पिएँगे। तुम डर गए ! पागल कहीं का, समझ बैठे कि डॉक्टर मर गया ! जब मैं खून में डूबा था; तब भी मैं तुम्हारी आवाज़ सुन रहा था···'मैं नहीं मरूँगा अब।' फिर बोलो शीबू ! मैं फिर तुम्हारी आवाज़ सुनना चाहता हूँ। (**रुककर**) मैं आइना हूँ शीबू ! तुम मेरी तस्वीर हो ! इस आइने में उनकी भी तस्वीरें आनी हैं जो अपराधी हैं, जो घृणा देते हैं। तुम जागो शीबू, जिससे वे अपराधी तसवीरें खो जाएँ ! (**रुककर**) मैं अपने आइने में तुम्हें देख रहा हूँ ! तब भी देखा था, जब तुम चार दिनों तक चुप थे। और अब भी देख रहा हूँ जब तुम बेहोश हो ! ···शीबू···।

[शीबू को होश हो आता है और वह पुकार उठता है, 'डॉक्टर !']

डॉक्टर : (**हँसता है**) जग गए तुम ! ···रोता है ! ···अब भी रोता है ! यह आँसू ! रुको 'कॉफ़ी' मँगाता हूँ। साथ-साथ पिएँगे।

[उठ कर आवाज़ देता है, शीबू भी उठने लगता है, उसी पर तेज़ी से परदा गिरता है।]

जादू बंगाल का

पात्र

बाज़ीगर
जमूरा
इत्तफ़ाक़ सिंह
एक सज्जन
कुछ आदमी तथा एक भीड़

[सड़क के किनारे जनता की भीड़ के बीच ब
रही है। बाँसुरी में वह किसी चलती हुई ि
कुछ क्षणों बाद बाज़ीगर बाँसुरी की धुन बदल
उसे ठीक-ठाक करता है। उसमें से मनुष्य की
पत्थर निकालकर सामने सजाता है। सहसा

जमूरा : बाज्जीगर ! अब खेल देक्खेगा।
बाज़ीगर : खेल देखेगा ? कैसा खेल ?
जमूरा : हुड़क्कचुल्लू का !
बाज़ीगर : अबे हुड़क्कचुल्लू कौन ? तेरा नाना ?
जमूरा : नेहीं, तेरा नान्ना ! वही डिब्बे वाल्ला !
बाज़ीगर : मेरा नाना ? अबे मैं तुझसे बड़ा हूँ।
जमूरा : नेहीं नेहीं ! मैंई तुझसे बड़ा हूँ।
बाज़ीगर : अबे, मुझे देख। तेरा होश कहाँ है ? छू
न जाए खाली। जादू बंगाल का ! उस्ताद का
जमूरा : हैंइ···हैंइ···हैंइ ! नादान बाज़ीगर !
हैय ?
बाज़ीगर : बाज़ीगरी के लिए जमूरे !
जमूरा : औरर्ऽऽऽ नहीं तो क्या ?
बाज़ीगर : नहीं पेट के लिए जमूरे। तभी
जमूरा : भरेइगा बेइट्टा !
बाज़ीगर : अबे मैं तेरा बाप हूँ रे !
जमूरा : मैंइं तेरे बाप का बाप्प हूँ रे !
बाज़ीगर : (जनता से) इसे
मूँछें कहाँ हैं ?
जमूरा : मेरें पेट्ट में।
बाज़ीगर : यह देखो,
अच्छा,
जमूरा :
बाज़ीगर :
जमूरा :

[सड़क के किनारे जनता की भीड़ के बीच बाज़ीगर की बाँसुरी और डुगडुगी बज रही है। बाँसुरी में वह किसी चलती हुई फ़िल्म के गीत की धुन बजा रहा है। कुछ क्षणों बाद बाज़ीगर बाँसुरी की धुन बदलता हुआ अपनी झोली के पास बैठकर उसे ठीक-ठाक करता है। उसमें से मनुष्य की खोपड़ी तथा कुछ विचित्र लकड़ी-पत्थर निकालकर सामने सजाता है। सहसा जमूरा बोलता है—]

जमूरा : बाज्जीगर ! अब खेल देक्खेगा।

बाज़ीगर : खेल देखेगा ? कैसा खेल ?

जमूरा : हुड़क्कचुल्लू का !

बाज़ीगर : अबे हुड़क्कचुल्लू कौन ? तेरा नाना ?

जमूरा : नेहीं, तेरा नान्ना ! वही डिब्बे वाल्ला !

बाज़ीगर : मेरा नाना ? अबे मैं तुझसे बड़ा हूँ।

जमूरा : नेहीं नेहीं ! मैंई तुझसे बड़ा हूँ।

बाज़ीगर : अबे, मुझे देख। तेरा होश कहाँ है ? छू मंतर ! कलकत्ते वाली, मेरा वचन न जाए खाली। जादू बंगाल का ! उस्ताद का नाम।

जमूरा : हैंइ···हैंइ···हैंइ ! नाद्दान बाज़ीगर ! उत्तावली मत्त कर ! घबड़ात्ता क्यूँ हैय ?

बाज़ीगर : बाज़ीगरी के लिए जमूरे !

जमूरा : औरर्ऽऽऽ नहीं तो क्या ?

बाज़ीगर : नहीं पेट के लिए जमूरे। तभी जल्दी है। एक जगह से पेट भरेगा ?

जमूरा : भरेंइगा बेइट्टा !

बाज़ीगर : अबे मैं तेरा बाप हूँ रे !

जमूरा : मैंई तेरे बाप का बाप्प हूँ रे !

बाज़ीगर : (**जनता से**) इसे देखिए ! यह मेरे बाप का बाप है। अबे मेरे मूँछें हैं, तेरी मूँछें कहाँ हैं ?

जमूरा : मेरें पेट्ट में।

बाज़ीगर : यह देखो, इसकी मूँछें इसके पेट में हैं। तब तो तू ज़रूर मेरे बाप का बाप है ! अच्छा, जमूरे एक बात बताएगा ?

जमूरा : बतायेंगा···ज़रूर बतायेंगा !

बाज़ीगर : बाप बड़ा कि बेटा ?

जमूरा : बेइट्टा बड़ा !

बाज़ीगर : हैं ! अबे सास बड़ी कि बहू बड़ी ?
जमूरा : बहू बड़ी !
बाज़ीगर : अबे मर्द बड़ा कि औरत ?
जमूरा : औरत्त बड़ी ।
बाज़ीगर : भगवान् बड़ा कि आदमी ?
जमूरा : आद्दमी बड़ा ।
बाज़ीगर : शुकर कर जमूरे ! भगवान् बड़ा…भगवान् बड़ा ! मालिक, वह परवरदिगार बड़ा, जिसकी रहम से…।
जमूरा : औरत्त बड़ी !
बाज़ीगर : चुप रह…चुप रह…जमूरे, तू बड़ा चालाक है ।
जमूरा : तू भी चालाक्क है बेट्टा ! दुआ देत्ता हूँ तुझे !
बाज़ीगर : तो तुझे खेल दिखाऊँ ?
जमूरा : नेंही सबको खेल दिक्खा !
बाज़ीगर : अरे सबको क्यों ?
जमूरा : पेट्ट के लिए !
बाज़ीगर : अच्छा तो जमूरे, सबको अपना पेट दिखा दे !

[जमूरा कमीज़ उठाकर सबको अपना पेट दिखाता है । और बाज़ीगर उठकर फिर से अपनी बाँसुरी और डुगडुगी बजाता है, और कुछ मन्त्र-सा पढ़ता हुआ अपनी झोली को टटोलता हुआ ज़मीन पर बैठ जाता है ।]

बाज़ीगर : (**अपनी झोली में हाथ डालकर**) तो देख जमूरे ! मैं तुझे हुड़कचुल्लू का खेल दिखाता हूँ ! बच्चे, बूढ़े, जवान, मेहरबान क़दरदान ज़रा दो हाथ की ताली बजाना और अपनी-अपनी जेब पाकेट से होशियार रहना, नहीं तो कहीं गाड़ी प्लेट-फ़ारम से ग़ायब न हो जाए ! खेल खेल ही रह जाए, कहीं जान जोखिम में पड़ जाए ! जादू का खेल हाथ की मैल ! पेट का सवाल ! ईश्वर अल्लाह का जलाल। फिर से एक बार ताली बजाओ मेहरबान…क़दरदान ! एक…दो…तीन। उस्ताद का नाम ! हिंगलाज का जादू ! बंगाल का नाम ! उस्ताद का दिया काम, क्यों जमूरे ?

[भीड़ ताली बजाती है । बाज़ीगर मन्त्र पढ़कर पुनः बाँसुरी बजाता है और हाथ की एक लकड़ी को चारों दिशाओं में घुमाता है ।]

जमूरा : बेस…बेस बाजीगर ! खेइल्ल दिक्खा ।
बाज़ीगर : ईश्वर का नाम ले जमूरे ! किधर ध्यान है तेरा ? पलटकर देख !

[बाज़ीगर झोली में हाथ डालता है, और चौंककर हाथ झटक लेता है ।]

बाज़ीगर : जमूरे !अबे यह तो काटता है ! (**पुचकारकर**) अबे, सँभल जा ! काटे मत …नहीं तो तेरा कलेजा निकालकर कुतुबमीनार पर टँगवा दूँगा…लाश को लाल

क़िले में गड़वा दूँगा ।
जादू बंगाल वाला ! मुँह पर लगा दूँगा
नियामुत्तुल्ला !

[धीरे-धीरे एक डिब्बा निकालकर झोली के सा

जमूरा : बाज्जीगर ! डिब्बे से बाहर निक्कालो !
बाज़ीगर : बाहर क्यों ?
जमूरा : हम कुश्ती लड़ेंग्गा !
बाज़ीगर : अबे इनसे तो दारासिंह हार गया ! मान
भाग जाएगा, भाग…।
जमूरा : नेंही भाग्गेगा !
बाज़ीगर : नहीं भागेगा ? तो ले निकालता हूँ ! होशि

[बाज़ीगर डिब्बे के चारों तरफ घूमकर बाँसुरी ब

बाज़ीगर : अबे जमूरे, मुट्ठी क्यों बाँधता है ! खोल दे अ
जमूरा : मेर्री मुट्ठी मेंइ जाद्दू हेंइ ।
बाज़ीगर : तो जादू तू दिखाएगा कि मैं ?
जमूरा : अच्छा जा, तू ही दिक्खा ।
बाज़ीगर : (**जनता से**) मेहरबान, अपनी-अपनी मुट्ठिय
जादू का जादू…उस्ताद का नाम मुबारक हो मेहर
जमूरे ! निकालूँ इसे ! *भागेगा नहीं ?*
जमूरा : नेईं, नेईं भाग्गेगा !
बाज़ीगर : अबे, यह *भागा तो लाठी कौन मारेगा ?*
जमूरा : किसी को *बुल्ला लेना ।*
बाज़ीगर : ठीक कहता है ! है कोई हिम्मतवा

[बाज़ीगर भीड़ में से किसी आदमी
एक आदमी को बरबस प
देता है। फिर उस आ

बाज़ीगर : जमूरे, लो ब
जमूरा : इनका नाम ?
बाज़ीगर : हाँ पू
इत्तफ़ाक़ : सिंह
बाज़ीगर : क्या

[भीड़
हाँ

क़िले में गड़वा दूँगा।

जादू बंगाल वाला ! मुँह पर लगा दूँगा ताला ! अल्ला···इंशा अल्ला ! नियामुत्तुल्ला !

[धीरे-धीरे एक डिब्बा निकालकर झोली के सामने रख देता है।]

जमूरा : बाज्जीगर ! डिब्बे से बाहर निक्कालो !

बाज़ीगर : बाहर क्यों ?

जमूरा : हम कुश्ती लड़ेंइग्गा !

बाज़ीगर : अबे इससे तो दारासिंह हार गया ! मानसिंह भाग गया। तू क्या लड़ेगा ? भाग जाएगा, भाग···।

जमूरा : नेंही भाग्गेगा !

बाज़ीगर : नहीं भागेगा ? तो ले निकालता हूँ ! होशियार···खबरदार जमूरे !

[बाज़ीगर डिब्बे के चारों तरफ घूमकर बाँसुरी और डुगडुगी बजाता है।]

बाज़ीगर : अबे जमूरे, मुट्ठी क्यों बाँधता है ! खोल दे अपनी मुट्ठी !

जमूरा : मेरीं मुट्ठी मेंइ जाद्दू हेंइ।

बाज़ीगर : तो जादू तू दिखाएगा कि मैं ?

जमूरा : अच्छा जा, तू ही दिक्खा।

बाज़ीगर : (**जनता से**) मेहरबान, अपनी-अपनी मुट्ठियाँ खोल दो ! हाँ खेल का खेल, जादू का जादू···उस्ताद का नाम मुबारक हो मेहरबान ! (**ज़ोर से पुकारकर**) तो जमूरे ! निकालूँ इसे ! भागेगा नहीं ?

जमूरा : नेईं, नेईं भाग्गेगा !

बाज़ीगर : अबे, यह भागा तो लाठी कौन मारेगा ?

जमूरा : किसी को बुल्ला लेना।

बाज़ीगर : ठीक कहता है ! है कोई हिम्मतवाला पहेलवान !

[बाज़ीगर भीड़ में से किसी आदमी को बुलाता है। कोई आगे नहीं आता, फिर एक आदमी को बरबस पकड़कर पास खींच लेता है और अपनी लाठी उसे थमा देता है। फिर उस आदमी को जमूरे के बग़ल में बिठा देता है।]

बाज़ीगर : जमूरे, लो यह पहलवान, तुम्हारे भाईजान आ गए !

जमूरा : इनका नाम ?

बाज़ीगर : हाँ पहलवान ! तुम्हारा नाम ?

इत्तफ़ाक़ : सिंह : इत्तफ़ाक़ सिंह।

बाज़ीगर : क्या कहा ? इत्तफ़ाक़ सिंह ! धोखे में पैदा हुए थे क्या ?

[भीड़ हँस पड़ती है।]

हाँ-हाँ ! नाराज़ न हो ! गुस्से में मत आओ पहलवान, बैठो-बैठो ! नाम बड़ा

पहलवान का और नाम बड़ा मेहरबान का ! या उस भगवान् का ! तो पहलवान इत्तफ़ाक़ सिंह, कंजूस देखा है या चुगलखोर देखा है ?

इत्तफ़ाक़ सिंह : दोनों देखा है ! (**लोग हँसते हैं ।**)

बाज़ीगर : तो थूक दो उसके नाम पर ! वह पेट में लात मारता है। वह कहता है कि बाज़ीगर धोखा देता है !

जमूरा : खेल दिखा बाज़ीगर ! यहाँ कोई कंजूस, चुगलखोर नहीं।

बाज़ीगर : तो पहलवान इत्तफ़ाक़ सिंह, तुम्हारी शादी अभी हुई कि नहीं ?

इत्तफ़ाक़ सिंह : अभी नहीं हुई।

बाज़ीगर : तो शादी करोगे ?

इत्तफ़ाक़ सिंह : हाँ, करेंगे !

बाज़ीगर : एक या दो ?

इत्तफ़ाक़ सिंह : दो !

बाज़ीगर : वाह पहलवान ! बड़े शौकीन हो यार। मर्द हो कि औरत ?

इत्तफ़ाक़ सिंह : मर्द !

बाज़ीगर : ज़नाना हो कि ज़नानी ?

इत्तफ़ाक़ सिंह : ज़नाना !

[भीड़ हँसती है ।]

बाज़ीगर : यह देखो, ज़नाना पहलवान दो शादी करेगा। औरत काली या गोरी ?

इत्तफ़ाक़ सिंह : गोरी।

बाज़ीगर : बंगाल की या पंजाब की !

इत्तफ़ाक़ सिंह : पंजाब की।

बाज़ीगर : एक आँख की या सवा आँख की ?

इत्तफ़ाक़ सिंह : सवा आँख की।

[भीड़ हँसती है ।]

बाज़ीगर : कुँआरी कि बच्चों वाली ?

इत्तफ़ाक़ सिंह : कुँआरी।

बाज़ीगर : वाह ! पहेलवान, तो शादी के लिए रुपये हैं ?

इत्तफ़ाक़ सिंह : नहीं, तुम दो।

बाज़ीगर : तुम तो जमूरे के भी चाचा निकले यार !

जमूरा : बाज़ीगर खबरदार ! इनसे पूछो कि इनके बाप की शादी हुई थी ?

इत्तफ़ाक़ सिंह : तुम्हारे बाप की हुई थी ?

जमूरा : पहेलवान गुस्से में आ गेया। इसको रुपए से ठंडा केरो।

बाज़ीगर : अच्छा तो पहलवान, तुम्हारी शादी के लिए रुपए बनाता हूँ। तैयार हो जाओ लेने के लिए। बच्चे लोग ज़रा ताली बजाओ।

[ताली बजती है।]

बाज़ीगर : बस…बस…बस ! उस्ताद का नाम… सलाम। तेरी मसान, तेरा झपझप कान ! या अ… हाथ, क़िस्मत मेरे साथ।

[बाज़ीगर अपनी झोली में हाथ डालता है, और…

बाज़ीगर : तो लो पहलवान, मैं तुम्हारी शादी के लिए… की राख। हथेली पर रखी, मुट्ठी बाँधी ! जादू… गुरु का नाम, उस्ताद की माया…बन जा रुपया… की माया ! रुपया आ। खबरदार। नाम भगव… मार देता हूँ। चल ठनाठन्…ठन् ठन् !

[बाज़ीगर की हथेली में रुपया आ जाता है। … एक सज्जन अपने संग बारह साल के बच्चे को…

बाज़ीगर : मेहरबान ! ज़रा किनारे खिसककर … का।

सज्जन : मुझे सब मालूम है ! यह मेरा लड़का … मालूम है यह कारीगरी !

जमूरा : (आँख मारता हुआ) बाज़ीगर ! चुर्…

बाज़ीगर : हाँ जमूरे ! चुर्राइट ड्रिंगड्रांग ! य… एक दो तीन…ठनाठन ! यह जादू बंगा… पहचानो पहलवान, रुपया मिट्टी से बना…

[सहसा वही सज्जन बोलते हैं।]

सज्जन : यह रुपया तो पहले से ही तुम्हा… देखा था। लकड़ी नीचे रखकर दोनों… और रुपए बनाकर दिखाओ तो…

जमूरा : (आँख नचाकर) चुर्राइट ड्रि…

बाज़ीगर : सरकार ! सब इन्हीं हा… आज हवाई जहाज़ में उड़ता… करता। अपने मेम से बो…

जमूरा : और मैंइ इस्सी सा…

सज्जन : अच्छा-अच्छा, …

बाज़ीगर : अच्छा-अच्छा … इत्तफ़ाक़ सिंह ! …

[इत्तफ़ाक़ सिंह …

[ताली बजती है।]

बाज़ीगर : बस···बस···बस ! उस्ताद का नाम···परमेश्वर का नाम ! मिट्टी को सलाम। तेली मसान, तेरा झपझप कान ! या अली, क़िस्मत का बली। लाज तेरे हाथ, क़िस्मत मेरे साथ।

[बाज़ीगर अपनी झोली में हाथ डालता है, और एक लकड़ी निकालता है।]

बाज़ीगर : तो लो पहलवान, मैं तुम्हारी शादी के लिए रुपये बनाता हूँ। यह है ज़मीन की राख। हथेली पर रखी, मुट्ठी बाँधी ! जादू का डण्डा घुमाया। एक दो तीन, गुरु का नाम, उस्ताद की माया···बन जा रुपया···बन जा। अरे उस्ताद गुरुमन्त्र की माया ! रुपया आ। खबरदार। नाम भगवान् का ! चुर्राइट। यह लो फूँक मार देता हूँ। चल ठनाठन्···ठन् ठन् !

[बाज़ीगर की हथेली में रुपया आ जाता है। लोग प्रसन्न हैं। सहसा भीड़ में से एक सज्जन अपने संग बारह साल के बच्चे को साथ लिए हुए आगे आते हैं।]

बाज़ीगर : मेहरबान ! ज़रा किनारे खिसककर दयावान ! खेल जादू—का, पेट के नाम का।

सज्जन : मुझे सब मालूम है ! यह मेरा लड़का मुझे यहाँ खींच ले आया ! मुझे सब मालूम है यह कारीगरी !

जमूरा : **(आँख मारता हुआ)** बाज़ीगर ! चुर्राइट ! ड्रिगड्रांग !

बाज़ीगर : हाँ जमूरे ! चुर्राइट ड्रिगड्रांग ! यह लो और रुपये पहेलवान। चुर्राइट। एक दो तीन···ठनाठन ! यह जादू बंगाल का। इंगलैण्ड पाकिस्तान का। रुपया पहचानो पहलवान, रुपया मिट्टी से बना कि टकसाल से ?

[सहसा वही सज्जन बोलते हैं।]

सज्जन : यह रुपया तो पहले से ही तुम्हारे हाथ में था ! उस लकड़ी वाले हाथ में मैंने देखा था। लकड़ी नीचे रखकर दोनों हथेली दिखाकर इन रुपयों के अलावा अब और रुपए बनाकर दिखाओ तो जानें।

जमूरा : **(आँख नचाकर)** चुर्राइट ड्रिगड्रांग !

बाज़ीगर : सरकार ! सब इन्हीं हाथों की सफ़ाई है। मैं अगर असल रुपए बनाता तो आज हवाई जहाज़ में उड़ता, बम्बई में फ्लैट लेकर मैरियन ड्राइव पर वाकिंग करता। अपने मेम से बोलता, कि डार्लिंग हिन्दुस्तान मुझे अच्छा नहीं लगता।

जमूरा : और मैंइ इस्सी साहब का बेरा होकर चुरॅट खुरॅट करता।

सज्जन : अच्छा-अच्छा, बकवास मत करो, कोई नया खेल दिखाओ।

बाज़ीगर : अच्छा-अच्छा बाबू साहब। **(बाँसुरी और डुगडुगी बजाकर)** तो पहेलवान इत्तफ़ाक़ सिंह ! ज़रा ताली बजाना !

[इत्तफ़ाक़ सिंह ताली बजाते हैं।]

बाज़ीगर : पहेलवान खाना नहीं खाया क्या ? तो लो पहेलवान मेहरबान···कदरदान मैं अब अपने पेट से लोहे के गोले निकालूँगा !

[बाज़ीगर बाँसुरी बजाता हुआ, झोली में से काँच की एक गोली निकालता है]

बाज़ीगर : जमूरे !

जमूरा : किया हैय ?

बाज़ीगर : काँच का गोला।

जमूरा : तू इसे खाएगा ?

बाज़ीगर : पहेलवान, खाएगा ! क्यों पहेलवान ? खाएगा ?

इत्तफ़ाक़ सिंह : नहीं तू ही खाइगा।

बाज़ीगर : क्यों जमूरे ? मैं ही खाऊँगा ?

जमूरा : पेट्ट तुम्हारे हैय, और कौन खाइगा ?

बाज़ीगर : अबे, मैं मर गया तो ?

जमूरा : तो मैंइ तेरी झोली लेकर भाग्ग जाऊँगा।

बाज़ीगर : यह देखो, इसकी नज़र मेरी झोली पर है। अबे, मैं मर जाऊँगा तो मेरी बीवी रोएगी !

जमूरा : बेफिकर्र रह, मैंइ जिन्दा हूँ !

[भीड़ से हँसी]

बाज़ीगर : बड़ा बदमाश है। मेरे बाप का बाप है, उधर कहता है कि···

जमूरा : (सहसा) चुर्राइट ! बाजीगर खेल्ल दिखा।

बाज़ीगर : अच्छा, तो यह लो, पहेलवान इत्तफ़ाक़ सिंह···इत्तफ़ाक से इस गोले को निगल जाओ।

इत्तफ़ाक़ सिंह : नहीं भइया, तुम्हीं खाओ !

बाज़ीगर : हूँ ! तो मैं ही फ़ालतू हूँ। अच्छा तो लो, ताली बजाना मेहरबान···बच्चे बूढ़े जवान !

[बाँसुरी और डुगडुगी बजाता है। एकाएक रुक जाता है, और हुचकी मारकर पेट पर हाथ फेरने लगता है]

जमूरा : बाजीगर खबरदार !

बाज़ीगर : अर···र···र···र··· (जैसे पेट में दर्द हो रहा है) उँ हूँ···हूँ···बाप रे···बम्मा···हुपं··· (बाज़ीगर अपना हाथ मुँह के पास ले जाता है। उसके मुँह में लोहे का एक गोला आ जाता है। बाज़ीगर उसे हाथ से निकालना चाहता है, पर वह नहीं निकल रहा है) ऊँ ऊँ बम्म···आ···आ हूँ···हूँ···हुपं।

[जमूरा उठता है और बाज़ीगर की पीठ पर एक घूसा मारता है। गोला उसके मुँह से बाहर निकलता है। भीड़ में से हँसी।]

सज्जन : खूब बेवक़ूफ़ बनाते हो ! तुमने गोला खाया
झोली में चला गया।

इत्तफ़ाक़ सिंह : हाँ-हाँ ठीक कह रहे हैं आप !

सज्जन : और हाथ में गोला लेकर मुँह में डाल लिय
चलो मैं गोला तुम्हें खिलाता हूँ; फिर उसे तु
रहो !

जमूरा : सामने आओ ! चुर्राइट !

बाज़ीगर : सरकार, यह खेल-तमाशा आप-जैसों के लिए
यह न जादू है, न टोना है, हाथी सफ़ाई, गाढ़े पसी
कर दर-दर पेट के लिए। (ज़ोर से डुगडुगी बजाक
तो तुझे इस छुरी से काटकर सात समुन्दर के पार
न देखता।

[बाज़ीगर छुरी पेट में मारने चलता है। जमूरा

जमूरा : हैंइ हैंइ ! यह किया कर्र रहा हैय ? पुलिस
चक्की चलाएंगा !

[बाज़ीगर फिर बाँसुरी और डुगडुगी बजाता है।

बाज़ीगर : पहेलवान, इत्तफ़ाक़ सिंह ! नाक काटेगा,

इत्तफ़ाक़ सिंह : काटेगा।

बाज़ीगर : अपनी या जोरू की ?

इत्तफ़ाक़ सिंह : तुम्हारी।

बाज़ीगर : धत्त तेरे की ! ···तुम्हारी नाक कहाँ है

इत्तफ़ाक़ सिंह : मुँह में।

बाज़ीगर : मुँह में ? नाक काटकर मुँह में र

[भीड़ हँसती है।]

बाज़ीगर : तो पहेलवान, मैं अपनी
बजाओ !

[बाज़ीगर अपनी छुरी
देता है। छुरी नाक में
दे रहा है। भीड़ के
उठता है—]

बच्चा : पिताजी···पिता

[भीड़ में से
माँगता है।]

सज्जन : खूब बेवक़ूफ़ बनाते हो ! तुमने गोला खाया कहाँ ? गोला तो तुम्हारे हाथ से झोली में चला गया ।

इत्तफ़ाक़ सिंह : हाँ-हाँ ठीक कह रहे हैं आप !

सज्जन : और हाथ में गोला लेकर मुँह में डाल लिया और वही बाहर चला आया । चलो मैं गोला तुम्हें खिलाता हूँ; फिर उसे तुम निकालो । झोली से अलग बैठ रहो !

जमूरा : सामने आओ ! चुर्राइट !

बाज़ीगर : सरकार, यह खेल-तमाशा आप-जैसों के लिए नहीं । सब पापी पेट है सरकार । यह न जादू है, न टोना है, हाथी सफ़ाई, गाढ़े पसीने की कमाई । अपना वतन छोड़-कर दर-दर पेट के लिए । (**ज़ोर से डुगडुगी बजाकर**) हाय रे पापी पेट ! बस चलता, तो तुझे इस छुरी से काटकर सात समुन्दर के पार फेंक आता । और कभी तेरा मुँह न देखता ।

[बाज़ीगर छुरी पेट में मारने चलता है । जमूरा दौड़कर थाम लेता है ।]

जमूरा : हैंइ हैंइ ! यह किया कर रहा हैय ? पुलिस गिरफ़्तार करेंगी ! जेल जाएँगा चक्की चलाएँगा !

[बाज़ीगर फिर बाँसुरी और डुगडुगी बजाता है ।]

बाज़ीगर : पहेलवान, इत्तफ़ाक़ सिंह ! नाक काटेगा, या कटाएगा ?

इत्तफ़ाक़ सिंह : काटेगा ।

बाज़ीगर : अपनी या जोरू की ?

इत्तफ़ाक़ सिंह : तुम्हारी ।

बाज़ीगर : धत्त तेरे की ! ···तुम्हारी नाक कहाँ है ?

इत्तफ़ाक़ सिंह : मुँह में ।

बाज़ीगर : मुँह में ? नाक काटकर मुँह में रख लिया ?

[भीड़ हँसती है ।]

बाज़ीगर : तो पहेलवान, मैं अपनी नाक काटकर तुम्हें उधार देता हूँ । बच्चे लोग ताली बजाओ !

[बाज़ीगर अपनी छुरी देख रहा है । सहसा बाज़ीगर छुरी को नाक में पूरी समा देता है । छुरी नाक में पूरी घँसी हुई है और चारों ओर से थोड़ा-थोड़ा ख़ून दिखाई दे रहा है । भीड़ के लोग प्रसन्न हैं । सज्जन के साथ बच्चा आश्चर्य से चिल्ला उठता है—]

बच्चा : पिताजी···पिताजी ! देखिए नाक काट डाली !

[भीड़ में से बहुत-से लोग झोली पर पैसे फेंक रहे हैं । बच्चा भी पिता से पैसे माँगता है ।]

सज्जन : बेटा, बाज़ीगर बेवक़ूफ़ बना रहा है। उसकी नाक कटी कहाँ है? वह छुरी ही ऐसी है। उसकी धार में उतनी जगह खाली है—वही नाक पर ऐसी फ़िट हो गयी है कि लगता है नाक को काटकर छुरी उसमें धँसी है। और वह ख़ून नहीं, रंग है।

[बाज़ीगर तेज़ी से छुरी निकाल लेता है और डुगडुगी बहुत आवेश में बजा कर कहता है—]

बाज़ीगर : जमूरे! किमदड़ाम्! बाबा मुछन्दर हुकुम् दड़ाम्।

जमूरा : किड़ी कूँ बाज्जीगर! फिकर नाट्ट। चुर्राइट!

बाज़ीगर : तो लो मेहरबान क़दरदान! मैं आपके सामने एक और खेल दिखाता हूँ। इसके बाद जमूरे और हुड़कचुल्लू की एक जबरदस्त कुश्ती होगी। आप लोग ज़रा और पीछे हट जाइए। हाँ मेहरबान! बच्चे जवान! बजाओ तो दो हाथ की ताली! ···और तेज़ बजाओ। नाम उस्ताद का! जादू बंगाल का! शाबाश मिट्टी के शेर!

[ताली बजती है। बाज़ीगर झोली में से मिट्टी का एक लोटा निकालता है, जिसके बगल में एक छेद है।]

जमूरा : बाज़ीगर! भूक्ख लगी हैय!

बाज़ीगर : धीरज कर जमूरे! हमारी जनता मेहरबान है। जो किसी के पेट में लात मारता है, उसको परमेश्वर देखता है। तो मेहरबान, यह लोटा जादू का है—जिसे मेरे उस्ताद ने अपने हाथों से पचास सालों में बनाया। तो मेहरबान, देखिए, वैसे यह लोटा ख़ाली है! (**सबको दिखाता है।**) इसे पेट में लात मारने वाले मेहरबान भी देख लें बेशक! मेहरबान! देखिए यह लोटा खाली है! और इसमें यह सूराख़ भी है! लेकिन जब मैं इसमें पानी भरता हूँ तो यह समुन्दर का समुन्दर पानी निगल जाता है, और फिर जब मैं इससे कहता हूँ कि पानी निकाल समुन्दर का! तब उस्ताद का यह बेशक़ीमती कोहनूर लोटा समुन्दर के समुन्दर पानी उगल देता है! इस तरह मेहरबान, यह मेरे उस्ताद का लोटा कभी खाली नहीं होता! फिर मैं लोटा भरके दिखाता हूँ। लो मेहरबान, मैं अपनी झोली से दूर आ खड़ा होता हूँ! यह देखो यह लोटा बिलकुल खाली है!

जमूरा : हैय, बिलकुल खाली!

इत्तफ़ाक़ सिंह : हाँ देख लिया।

बाज़ीगर : मैं अब इसमें एक गिलास पानी डालता हूँ।

[पानी डालते ही लोटा भर जाता है।]

यह देखो लोटा भर गया और इसमें सूराख़ क़ायम है।
उस्ताद के हुकुम बिना सूराख़ से पानी का एक क़तरा भी नहीं गिर सकता। तो

लो मेहरबान, अब मैं इस पानी को गिरा देता हूँ।
यह देखो लोटा फिर ख़ाली का ख़ाली! लो मैं इस
हूँ। लोटा भर गया। इसे मैं फिर गिरा देता हूँ।
पूरा ख़ाली नहीं हुआ—मेहरबान, हुकुम उस्ताद
मेहरबान, लोटे में से समुन्दर का कितना पानी अप

[बाज़ीगर बाँसुरी बजाकर, लोटे के सूराख़ से फूँ
लबालब भर जाता है, और उसमें-से पानी उफन क

जमूरा : बस्स···बस्स बाज्जीगर! बाढ़ आ जाएगी
धक्का पहुँच जायेग्गा। इंजीन्नियर लोग बाढ़ में
होइ जाएग्गा। उनकी कोई सुनवाई नेंही, तुम्हारी
डैइम बह जाएग्गा। चीनी ढाई रुपया सेर बिका
जाएग्गा। ख़बरदार बाज्जीगर! पेट्ट में लात मा
ऊँट के पेट्ट में बिल्ली घुस्स गयी हैय।

[भीड़ के लोग लोटे में से बहते पानी को देखकर प्रस
बाज़ीगर झुककर सबको सलाम करता है।]

सज्जन : आप लोग समझते नहीं। यह लोटा दोहरी परत
से पानी गिरता नहीं। उसमें पानी भरा रहता
का दबाव नीचे से बढ़ जाता है और पानी ऊपर
सूराख़ करके यह बाज़ीगरी दिखाए तो पता चले!

[भीड़ में से कई आदमी बोलते हैं—फिर एक-ए

एक आदमी : हाँ-हाँ बाबूजी ठीक कहते हैं।

दूसरा आदमी : दूसरे लोटे में दिखाओ।

तीसरा आदमी : तब पैसे देंगे, नहीं तो खेल

चौथा आदमी : पैसा हजम!

जमूरा : बाज नेई आएग्गा। जादू दिखा

इत्तफ़ाक़ सिंह : हाँ जादू दिखाओ!

[सज्जन हँस रहे हैं। भीड़

बाज़ीगर : (बाँसुरी बजाक
जादू। जो मर्द को
खूँटे में बाँधता है।
चलो कौन मर्द है

इत्तफ़ाक़ सिंह : अप

जमूरा : पहेल्लवान

फ़ बना रहा है। उसकी नाक कटी कहाँ है ? वह छुरी
र में उतनी जगह खाली है—वही नाक पर ऐसी फ़िट हो
को काटकर छुरी उसमें धँसी है। और वह खून नहीं, रंग

निकाल लेता है और डुगडुगी बहुत आवेश में बजा कर

! बाबा मुछन्दर हुकुम् दड़ाम् ।
फ़िकर नाट्। चुर्राइट !
रदान ! मैं आपके सामने एक और खेल दिखाता हूँ।
बुल्लू की एक ज़बरदस्त कुश्ती होगी। आप लोग ज़रा
मेहरबान ! बच्चे जवान ! बजाओ तो दो हाथ की
। नाम उस्ताद का ! जादू बंगाल का ! शाबाश मिट्टी

झोली में से मिट्टी का एक लोटा निकालता है, जिसके

)

जनता मेहरबान है। जो किसी के पेट में लात
है। तो मेहरबान, यह लोटा जादू का है—जिसे
सालों में बनाया। तो मेहरबान, देखिए, वैसे
ता है।) इसे पेट में लात मारने वाले मेहरबान
िए यह लोटा खाली है ! और इसमें यह
नी भरता हूँ तो यह समुन्दर का समुन्दर
इससे कहता हूँ कि पानी निकाल समुन्दर
कोहनूर लोटा समुन्दर के समुन्दर पानी
और उस्ताद का लोटा कभी खाली नहीं
मेहरबान, मैं अपनी झोली से दूर आ
खाली है !

नहीं गिर सकता। तो

लो मेहरबान, अब मैं इस पानी को गिरा देता हूँ। (उलटकर पानी गिरा देता है) यह देखो लोटा फिर खाली का खाली ! लो मैं इसमें फिर एक लोटा पानी डालता हूँ। लोटा भर गया। इसे मैं फिर गिरा देता हूँ। (गिराता है) इस बार लोटा पूरा खाली नहीं हुआ—मेहरबान, हुकुम उस्ताद का ! अब आप ग़ौर से देखिए मेहरबान, लोटे में से समुन्दर का कितना पानी अपने-आप बाहर आता है !

[बाज़ीगर बाँसुरी बजाकर, लोटे के सूराख़ से फूंक मारता है और लोटा फिर लबालब भर जाता है, और उसमें-से पानी उफन कर बाहर गिरने लगता है।]

जमूरा : बस्स'''बस्स बाज्जीगर ! बाढ़ आ जाएगी ! 'फाइव इयर प्लान' मेंइ धक्का पहुँच जायेग्गा। इंजीन्नियर लोग बाढ़ में बह जाएग्गा। सिरमिट्ट बालू होइ जाएग्गा। उनकी कोई सुनवाई नेंही, तुम्हारी फाँसी होइ जाएग्गा। भाखरा डैइम बह जाएग्गा। चीनी ढाई रुपया सेर बिकाएग्गा। गेहूँ बाज्जार से उड़ि जाएग्गा। खबरदार बाज्जीगर ! पेट्ट में लात मारने वाला सामने खड़ा हैय। ऊँट के पेट्ट में बिल्ली घुस्स गयी हैय।

[भीड़ के लोग लोटे में से बहते पानी को देखकर प्रसन्नता से ताली बजा रहे हैं। बाज़ीगर झुककर सबको सलाम करता है।]

सज्जन : आप लोग समझते नहीं। यह लोटा दोहरी परत का बना हुआ है। एक परत से पानी गिरता नहीं। उसमें पानी भरा रहता है। सूराख़ से फूंकने से हवा का दबाव नीचे से बढ़ जाता है और पानी ऊपर आ जाता है। मामूली लोटे में सूराख़ करके यह बाज़ीगरी दिखाए तो पता चले !

[भीड़ में से कई आदमी बोलते हैं—फिर एक-एक करके।]

एक आदमी : हाँ-हाँ बाबूजी ठीक कहते हैं।
दूसरा आदमी : दूसरे लोटे में दिखाओ।
तीसरा आदमी : तब पैसे देंगे, नहीं तो खेल ख़तम !
चौथा आदमी : पैसा हज़म !
जमूरा : बाज नेईं आएग्गा। जाद्दू दिखाओ बाज्जीगर।
इत्तफ़ाक़ सिंह : हाँ जादू दिखाओ ! यहाँ तुम्हारी हाथ की सफ़ाई नहीं चलने की !

[सज्जन हँस रहे हैं। भीड़ प्रसन्न है।]

बाज़ीगर : (बाँसुरी बजाकर) अच्छा, मेहरबान तो सच्चा जादू देखिए। बंगाल का जादू। जो मर्द को औरत और औरत को मर्द और दोनों को भेड़-बकरी बनाकर खूंटे में बाँधता है। चिड़िया बनाकर पिंजरे में पालना होता है। (बाँसुरी बजाकर) चलो कौन मर्द से औरत बनना चाहता है। कोई नहीं ! कोई नहीं ?
इत्तफ़ाक़ सिंह : अपने जमूरे को औरत बनाओ !
जमूरा : पहेल्लवान, शकल तो तुम्हारी हैइय।

[भीड़ में से हँसी।]

इत्तफ़ाक़ सिंह : मज़ाक़ नहीं ! जादू दिखाना पड़ेगा, वरना यह झोरीझंडा तिड़ी !

जमूरा : होशियारी ! कुड़क धड़ाम !

बाज़ीगर : जादू ख़तरनाक है ! मेहरबान, कुछ तो ज़िम्मेदारी आएगी।

सब लोग : हाँ-हाँ, हमारी ! जादू दिखाओ।

सज्जन : चकमा पढ़ाता है !

एक आदमी : बाबूजी सही कहते हैं।

बाज़ीगर : (**ज़ोर से डुगडुगी बजाकर**) नाम उस्ताद का जादू बंगाल का। पेट इनसान का ! ख़बरदार होकर खेल देखना होगा। कोई हिलेगा नहीं, कोई डुलेगा नहीं।

इत्तफ़ाक़ सिंह : हाँ-हाँ, जादू दिखाओ···बहुत बातें मत बनाओ।

बाज़ीगर : तो आ बेटा जमूरे ! इन्हें खेल दिखाना ही होगा।

जमूरा : बेशक्क !

बाज़ीगर : तैयार जमूरे ?

जमूरा : तइय्यार !

[बाज़ीगर ज़मीन से मिट्टी उठाता है और मनुष्य की खोपड़ी पर मन्त्र फूंक कर डाल देता है !]

बाज़ीगर : (**मनुष्य की खोपड़ी उठाकर**) इनसान की खोपड़ी ! ख़बरदार ! उस्ताद के नाम की दुहाई। तूने भी अपनी ज़िन्दगी में खेल किए होंगे। तू खोपड़ी नहीं तवारीख़ है। इनसान का मज़मून है। तू इनसान का मज़ाक़ है। मेहरबान, खोपड़ी हँस रही है। इसे देखिए मेहरबान ! इसकी आँखों के गड्ढों में देखिए··· रोशनी है रोशनी। जमूरे ! सामने आ ! देख इसे !

[जमूरा उसे देखता है। बाज़ीगर कुछ मन्त्र-सा पढ़ता है। जमूरा काँपकर ज़मीन पर बेहोश होकर गिर पड़ता है। इत्तफ़ाक़ सिंह डरकर सज्जन के पास आ जाते हैं।]

सज्जन : डरने की कोई बात नहीं है ! अभी मैं बताता हूँ।

[बाज़ीगर बाँसुरी और डुगडुगी बजाता है और जमूरे को एक कपड़े से पूरा ढँक देता है।]

बाज़ीगर : लीजिए मेहरबान, बाबू साहब, मेरा बच्चा बेहोश है, आप जो चाहें उससे अब पूछ सकते हैं।

एक आदमी : मेरी शादी कब होगी ?

जमूरा : इनकी दो-दो शादियाँ हुई हैं ! एक औरत को इन्होंने ज़हर देकर मार डाला है !

[सब लोग प्रश्नकर्ता को देखते हैं। वह आदमी अदृश्य हो जाता है।]

इत्तफ़ाक़ सिंह : और मेरी शादी ?

जमूरा : इनकी शादी नहीं होगी। एक लड़की को भगा
मुकद्दमा चल रहा है।

सज्जन : क्यों ? सही है।

इत्तफ़ाक़ सिंह : कुछ सही है।

दूसरा आदमी : मेरे हाथ में क्या है ?

जमूरा : कैंची है···पाकेट मारते हो।

दूसरा आदमी : झूठ है। मेरे हाथ में कुछ नहीं है। यह दे

[वह बढ़कर अपना खाली हाथ दिखाता है।]

सज्जन : अरे, सब अन्दाज़िया है। कुछ ग़लत, कुछ सही
मेरा नाम क्या है ?

जमूरा : कृपाशंकर।

सज्जन : मैं क्या करता हूँ ? क्या हूँ ?

जमूरा : आप कालेज के मास्टर हैं, पर कुछ नहीं पढ़ा पाते
शाम होमियोपैथी दवाइयाँ बेचते हैं ?

सज्जन : बकवास है (**हँसकर**) मेरे संग कौन है ?

जमूरा : आपका होनहार लड़का, जिसे आप ग़ुस्से में खूब

बाज़ीगर : तो मेहरबान ताली बजाइए और जमूरे के कप
नाम पर, भगवान् के नाम पर पेट, के नाम पर रहम

[लोग जमूरे के कपड़े पर पैसे फेंकते हैं। बाज़ीगर
माँगता है। लोग देते हैं।]

बाज़ीगर : अभी खेल और है मेहरबान ! इनसान
मेहरबान जल्दी कीजिए।

[बाज़ीगर चारों ओर चक्कर लगाता है।
हैं।]

सज्जन : ओह ! मेरी पाकेट किसने

बाज़ीगर : क्या हुआ ?

सज्जन : ओह ! मेरी

[सब लोग उनकी
मुँह देख रहे हैं

कई लोग : किस

बाज़ीगर : मा
लेते हैं

...! जादू दिखाना पड़ेगा, वरना यह झोरीझंडा तिड़ी !
धड़ाम !
...! मेहरबान, कुछ तो जिम्मेदारी आएगी।
जादू दिखाओ।

...ते हैं।
...कर) नाम उस्ताद का जादू बंगाल का। पेट इनसान
...देखना होगा। कोई हिलेगा नहीं, कोई डुलेगा नहीं।
...ओ···बहुत बातें मत बनाओ।
...इन्हें खेल दिखाना ही होगा।

...ता है और मनुष्य की खोपड़ी पर मन्त्र फूंक कर

...र) इनसान की खोपड़ी ! खबरदार ! उस्ताद के
...जिन्दगी में खेल किए होंगे। तू खोपड़ी नहीं
...है। तू इनसान का मज़ाक़ है। मेहरबान,
...रबान ! इसकी आँखों के गड्ढों में देखिए···
...ा ! देख इसे !

...मन्त्र-सा पढ़ता है। जमूरा काँपकर ज़मीन
...फ़ाक़ सिंह डरकर सज्जन के पास आ जाते

...मैं बताता हूं।

...और जमूरे को एक कपड़े से पूरा ढँक

...बेहोश है, आप जो चाहें उससे

...ज़हर देकर मार डाला है !

...जाता है।]

इत्तफ़ाक़ सिंह : और मेरी शादी ?

जमूरा : इनकी शादी नहीं होगी। एक लड़की को भगाकर लाए हैं···पुलिस से इनका मुक़द्दमा चल रहा है।

सज्जन : क्यों ? सही है।

इत्तफ़ाक़ सिंह : कुछ सही है।

दूसरा आदमी : मेरे हाथ में क्या है ?

जमूरा : कैंची है···पाकेट मारते हो।

दूसरा आदमी : झूठ है। मेरे हाथ में कुछ नहीं है। यह देखो !

[वह बढ़कर अपना खाली हाथ दिखाता है।]

सज्जन : अरे, सब अन्दाज़िया है। कुछ ग़लत, कुछ सही। अच्छा बता, मैं पूछता हूं। मेरा नाम क्या है ?

जमूरा : कृपाशंकर।

सज्जन : मैं क्या करता हूं ? क्या हूं ?

जमूरा : आप कालेज के मास्टर हैं, पर कुछ नहीं पढ़ा पाते। दर्जे में सोते हैं ! और सुबह-शाम होमियोपैथी दवाइयाँ बेचते हैं ?

सज्जन : बकवास है (**हँसकर**) मेरे संग कौन है ?

जमूरा : आपका होनहार लड़का, जिसे आप गुस्से में खूब पीटते हैं।

बाज़ीगर : तो मेहरबान ताली बजाइए और जमूरे के कपड़े पर पैसे फेंकिए ! उसके नाम पर, भगवान् के नाम पर पेट, के नाम पर रहम कीजिए !

[लोग जमूरे के कपड़े पर पैसे फेंकते हैं। बाज़ीगर एक बरतन में सबसे इनाम माँगता है। लोग देते हैं।]

बाज़ीगर : अभी खेल और है मेहरबान ! इनसान को ज़मीन के खूंटे में बाँधने का खेल। मेहरबान जल्दी कीजिए।

[बाज़ीगर चारों ओर चक्कर लगाता है। सहसा सज्जन साहब तेज़ी से बोल उठते हैं।]

सज्जन : ओह ! मेरी पाकेट किसने काट दी ? पकड़ो···पकड़ो !

बाज़ीगर : क्या हुआ ?

सज्जन : ओह ! मेरी पाकेट किसने काट दी। यह देखो !

[सब लोग उनकी कटी पाकेट देखते हैं और सज्जन महोदय दुखी होकर सबका मुँह देख रहे हैं।]

कई लोग : किसने जेब काटी ?

बाज़ीगर : मास्टर साहब को पता होना चाहिए। यह तो हाथ की सफ़ाई फ़ौरन पकड़ लेते हैं।

सज्जन : चुप रहो !
बाज़ीगर : नाखुश न हों मेहरबान···बेट्टा जमूरे !
जमूरा : क्या हैय ?
बाज़ीगर : मास्टर साहब का पॉकेट किसने काटा ?
जमूरा : वही कैंची वाल्ला !
बाज़ीगर : कहाँ गया ?
जमूरा : चौक में पान की दूकान पर बीड़ी दाग रहा है।
बाज़ीगर : कितनी रकम थी पॉकेट में ?
जमूरा : तीन रुपये सत्तर नये पैसे। दो ख़राब दुअन्नी और एक बीड़ी !
इत्तफ़ाक सिंह : सही है मास्टर साहब ?
सज्जन : मैं अभी पकड़ता हूँ उस चोर को···। मुझे लगता है, सब चार सौ बीस लोग आपस में मिले हुए हैं।
बाज़ीगर : क्या कहा मेहरबान ?
सज्जन : (**लड़के का हाथ पकड़कर**) चलो यहाँ से।

[लड़के के पैर ज़मीन पर जैसे गड़ गये हैं। वह अपनी जगह पर जड़वत् खड़ा है। सज्जन उसे बुलाते हैं; आगे बढ़कर पास आते हैं।]

सज्जन : (**परेशान**) अरे, इसे क्या हुआ ? क्या हुआ ? मुन्ना···मुन्ना ?

[बाज़ीगर बाँसुरी बजा रहा है। भीड़ के लोग हतप्रभ खड़े रह जाते हैं।]

सज्जन : (**घबड़ाए हुए**) बाज़ीगर यह क्या है ?
बाज़ीगर : जमूरे बता क्या है ?
जमूरा : बंगाल का जादू।
बाज़ीगर : जैसे अपना बच्चा प्यारा, वैसे सबका।
जमूरा : सबका !
बाज़ीगर : कंजूस का भी ? चुग़लखोर का भी ?
जमूरा : सबका !
बाज़ीगर : इनसान बड़ा कि भूख ?
जमूरा : भूख !
बाज़ीगर : सच कहता है तू। मगर मैं तेरी बात काटूंगा रे। मैं कहता हूँ इनसान बड़ा।
जमूरा : तो बाबूजी के बच्चे को रिहा कर। पाँव की बेड़ी काट्ट बाज्जीगर।
बाज़ीगर : तो बच्चे को ज़मीन के खूंटे से तुमने बाँधा। धत्तेरे की ! ऐसा क्यों किया ? बच्चे सबके प्यारे ! (**बाज़ीगर बाँसुरी बजाकर मन्त्र पढ़ खोपड़ी पर बाँसुरी को रख देता है।**) चल उठ जमूरे ! बाबूजी से इनाम ले ! नाम उस्ताद का चुर्राइट। किकंड्राम। चुर्राइट।

[जमूरा उठता है। सज्जन का गच्चा हँसकर आगे बढ़ता है। पिताजी बच्चे को अपने अंक से लगा लेते हैं। सारी भीड़ खुशी से ताली

बाज़ीगर : बढ़कर इनाम ले जमूरे !
सज्जन : मुझे अफ़सोस है, मेरी तो पॉकेट ही कट गयी।
बाज़ीगर : क्यों जमूरे ? क्या कहता है अब ? पलटकर दे उस्ताद का ! जादू बंगाल का !
जमूरा : चुर्राइट ! फुर्राइट !

[सज्जन की कटी हुई पॉकेट जमूरे के हाथ में झूलने ल से ताली पीट रही है। बाज़ीगर पर पैसे बरस रहे हैं उछल-उछलकर तालियाँ बजा रहा है।]

[परदा]

···बेट्टा जमूरे !

केट किसने काटा ?

पर बीड़ी दाग रहा है।
ट में ?
दो खराब दुअन्नी और एक बीड़ी !
न ?
र को··· मुझे लगता है, सब चार सौ बीस लोग

ओ यहाँ से।

ये हैं। वह अपनी जगह पर जड़वत् खड़ा है।
पास आते हैं।]

क्या हुआ ? मुन्ना···मुन्ना ?

लोग हतप्रभ खड़े रह जाते हैं।]

रे। मैं कहता हूँ इनसान बड़ा।
काटू बाज़ीगर।
रे को ! ऐसा क्यों किया ?
पड़ो पर बाँसुरी को
नाम उस्ताद का चुर्राइट।

। पिताजी बच्चे को

अपने अंक से लगा लेते हैं। सारी भीड़ खुशी से ताली बजाती है।]

बाज़ीगर : बढ़कर इनाम ले जमूरे !

सज्जन : मुझे अफ़सोस है, मेरी तो पॉकेट ही कट गयी।

बाज़ीगर : क्यों जमूरे ? क्या कहता है अब ? पलटकर देख। तेरा ध्यान किधर ! नाम उस्ताद का ! जादू बंगाल का !

जमूरा : चुर्राइट ! फुर्राइट !

[सज्जन की कटी हुई पॉकेट जमूरे के हाथ में झूलने लगती है। सारी भीड़ प्रसन्नता से ताली पीट रही है। बाज़ीगर पर पैसे बरस रहे हैं। सज्जन मन्त्रमुग्ध हैं। बच्चा उछल-उछलकर तालियाँ बजा रहा है।]

[परदा]

गुड़िया

पात्र

दद्दा
मनोरमा
सुशीला
बड़े बाबू
माँ

[गली में स्थित, साधारण-से घर का एक कमरा, जि
एक तख्त । दीवार पर कुछ धार्मिक चित्र और उ
चित्र । परदा उठते ही, भीतर से मनोरमा का प्रवेश,
है । तख्त पर नयी चादर बिछाती है । कुरसियों को
को ठीक करती रहती है । इसी बीच बाहर से दद्दा का

दद्दा : मन्नो !

[मनोरमा दद्दा को देखती है, कुछ बोलती नहीं ।]

दद्दा : बड़ा सुन्दर हो गया यह कमरा ! चलो, बहुत
हुए) बहुत सुन्दर कपड़ा है ! कहाँ से मिला यह ?

मनोरमा : जीजी कमरे में हैं ।

दद्दा : कमरे में ?

मनोरमा : अपनी उसी गुड़िया को अंक में छिपाए
की तबीयत बहुत खराब है, इसे ठंड और

दद्दा : (दर्द से हँसते हुए) हाय मेरी पगली !

मनोरमा : दद्दा ! यहाँ एक छोटी-सी मेज हो
क्लॉथ हैं मेरे पास । पर मेज तो···
लगती है)

दद्दा : रुको बेटी ! जो मेहमान लोग
बाबू हैं, और उनकी
तुम्हारी माँ जानती
बहुत अच्छे लोग हैं

मनोरमा : (बीच में

दद्दा : हाँ बेटी,
जब से तेरी

मनोरमा : दद्दा !

दद्दा : मैं कितना
आने के
बाजार

मनोरमा

गुड़िया

पात्र

दद्दा

मनोरमा

सुशीला

बाबू

[गली में स्थित, साधारण-से घर का एक कमरा, जिसमें दो-तीन कुरसियाँ, किनारे एक तख्त। दीवार पर कुछ धार्मिक चित्र और उनके बीच में स्वर्गीया माँ का चित्र। परदा उठते ही, भीतर से मनोरमा का प्रवेश, हाथ में कुछ कपड़े लिए हुए है। तख्त पर नयी चादर बिछाती है। कुरसियों को झाड़-पोंछकर, उनकी गद्दियों को ठीक करती रहती है। इसी बीच बाहर से दद्दा का प्रवेश।]

दद्दा : मन्नो !

[मनोरमा दद्दा को देखती है, कुछ बोलती नहीं।]

दद्दा : बड़ा सुन्दर हो गया यह कमरा ! चलो, बहुत अच्छा हुआ। (**तख्त की ओर बढ़ते हुए**) बहुत सुन्दर कपड़ा है ! कहाँ से मिला यह ? अच्छा किया। सुशीला कहाँ है ?

मनोरमा : जीजी कमरे में हैं।

दद्दा : कमरे में ?

मनोरमा : अपनी उसी गुड़िया को अंक में छिपाए बैठी है—कहती है कि मेरी गुड़िया की तबीयत बहुत खराब है, इसे ठंड और बुखार है।

दद्दा : (**दर्द से हँसते हुए**) हाय मेरी पगली ! बेटी मेरी !

मनोरमा : दद्दा ! यहाँ एक छोटी-सी मेज होनी चाहिए। मेरे हाथ के कढ़े दो टेबल-क्लॉथ हैं मेरे पास। पर मेज तो···अच्छा, रामो के यहाँ से मँगा लेती हूँ। (**जाने लगती है**)

दद्दा : रुको बेटी ! जो मेहमान लोग यहाँ आ रहे हैं न, बहुत सज्जन हैं वे लोग। बड़े बाबू हैं, और उनकी पत्नी है। चिरंजीवी रमेश की माँ। बड़े बाबू साहब को तुम्हारी माँ जानती थी। जब मैं हाईकोर्ट की सर्विस में था, तब वह मेरे बाबू थे। बहुत अच्छे लोग हैं।

मनोरमा : (**बीच में ही**) वे लोग आज ही आएँगे न ? क्या समय दिया है ?

दद्दा : हाँ बेटी, आज सुबह मैं बताना ही भूल गया। मेरी अक्ल भी तो मारी गयी ! जब से तेरी माँ न रही···

मनोरमा : दद्दा !

दद्दा : मैं कितना भुलक्कड़ हूँ ! हाँ बेटी, वे लोग अभी आ जाएँगे। आज ही दोपहर को आने के लिए वादा किया था। कुछ नाश्ता-पानी के लिए तैयारी कर लो। या कुछ बाजार से ही झट मँगा लो।

मनोरमा : घर में सब चीजें हैं दद्दा। आप चिन्ता न कीजिए।

दद्दा : सब चीजें हैं ? अच्छा है—बहुत अच्छा। तू **भाग्यवान् है बेटी** ! **बहुत ही** भाग्यवान् !

मनोरमा : दद्दा, आप भोजन कर लीजिए। आज बहुत देर कर दी।

दद्दा : भोजन ! भोजन मैंने नहीं किया ? अरे, किया तो है ! भूल गयी···! (**हँसने लगते हैं**) दुगुना भोजन कराएगी बेटी ! फिर कैसे यह गृहस्थी चलेगी !

मनोरमा : आपने कहाँ भोजन किया दद्दा ! किसने खिलाया—किसने परोसा ?

दद्दा : अच्छा, नहीं किया है ! लेकिन भूख तो मुझे जरा भी नहीं है। अच्छा, आज शाम को जल्दी खाना खा लूँगा (**भाव बदलते हुए**) देखो मनो, आज तेरी माँ होती तो मुझे यह सब कुछ नहीं करना पड़ता। तुझसे कहना भी नहीं पड़ता। कितनी मजबूरी हम पर है !

मनोरमा : क्या दद्दा ?

दद्दा : बड़े बाबू तुझे देखने आ रहे हैं। अरे···रे···भाग गयी तू ! (**पास आते हुए**) सुनो—क्या करें हम लोग ? कौन है और जिससे मैं ये बातें करने जाऊँ। तू ही सब है। मैं ही सब हूँ—माँ-बाप, बहन, दीदी, सब···! (**रुककर**) सुन मनो ! बड़े बाबू का एकलौता लड़का रमेश है। एम० ए० पास है। रेडियो में नौकरी करता है। बड़ा ही सुन्दर सुशील लड़का है।

[मनोरमा दद्दा के पास आती है।]

मनोरमा : दद्दा ! बिन्नो के घर दो-दो रेडियो हैं।

दद्दा : अरे पगली, तेरे घर तो उससे ज्यादा रेडियो होंगे। हे ईश्वर !

मनोरमा : बिन्नो की भाभी रेडियो में ड्रामे में पार्ट करने जाती है। मैं जाऊँ तो मुझे भी पार्ट मिल जाएगा। बहुत रुपये मिलते हैं उसे। मेरी आवाज अच्छी है न दद्दा ? मैं तो गा भी लेती हूँ।

दद्दा : बहुत अच्छी, बहुत मीठी आवाज है तेरी ! (**रुककर**) अच्छा, मनो देख, घर-कमरा ठीक से सजाकर रखना। कहीं कुछ ऐसा-वैसा न लगे।

मनोरमा : दद्दा, देखो न, मेरा घर किससे खराब है ! कितना साफ-सुथरा है। है ऐसा घर किसी का ? बहुत देखा है लोगों का घर—कहने को ड्राइंगरूम—कोनों में, परदों के पीछे इतना-इतना कूड़ा ! घर में मकड़ी के जाले ! हर जगह बिल्ली-कुत्ते के बाल !

दद्दा : अच्छा-अच्छा, तू मिसेज बहादुर के यहाँ देख आयी है ! अरे पगली, तुझे क्या पता, कुत्ते-बिल्ली को बच्चे की तरह पालना फैशन है, फैशन ! और मिसेज बहादुर के घर में बच्चे भी तो नहीं हैं—वे लोग कहाँ ले जाएँ अपना स्नेह !

मनोरमा : और माली के बच्चे को तो एक दिन इसलिए पीट रही थीं कि उसने एक बार कुत्ते के ऊपर धूल डाल दी थी। (**दद्दा हँसते जा रहे हैं**) मिसेज और मिस्टर बहादुर ने अपनी इतने वर्षों की आया को इसलिए निकाल दिया कि उसके बच्चे कभी-कभी उनकी बैठक में चले जाते थे।

दद्दा : अच्छा-अच्छा, बाबा, मुझे हँसाओ नहीं। सुशील

[उसी क्षण दूर से सुशीला की आवाज आती है

सुशीला : दद्दा ! ···दद्दाजी !

दद्दा : (**धीरे से**) लो, अब आफ़त हुई न ! उधर (**भाव बदलकर**) क्या है बेटी सुशी ? क्या है ?

[सुशीला का प्रवेश, अंक में कुछ छिपाए है।]

सुशीला : दद्दाजी ! (**पास आकर**) दद्दाजी, मेरी बेटी इसे !

दद्दा : हाँ बेटी, अभी देखता हूँ। (**रुककर**) मनो···म

[मनोरमा का प्रवेश।]

मनोरमा : हाँ दद्दा !

दद्दा : तब तक तुम झट से खाना खा लो। आओ, जल्दी

मनोरमा : आप नहीं खाएँगे तो···

दद्दा : मेरी प्यारी बेटी ! हाथ जोड़ता हूँ—तेरे पैरों

मनोरमा : बस···बस···बस !

[हँसती हुई भीतर चली जाती है।]

दद्दा : हाँ बेटी, क्या हुआ है इसे ? आओ यहाँ

सुशीला : दद्दाजी, देखिए न, इसकी तबीयत

दद्दा : हाँ हाँ, देख रहा हूँ बेटी।

सुशीला : नाड़ी देखिए न ! हाथ पकड़िए

दद्दा : हाँ बेटी, तुझे ही देख रहा हूँ। बेटी है !

सुशीला : मैं अभी आपको हैं ! फिर ऐसी

दद्दा : अच्छा नहीं ! माफ कर दे बेटी (अरे कष्ट है) बहुत बुखार

सुशीला : एक बेचारी

दद्दा : अच्छा-अच्छा, बाबा, मुझे हँसाओ नहीं। सुशीला कहीं···

[उसी क्षण दूर से सुशीला की आवाज आती है; मनोरमा भीतर भागती है।]

सुशीला : दद्दा ! ···दद्दाजी !

दद्दा : **(धीरे से)** लो, अब आफ़त हुई न ! उधर मेहमान आने वाले हैं। इधर··· **(भाव बदलकर)** क्या है बेटी सुशी ? क्या है ?

[सुशीला का प्रवेश, अंक में कुछ छिपाए है।]

सुशीला : दद्दाजी ! **(पास आकर)** दद्दाजी, मेरी बेटी को देखिए न ! कितना बुखार है इसे !

दद्दा : हाँ बेटी, अभी देखता हूँ। **(रुककर)** मनो···मनो !

[मनोरमा का प्रवेश।]

मनोरमा : हाँ दद्दा !

दद्दा : तब तक तुम झट से खाना खा लो। आओ, जल्दी करो···जल्दी !

मनोरमा : आप नहीं खाएँगे तो···

दद्दा : मेरी प्यारी बेटी ! हाथ जोड़ता हूँ—तेरे पैरों गिरता हूँ ! तू···

मनोरमा : बस···बस···बस !

[हँसती हुई भीतर चली जाती है।]

दद्दा : हाँ बेटी, क्या हुआ है इसे ? आओ यहाँ तख्त पर बैठो ! बैठ जाओ !

सुशीला : दद्दाजी, देखिए न, इसकी तबीयत कितनी खराब है ! देखिए न !

दद्दा : हाँ हाँ, देख रहा हूं बेटी।

सुशीला : नाड़ी देखिए न ! हाथ पकड़िए—आप तो मुझे देख रहे हैं !

दद्दा : हाँ बेटी, तुझे ही देख रहा हूं। यह देख रहा हूँ कि यह कपड़े की गुड़िया ही तेरी बेटी है !

सुशीला : मैं अभी आपको बहुत पीटूँगी, हाँ ! मेरी बेटी को आप कपड़े की गुड़िया बताते हैं ! फिर ऐसी बात कहिएगा तो···तो···मैं आपसे नहीं बोलूँगी, हाँ !

दद्दा : अच्छा नहीं ! नहीं बेटी। मुझे माफ कर दो बेटी ! सुशी, ऐसे न देख मुझे। मुझे माफ कर दे बेटी ! अब मैं ऐसी बात कभी नहीं कहूँगा···कभी नहीं। कभी नहीं। **(भरे कण्ठ से)** हाँ, बहुत बुखार है तेरी गुड़िया को—नहीं-नहीं, तेरी बेटी को ! बहुत बुखार है !

सुशीला : एक सौ चार डिग्री है दद्दा ! खाँसी भी बहुत है। सारा सीना जकड़ा हुआ है। बेचारी रो नहीं पाती ! देखिए न, साँस किस तरह ले रही है ! कितनी तकलीफ है इसे !

दद्दा : हाँ बेटी, बहुत तकलीफ है ! बहुत तकलीफ। आँखों में कितना दर्द है ! ऐसा दर्द जिसकी कोई भाषा नहीं—कोई संज्ञा नहीं ! ···संज्ञाहीन···ओषधिहीन !

सुशीला : किसी अच्छे डॉक्टर को दिखाइए दद्दा इसे !

दद्दा : जरूर दिखाऊँगा बेटी ! सोच रहा हूँ, किस डॉक्टर को दिखाऊँ ? कौन-सा ऐसा डॉक्टर है जो···जो इसे···इसे जो···! (**रुककर परिवर्तित स्वर में**) सुनो बेटी, तुम अपनु कमरे में चलो। इसे हवा नहीं लगनी चाहिए। इसे ठंड लग गयी है। सर्दी-बुखार है। इसी से इसके भीतर कुछ जकड़ गया है।

सुशीला : कहीं निमोनिया तो नहीं हो गया ?

दद्दा : नहीं नहीं। हरगिज नहीं। मामूली सर्दी-बुखार है। हाँ, सीने और गले में कुछ तनाव जरूर आ गया है। तुम कमरे में इसे छिपाकर बैठा। मैं डॉक्टर और दवा का प्रबन्ध करता हूँ। यह जल्दी अच्छी हो जाएगी बेटी। घबराओ नहीं। इस समय कमरे में चलो।

सुशीला : नहीं, मैं यहीं धूप में बैठूंगी। जब इसे ठण्ड लगी है, तो इसे खूब धूप और गरमी चाहिए।

दद्दा : ठीक कहती हो तुम। लेकिन सुनो बेटी, मेरी बात सुनो ! घर पर यहाँ अभी मेहमान आने वाले हैं। मनो को देखने—उसकी शादी तय हो रही है। तू गीत गाएगी न ! तू बड़ी दीदी है न !

सुशीला : हाँ-हाँ, दद्दा ! और तब तक मेरी यह बेटी अच्छी हो जाएगी न ! क्यों दद्दा ?

दद्दा : हाँ बेटी ! जरूर अच्छी हो जाएगी, जरूर। आओ, कमरे—में आओ बेटी ! (**ले जाते हुए**) आओ ! (**पुकारकर**) मनो···मनो ! (**सुशीला भीतर जाती है**) आ जाओ मनो !

मनोरमा : (**दूर से**) आ गयी दद्दा !

[मनोरमा का प्रवेश।]

दद्दा : उसे कमरे में ले जाओ। एक लिहाफ और दे देना। खूब समझा-बुझा देना, कि वह कमरे ही में रहे। तुम्हारी शादी की बात सुनते ही वह मुदित हो गयी।

मनोरमा : (**दूर से**) दद्दाजी ! आप जल्द डॉक्टर को बुलाकर लाइएगा न !

दद्दा : हाँ बेटी ! बहुत जल्द ! (**रुककर**) हाँ-हाँ, दरवाज़ा मत बन्द करो ! मनो, दरवाज़ा क्यों बन्द करती हो ? ऐसा मत करो बेटी ! ईश्वर, दया करो मेरी खुशी पर ! (**रुककर**) मनो ! बड़े बाबू, जो अपनी पत्नी के संग यहाँ आ रहे हैं न, बहुत अच्छे आदमी हैं ! फर्रुखाबाद के रहने वाले हैं। तेरी माँ जब जीवित थी न, मेरे घर वह दो-एक बार आए हैं। लेकिन पटना में जब उनके लड़के रमेश की नौकरी लगी, वह यहाँ से चले गए। कभी भी बच्चे से वह अलग नहीं रहे। तभी मुझसे पहले ही उन्होंने हाईकोर्ट की नौकरी छोड़ दी। घर के भी खूब धनी हैं। नौकरी करने की कोई खास जरूरत न थी। तभी मुझसे कहते थे, जब तक रमेश यहाँ पढ़ रहा है, तभी तक मैं इस नौकरी पर हूँ। हाईकोर्ट की नौकरी तो उनके लिए एक वक्त काटने की बात थी; खास बात थी यहाँ रमेश की पढ़ाई। यहाँ की पढ़ाई और इस युनिवर्सिटी के वह बहुत कायल थे। पुराने आदमी—अच्छे उसूल और विचार !

[सहसा सुशीला की आवाज़ आती है।]

मनोरमा : दद्दाजी, आप चुप रहिए। बहुत बोलने से

दद्दा : अच्छा अच्छा ! जाओ उसे देख लो—क्यों पु
से !

मनोरमा : अब ठीक है। कोई बात नहीं।

दद्दा : मैं चुप रहूँ ! अच्छी बात है। बात ठीक भी
और ऊँचे स्वर में बोलने लगता हूँ ! यह मे
भाग्य का दोष !

[उसी बीच बाहर से बड़े बाबू की पुकार आती है

दद्दा : (**घबराए हुए**) आ गए—आ गए वे लोग ! अ

बड़े बाबू : अरे आ जाएँ हम लोग ?

दद्दा : हाँ-हाँ, अवश्य ! स्वागत है, स्वागत !

[बड़े बाबू और उनकी पत्नी का प्रवेश। दद्दाजी

दद्दा : आइए। घर ढूंढ़ने में कोई तकलीफ तो नहीं हुई

बड़े बाबू : नहीं, नहीं जी, बिलकुल नहीं। कैसी बात
आया-गया नहीं हूँ !

[सब बैठते हैं।]

दद्दा : जरा गली में है—क्या करूं ! बाप-दादों का घ
यूं, मेरी बेटी मनोरमा ने कई बार संकेत किया कि

माँ : नहीं-नहीं—बहुत अच्छा घर है। क्या कमी है

बड़े बाबू : हाँ, और क्या ? बहुत अच्छा घर है।

दद्दा : आप लोगों की कृपा है। (**एकाएक**) अरे,
कहा ! मेरी बेवकूफी देखिए। बैठिए बड़े
हँस रहे हैं। दद्दा सविनय कृतज्ञ स्वर में)
बिना माँ का घर है। देखिए न,
और खुश-मिजाज बेटी है।
मुझे लगता है जैसे मेरे

बड़े बाबू : क्या बात है ?

माँ : राम···राम···राम।
पढ़ेंगी, तब तक
अपने पति के संग

[सबकी

...टर को दिखाइए दद्दा इसे !

...ी ! सोच रहा हूँ, किस डॉक्टर को दिखाऊँ ? कौन-सा ऐसा ...से···इसे जो···! (रुककर परिवर्तित स्वर में) सुनो बेटी, ...ो। इसे हवा नहीं लगनी चाहिए। इसे ठंड लग गयी है। ...से इसके भीतर कुछ जकड़ गया है।

...तो नहीं हो गया ?

...नहीं। मामूली सर्दी-बुखार है। हाँ, सीने और गले में कुछ ...। तुम कमरे में इसे छिपाकर बैठा। मैं डॉक्टर और दवा ...जल्दी अच्छी हो जाएगी बेटी। घबराओ नहीं। इस समय

...बैठूंगी। जब इसे ठण्ड लगी है, तो इसे खूब धूप और

...न सुनो बेटी, मेरी बात सुनो ! घर पर यहाँ अभी ...को देखने—उसकी शादी तय हो रही है। तू गीत ...!

...मेरी यह बेटी अच्छी हो जाएगी न ! क्यों दद्दा ?

...एगी, जरूर। आओ, कमरे—में आओ बेटी ! ...रकर) मनो···मनो ! (सुशीला भीतर जाती है)

...और दे देना। खूब समझा-बुझा देना, कि ...सुनते ही वह मुदित हो गयी।

...र को बुलाकर लाइएगा न !

..., दरवाजा मत बन्द करो ! मनो, ...करो बेटी ! ईश्वर, दया करो मेरी ...नी पत्नी के संग यहाँ आ रहे हैं ...वाले हैं। तेरी माँ जब जीवित ...में जब उनके लड़के रमेश ...बच्चे से वह अलग नहीं रहे। ...दी। घर के भी खूब धनी ...कहते थे, जब तक रमेश ...की नौकरी तो उनके ...की पढ़ाई। यहाँ ...आदमी—अच्छे

उसूल और विचार !

[सहसा सुशीला की आवाज़ आती है।]

मनोरमा : दद्दाजी, आप चुप रहिए। बहुत बोलने से जीजी घबरा जाती है।

दद्दा : अच्छा अच्छा ! जाओ उसे देख लो—क्यों पुकार रही है ! सँभाल लो जल्दी से !

मनोरमा : अब ठीक है। कोई बात नहीं।

दद्दा : मैं चुप रहूँ ! अच्छी बात है। बात ठीक भी है—मैं बोलते-बोलते जरा कुछ तेज और ऊँचे स्वर में बोलने लगता हूँ ! यह मेरे स्वभाव का दोष है ! नहीं-नहीं, भाग्य का दोष !

[उसी बीच बाहर से बड़े बाबू की पुकार आती है। मनोरमा भीतर जाती है।]

दद्दा : (**घबराए हुए**) आ गए—आ गए वे लोग ! आया बड़े बाबू, आ गया !

बड़े बाबू : अरे आ जाएँ हम लोग ?

दद्दा : हाँ-हाँ, अवश्य ! स्वागत है, स्वागत !

[बड़े बाबू और उनकी पत्नी का प्रवेश। दद्दाजी नतशिर प्रणाम करते हैं।]

दद्दा : आइए। घर ढूंढ़ने में कोई तकलीफ तो नहीं हुई ?

बड़े बाबू : नहीं, नहीं जी, बिलकुल नहीं। कैसी बात करते हैं आप ! जैसे मैं इस घर में आया-गया नहीं हूँ !

[सब बैठते हैं।]

दद्दा : जरा गली में है—क्या करूँ ! बाप-दादों का घर है, छोड़ते-बदलते नहीं बनता। यूँ, मेरी बेटी मनोरमा ने कई बार संकेत किया कि यह घर बदल दिया जाए।

माँ : नहीं-नहीं—बहुत अच्छा घर है। क्या कमी है इसमें ? सब कुछ तो है।

बड़े बाबू : हाँ, और क्या ? बहुत अच्छा घर है।

दद्दा : आप लोगों की कृपा है। (**एकाएक**) अरे, मैंने आप लोगों से बैठने के लिए नहीं कहा ! मेरी बेवकूफी देखिए। बैठिए बड़े बाबू ! आप बैठिए ! (**दोनों आगन्तुक हँस रहे हैं। दद्दा सविनय कृतज्ञ स्वर में**) बड़ी कृपा की आप लोगों ने यहाँ आकर। बिना माँ का घर है। देखिए न, सब मनो बेटी का किया-धरा है। बड़ी मेहनती और खुश-मिजाज बेटी है। मुझे जरा भी उदास नहीं होने देती। सच बड़े बाबू ! मुझे लगता है जैसे मेरे संग, मेरे घर में कोई एक कर्मठ चरित्रपूर्ण लड़का हो !

बड़े बाबू : क्या बात है ? बहुत खुशकिस्मत हैं आप ! वरना आजकल की लड़कियाँ···

माँ : राम···राम···राम। आजकल की लड़कियों की बात मत चलाओ। जब तक पढ़ेंगी, तब तक 'होस्टल' में रहना चाहती हैं। और जब शादी करेंगी, तब अकेले अपने पति के संग किसी 'होटल' में रहना चाहेंगी !

[सबकी सम्मिलित हँसी।]

दद्दा : (**पुकारते हुए**) मनो—बेटी मनो !

मनोरमा : (**दूर से सविनय**) हाँ, दद्दा जी !

दद्दा : आओ बेटी ! इनसे मिलो—प्रणाम करो इन्हें !

[मनोरमा का प्रवेश ।]

मनोरमा : नमस्ते—नमस्ते !

बड़े बाबू : जीती रहो, बेटी !

माँ : खुश रहो !

दद्दा : यह बड़े बाबू हैं। यह माँ जी हैं।

माँ : बड़ी भोली बेटी है ! आओ, मेरे पास बैठो !

बड़े बाबू : बहुत सुशील और नेक लड़की है !

माँ : कहो बेटी ! क्या नाम है तुम्हारा ?

मनोरमा : मनोरमा !

बड़े बाबू : (**हँसते हुए**) तुम भी रमेश की माँ, खूब हो ! इण्टरमीडिएट यानी एफ० ए० पास लड़की से तुम नाम पूछती हो !

[उनके संग सब हँस पड़ते हैं ।]

दद्दा : ठीक है, ठीक है, इसमें क्या बात है ! मनो आप ही की बेटी है।

माँ : मेरे पास आओ बेटी ! घर का सारा काम-काज तुम्हीं देखती हो ?

मनोरमा : जी हाँ !

बड़े बाबू : बेटी, जाओ तुम झट चाय बनाकर लाओ !

मनोरमा : धन्यवाद ! अभी ले आयी !

[भीतर जाती है ।]

दद्दा : मनो सब चीजें अपने हाथ से घर में तैयार कर लेती है। अच्छे से अच्छा नाश्ता, भोजन, उपहार—सब कुछ।

माँ : वह तो देखने से ही लगता है।

बड़े बाबू : स्वभाव कितना अच्छा है !

माँ : ईश्वर ने रूप भी खूब दिया है ! मेरा रमेश भी बहुत सुन्दर और सुशील है। देखिए न, आजकल के लड़के अपनी शादी खुद कर लेते हैं—माँ-बाप को कहीं बाद को पता चलता है। रमेश ने यह अधिकार हमीं को दिया है।

दद्दा : क्यों नहीं, क्यों नहीं ! जैसी तालीम माँ-बाप बच्चों को देंगे, बच्चा वैसा ही होगा। कहा है न, 'बाढ़ै पुत्र पिता के धर्मे !'

माँ : (**बीच ही में**) सिर्फ पिता के ? माँ के नहीं ? (**सब हँसते हैं**) आप लोगों का शास्त्र और सारा कथन पुरुषों का ही पक्षपात करता है !

बड़े बाबू : (**हँसते-हँसते**) अच्छा-अच्छा भाई, तुम्हीं लोग सब कुछ हो !

दद्दा : सही भी है।

[इस शोर के कारण सुशीला अपने कमरे से

सुशीला : दद्दा ! दद्दा जी !

दद्दा : (**घबराकर भागते हैं**) आया बेटी ! आया

बड़े बाबू : किसकी आवाज़ थी यह ?

माँ : होगा कोई !

बड़े बाबू : कौन हो सकता है ?

माँ : कोई और होगा घर में। कितने लोग हैं इनके

बड़े बाबू : कोई बड़ा परिवार नहीं है। दो लड़
बड़ी लड़की की शादी···

माँ : (**बीच ही में**) कहाँ हुई है ?

[इसी बीच दद्दा आ जाते हैं ।]

दद्दा : माफ़ कीजिएगा ! मनो ने पुकारा था। घर
नहीं।

माँ : अरे तो क्यों तकलीफ कर रहे हैं ! रहने दीजि

बड़े बाबू : जी हाँ, चाय ठीक है ! (**पुकारकर**) बे

दद्दा : ऐसा कैसे हो सकता है ! बस हो गया, बस

बड़े बाबू : आपकी बड़ी लड़की की शादी कहाँ हुई

दद्दा : बनारस में।

बड़े बाबू : बनारस में किसके यहाँ ?

दद्दा : दुर्गाकुण्ड पर बाबू श्यामसुन्दर जी हैं !
बाबू जी ! और क्या हालचाल हैं !

बड़े बाबू : सब अच्छा है।

माँ : बनारस वाली लड़की के पति क्या हैं

दद्दा : पति ! पति का स्वर्गवास हो गया
मुझे तोड़ दिया।

बड़े बाबू : (**दुःख से**) यह कब !

माँ : राम, राम, राम !

दद्दा : (**पुकारते हुए**) मनो बेटी

मनोरमा : (**भीतर से**) आयी

माँ : बैठिए, कोई जल्दी नहीं

बड़े बाबू : जी हाँ, परेशान

दद्दा : नहीं जी, इसमें क्या
है कि···

बड़े बाबू : यह कब

दद्दा : क्या बताऊँ

ी—बेटी मनो !
) हाँ, दद्दा जी !
मिलो—प्रणाम करो इन्हें !
।]
ी !
टी !
ई माँ जी हैं।
आओ, मेरे पास बैठो !
र नेक लड़की है !
है तुम्हारा ?
भी रमेश की माँ, खूब हो ! इण्टरमीडिएट यानी एफ० ए०
म पूछती हो !
ते हैं।]
या बात है ! मनो आप ही की बेटी है।
र का सारा काम-काज तुम्हीं देखती हो ?
चाय बनाकर लाओ !
भी !
घर में तैयार कर लेती है। अच्छे से अच्छा नाश्ता,
रा रमेश भी बहुत सुन्दर और सुशील है।
शादी खुद कर लेते हैं—माँ-बाप को कहीं
धिकार हमीं को दिया है।
बाप बच्चों को देंगे, बच्चा वैसा ही
(सब हँसते हैं) आप लोगों का
है !
सब कुछ हो !

[इस शोर के कारण सुशीला अपने कमरे से पुकार उठती है—]

सुशीला : दद्दा ! दद्दा जी !

दद्दा : (**घबराकर भागते हैं**) आया बेटी ! आया···

बड़े बाबू : किसकी आवाज़ थी यह ?

माँ : होगा कोई !

बड़े बाबू : कौन हो सकता है ?

माँ : कोई और होगा घर में। कितने लोग हैं इनके परिवार में ?

बड़े बाबू : कोई बड़ा परिवार नहीं है। दो लड़कियाँ हैं—मनोरमा छोटी लड़की है। बड़ी लड़की की शादी···

माँ : (**बीच ही में**) कहाँ हुई है ?

[इसी बीच दद्दा आ जाते हैं।]

दद्दा : माफ कीजिएगा ! मनो ने पुकारा था। घर में और कोई मदद देने वाला तो है नहीं।

माँ : अरे तो क्यों तकलीफ कर रहे हैं ! रहने दीजिए न !

बड़े बाबू : जी हाँ, चाय ठीक है ! (**पुकारकर**) बेटी, आ जाओ।

दद्दा : ऐसा कैसे हो सकता है ! बस हो गया, बस अब···

बड़े बाबू : आपकी बड़ी लड़की की शादी कहाँ हुई है ?

दद्दा : बनारस में।

बड़े बाबू : बनारस में किसके यहाँ ?

दद्दा : दुर्गाकुण्ड पर बाबू श्यामसुन्दर जी हैं ! (**बात बदलते हुए**) और कहिए बड़े बाबू जी ! और क्या हालचाल हैं !

बड़े बाबू : सब अच्छा है।

माँ : बनारस वाली लड़की के पति क्या हैं ?

दद्दा : पति ! पति का स्वर्गवास हो गया। आपसे मेरा क्या छिपा है। उसी ने तो मुझे तोड़ दिया।

बड़े बाबू : (**दुःख से**) यह कब ! ओफ़ ओ ! मुझे तो पता ही नहीं !

माँ : राम, राम, राम !

दद्दा : (**पुकारते हुए**) मनो बेटी ! मनो !

मनोरमा : (**भीतर से**) आयी दद्दा जी !

माँ : बैठिए, कोई जल्दी नहीं है।

बड़े बाबू : जी हाँ, परेशान होने की कोई बात नहीं है।

दद्दा : नहीं जी, इसमें क्या परेशानी ! आपकी सेवा हम कुछ कर सकें—हमारा सौभाग्य है कि···

बड़े बाबू : यह कब हुआ बाबू रामसुन्दर जी ? मुझसे आपने यह नहीं बताया ?

दद्दा : क्या बताऊँ बड़े बाबू जी ! कुछ घटनाएँ इनसान पर ऐसी घटती हैं जो बतायी

नहीं जा सकतीं। सुनने वाले का भी मन उदास हो जाता है। सब ठीक है। सब ईश्वर की मेहरबानी है, बड़े बाबू ! (रुककर) मनो को आपकी सेवा में करके मैं सिर्फ ईश्वर का भजन करना चाहता हूँ। इस ज़िन्दगी का राज कुछ समझ में नहीं आता।

माँ : बड़ी बेटी के कोई बाल-बच्चा है ?

दद्दा : जी हाँ, एक लड़की है। (**सहसा पुकारते हैं**) मनो बेटी, मैं आ रहा हूँ। (जाते-जाते) आ रहा हूँ बेटी ! मैं अभी आया बड़े बाबू···माफ कीजिएगा।

[भीतर जाते हैं।]

बड़े बाबू : ओ हो ! कितनी ज़हमत उठा रहे हैं ! कोई जल्दी नहीं है भाई।

माँ : मैं आ जाऊँ मदद करने ? आखिर मैं भी तो माँ ही हूँ।

[दद्दा और मनोरमा का प्रवेश। हाथ में चाय-नाश्ते का सामान है।]

दद्दा : (**आते हुए**) अजी आप सब कुछ हैं—माँ ही क्यों ?

माँ : आओ बेटी ! मुझे दो, प्लेट मुझे दो !

मनोरमा : ठीक है।

दद्दा : देखिए, आप लोग कष्ट मत कीजिए।

बड़े बाबू : इसमें क्या कष्ट ! अपना घर है।

[तख्त पर सब सामान रखा जाता है।]

दद्दा : लीजिए नाश्ता कीजिए। यह मिठाई, यह नमकीन, सब मनो बेटी के हाथ का बनाया हुआ है।

माँ : अहा हा ! बड़ी गुनी बेटी है, सच !

बड़े बाबू : ऐसी ही लड़कियाँ घर की लक्ष्मी साबित होती हैं। अरे, शरमा गयी बेटी ! आओ-आओ, बैठो—भागो नहीं। बिना तुम्हारे हम चाय नहीं पीएँगे, हाँ !

दद्दा : आ जाओ बेटी, आ जाओ !

माँ : (**खाती हुई**) अहा हा ! कितना अच्छा तिकोना बना है ! आ जाओ बेटी ! (**प्रसन्नता से**) भाई मुझे तो बेटी बिलकुल पसन्द आ गयी।

बड़े बाबू : (**प्रसन्नता से**) लो, इसी बात पर मुँह मीठा करो।

[सब हँसते हैं।)

दद्दा : (**कृतज्ञ स्वर में**) सब आप लोगों की कृपा है ! आप ही की बेटी है। सब आप ही की दया है !

बड़े बाबू : कुछ गाना-वाना भी जानती हो बेटी ?

मनोरमा : जी हाँ, संगीत विशारद पास हूँ।

दद्दा : बहुत अच्छा गाती है ! वह सामने कमरे में देखिए—वे सारे 'कप' और 'मेडल'

इसी के हैं। हर क्लास में फर्स्ट : म्युज़िक में
बुनाई में···

[मनोरमा जाने लगती है।]

बड़े बाबू : भागो नहीं बेटी ! जो सत्य है, उसे
माँ : अच्छा जी, मेरी बेटी है कि अकेले तुम्हारी
मनोरमा : जी, मैं और चाय ले आऊँ ?
बड़े बाबू : बहुत है, बहुत ! लो, तुम भी तो
मनोरमा : मैं चाय नहीं पीती, बाबूजी !
बड़े बाबू : ओहो, बहुत अच्छी बात सुनने
क्यों बेटी ?
मनोरमा : जी नहीं।
माँ : बहुत अच्छी आदतें हैं !
बड़े बाबू : इसी को माँ-बाप की दी हुई
माँ : हमारा सौभाग्य है, वरना ऐसी
दद्दा : अरे, आप लोग खाते-पीते भी

[सहसा कमरे से सुशीला की
कहते हुए दौड़ते हैं—सुशीला

सुशीला : दद्दा···दद्दा···! मेरी बेटी

[सब घबरा जाते हैं।

बड़े बाबू : (**घबराए हुए**) बाबू
माँ : (**डरी हुई**) हाय, यह क्या है
दद्दा : आप लोग जरा भी
बेटी सुनो !
बड़े बाबू : सुशीला !
दद्दा : जी हाँ। कुछ दिनों
आराम करो बेटी !
सुशीला : (**घबरायी हुई**)

[मनोरमा

दद्दा : नहीं बेटी,
सुशीला : नहीं-नहीं,
है। डॉक्टर
बड़े बाबू :
माँ : (**ज़ोर से**)

भी मन उदास हो जाता है । सब ठीक है । सब
बाबू ! (रुककर) मनो को आपकी सेवा में करके मैं
चाहता हूँ । इस जिन्दगी का राज कुछ समझ में
?
पुकारते हैं) मनो बेटी, मैं आ रहा हूँ । (जाते-
या बड़े बाबू··· माफ कीजिएगा ।

हैं ! कोई जल्दी नहीं है भाई ।
तो मां ही हूं ।

चाय-नाश्ते का सामान है ।]

ही क्यों ?

सब मनो बेटी के हाथ का

। अरे, शरमा गयी बेटी !
नहीं पीएँगे, हाँ !

है ! आ जाओ बेटी !

है । सब आप

'मेडल'

इसी के हैं । हर क्लास में फर्स्ट : म्युज़िक में फर्स्ट, लिखने-बोलने में फर्स्ट, कढ़ाई-बुनाई में···

[मनोरमा जाने लगती है ।]

बड़े बाबू : भागो नहीं बेटी ! जो सत्य है, उसे सुनना ही पड़ेगा ।

मां : अच्छा जी, मेरी बेटी है कि अकेले तुम्हारी ही । आओ बेटी, मेरे संग बैठो !

मनोरमा : जी, मैं और चाय ले आऊँ ?

बड़े बाबू : बहुत है, बहुत ! लो, तुम भी तो पियो !

मनोरमा : मैं चाय नहीं पीती, बाबूजी !

बड़े बाबू : ओहो, बहुत अच्छी बात सुनने को मिली ! सनीमा वगैरह देखती हो—क्यों बेटी ?

मनोरमा : जी नहीं ।

मां : बहुत अच्छी आदतें हैं !

बड़े बाबू : इसी को मां-बाप की दी हुई तालीम कहते हैं ।

मां : हमारा सौभाग्य है, वरना ऐसी बेटियाँ आजकल कहाँ मिलती हैं !

दद्दा : अरे, आप लोग खाते-पीते भी चलिए बड़े बाबू !

[सहसा कमरे से सुशीला की चीख सुनाई पड़ती है । दद्दा जी पुकारकर 'सुशी' कहते हुए दौड़ते हैं—सुशीला डरी हुई प्रविष्ट हो जाती है ।]

सुशीला : दद्दा···दद्दा···! मेरी बेटी···मेरी बेटी !

[सब घबरा जाते हैं । मनोरमा सुशीला को सँभालती है ।]

बड़े बाबू : (**घबराए हुए**) बाबू रामसुन्दर जी ! रामसुन्दर जी यह क्या है ?

मां : (**डरी हुई**) हाय, यह क्या है ? यह कौन है ?

दद्दा : आप लोग जरा भी परेशान न होइए, बड़े बाबू । यह मेरी बेटी है—सुशीला । बेटी सुनो !

बड़े बाबू : सुशीला ! बड़ी बेटी—बनारसवाली ?

दद्दा : जी हाँ । कुछ दिनों से इसकी तबीयत कुछ खराब हो गयी है । (**रुककर**) चलो आराम करो बेटी !

सुशीला : (**घबरायी हुई**) डॉक्टर साहब ! डॉक्टर साहब ! आप डॉक्टर साहब हैं न ?

[मनोरमा सिसककर रो पड़ती है ।]

दद्दा : नहीं बेटी, यह मेहमान हैं । मनो की शादी होगी न !

सुशीला : नहीं-नहीं, मेरी बेटी की तबीयत बहुत खराब हो गई है । वह दम तोड़ रही है । डॉक्टर नहीं बुलाओगे ?

बड़े बाबू : रामसुन्दरजी ! क्या मामला है ?

मां : (**धीरे से**) देखते नहीं—दिमाग खराब हो गया है । मैं तो देखते ही पहचान गयी ।

ने वाले का भी मन उदास हो जाता है। सब ठीक है। सब
है, बड़े बाबू ! (रुककर) मनो को आपकी सेवा में करके मैं
न करना चाहता हूँ। इस जिन्दगी का राज कुछ समझ में

-बच्चा है ?

। (सहसा पुकारते हैं) मनो बेटी, मैं आ रहा हूँ। (जाते-
। मैं अभी आया बड़े बाबू···माफ कीजिएगा।

मत उठा रहे हैं ! कोई जल्दी नहीं है भाई।
आखिर मैं भी तो माँ ही हूँ।

। हाथ में चाय-नाश्ते का सामान है।]

ड है—माँ ही क्यों ?
ो !

ए।

।]

ह नमकीन, सब मनो बेटी के हाथ का

होती है। अरे, शरमा गयी बेटी !
हम चाय नहीं पीएँगे, हाँ !

बना है ! आ जाओ बेटी !
गयी।
ो।

बेटी है। सब आप

और 'मेडल'

इसी के हैं। हर क्लास में फर्स्ट : म्युज़िक में फर्स्ट, लिखने-बोलने में फर्स्ट, कढ़ाई-बुनाई में···

[मनोरमा जाने लगती है।]

बड़े बाबू : भागो नहीं बेटी ! जो सत्य है, उसे सुनना ही पड़ेगा।

माँ : अच्छा जी, मेरी बेटी है कि अकेले तुम्हारी ही। आओ बेटी, मेरे संग बैठो !

मनोरमा : जी, मैं और चाय ले आऊँ ?

बड़े बाबू : बहुत है, बहुत ! लो, तुम भी तो पियो !

मनोरमा : मैं चाय नहीं पीती, बाबूजी !

बड़े बाबू : ओहो, बहुत अच्छी बात सुनने को मिली ! सनीमा वगैरह देखती हो—क्यों बेटी ?

मनोरमा : जी नहीं।

माँ : बहुत अच्छी आदतें हैं !

बड़े बाबू : इसी को माँ-बाप की दी हुई तालीम कहते हैं।

माँ : हमारा सौभाग्य है, वरना ऐसी बेटियाँ आजकल कहाँ मिलती हैं !

दद्दा : अरे, आप लोग खाते-पीते भी चलिए बड़े बाबू !

[सहसा कमरे से सुशीला की चीख सुनाई पड़ती है। दद्दा जी पुकारकर 'सुशी' कहते हुए दौड़ते हैं—सुशीला डरी हुई प्रविष्ट हो जाती है।]

सुशीला : दद्दा···दद्दा···! मेरी बेटी···मेरी बेटी !

[सब घबरा जाते हैं। मनोरमा सुशीला को सँभालती है।]

बड़े बाबू : (घबराए हुए) बाबू रामसुन्दर जी ! रामसुन्दर जी यह क्या है ?

माँ : (डरी हुई) हाय, यह क्या है ? यह कौन है ?

दद्दा : आप लोग ज़रा भी परेशान न होइए, बड़े बाबू। यह मेरी बेटी है—सुशीला। बेटी सुनो !

बड़े बाबू : सुशीला ! बड़ी बेटी—बनारसवाली ?

दद्दा : जी हाँ। कुछ दिनों से इसकी तबीयत कुछ खराब हो गयी है। (रुककर) चलो आराम करो बेटी !

सुशीला : (घबरायी हुई) डॉक्टर साहब ! डॉक्टर साहब ! आप डॉक्टर साहब हैं न ?

[मनोरमा सिसककर रो पड़ती है।]

दद्दा : नहीं बेटी, यह मेहमान हैं। मनो की शादी होगी न !

सुशीला : नहीं-नहीं, मेरी बेटी की तबीयत बहुत खराब हो गई है। वह दम तोड़ रही है। डॉक्टर नहीं बुलाओगे ?

बड़े बाबू : रामसुन्दरजी ! क्या मामला है ?

माँ : (धीरे से) देखते नहीं—दिमाग खराब हो गया है। मैं तो देखते ही पहचान गयी।

दद्दा : मनो ! क्या खड़ी-खड़ी रो रही हो ? यह रोने का समय है ! तू भी पागल हो गयी क्या ?

बड़े बाबू : ओहो हो ! तो बड़ी बेटी पागल है !

दद्दा : नहीं बड़े बाबू, बात यह हुई कि इसकी लड़की अभी कुछ ही दिन हुए निमोनिया से चल बसी।

सुशीला : झूठे कहीं के ! मेरी बेटी को इतना तेज बुखार है और तुम लोग···

मनोरमा : जीजी ! आओ मेरे संग आओ—डॉक्टर साहब के यहाँ चलेंगे। चलो कमरे में चलें।

[सुशीला को सँभालते हुए मनोरमा भीतर जाती है।]

बड़े बाबू : आपने हमें यह सब नहीं बताया रामसुन्दरजी !

माँ : कोई खानदानी बात होगी !

दद्दा : नहीं जी, नहीं, बिलकुल नहीं ! ईश्वर सौगन्ध, कभी नहीं। मेरे खानदान में कभी कोई पागल नहीं हुआ था। ईश्वर साक्षी है बड़े बाबू !

बड़े बाबू : फिर यह ऐब कैसे हुआ ? आपने तो बताया कि···

दद्दा : (**बीच ही में**) आपसे क्या छिपाना बड़े बाबू ! अब तो आप अपने हैं। मैं दिल का बहुत कमजोर हूँ। अभी मैं कुछ का कुछ बता गया। बात यह है बड़े बाबू, अब आपसे क्या छिपाना—बनारस के दामाद ने हमसे छिपाकर दूसरी शादी कर ली।

माँ : हाय ! अरे आप तो कह रहे थे उसका स्वर्गवास हो गया !

दद्दा : जी हाँ, मेरे लिए तो वह मर ही गया है। उसने मेरी बेटी से छिपकर कलकत्ते में दूसरी शादी कर ली—वह भी एक नाचने-गाने वाली लड़की से, जिसके माँ-बाप, कुल-धर्म का कोई पता नहीं।

बड़े बाबू : (**दुख से**) ओ हो···हो ! इतना दुर्भाग्य !

दद्दा : आप लोग चाय पीजिए। देखिए, आप लोगों ने तो कुछ खाया-पीया भी नहीं। क्या बताऊँ, माफी ही माँगूंगा। (**चापलूसी से हँसते हुए**), खाइए, खाइए; भूल जाइए मेरी बदकिस्मती को (**हँसते हुए**) आप लोगो को पाकर मैं खुशकिस्मतवर भी तो हुआ। खाइए···

बड़े बाबू : वह तो सही ही है—अच्छा, अब हम लोगों को इजाज़त दीजिए।

दद्दा : अरे, ऐसी भी क्या जल्दी ! बैठिए। (**पुकारते हैं**) मनो ! मनो बेटी !

मनोरमा : आयी दद्दा जी !

बड़े बाबू : (उठते हुए) हम आपको चिट्ठी लिखेंगे बाबू सुन्दरदासजी ! बात यह है कि···रमेश से भी राय लेनी होगी। वह जरा आधुनिक विचारों का है। रेडियो में है—बड़े-बड़े अफसरों-कलाकारों के बीच उठना-बैठना, आना-जाना। आप समझते ही हैं कि ज़माना···

दद्दा : जी हाँ, समझता हूँ बड़े बाबू ! रुककर बेटी, ये लोग अब जा रहे हैं !

मनोरमा (**सहसा**) नमस्ते बाबूजी !

दोनों : जीती रहो बेटी !

दद्दा : नमस्ते बड़े बाबू ! माँजी नमस्ते !

दोनों : नमस्ते।

[जाने लगते हैं, सहसा दरवाज़े से घूमकर]

बड़े बाबू : मैं आपको पत्र अवश्य लिखूंगा। (

मनोरमा : (**जैसे स्वगत**) अच्छी बात है—
रहेंगे—क्यों दद्दा ? ठीक है न, क्योंकि
आप इस तरह क्यों देख रहे हैं ? अरे
दद्दा ! मुझे देखिए···देखिए··· ट

[मनोरमा हँस रही है, जैसे दद्दा को
से सुशीला की पुकार आती है—]

सुशीला : दद्दाजी···

दद्दा : आया बेटी !

मनोरमा : चलिए दद्दा। हम लोग
आयें।

दद्दा : पर कहाँ ढूंढ़ेंगे वह डॉक्टर

मनोरमा : क्यों नहीं। मरीज

[सुशीला दरवाज़े पर

सुशीला : दद्दा !

दद्दा : आओ बेटी !

मनोरमा : जिज्जी !

[मनोरमा सुशीला

मनोरमा (सहसा) नमस्ते बाबूजी !

दोनों : जीती रहो बेटी !

दद्दा : नमस्ते बड़े बाबू ! माँजी नमस्ते !

दोनों : नमस्ते ।

[जाने लगते हैं, सहसा दरवाज़े से घूमकर]

बड़े बाबू : मैं आपको पत्र अवश्य लिखूंगा । (प्रस्थान)

मनोरमा : (जैसे स्वगत) अच्छी बात है—आप अवश्य पत्र लिखेंगे ! हम अवश्य जीते रहेंगे—क्यों दद्दा ? ठीक है न, क्योंकि हम हर दर्द सह सकते हैं ! दद्दाजी, दद्दाजी, आप इस तरह क्यों देख रहे हैं ? अरे आपकी आँखों में आँसू ! बुरी बात—दद्दा ! मुझे देखिए···देखिए···

[मनोरमा हँस रही है, जैसे दद्दा को भी संग हँसना पड़ता है । उसी बीच कमरे से सुशीला की पुकार आती है—]

सुशीला : दद्दाजी···

दद्दा : आया बेटी !

मनोरमा : चलिए दद्दा । हम लोग जीजी की बीमार गुड़िया के लिए डॉक्टर ढूंढ़कर ले आयें ।

दद्दा : पर कहाँ ढूंढ़ेंगे वह डॉक्टर ?

मनोरमा : क्यों नहीं । मरीज़ स्वयं डॉक्टर हैं । है न !

[सुशीला दरवाज़े पर आती है ।]

सुशीला : दद्दा !

दद्दा : आओ बेटी !

मनोरमा : जिज्जी !

[मनोरमा सुशीला को अपने अंक में भर लेती है ।]

[परदा]

वरुण वृक्ष का देवता

[मुक्त आकाशी नाटक : ओपन एयर प्ले]

पात्र

चाणक्य
शारंगरव
मलयकेतु
सर्वार्थसिद्धि
शिष्य
सँपेरा
नन्द का भाई
शकटार

[बायीं ओर से मलयकेतु हाथ में बीन और कन्धे पर
बहँगी लिए हुए मंच पर आता है।]

मलय : (चक्रवत इधर-उधर चलकर, फिर बहँगी रखता
सुन्दर जगह है। तपोवन-जैसी शान्ति है यहाँ। चल
थोड़ा आराम कर लूं। मेरा नाम भी मेरे लिए कित
बस उड़ते रहो! उड़तु रहो! (एक पिटारी को
खूब खुलकर सांस ले लो; हाँ, सुबह होने वाली है।
(बीन फूंकता है—झट रुककर) चुप···चुप···चुप।
बीनो रानी! आचार्य चाणक्य के गुप्तचर इस राव
जा,···बोलना नहीं। वह देख, चाणक्य की कुटिया
में एकाग्रचित्त, मानो कोई शास्त्र लिख रहे हैं।

[जम्हाई लेता है : ॐ महाकाल! महाकाली
का उपक्रम करता है। कुनमुनाता हुआ कुछ
से चाणक्य के शिष्य शारंगरव का प्रवेश।]

शारंग : अरे ओ!···कौन हो तुम? (पास
गया है!

[झुककर देखता है।]

शारंग : ओह! कोई सँपेरा मालूम
है। (दौड़कर बांस का एक
से बांस के सहारे
नहीं? आर्य चाणक्य
कि नहीं रे!

[मलयकेतु

शारंग : अशुभ कहीं
रहा है और
रे? (
की तपोभूमि

मलय : (

ण वृक्ष का देवता

[आकाशी नाटक : ओपन एयर प्ले]

पात्र

चाणक्य
शारंगरव
मलयकेतु
सर्वार्थसिद्धि
शिष्य
सँपेरा
का भाई
ार

[बायीं ओर से मलयकेतु हाथ में बीन और कन्धे पर दो पिटारों से झूलती हुई बहँगी लिए हुए मंच पर आता है।]

मलय : (**चक्रवत इधर-उधर चलकर, फिर बहँगी रखता हुआ**) आ हा हा ! कितनी सुन्दर जगह है! तपोवन-जैसी शान्ति है यहाँ। चलते-चलते बहुत थक गया हूँ, थोड़ा आराम कर लूँ। मेरा नाम भी मेरे लिए कितना सार्थक है—मलयकेतु ! बस उड़ते रहो ! उड़तु रहो ! (**एक पिटारी को देखता हुआ**) ओ सर्पराज ! खूब खुलकर साँस ले लो; हाँ, सुबह होने वाली है। ब्राह्म मुहूर्त्त की हवा ले लो। (**बीन फूंकता है—झट रुककर**) चुप···चुप···चुप। सो जा, हाँ। यहाँ सो जा मेरी बीनो रानी ! आचार्य चाणक्य के गुप्तचर इस राज के कण-कण में छिपे हुए हैं। जा,···बोलना नहीं। वह देख, चाणक्य की कुटिया वह दिख रही है,···ब्राह्म मुहूर्त्त में एकाग्रचित्त, मानो कोई शास्त्र लिख रहे हैं।

[जम्हाई लेता है : 'ॐ महाकाल ! महाकाली !' फिर वहीं पिटारों के सहारे सोने का उपक्रम करता है। कुनमुनाता हुआ कुछ क्षणों बाद सो जाता है। दायीं ओर से चाणक्य के शिष्य शारंगरव का प्रवेश।]

शारंग : अरे ओ !···कौन हो तुम ? (**पास आकर**) अरे, यह तो यहाँ आकर सो गया है !

[झुककर देखता है।]

शारंग : ओह ! कोई सँपेरा मालूम होता है। इसे कैसे जगाऊँ ? इसे छूना तो भयानक है। (**दौड़कर बाँस का एक टुकड़ा लाता है, बहुत डरा हुआ—अति सावधानी से बाँस के सहारे जगाता है**) उठ जा !···भाग जा यहाँ से ! अरे, उठता है कि नहीं ? आर्य चाणक्य इसी रास्ते से अभी सूर्यपूजा करने जायेंगे। अरे, सुनता है कि नहीं रे !

[मलयकेतु आँख मूँदे ही उठकर बैठा रह जाता है, जैसे अब भी सो रहा है।]

शारंग : अशुभ कहीं का ! जा भाग जा यहाँ से ! आर्य चाणक्य के आने का समय हो रहा है और तू कि यहाँ रास्ते में बैठा-बैठा अब भी सो रहा है। सुनता है कि नहीं रे ? (**बाँस से छूते हुए**) बैठा-बैठा सोता है रे ! पता है तुझे···यह आचार्य चाणक्य की तपोभूमि है ?

मलय : (**आँख मूँदे ही**) पता है।

शारंग : आर्य चाणक्य 'नीतिशास्त्र' के उपरान्त इस समय अर्थशास्त्र' की रचना में लगे हैं।

मलय : पता है।

शारंग : अब यह महापद्मनन्द का वह कुराज नहीं है कि सब यम-नियम के विरुद्ध अपना जीवन जियें। चन्द्रगुप्त के शासन में सबको अपनी मर्यादा और दायित्व में रहना है। तुम जैसे व्यक्तियों के लिए स्थान-स्थान पर विश्राम-गृह बने हैं।

मलय : पता है।

शारंग : पता है, पता है ! फिर यहाँ से जाता क्यों नहीं ?

[मलयकेतु आँखें खोलता है।]

मलय : (उठता हुआ) यद्यपि क्रोध ब्राह्मण का आभूषण है, पर हे देव, तुम जरा कम बिगड़ा करो। (रुककर) कुछ खेल देखोगे ?

शारंग : ब्राह्म मुहूर्त में साँप के दर्शन रे ! भागता है कि···

[बाँस तानता है।]

मलय : शान्त···शान्त !! अच्छा बाबा, एक गाना ही सुन लो।

शारंग : गाना ! अच्छा, पर बहुत धीरे-धीरे गाना।

मलय : नाच्चंत निकतिप्पञ्ञो निकत्या सुखमेधति।
आरोधेति निकतिप्पञ्ञो वको कक्कटकामिव।

मलय : (हँसता है) नहीं समझे ? कुछ नहीं समझे ! —अर्थात् धूर्तबुद्धि आदमी अपनी अधिक धूर्तता से सदैव सुख नहीं पा सकता। धूर्तबुद्धि अपने किये का फल भोगता है, जैसे बगुले ने केकड़े के द्वारा भोगा।

[खड़ाऊँ पहने, काला वस्त्र धारण किए, प्रसन्नमुख चाणक्य का प्रवेश]

शारंग : आर्य, क्षमा हो ! इससे मैंने कितना कहा कि तू यहाँ से चला जा, किन्तु यह धूर्तबुद्धि···!

चाणक्य : अच्छा-अच्छा शारंगरव, तुम तब तक मेरी कुटिया में बैठकर यह विचार करो कि इस सँपेरे ने धूर्तबुद्धि किसे कहा है ? और इसने यह गाथा-गीत किसके प्रति गाया है ?

[शारंगरव का प्रस्थान।]

मलय : (झटपट बहँगी उठाता हुआ) आपको विघ्न हुआ, क्षमा कीजिए ! मैं जा रहा हूँ।

चाणक्य : रुको, तुम्हारा नाम क्या है ?

मलय : मेरा···मेरा नाम ! हाँ, मेरा नाम क्या है ? किन्तु हाँ-हाँ···मेरा नाम मलयकेतु है।

चाणक्य : कहाँ के रहने वाले हो ?

मलय : मगध का का हूँ महाराज !

चाणक्य : पालि के अतिरिक्त और कितनी भाषाएँ-बो

मलय : थोड़ी-बहुत सब बोलियाँ जानता हूँ—महाकाल ऐसा है।

चाणक्य : तुम्हारे उस पिटारे में क्या है ? खोलकर दिख

मलय : (दिखाता हुआ) साँप है।

चाणक्य : और दूसरे में ?

मलय : यही खेल-खिलौने हैं। यह देखिए। कहाँ आप अपनी सूर्यपूजा में जाइए महाराज, मैं इधर के जाऊँगा।

[मलयकेतु जाने लगता है, चाणक्य आगे बढ़ते-

चाणक्य : नहीं; रुको मलयकेतु नामक सँपेरे (रु है। सुनो, पहले तुम्हारा खेल मैं देखूँगा—नहीं वको कक्कटकामिव।' चलो, मैं इस गाथा हूँ।

मलय : जैसी आज्ञा महाराज !

[बीन बजाने लगता है। फिर दूसरे पिट

मलय : गरमी के मौसम में
एक छोटे तालाब में पानी की कमी
गयीं;
एक बगुले ने सोचा—
मजा आ गया,
इन मछलियों को ठगकर

[मलय अपने पिटारे

लो, तालाब के
पूछा :
आर्य चिन्तित
बगुला बोला
तुम्हारे
मछलियाँ
धन्य है
तब

ीतिशास्त्र' के उपरान्त इस समय अर्थशास्त्र' की रचना में लगे

नन्द का वह कुराज नहीं है कि सब यम-नियम के विरुद्ध अपना
ध के शासन में सबको अपनी मर्यादा और दायित्व में रहना
के लिए स्थान-स्थान पर विश्राम-गृह बने हैं।

कर यहाँ से जाता क्यों नहीं ?

है।]

क्रोध ब्राह्मण का आभूषण है, पर हे देव, तुम जरा कम
कुछ खेल देखोगे ?
दर्शन रे ! भागता है कि···

बाबा, एक गाना ही सुन लो।
धीरे-धीरे गाना।
स्या सुखमेधति।
ो कक्कटकामिव।
नहीं समझे ! —अर्थात् धूर्तबुद्धि आदमी अपनी
ा सकता। धूर्तबुद्धि अपने किये का फल भोगता
ा।

ए, प्रसन्नमुख चाणक्य का प्रवेश]

ा कहा कि तू यहाँ से चला जा, किन्तु यह

मेरी कुटिया में बैठकर यह विचार
? और इसने यह गाथा-गीत किसके

हुआ, क्षमा कीजिए ! मैं जा

हीं···मेरा नाम मलय-

मलय : मगध का का हूँ महाराज !

चाणक्य : पालि के अतिरिक्त और कितनी भाषाएँ-बोलियाँ जानते हो ?

मलय : थोड़ी-बहुत सब बोलियाँ जानता हूँ—महाकाल की कृपा से अपना कर्म ही ऐसा है।

चाणक्य : तुम्हारे उस पिटारे में क्या है ? खोलकर दिखाओ, क्या है उसमें ?

मलय : (दिखाता हुआ) साँप है।

चाणक्य : और दूसरे में ?

मलय : यही खेल-खिलौने हैं। यह देखिए। कहाँ आप कहाँ मेरा यह खेल ! आप अपनी सूर्यपूजा में जाइए महाराज, मैं इधर के गाँव में खेल दिखाता हुआ चला जाऊँगा।

[मलयकेतु जाने लगता है, चाणक्य आगे बढ़ते-बढ़ते सहसा घूम पड़ते हैं।]

चाणक्य : नहीं; रुको मलयकेतु नामक सँपेरे (रुककर) हर राजनीतिज्ञ सँपेरा होता है। सुनो, पहले तुम्हारा खेल मैं देखूँगा—वही खेल—'नाच्चंत निकतिप्पञ्ञो··· बको कक्कटकामिव।' चलो, मैं इस गाथा की तुम्हारी नटरचना देखना चाहता हूँ।

मलय : जैसी आज्ञा महाराज !

[बीन बजाने लगता है। फिर दूसरे पिटारे को खोलता है।]

मलय : गरमी के मौसम में
एक छोटे तालाब में पानी की कमी हो गयी और तालाब की मछलियाँ बेहाल हो गयीं;
एक बगुले ने सोचा—
मजा आ गया,
इन मछलियों को ठगकर खाऊँगा !

[मलय अपने पिटारे से बगुले का पुतला निकालता है।]

लो, तालाब के किनारे बगुला भगत बैठ गया, जिसे चिन्तित देखकर मछलियों ने पूछा :
आर्य चिन्तित क्यों ?
बगुला बोला :
तुम्हारे लिए चिन्ता कर रहा हूँ।
मछलियाँ बोलीं :
धन्य है आर्य, पर हम क्या करें !
तब बगुले ने उत्तर दिया :
हे मछलियो, यदि तुम मेरा कहा करो तो मैं तुम्हें एक-एक करके चोंच से पकड़ वरुण वृक्ष के उस महातालाब में छोड़ दूँ !

धन्य हो,
मछलियों की चिन्ता करने वाला
कोई बगुला तो हुआ !

[पिटारे में से एक मछली निकालकर]

इस काणी मछली ने कहा :
तू हमें एक-एक करके खाएगा ?
नहीं जी, परीक्षा कर देखो—बगुला बोला और परीक्षा इसी काणी मछली के संग हुई। बगुला सचमुच कृपालु निकला।
उसने एक-एक मछली को उसी वरुण वृक्ष पर ले जाकर खा लिया
केवल शेष रहा एक केकड़ा !
बगुला बोला :
ओ कर्कट ! अब तुझे ले चलूँ !
केकड़े ने कहा :
बगुला मामा, मैं तेरी गरदन पकड़कर चलूँगा। नहीं तो मामा, मैं गिर जाऊँगा।
बगुले ने कहा—एवमस्तु, और उड़ गया।

[बीन बजाने लगता है।]

वरुण वृक्ष के पास पहुँचकर बोला बगुला :
मैं तुझे खाऊँगा।
केकड़े ने कहा : मैं तेरा गला काटूँगा।
बगुला गया डर।
स्वामी, मुझे जीवन दे
स्वामी, मुझे माफी दे।
केकड़े ने कहा : अच्छा चल मुझे तालाब में छोड़।
तो बगुले ने जैसे ही उसे तालाब के किनारे कीचड़ में उतारा—
केकड़े ने कमल की तरह बगुले की गर्दन को अपनी चंगुल कैंची से काट दिया और चला गया पानी में। वरुण वृक्ष के देवता ने उस आश्चर्य को देख यह गाथा कही—

'नाच्चंत निकतिप्पञ्ञो निकत्या सुखमेधति।
आरोधेति निकतिप्पञ्ञो वको कक्कटकामिव।'

[मलयकेतु गाते-गाते हँसने लगता है।]

चाणक्य : शान्त मलयकेतु ! रुक जाओ वहीं अपनी जगह पर।
तुम्हारे इस गाथा-खेल का अर्थ समझ रहा हूँ। इस खेल को तुमने कभी स्वर्गवासी नन्द के अमात्य राक्षस के दरबार में दिखाया है कि नहीं ! यह चाणक्य की तपो-

भूमि है सच—सच बोलना।
मलय : सच बताता हूँ महाराज ! राक्षस के दरबार में
चाणक्य : तुम जानो ! (पुकारते हुए) शारंगरव !

[शारंगरव का प्रवेश।]

चाणक्य : मलयकेतु का आतिथ्य करो। मैं सूर्यपूजा कर

[चाणक्य का प्रस्थान।]

मलय : भइया शारंगरव ! मेरा आतिथ्य हो गया। अब
है।
शारंगरव : चुप रहो। विघ्न मत डालो। मैं चिन्ता कर
कहा है ?
मलय : वह चुपके से मैं तुम्हें बता दूँगा।
शारंगरव : अच्छी बात है, समझ गया।
मलय : आचार्य के दर्शन कर आज मैं धन्य हो गया।
पराक्रमी राजा अपना माथा टेकने आते हैं उसके
शारंगरव : (बीच ही में) आचार्य वानप्रस्थ आश्रम
विविध शास्त्रों के अध्ययन और प्रणयन में
पाटलिपुत्र के···
मलय : हाँ-हाँ ! इनके समीप प्रायः कौन-कौन
शारंगरव : शकटार···सुवासिनी···इन्द्रजीत···
मलय : वह गुप्तचर निपुणक !
शारंगरव : हाँ-हाँ ! पर तुम्हें कैसे पता ?
मलय : बन्धु, मैं आर्य चन्द्रगुप्त की प्रजा
कुछ-न-कुछ ऐसे ही पता मिल
निपुणक नामक गुप्तचर को
के पक्षपातियों का
फैलाकर साधु-वेष में
राक्षस की पत्नी से
शारंगरव : हाँ-हाँ,
विष्णु शर्मा भी
मलय : वही
नन्द के भाई
शारंगरव :
मलय :
शारंगरव :

भूमि है सच—सच बोलना।

मलय : सच बताता हूँ महाराज ! राक्षस के दरबार में कभी गया ही नहीं।

चाणक्य : तुम जानो ! (**पुकारते हुए**) शारंगरव !

[शारंगरव का प्रवेश।]

चाणक्य : मलयकेतु का आतिथ्य करो। मैं सूर्यपूजा करके अभी आ रहा हूँ।

[चाणक्य का प्रस्थान।]

मलय : भइया शारंगरव ! मेरा आतिथ्य हो गया। अब तुमसे मेरा एक विनम्र निवेदन है।

शारंगरव : चुप रहो। विघ्न मत डालो। मैं चिन्ता कर रहा हूँ कि तूने धूर्तबुद्धि किसे कहा है ?

मलय : वह चुपके से मैं तुम्हें बता दूँगा।

शारंगरव : अच्छी बात है, समझ गया।

मलय : आचार्य के दर्शन कर आज मैं धन्य हो गया। जिसकी कुटी पर चन्द्रगुप्त जैसे पराक्रमी राजा अपना माथा टेकने आते हैं उसके…

शारंगरव : (**बीच ही में**) आचार्य वानप्रस्थ आश्रम के यम-नियमों में रहकर केवल विविध शास्त्रों के अध्ययन और प्रणयन में लगे रहते हैं। फिर भी इनके समीप पाटलिपुत्र के…

मलय : हाँ-हाँ ! इनके समीप प्रायः कौन-कौन लोग आते रहते हैं ?

शारंगरव : शकटार…सुवासिनी…इन्द्रजीत…निपुणक…

मलय : वह गुप्तचर निपुणक !

शारंगरव : हाँ-हाँ ! पर तुम्हें कैसे पता ?

मलय : बन्धु, मैं आर्य चन्द्रगुप्त की प्रजा हूँ। उनके राज्य में घूमता रहता हूँ; इसलिए कुछ-न-कुछ ऐसे ही पता मिल जाता है। लोग बताते हैं कि आचार्य चाणक्य ने निपुणक नामक गुप्तचर को मगध की जनता का दिल परखने और अमात्य राक्षस के पक्षपातियों का पता लगाने के लिए भेजा था। वह यमराज के चित्रपट को फैलाकर साधु-भेष में घूमता था और सबका भेद लेता था। और एक दिन उसी ने राक्षस की पत्नी से राक्षस की अँगूठी ले ली।

शारंगरव : हाँ-हाँ, सत्य है। और पिछले दिनों से यहाँ आर्य चाणक्य के सहाध्यायी मित्र विष्णु शर्मा भी रहने लगे हैं।

मलय : वही विष्णु शर्मा न, जिसने क्षपणक के छल-वेश में राक्षस के दरबार में रहकर नन्द के भाई सर्वार्थसिद्धि को वैरागी बना दिया है ?

शारंगरव : किन्तु…

मलय : किन्तु क्या ? बोलो बन्धु, बताओ मुझे !

शारंगरव : सर्वार्थसिद्धि की हत्या के लिए शकटार कल संध्या समय देववन के रास्ते में गया है।

[मलयकेतु अपनी बहँगी उठाकर शीघ्र ही जाने लगता है।]

शारंगरव : हे-हे ! कहाँ जा रहे हो ? मेरी बात का उत्तर न दोगे क्या ? बताओ न, तुमने गाथा-गीता में किसे धूर्तबुद्धि कहा है ?

मलय : तुमने मुझे सच-सच बताया है, इसलिए मैं भी तुझे सच-सच ही बताऊँगा—बगुला विश्वासघाती था इसलिए वह हत्यारा हुआ। और केकड़ा—जिसने उसे मारकर बदला लिया—धूर्तबुद्धि वही है।

[मलय जाने लगता है, शारंगरव उसे पकड़ता है।]

शारंगरव : और धूर्तबुद्धि ?

मलय : और धूर्तबुद्धि अपने किये का फल भोगता है—जैसे बगुले ने केकड़े के द्वारा भोगा।

शारंगरव : ओ हो ! तुमने सारा अर्थ उलट-पुलटकर गड़बड़ कर दिया।

[मलय शारंगरव से छुड़ाकर भागता है। उसी समय चाणक्य का प्रवेश।]

चाणक्य : दौड़ो, पकड़ो उसे—भागने न पाये।

[शारंगरव दौड़ता है।]

चाणक्य : **(बाहर देखते हुए)** मलयकेतु, कुशल चाहो तो वहीं एकदम खड़े हो जाओ। तुम शायद चाणक्य के ब्रह्मतेज को नहीं जानते ? चले आओ मेरे स्वर के सहारे ! चले आओ।

[शारंगरव मलयकेतु को पकड़े हुए आता है।]

चाणक्य : **(हँसते हुए)** मैं भी एक सँपेरा हूँ मलयकेतु ! मैं बता दूँ, तुम कौन हो ?

[मलयकेतु थर-थर काँप रहा है।]

चाणक्य : तुम राक्षस के गुप्तचर हो।

[शारंगरव घबराकर हट जाता है। मलयकेतु घुटने के बल बैठा हुआ चाणक्य के सम्मुख हाथ जोड़े हुए है। चाणक्य की तेज हँसी।]

चाणक्य : मलयकेतु ! अब तुम सुन लो, मैं कौन हूँ।

[मलयकेतु नतशिर है]

चाणक्य : मैं उस महातालाब के किनारे के वरुण वृक्ष का वही देवता हूँ।

मलय : क्षमा आर्य !

चाणक्य : बगुले और केकड़े की गाथा-खेल का अभिप्राय यह था कि धूर्तबुद्धि मैं हूँ।

मलय : नहीं-नहीं आर्य, मैं निर्दोष हूँ।

चाणक्य : मैं अब राजनीतिक व्यक्ति नहीं हूँ। अब मैं शास्त्र-प्रणेता, वानप्रस्थाश्रम का यती हूँ। **(रुककर)** उठो मलयकेतु, आश्वस्त हो तुम। तुम अमात्य राक्षस के गुप्तचर हो, तुम्हारा इसमें कोई दोष नहीं। तुमने [illegible]
पालन करना चाहा—मैं तुमसे प्रसन्न हूँ मलय ! [illegible]

[मलयकेतु उठ खड़ा होता है।]

चाणक्य : अब मेरे जीवन में कुछ भी गुप्त नहीं है। [illegible]
और चन्द्रगुप्त को आर्यावर्त के सिंहासन पर [illegible]
चरण समाप्त हो गया। (रुककर) मलयकेतु [illegible]
समस्त भूत आत्मास्वरूप हो जाते हैं ऐसे पुरुष [illegible]
शोक।

मलय : क्षमा हो तो एक प्रश्न करूँ महाराज !

चाणक्य : अवश्य··· निर्भय।

मलय : हिंसा का कहीं अन्त है ?

चाणक्य : नहीं।

मलय : और प्रतिहिंसा का ?

चाणक्य : उसका भी नहीं।

मलय : फिर नन्द वंश का सर्वनाश कराने [illegible]
विष्णु शर्मा को छद्मरूप में नियो[illegible]
सिद्धि को वैरागी क्यों बना दिया ? [illegible]

चाणक्य : ब्राह्मण का धर्म है कि वह [illegible]
है कि वह जन-जन से वर्णाश्रम [illegible]
नहीं, वहाँ ब्रह्मशक्ति और [illegible]

मलय : किन्तु आर्य, मुझे यहीं [illegible]
शकटार कल सन्ध्या [illegible]

चाणक्य : इसकी सूचना मुझे [illegible]

मलय : पर यह सत्य है [illegible]

[सहसा शारंगरव [illegible]

शारंगरव : आर्य, [illegible]
उसका पीछा [illegible]

मलय : आर्य [illegible]
रहा है। [illegible]

चाणक्य : [illegible]

[[illegible]

सर्वार्थसिद्धि [illegible]

[illegible]

...ी उठाकर शीघ्र ही जाने लगता है।]

...रहे हो ? मेरी बात का उत्तर न दोगे क्या ? बताओ न,
...से धूर्तबुद्धि कहा है ?
...बताया है, इसलिए मैं भी तुझे सच-सच ही बताऊँगा—
...इसलिए वह हत्यारा हुआ। और केकड़ा—जिसने उसे
...धूर्तबुद्धि वही है।

...रंगरव उसे पकड़ता है।]

...ये का फल भोगता है—जैसे बगुले ने केकड़े के द्वारा

...अर्थ उलट-पुलटकर गड़बड़ कर दिया।

...भागता है। उसी समय चाणक्य का प्रवेश।]
...ने न पाये।

...कुशल चाहो तो वहीं एकदम खड़े हो जाओ।
...नहीं जानते ? चले आओ मेरे स्वर के सहारे !

...आता है।]

...मलयकेतु ! मैं बता दूँ, तुम कौन हो ?

...घुटने के बल बैठा हुआ चाणक्य के
...ी।]

...ही देवता हूँ।

...कि धूर्तबुद्धि मैं हूँ।

..., वानप्रस्थाश्रम का
...मात्य राक्षस के

गुप्तचर हो, तुम्हारा इसमें कोई दोष नहीं। तुमने अपने कर्तव्य का इतना सफल पालन करना चाहा—मैं तुमसे प्रसन्न हूँ मलय !

[मलयकेतु उठ खड़ा होता है।]

चाणक्य : अब मेरे जीवन में कुछ भी गुप्त नहीं है। नन्द के उन्मूलन, सिकन्दर के पराभव और चन्द्रगुप्त को आर्यावर्त के सिंहासन पर बिठाकर चाणक्य का वह राजनीतिक चरण समाप्त हो गया। (रुककर) मलयकेतु, तुम निर्भय हो। जिस दिशा में समस्त भूत आत्मास्वरूप हो जाते हैं ऐसे पुरुष को न कोई मोह हो सकता है न शोक।

मलय : क्षमा हो तो एक प्रश्न करूँ महाराज !

चाणक्य : अवश्य···निर्भय।

मलय : हिंसा का कहीं अन्त है ?

चाणक्य : नहीं।

मलय : और प्रतिहिंसा का ?

चाणक्य : उसका भी नहीं।

मलय : फिर नन्द वंश का सर्वनाश कराने के बाद भी आपने अपने सहध्यायी मित्र विष्णु शर्मा को छद्मरूप में नियोजित कर नन्द के एकमात्र बचे हुए भाई सर्वार्थसिद्धि को वैरागी क्यों बना दिया ?

चाणक्य : ब्राह्मण का धर्म है कि वह नास्तिक पुरुष को आस्तिक बनाए। उसका धर्म है कि वह जन-जन से वर्णाश्रम धर्म का पालन कराये। जहाँ स्वेच्छा से यह सम्भव नहीं, वहाँ ब्रह्मशक्ति और धर्मनीति से यह सम्भव करना चाहिए।

मलय : किन्तु आर्य, मुझे यहीं पता चला है कि वैरागी सर्वार्थसिद्धि की हत्या के लिए शकटार कल सन्ध्या समय ही यहाँ से देववन रास्ते में चला गया है।

चाणक्य : इसकी सूचना मुझे नहीं है।

मलय : पर यह सत्य है आर्य !

[सहसा शारंगरव दौड़ा आता है।]

शारंगरव : आर्य, वह देखिए कोई इधर ही दौड़ा चला आ रहा है, कोई कृपाण ताने उसका पीछा कर रहा है !

मलय : आर्य सर्वार्थसिद्धि !···सर्वार्थसिद्धि का पीछा हिंसक-हत्यारा शकटार कर रहा है।

चाणक्य : सावधान शकटार, वहीं रुक जाओ।

[सर्वार्थसिद्धि त्रस्त, हाँफते हुए मंच पर आकर गिर पड़ते हैं।]

सर्वार्थसिद्धि : हा चाणक्य !

चाणक्य : आश्वस्त हो आर्य !

[सर्वार्थसिद्धि को मलय सँभालता है। सहसा दुःख से—]

मलय : आर्य सर्वार्थसिद्धि बेहोश हो गये । शरीर में कई जगह घाव हैं ।

चाणक्य : प्रतिहिंसा की कोई सीमा नहीं !

मलय : (आहत स्वर में) किन्तु इसके मूल आप हैं । यदि आप वरुण वृक्ष देवता हैं, तो इस अपार हिंसा-प्रतिहिंसा का न्याय कीजिए ।

चाणक्य : अवश्य न्याय करूँगा मलयकेतु । चाणक्य का वह रूप भी तुम देखोगे । (**शारंगरव से**) शारंगरव, जाओ शकटार के पास खड़े रहो । जब मैं तुम्हें पुकारूँगा, तब तुम शकटार को मेरे सामने ले आना ।

[शारंगरव का प्रस्थान ।]

चाणक्य : मलय, तुम नास्तिक हो न ?

मलय : निश्चय ।

चाणक्य : सत्य है क्योंकि तुमने अब तक केवल हिंसा-प्रतिहिंसा ही देखी है । मनुष्य की घृणा और वैर ही देखा है, क्योंकि तुम्हारा राक्षस भी नास्तिक है ।

मलय : निश्चय ।

चाणक्य : (**तेजस्वी स्वर में**) ध्यान से सुनो मलयकेतु ! दया की शक्ति ही ब्रह्म है ।

मलय : मैं ब्रह्म नहीं जानता । मैं हृदय की शक्ति अवश्य जानता हूँ ।

चाणक्य : हृदय की शक्ति जानते हो न ! बस, इतना ही ब्रह्मज्ञान है ।

मलय : होगा तुम्हारा ब्रह्मज्ञान !

चाणक्य : मुझसे आवेश में बातें मत करो मलय ! नास्तिक हो तो क्या, विचार करो न ! (**रुककर**) सुनो, सर्वार्थसिद्धि का नाम लेकर तुम पुकारो ! पुकारो न ?

[मलय सर्वार्थसिद्धि का नाम ले-लेकर पुकारता है । सर्वार्थसिद्धि पर कोई प्रतिक्रिया नहीं होती ।

मलय : आर्य तुम्हारे हिंसक शकटार से घायल होकर बेहोश पड़े हैं । वह कहाँ से बोल सकेंगे ?

चाणक्य : नास्तिक की आत्मा अपने में लीन है—तभी यह अचेतन अवस्था में है । लो मैं इन्हें अपने हृदय की समूची शक्ति से छूकर जगाता हूँ ।

[चाणक्य सर्वार्थसिद्धि को उठाते हैं]

चाणक्य : जागो ।

[सर्वार्थसिद्धि जगकर खड़े हो जाते हैं ।]

चाणक्य : निर्भय हो । तुम्हारे भीतर वह ब्रह्म है जो सूक्ष्म से सूक्ष्मतम और महान् से महत्तम है ।

सर्वार्थसिद्धि : मैं उसकी खोज में वैराग्य-पथ से जा रहा था, तुम्हारे शकटार के निर्मम आक्रमण ने मेरे सारे विश्वास को तोड़ दिया । छली ब्रह्मज्ञानी, उस विश्वास-

घात के मूल तुम हो !

मलय : तुम वरुण वृक्ष के देवता नहीं, तुम वह···वह

चाणक्य : जो हो कहते जाओ··· निर्भय होकर, मेरे

कह लो ! मुझे सब स्वीकार है । मैं अब वह पह

सर्वार्थसिद्धि : तुम वही हो···वही हो तुम ! मनुष्य

चाणक्य : ऐसा नास्तिक सोचता है । (पुकारते हुए)

['आया महाराज' का स्वर । फिर शारंगरव के

चाणक्य : शकटार, तुम सच-सच बोलो—ईश्वर में

शकटार : नहीं । मैंने कभी वह ईश्वर नहीं देखा । मैंने

नन्द के अन्ध कारागार में अपने अबोध बच्चों को

चाणक्य : नन्द की हत्या करके भी तुम्हारा जी नहीं

शकटार : अभी नहीं । जब तक नन्द वंश के समस्त

के इस भाई सर्वार्थसिद्धि का बध न डालूँ ।

चाणक्य : सर्वार्थसिद्धि अब वैरागी हैं ।

शकटार : फिर भी यह नन्द के भाई हैं ।

मलय : तुम्हें सर्वार्थसिद्धि की हत्या के लिए इसी चाण

शकटार : नहीं मैं स्वयं गया । पुत्र मेरे मरे हैं, चाणक्य

बनाकर यह अब ब्रह्मज्ञानी हुए हैं, मुझे क्या ? (

मुझे क्या मिलेगा ? मैंने रक्त दिया है, मुझे रक्त

चाणक्य : सुनो, सुनो शकटार ! सर्वार्थसिद्धि और अ

घृणा करते हो ?

शकटार : राक्षस को ! (**सर्वार्थसिद्धि की ओर**

करूँगा ।

[चाणक्य बीच में रोक लेते हैं ।]

चाणक्य : एक प्रश्न और है तुमसे

इस संसार में तुम्हारा कोई प्रिय

शकटार : मेरा प्रिय ? मेरी

चाणक्य : शारंगरव !

शारंगरव : आज्ञा

चाणक्य : तुम मल

[शारंगरव के

और बढ़ा

कृपाण

चाणक्य :

घात के मूल तुम हो !

मलय : तुम वरुण वृक्ष के देवता नहीं, तुम वह···वह बगुला हो तुम···

चाणक्य : जो हो कहते जाओ···निर्भय होकर, मेरे विषय में जो-जो सोचते हो, सब कह लो ! मुझे सब स्वीकार है। मैं अब वह पहले का चाणक्य नहीं हूँ।

सर्वार्थसिद्धि : तुम वही हो···वही हो तुम ! मनुष्य कभी नहीं बदलता।

चाणक्य : ऐसा नास्तिक सोचता है। (पुकारते हुए) शारंगरव !

['आया महाराज' का स्वर। फिर शारंगरव के साथ शकटार का प्रवेश।]

चाणक्य : शकटार, तुम सच-सच बोलो—ईश्वर में तुम्हें विश्वास है ?

शकटार : नहीं। मैंने कभी वह ईश्वर नहीं देखा। मैंने केवल हिंसा और मृत्यु देखी है। नन्द के अन्ध कारागार में अपने अबोध बच्चों को घुट-घुटकर मरते देखा है।

चाणक्य : नन्द की हत्या करके भी तुम्हारा जी नहीं भरा ?

शकटार : अभी नहीं। जब तक नन्द वंश के समस्त रक्त को न बहा दूँ—जब तक नंद के इस भाई सर्वार्थसिद्धि का वध न डालूँ।

चाणक्य : सर्वार्थसिद्धि अब वैरागी हैं।

शकटार : फिर भी यह नन्द के भाई हैं।

मलय : तुम्हें सर्वार्थसिद्धि की हत्या के लिए इसी चाणक्य ने ही भेजा न ?

शकटार : नहीं मैं स्वयं गया। पुत्र मेरे मरे हैं, चाणक्य को क्या ? चन्द्रगुप्त को राजा बनाकर यह अब ब्रह्मज्ञानी हुए हैं, मुझे क्या ? (रुककर) मुझे क्या मिला ? और मुझे क्या मिलेगा ? मैंने रक्त दिया है, मुझे रक्त चाहिए।

चाणक्य : सुनो, सुनो शकटार ! सर्वार्थसिद्धि और अमात्य राक्षस में तुम किसे अधिक घृणा करते हो ?

शकटार : राक्षस को ! (सर्वार्थसिद्धि की ओर झपटता है) पर पहले मैं इसकी हत्या करूँगा।

[चाणक्य बीच में रोक लेते हैं।]

चाणक्य : एक प्रश्न और है तुमसे शकटार ! उत्तर दो मुझे—प्रतिहिंसा को छोड़कर इस संसार में तुम्हारा कोई प्रिय है ?

शकटार : मेरा प्रिय ? मेरी अकेली कन्या सुवासिनी !

चाणक्य : शारंगरव !

शारंगरव : आज्ञा महाराज !

चाणक्य : तुम मलयकेतु और सर्वार्थसिद्धि को मेरी कुटी में ले जाओ।

[शारंगरव के साथ दोनों दायीं ओर बढ़ते हैं। तब तक शकटार कृपाण ताने उस ओर बढ़ता है। चाणक्य बढ़कर एक हाथ से शकटार को पकड़कर दूसरे से उसकी कृपाण छीनते हैं।]

चाणक्य : बस, बहुत हो चुका। चलो इधर। अब हमारा न्याय होगा।

शकटार : कौन करेगा न्याय ?

चाणक्य : वरुण वृक्ष का देवता।

[चाणक्य की दृष्टि शकटार की आँखों को जैसे अपने में बाँध लेती है।]

चाणक्य : अमात्य राक्षस को तुम सबसे अधिक घृणा करते हो, और अपनी पुत्री सुवासिनी को तुम सबसे अधिक स्नेह करते हो···

शकटार : हाँ···

चाणक्य : तो सुवासिनी का विवाह अमात्य राक्षस से होगा।

[शकटार हाथ जोड़े काँपकर बैठ जाता है।]

शकटार : नहीं-नहीं, ऐसा नहीं आर्य !

चाणक्य : यही होगा।

शकटार : सुवासिनी आपको कितनी प्रिय है ! वह कब से स्वप्न देख रही है कि आपसे मंगलसूत्र में बँधकर जीवन का नवप्रभात पायेगी।

चाणक्य : यह सत्य है, लेकिन देवता का न्याय सर्वोपरि है। मुझे भी दण्ड मिलना चाहिए था। मलयकेतु की उस गाथा का कुछ अंग मैं भी हूँ।

शकटार : ऐसा न कीजिए आर्य ! कोई भी और निर्णय कर लीजिए, किन्तु···

चाणक्य : घृणा को जीतने का और कोई उपाय नहीं।

शकटार : (**उठता हुआ**) इस निर्णय के पूर्ण होने के पूर्व मैं आत्महत्या कर लूँगा।

[चाणक्य के हाथ से गिरी हुई तलवार उठाता है।]

चाणक्य : (**तलवार छीनता हुआ**) शकटार ! इस रास्ते से सीधे तुम अपने घर चले जाओ, जाओ···सोचते क्या हो ? यह चाणक्य की आज्ञा है।

[शकटार बायीं ओर चुपचाप चला जाता है।]

चाणक्य : (**पुकारकर**) मलयकेतु !

[आता हुआ उत्तर—'आया महाराज।' फिर मलय का प्रवेश।]

चाणक्य : जाओ, अपने अमात्य राक्षस को यह शुभ संवाद दो कि शकटार की कन्या से अमात्य का विवाह होने जा रहा है।

मलय : (**आश्चर्य**) सत्य ?

चाणक्य : हाँ, पूर्ण सत्य ?

[मलय प्रसन्नता से भागता है। चाणक्य शकटार की तलवार को देखते हुए—]

चाणक्य : वह ब्रह्म ही अग्नि है···सर्वात्मा है···जल है। उसे जानने के लिए उठो। जागो। श्रेष्ठ जनों को पाकर समझो।

[तलवार झुकाते हुए दोनों हाथों के बीच तोड़ देते हैं। दायीं ओर सर्वार्थसिद्धि दिखाई देते हैं नतशिर, करबद्ध। चाणक्य टूटी तलवार को नीचे गिराते हुए, सर्वार्थसिद्धि की ओर बढ़ते हैं। परदा।]

बादल आ ग

पात्र

डाक्टर सरल

मानिक

दीपा

शोभना

वीर

ाय ?

वता।

कटार की आँखों को जैसे अपने में बाँध लेती है।]

ो तुम सबसे अधिक घृणा करते हो, और अपनी पुत्री
से अधिक स्नेह करते हो···

विवाह अमात्य राक्षस से होगा।

पकर बैठ जाता है।]

आर्य !

कितनी प्रिय है ! वह कब से स्वप्न देख रही है कि आपसे
का नवप्रभात पायेगी।

ा का न्याय सर्वोपरि है। मुझे भी दण्ड मिलना चाहिए
का कुछ अंग मैं भी हूँ।

कोई भी और निर्णय कर लीजिए, किन्तु···

कोई उपाय नहीं।

के पूर्ण होने के पूर्व मैं आत्महत्या कर लूँगा।

वार उठाता है।]

टार ! इस रास्ते से सीधे तुम अपने घर चले
चाणक्य की आज्ञा है।

ता है।]

िर मलय का प्रवेश।]

ुभ संवाद दो कि शकटार की कन्या

र की तलवार को देखते हुए—]

। उसे जानने के लिए उठो।

। दायीं ओर सर्वार्थसिद्धि
को नीचे गिराते हुए,

बादल आ गए

पात्र

डाक्टर सरन
मानिक
दीपा
शोभना
वीरसिंह

[हिल स्टेशन का एक डाकबँगला। इस एकांकी का परदा डाकबँगले के एक गोल कमरे में उठता है। बायीं ओर दो दरवाज़े हैं : एक आगे—बाहर से आने वाले यात्रियों के लिए और एक उसके पीछे—कमरों में जाने के लिए। दायीं ओर केवल एक दरवाजा है—उधर के कमरों में जाने के लिए और बाहर निकलने के लिए।

कमरों में बायीं ओर एक मेज-कुरसी। दायीं ओर एक बेंच, एक स्टूल, टी-टेबल और एक कुरसी। पीछे की ओर हैट टाँगने का एक स्टैण्ड जिसके बीचोंबीच मुँह देखने का एक चौड़ा-सा शीशा लगा हुआ है।

मई के प्रारम्भिक दिन हैं। समय : दिन के चार बजने वाले हैं।

परदा उठने पर डाक्टर सरन दिखाई देते हैं, जिनकी अवस्था 40 वर्ष से अधिक नहीं है। गरम सूट पहने हुए हैं। आँखों पर चश्मा, सुन्दर सहज व्यक्तित्व। मेज पर 'माइक्रोस्कोप' रखे उसके बीच स्लाइड पर कुछ परीक्षा कर रहे हैं। दायीं ओर से डाक बँगले के चौकीदार का प्रवेश, अवस्था 50 वर्ष।]

वीरसिंह : (**डाक्टर को देखते ही अँगोछे से अपना मुँह-नाक बन्द कर लेता है**) शाहब जी···शाह···।

[डाक्टर सरन काम में दत्तचित्त।]

वीरसिंह : शाहब जी···।

डा० सरन : क्या है? बोलो···अरे इस तरह तूने नाक-मुँह क्यों बन्द कर रखा है?

वीरसिंह : शाहब जी···। वह मशीन—वह मशीन शाहब जी!

डा० सरन : (सहसा हँसकर) ओह, वह मशीन। मशीन हटा दूँ, यहाँ से, तब तुम खुलकर बोलोगे! अच्छा···यह लो बाबा···।

[कुरसी के पीछे से तौलिया उठाकर मशीन ढँक देता है।]

वीरसिंह : (खुलकर साँस लेता हुआ) ओह शाहब जी! चलिए चाय तैयार है।

डा० सरन : (उठकर) आज मैं चाय यहीं पीऊँगा!

वीरसिंह : (साश्चर्य) यहीं पीएँगे? ···जैसी आपकी मर्जी साहब! (प्रस्थान)

डा० सरन : (बायीं ओर देखता हुआ आह्लादित) ओह बादल! (पुकारता हुआ) वीरसिंह!

['आया शरकार'—भीतर से आवाज।]

डा० सरन : नये बादल! वीरसिंह, बादलों की सेना
देर में!

[वीरसिंह ट्रे में चाय लिए हुए आता है और टी-

डा० सरन : देखो, कैसे बादल आए हैं, छिपे हुए
धवलधार की चोटी पर कोई सेना उतार दी गय

वीरसिंह : (देखता हुआ) हाँ शाहब, मानसून के बाद
जल्दी आ गए!

डा० सरन : सच?

वीरसिंह : हाँ जी शाहब, आपकी वजह शे। (रुककर)

डा० सरन : (अपनी मेज की ओर बढ़ते हुए) आज तु

वीरसिंह : (घबराकर) नहीं शाहब नहीं। उश मेज के
पीले बुखार के कीड़े हैं शाहब!

डा० सरन : (चाय के पास आते हुए) तो तुम इतने

वीरसिंह : डरूँ न तो और क्या करूँ शाहब! इधर के
जालिम होता है शरकार। इशी तरह यह बुखा
बार फैला था, तब मैं···।

डा० सरन : (बीच ही में) जवान था?

वीरसिंह : हाँ शाहब! तब उश बार इस पीले बुखार
गए थे।

डा० सरन : अब ऐसा नहीं होगा। अभी शुरुआत है
को जड़ से उखाड़ फेंकूँगा।

वीरसिंह : भगवान् करे ऐशा ही हो शाहब!
आज शुबह एक आदमी मर गया है।
बुखार का खून है न उसके अन्दर।

डा० सरन : (हँसते हुए) इस मशीन से
इस मशीन से मैं बुखार के मरीज

वीरसिंह : चाय ठण्डी हो जाएगी

डा० सरन : (बायीं

डा० सरन : नये बादल ! वीरसिंह, बादलों की सेना आ गयी ! अचानक···इतनी ही देर में !

[वीरसिंह ट्रे में चाय लिए हुए आता है और टी-टेबल पर रख देता है।]

डा० सरन : देखो, कैसे बादल आए हैं, छिपे हुए अचानक—जैसे पैराशूट से इस धवलधार की चोटी पर कोई सेना उतार दी गयी हो।

वीरसिंह : (**देखता हुआ**) हाँ शाहब, मानशून के बादल तो आ गए। इश शाल बादल जल्दी आ गए !

डा० सरन : सच ?

वीरसिंह : हाँ जी शाहब, आपकी वजह शे। (**रुककर**) शाहब चाय पीजिए।

डा० सरन : (**अपनी मेज की ओर बढ़ते हुए**) आज तुम्हीं चाय बनाकर दो मुझे।

वीरसिंह : (**घबराकर**) नहीं शाहब नहीं। उश मेज के पाश मत जाइए। उश मशीन में पीले बुखार के कीड़े हैं शाहब !

डा० सरन : (**चाय के पास आते हुए**) तो तुम इतने डर गए हो इस पीले बुखार से।

वीरसिंह : डरूँ न तो और क्या करूँ शाहब ! इधर के इलाके में यह पीला बुखार बड़ा जालिम होता है शरकार। इशी तरह यह बुखार शन् उन्नीश शौ शैंतिश में एक बार फैला था, तब मैं···।

डा० सरन : (**बीच ही में**) जवान था ?

वीरसिंह : हाँ शाहब ! तब उश बार इस पीले बुखार शे इश इलाके के आधे लोग मर गए थे।

डा० सरन : अब ऐसा नहीं होगा। अभी शुरुआत है इसकी। इस बार मैं इस पीले बुखार को जड़ से उखाड़ फेंकूँगा।

वीरसिंह : भगवान् करे ऐशा ही हो शाहब ! नीचे घाटी के उश गाँव में इशी बुखार से आज शुबह एक आदमी मर गया है। तभी तो मुझे इश मशीन से डर लगता है। बुखार का खून है न उशके अन्दर।

डा० सरन : (**हँसते हुए**) इस मशीन से तुम डरते हो, जो तुम्हारी रक्षा करने वाली है। इस मशीन से मैं बुखार के मरीज के खून की जाँच कर रहा हूँ।

वीरसिंह : चाय ठण्डी हो जाएगी शाहब !

डा० सरन : (**बायीं ओर भीतर जाते हुए**) रुको, मैं हाथ धो आऊँ। (**प्रस्थान**)

वीरसिंह : (**अपने-आप**) शाहेब, मैं आपकी इश मशीन से नहीं डरता। मैं उश पीले बुखार शे जरूर डरता हूँ (**सहसा मेज के सामने घुटने टेककर हाथ जोड़े हुए**) हे मशीन माता, तुम हमारी रक्षा करो। हे माताजी, मेरे लड़के की शादी होने वाली है। (**घुटने टेके हुए फर्श पर माथा झुकाता है। सहसा एक पाँव पर खड़ा होकर**) हे मशीन माता ! हमको माफ करो, हम नहीं जानता था कि तुम···।

[फफककर रोने ही जा रहा था कि डाक्टर का प्रवेश।]

डा० सरन : अरे···यह क्या ?

वीरसिंह : कुछ नहीं। कुछ नहीं शाहब ! कुछ नहीं; शच कुछ नहीं।

[डा० सरन टी-टेबल के सामने बैठकर चाय पीते हैं। उसी समय बाहर से आवाज आती है।]

आवाज : वीरसिंह।···चौकीदार···।

वीरसिंह : (बायीं ओर बाहर भागता हुआ) आया शरकार।

डा० सरन : लगता है चार बजे वाली 'बस' आ गयी। (घड़ी देखकर) अरे ! मेरी घड़ी इतनी फास्ट क्यों चल रही है···यह तो पाँच बजा रही है। (खड़ा होकर) ह्वाट इज इक्जैक्ट टाइम ? (बायीं ओर देखते ही) ओह ! इतने बादल जमा हो गए।

[उसी क्षण सामने से मानिक और दीपक का प्रवेश। मानिक गरम सूट पहने हैं, मुँह में सिगार है। दायाँ पैर निःशक्त होने के कारण एक बैसाखी के सहारे आया है। साथ में दीपा—सुन्दर गम्भीर युवती, कन्धे से थर्मस् लटकाए हुए। पीछे वीरसिंह सिर पर अटैची और होल्डाल लिए हुए। प्रवेश करते ही डा० सरन और दीपा की दृष्टि एकाकार हो जाती है।]

डा० सरन : (उद्दीप्त हो) दीपा !···यू···

[मानिक की दृष्टि डा० सरन और दीपा की एक नजर को पकड़ लेती है। फिर डाक्टर मानिक और दीपा को देखता ही रह जाता है। वीरसिंह सामान के साथ दायीं ओर बढ़ता है।]

वीरसिंह : आइए शाहब। रूम नम्बर थ्री में आइए।

[वीरसिंह के पीछे गऊ की तरह सिर झुकाए दीपा चली जाती है।]

मानिक : (एक ठण्डी मुस्कान के साथ) आपकी तारीफ ?

डा० सरन : मेरी ?···आ'एम डाक्टर सरन—मेडिकल कॉलेज, कानपुर।

मानिक : तो पहाड़ पहली बार आए हैं। आई सी···!

डा० सरन : तशरीफ़ रखिए।

मानिक : (कुरसी पर बैठते हुए) शुक्रिया।

डा० सरन : (बेंच पर बैठकर टी-टेबल पास खींचकर) इधर की एरिया में एक अजीब तरह का बुखार—यलो फीवर की कुछ शिकायत है। गवर्नमेण्ट ने यहाँ इसकी फैक्ट फाईडिंग और डाइग्नोसिस के लिए भेजा है। (चाय ढालते हुए) और आपकी तारीफ़ ?

मानिक : मेरा नाम मानिक है—एडवोकेट लखनऊ। ऐण्ड···दैट दीपा इज माई वाइफ़।

[वीरसिंह का प्रसन्न वदन प्रवेश।]

वीरसिंह : हुजूर चलिए, कमरा ठीक हो गया। मेम साहब बुला रही हैं। (रुककर) ओ

हो शाहब ! मैं तो आपको देखने के लिए तरश गया

मेरी भेंट न होगी।

मानिक : और भेंट भी हुई तो आज इन हालत में—जब

गया है।

वीरसिंह : (दुःख से) राम···राम···राम ! यह तो बड़े अ

डा० सरन : क्या हुआ यह आपके पैर में ?

मानिक : क्या बताऊँ डाक्टर साहब !

'खुदा किसी को ये ख्वाबे-बद न दिखल

कफस के सामने जलता है आशियाँ अपन

और क्या बताऊँ !

[चुप एकटक डाक्टर को देखता है, डा० सरन चाय ख

मानिक : वीरसिंह ! चलो, मैं अभी आ रहा हूँ !

डा० सरन : यह ट्रे उठा ले जाओ।

[वीरसिंह ट्रे उठाकर चला जाता है।]

मानिक : आज से पाँच साल पहले की बात है, मैं बम्बई में

एक बहुत बड़ा औंधा फोड़ा हुआ, फिर वह अपने-आप

करनी पड़ी···।

डा० सरन : (बीच ही में) पहली शादी या···।

मानिक : जी हाँ, शादी तो पहली ही थी।

डा० सरन : वेरी लेट।

मानिक : जो समझिए। हाँ, तो हुआ यह कि मेरा

एक ही साल बाद बड़े भयानक ढंग से फिर

शुगर की वजह से घाव पुरता ही न था।

जब वहाँ से उठा कर घर लाया गया

गायब। डाक्टर-वैद्य-हकीम लोग आने

अपनी समझ में कुछ नहीं आया।

[उठकर सीधे दायीं ओर

जरा माफ कीजिए···

बस यूँ ही मैंने

डा० सरन : जी हाँ,

मानिक : आप

डा० सरन :

मानिक :

डा० सरन :

…हीं साहब ! कुछ नहीं; सच कुछ नहीं ।

…के सामने बैठकर चाय पीते हैं। उसी समय बाहर से आवाज

…ार…।

…(…ता हुआ) आया शरकार ।

…वाली 'बस' आ गयी । (घड़ी देखकर) अरे ! मेरी …स रही है…यह तो पाँच बजा रही है । (खड़ा होकर) …? (बायीं ओर देखते ही) ओह ! इतने बादल जमा हो

…और दीपक का प्रवेश । मानिक गरम सूट पहने हैं, …निःशक्त होने के कारण एक बैसाखी के सहारे आया …और युवती, कन्धे से थर्मस् लटकाए हुए। पीछे …लिए हुए। प्रवेश करते ही डा० सरन और …है।]

…दीपा की एक नज़र को पकड़ लेती है। फिर …ही रह जाता है। वीरसिंह सामान के साथ

…आइए।

…दीपा चली जाती है।]

…तारीफ ?

…कॉलेज, कानपुर।

…की एरिया में एक अजीब …है। गवर्नमेण्ट ने यहाँ इसकी …है। (चाय डालते हुए) और

…दैट दीपा इज़ माई

…है। (रुककर) ओ

हो शाहब ! मैं तो आपको देखने के लिए तरश गया था । शोचता था, अब आपशे मेरी भेंट न होगी ।

मानिक : और भेंट भी हुई तो आज इस हालत में—जब मेरा यह दायाँ पैर बेकार हो गया है।

वीरसिंह : (दुःख से) राम…राम…राम ! यह तो बड़े अफशोश की बात है हुजूर ।

डा० सरन : क्या हुआ यह आपके पैर में ?

मानिक : क्या बताऊँ डाक्टर साहब !

'खुदा किसी को ये ख्वाबे-बद न दिखलाए,
कफस के सामने जलता है आशियाँ अपना ।'

और क्या बताऊँ !

[चुप एकटक डाक्टर को देखता है, डा० सरन चाय खत्म कर रहे हैं।]

मानिक : वीरसिंह ! चलो, मैं अभी आ रहा हूँ !

डा० सरन : यह ट्रे उठा ले जाओ।

[वीरसिंह ट्रे उठाकर चला जाता है।]

मानिक : आज से पाँच साल पहले की बात है, मैं बम्बई में था। वहीं मुझे दायीं काछ में एक बहुत बड़ा औंधा फोड़ा हुआ, फिर वह अपने-आप बैठ गया। फिर मुझे शादी करनी पड़ी…।

डा० सरन : (बीच ही में) पहली शादी या…।

मानिक : जी हाँ, शादी तो पहली ही थी।

डा० सरन : वेरी लेट ।

मानिक : जो समझिए। हाँ, तो हुआ यह कि मेरा वह दबा हुआ फोड़ा शादी के एक एक ही साल बाद बड़े भयानक ढंग से फिर उभरा। ऑपरेशन हुआ ! ब्लड में शुगर की वजह से घाव पुरता ही न था। छह महीने अस्पताल में पड़ा रहा, फिर जब वहाँ से उठा कर घर लाया गया और घाव पुरा तो इस पैर की ताकत ही गायब । डाक्टर-वैद्य-हकीम लोग जाने क्या-क्या बकवास करते हैं, मगर इस बाबत अपनी समझ में कुछ नहीं आता।

[उठकर सीधे दायीं ओर प्रस्थान, दरवाज़े से सहसा घूमकर।]

जरा माफ कीजिए…मेरी वाइफ से आपका कुछ पहले का भी परिचय है क्या ? … बस यूँ ही मैंने बाई द वे पूछ लिया—'डोंट माइण्ड इट प्लीज़ ।'

डा० सरन : जी हाँ, ऐसा लगता है कि हम लोग परिचित हैं।

मानिक : आप कहाँ के रहने वाले हैं ? मेरा मतलब आपका घर ?

डा० सरन : लखनऊ।

मानिक : किस जगह ?

डा० सरन : लालबाग ।

मानिक : हूँ !···आई सी···।

[तेजी से भीतर प्रस्थान । डाक्टर मेज पर से अपना सामान उठाने लगता है, वीरसिंह का प्रवेश ।]

वीरसिंह : शाहब, आप अपना काम यहाँ बैठकर कीजिए न । अब यहाँ आपको कोई डिस्टर्ब नहीं करेगा ।

डा० सरन : सच ?

वीरसिंह : हाँ, बिलकुल शच शाहब !

डा० सरन : झूठ ! (**मशीन लेकर जाते हुए**) मैं तो डिस्टर्ब हो गया ! अब यहाँ कोई और आए या न आए ।

वीरसिंह : हुजूर, आपके कमरे में यह मेज उठा लाऊँ ?

डा० सरन : नहीं, ठीक है यहाँ । पर देखो, इसे जरा झाड़-पोंछ दो ! इसका कवर बदलो ! इस कमरे को जरा झाड़-पोंछ डालो । यह बेंच उठा दो ।

वीरसिंह : अच्छा शाहब !

डा० सरन : यहाँ एक और अच्छी कुरसी रखो ।

वीरसिंह : बहुत अच्छा शाहब !

डा० सरन : इस टी-टेबल को जरा पीछे करो । एक फ्लावर पॉट में ताजे फूल सजा कर रखो । यह आइना जरा पोंछ डालो ।

वीरसिंह : अच्छा शाहब !

डा० सरन : अच्छा, तुम ये सब काम झट करो । फ्लावर पॉट मैं लाता हूँ अपने कमरे से ।

[डा० सरन का तेजी से प्रस्थान । वीरसिंह डाक्टर की आज्ञानुसार कार्य करता है । आइना वग़ैरह झाड़ता-पोंछता है और एक पहाड़ी गीत गुनगुनाता है—]

'बेड़ पाको बारों मासा
होनरेड़ का फल पाको चैता, मेरी छैला !'

[उसी बीच डाक्टर हाथ में ताजे फूलों से सुसज्जित फ्लावर पॉट लिए आता है ।)

डा० सरन : वीरसिंह ! गाना क्यों बन्द कर दिया ?

[डा० फ्लावर पॉट को टेबल पर सजाता है ।]

वीरसिंह : शाहब, यह गाना प्रेम का है । मेरे लड़के की शादी हो रही है न, रात को औरतें यही गाती हैं ।

डा० सरन : वीरसिंह, मिस्टर मानिक को तुम पहले से जानते थे ?

वीरसिंह : जी हाँ, शाहब ! मानिक शाहब को मैं पिछले दश शाल शे जानता हूँ । हर शाल पहाड़ी की शैर करने आते थे । कभी नैनीताल, कभी मशूरी, कभी यहाँ और

1

इधर से घूमते हुए कभी सीधे कश्मीर ।

डा० सरन : अकेले···?

वीरसिंह : नहीं शाहब, अकेले नहीं । हर शाल अपने शं
मेम !

डा० सरन : (हँसते हुए) मिश मेम !

वीरसिंह : अच्छा शाहबजी, आल राइट न ! (जाते-जाते
यह है शाहब कि मानिक साहब शे अपनी बड़ी दो
देता है शाहब !

[उसी समय भीतर से मानिक का प्रवेश ।]

मानिक : किसकी बात कर रहे हो वीरसिंह ?

वीरसिंह : (सलज्ज) शाहब, आपका ही गुन गा रहा था ।

मानिक : अजी, निर्गुन के क्या गुण गाओगे ? अरे दुआ
हो जाता (**कुरसी पर बैठते हुए**) लेकिन अब यह
कोशिशें बेकार हो गयीं !

डा० सरन : लेकिन कोशिशें तो और भी हो सकती हैं ।

मानिक : मैं सारी जिन्दगी बिन किसी कोशिश के सदा काम
हूँ । अब क्या है ! (रुककर) यूँ मैं 'अपनी' जिन्दगी
साहब ! इसलिए अब कोई पछतावा नहीं है । अफ
ओह वीरसिंह, सुनो भाई···।

वीरसिंह : फरमाइए शाहब !

मानिक : यहाँ पास में कोई गरम पानी का सोता है क्या ?

वीरसिंह : जी हाँ शाहब, है क्यों नहीं । मण्डी गाँव के
गाँव शाहब, जहाँ की वह फलों वाली शराब···।

मानिक : ओह ! उसकी याद मत दिलाओ !

वीरसिंह : उशी की पल्ली तरफ जो पहाड़ी है
शोता । उशको इधर गन्धक शोता कहते हैं

मानिक : अजी वही तो मुसीबत है अपनी
नहलवाने के लिए यहाँ ले आयी है

डा० सरन : मजाक नहीं, सच है

मानिक : ओ हो ! अच्छा
बहूजी से अपने और

वीरसिंह : अच्छा शाहब
आ रही होगी ।

मानिक : हाँ डॉक्टर
कमबख्त

इधर से घूमते हुए कभी सीधे कश्मीर।

डा० सरन : अकेले…?

वीरसिंह : नहीं शाहब, अकेले नहीं। हर शाल अपने शंग एक मेम लाते थे।…मिश मेम !

डा० सरन : **(हँसते हुए)** मिश मेम !

वीरसिंह : अच्छा शाहबजी, आल राइट न ! **(जाते-जाते सहसा घूमकर)** बात अशल यह है शाहब कि मानिक साहब शे अपनी बड़ी दोश्ती है। खूब इनाम-बक्शीश देता है शाहब !

[उसी समय भीतर से मानिक का प्रवेश।]

मानिक : किसकी बात कर रहे हो वीरसिंह ?

वीरसिंह : **(सलज्ज)** शाहब, आपका ही गुन गा रहा था।

मानिक : अजी, निर्गुन के क्या गुण गाओगे ? अरे दुआ करते कि ससुरा यह पैर ठीक हो जाता **(कुरसी पर बैठते हुए)** लेकिन अब यह क्या ठीक होगा। जब सब कोशिशें बेकार हो गयीं !

डा० सरन : लेकिन कोशिशें तो और भी हो सकती हैं।

मानिक : मैं सारी जिन्दगी बिन किसी कोशिश के सदा कामयाब होने वाला आदमी रहा हूँ। अब क्या है ! **(रुककर)** यूँ मैं 'अपनी' जिन्दगी पूरी जी चुका हूँ डाक्टर साहब ! इसलिए अब कोई पछतावा नहीं है। अफसोस भी नहीं है। **(सहसा)** ओह वीरसिंह, सुनो भाई…।

वीरसिंह : फरमाइए शाहब !

मानिक : यहाँ पास में कोई गरम पानी का सोता है क्या ?

वीरसिंह : जी हाँ शाहब, है क्यों नहीं। मण्डी गाँव के पल्ली तरफ तो है। वही मण्डी गाँव शाहब, जहाँ की वह फलों वाली शराब…।

मानिक : ओह ! उसकी याद मत दिलाओ ! शराब…।

वीरसिंह : उशी की पल्ली तरफ जो पहाड़ी है न, उशी में तो है वह गरम पानी का शोता। उशको इधर गन्धक शोता कहते हैं।

मानिक : अजी वही तो मुसीबत है अपनी। दीपा मुझे उसी गरम पानी के सोते में नहलवाने के लिए यहाँ ले आयी है। क्या मजाक है।

डा० सरन : मजाक नहीं, सच है वह !

मानिक : ओ हो ! अच्छा साहब ! लेकिन कैसे ? आखिर क्यों ? वीरसिंह, तुम जाओ, बहूजी से अपने और काम पूछ लो।

वीरसिंह : अच्छा शाहब ! तब तक मैं जरा 'बश श्टैण्ड' तक हो आऊँ। दूशरी मोटर आ रही होगी। एक शाहब आने… **(प्रस्थान)**!

मानिक : **हाँ डॉक्टर** साहब, आप कुछ कहने जा रहे थे। मैं अपने दिमाग को क्या करूँ। कमबख्त बेहद तेज दौड़ता है। एक ही साथ कई लोगों से बातें करना चाहता है।

हजार बातें सोचने लगता है यह ! इसी की फितरत को दबाने के लिए मैं इतने सिगार पीता हूँ···। मगर (**सिगार दागकर पीते हुए**) आप कुछ नहीं पीते डाक्टर साहब !

डा० सरन : नहीं, थेंक्यू !

मानिक : (**लम्बा कश लेकर**) तभी तो इतनी छोटी उमर में आप इतने बड़े डाक्टर हैं और मैं इतना बड़ा मरीज हूँ।

डा० सरन : नहीं-नहीं, ऐसा क्यों सोचते हैं आप अपने लिए।

मानिक : मैं भी यही सोचता हूँ कि मैं अपने लिए न सोचूं ! आप कुछ कहने जा रहे थे डाक्टर साहब।

डा० सरन : नहीं तो !

मानिक : हाँ-हाँ, आप कहने जा रहे थे कि दीपा ने मुझे यहाँ लाकर···।

डा० सरन : ओह ! हाँ, दीपा जी का अपना विश्वास ठीक है। उस हॉट वाटर स्प्रिंग में गन्धक मिली है। आपका उस पानी में नहाना जरूर फ़ायदेमन्द है।

मानिक : यानी मेरे पैर में ताक़त आ जायेगी ! (**कुर्सी से उठते हुए**) मेरा यह पैर अच्छा हो जायेगा ?

[डाक्टर की ओर बढ़कर]

मानिक : मैं अच्छा हो जाऊँगा ?

डा० सरन : यह मैं नहीं कह सकता।

मानिक : (हतप्रभ) फिर क्या कह सकते हैं आप ? वह सब तो मैं खुद ही जानता हूँ। नॉनसेन्स !

[तेजी से अपने कमरे की ओर प्रस्थान।]

डा० सरन : (**बढ़ते हुए**) मिस्टर मानिक, सँभालकर···देखिए कहीं···!

मानिक : आपसे मतलब ?

डा० सरन : क्यों नहीं, मैं डाक्टर हूँ···मेरा धर्म है कि···।

मानिक : आपका धर्म मैं खूब जानता हूँ।

[तेजी से प्रस्थान]

डा० सरन : ओह ! इतना नर्वस टेन्शन !

[सोचते रह जाना, फिर बायीं ओर अपने कमरे की ओर जाना। उसी क्षण दायीं ओर से दीपा प्रकट होती है।]

डा० सरन : दीपा···।

दीपा : नहीं, श्रीमती मानिक सहाय !

डा० सरन : ठीक है। बैठिए श्रीमती मानिक सहाय ! हाउ डू यू डू ?

दीपा : प्लीज···।

डा० सरन : तभी मैं कहूँ, अभी एकाएक ये बादल कहाँ

दीपा : मैं आपसे यहाँ कुछ सुनने नहीं आयी हूँ। महज़
अभी उनसे उस हॉट वाटर स्प्रिंग के विषय में क्या

डा० सरन : आपके विश्वास का समर्थन मिसेज मानि
(हँस पड़ता है) अरे तुम इस तरह उदास क्यों हो

[दीपा उत्तर में भारी पलकों से महज एक बार डा

डा० सरन : दीपा !

दीपा : (**सहसा जागकर**) कौन दीपा ! मैं कोई दीपा
पहचाना नहीं ! मैं मिसेज मानिक सहाय हूँ···और
ठीक हूँ।

[डा० सरन चुप देखता रह जाता है।]

दीपा : आपके पहचानने में गलती हुई।

डा० सरन : शायद ! ···लेकिन अब तो पहचान हो गयी
मार्ग की वह दीपा और मेडिकल कॉलेज के तीसरे
सरन···।

दीपा : प्लीज स्टाप···!

[डाक्टर चुप होकर बाहर दूर चोटी पर उमड़ते बा

दीपा : (आत्म-विस्मृत) यहाँ क्या करते हो ?

[डा० सरन चुप।]

दीपा : अकेले ही हो ?

डा० सरन : (**हँसता हुआ**) प्लीज स्टॉप इट !

[दीपा खिलखिलाकर हँस पड़ती है।]

दीपा : सच, मैं पूछ रही हूँ, बताओ न !

डा० सरन : इधर नीचे के गाँव में एक
रोकने के मिलसिले में यहाँ आया हूँ

दीपा : बताओ, अब तक तुमने

डा० सरन : प्लीज स्टॉप इट !

दीपा : (**हँसती हुई**) मुझे सब
तुम लखनऊ से दिल्ली
(रुककर) फिर

डा० सरन : दिल्ली एक
गया।

दीपा : मुझे याद है—

लगता है यह ! इसी की फ़ितरत को दबाने के लिए मैं इतने
मगर (सिगार दागकर पीते हुए) आप कुछ नहीं पीते डाक्टर

!

कर) तभी तो इतनी छोटी उमर में आप इतने बड़े डाक्टर हैं
मरीज़ हूँ।
ऐसा क्यों सोचते हैं आप अपने लिए।
चता हूँ कि मैं अपने लिए न सोचूँ ! आप कुछ कहने जा रहे

हने जा रहे थे कि दीपा ने मुझे यहाँ लाकर···।
दीपा जी का अपना विश्वास ठीक है। उस हॉट वाटर स्प्रिंग
आपका उस पानी में नहाना ज़रूर फ़ायदेमन्द है।
ताक़त आ जायेगी ! (कुर्सी से उठते हुए) मेरा यह पैर

र]

ना ?
कता।
कह सकते हैं आप ? वह सब तो मैं ख़ुद ही जानता हूँ।

र प्रस्थान।]
र मानिक, सँभालकर···देखिए कहीं···!

मेरा धर्म है कि···।
हूँ।

के कमरे की ओर जाना। उसी क्षण दायीं

हाउ डू यू डू ?

डा० सरन : तभी मैं कहूँ, अभी एकाएक ये बादल कहाँ से आ गये !

दीपा : मैं आपसे यहाँ कुछ सुनने नहीं आयी हूँ। महज़ यह पूछने आयी हूँ कि आपने अभी उनसे उस हॉट वाटर स्प्रिंग के विषय में क्या कहा ?

डा० सरन : आपके विश्वास का समर्थन मिसेज मानिक सहाय···नहीं दीपा···क्यों (हँस पड़ता है) अरे तुम इस तरह उदास क्यों हो गयीं ! बोलो क्या बात है ?

[दीपा उत्तर में भारी पलकों से महज एक बार डाक्टर को देखकर रह जाती है।]

डा० सरन : दीपा !

दीपा : (सहसा जागकर) कौन दीपा ! मैं कोई दीपा नहीं हूँ। आपने शायद मुझे पहचाना नहीं ! मैं मिसेज मानिक सहाय हूँ···और मैं उदास क्यों हूँ ? मैं बिलकुल ठीक हूँ।

[डा० सरन चुप देखता रह जाता है।]

दीपा : आपके पहचानने में गलती हुई।

डा० सरन : शायद !···लेकिन अब तो पहचान हो गयी। लाल बाग में, तेंतीस वाल्मीकि मार्ग की वह दीपा और मेडिकल कॉलेज के तीसरे वर्ष का वह छात्र···शिव-सरन···।

दीपा : प्लीज स्टाप···!

[डाक्टर चुप होकर बाहर दूर चोटी पर उमड़ते बादलों को देख रहा है।]

दीपा : (आत्म-विस्मृत) यहाँ क्या करते हो ?

[डा० सरन चुप।]

दीपा : अकेले ही हो ?

डा० सरन : (हँसता हुआ) प्लीज स्टॉप इट !

[दीपा खिलखिलाकर हँस पड़ती है।]

दीपा : सच, मैं पूछ रही हूँ, बताओ न ! तुम यहाँ क्या करते हो ?

डा० सरन : इधर नीचे के गाँव में एक तरह का पीला बुखार चल पड़ा है, उसी को रोकने के सिलसिले में यहाँ आया हूँ···।

दीपा : बताओ, अब तक तुमने शादी क्यों नहीं की···?

डा० सरन : प्लीज स्टॉप इट !

दीपा : (हँसती हुई) मुझे सब मालूम है जी ! एम० बी० बी० एस० करने के बाद जब तुम लखनऊ से दिल्ली चले गए—उस साल मैं बी० एस-सी० में फेल हो गयी, (रुककर) फिर समझो कि मैं फेल ही होती चली गयी !

डा० सरन : दिल्ली एक ही महीना तो रहा, फिर मैं दो साल के लिए इंगलैण्ड चला गया।

दीपा : मुझे याद है—दिल्ली से तुमने मुझे वह आखिरी पत्र दिया था। (रुककर) फिर

गता है यह ! इसी की फ़ितरत को दबाने के लिए मैं इतने
मगर (सिगार दागकर पीते हुए) आप कुछ नहीं पीते डाक्टर

र) तभी तो इतनी छोटी उमर में आप इतने बड़े डाक्टर हैं
रीज़ हूँ।
सा क्यों सोचते हैं आप अपने लिए।
ता हूँ कि मैं अपने लिए न सोचूँ ! आप कुछ कहने जा रहे

ने जा रहे थे कि दीपा ने मुझे यहाँ लाकर···।
दीपा जी का अपना विश्वास ठीक है। उस हॉट वाटर स्प्रिंग
आपका उस पानी में नहाना ज़रूर फ़ायदेमन्द है।
ताक़त आ जायेगी ! (कुर्सी से उठते हुए) मेरा यह पैर

कर]
ऊँगा ?
कह सकता।
क्या कह सकते हैं आप ? वह सब तो मैं खुद ही जानता हूँ।

ी ओर प्रस्थान।]
स्टर मानिक, संभालकर···देखिए कहीं···!

र हूँ···मेरा धर्म है कि···।
ता हूँ।

न !

र अपने कमरे की ओर जाना। उसी क्षण दायीं

! हाउ डू यू डू ?

डा० सरन : तभी मैं कहूँ, अभी एकाएक ये बादल कहाँ से आ गये !

दीपा : मैं आपसे यहाँ कुछ सुनने नहीं आयी हूँ। महज यह पूछने आयी हूँ कि आपने अभी उनसे उस हॉट वाटर स्प्रिंग के विषय में क्या कहा ?

डा० सरन : आपके विश्वास का समर्थन मिसेज मानिक सहाय···नहीं दीपा···क्यों (हँस पड़ता है) अरे तुम इस तरह उदास क्यों हो गयीं ! बोलो क्या बात है ?

[दीपा उत्तर में भारी पलकों से महज एक बार डाक्टर को देखकर रह जाती है।]

डा० सरन : दीपा !

दीपा : (सहसा जागकर) कौन दीपा ! मैं कोई दीपा नहीं हूँ। आपने शायद मुझे पहचाना नहीं ! मैं मिसेज मानिक सहाय हूँ···और मैं उदास क्यों हूँ ? मैं बिलकुल ठीक हूँ।

[डा० सरन चुप देखता रह जाता है।]

दीपा : आपके पहचानने में गलती हुई।

डा० शरन : शायद !···लेकिन अब तो पहचान हो गयी। लाल बाग में, तेंतीस वाल्मीकि मार्ग की वह दीपा और मेडिकल कॉलेज के तीसरे वर्ष का वह छात्र···शिव-सरन···।

दीपा : प्लीज स्टाप···!

[डाक्टर चुप होकर बाहर दूर चोटी पर उमड़ते बादलों को देख रहा है।]

दीपा : (आत्म-विस्मृत) यहाँ क्या करते हो ?

[डा० सरन चुप।]

दीपा : अकेले ही हो ?

डा० सरन : (हँसता हुआ) प्लीज स्टॉप इट !

[दीपा खिलखिलाकर हँस पड़ती है।]

दीपा : सच, मैं पूछ रही हूँ, बताओ न ! तुम यहाँ क्या करते हो ?

डा० सरन : इधर नीचे के गाँव में एक तरह का पीला बुखार चल पड़ा है, उसी को रोकने के सिलसिले में यहाँ आया हूँ···।

दीपा : बताओ, अब तक तुमने शादी क्यों नहीं की···?

डा० सरन : प्लीज स्टॉप इट !

दीपा : (हँसती हुई) मुझे सब मालूम है जी ! एम० बी० बी० एस० करने के बाद जब तुम लखनऊ से दिल्ली चले गए—उस साल मैं बी० एस-सी० में फेल हो गयी, (रुककर) फिर समझो कि मैं फेल ही होती चली गयी !

डा० सरन : दिल्ली एक ही महीना तो रहा, फिर मैं दो साल के लिए इंगलैण्ड चला गया।

दीपा : मुझे याद है—दिल्ली से तुमने मुझे वह आखिरी पत्र दिया था। (रुककर) फिर

तो मुझे लखनऊ छोड़ना ही पड़ा। एक साल तक इलाहाबाद—मामाजी के यहाँ रही। और जब लखनऊ लौटी तो मेरी शादी हो गयी···।

डा० सरन : इस मरीज के साथ···।

दीपा : (**सहसा जागकर**) चुप रहो। किससे आप यह बातें कर रहे हैं ?

डा० सरन : (**बाहर देखता हुआ**) अपने से (**रुककर**) मैं तो चुप ही था। पर मैं अब जरूर कहूँगा—गरम पानी के सोते में नहलवाकर मि० मानिक का वह लुंज पैर कभी ठीक नहीं हो सकता।

दीपा : (**भावावेश में**) चुप रहो। आपको यह कहने का कोई अधिकार नहीं। आपको ऐसा कहना शोभा नहीं देता। (**गिरे स्वर में**) तुमको ऐसा नहीं कहना चाहिए था।

[अपने उमड़ते हुए आँसुओं को छिपाती हुई दायीं ओर भाग जाती है। बायीं ओर से वीरसिंह की आवाज आती है—]

वीरसिंह : मिश शाहब ! आइए, दायीं ओर वाला कमरा। कमरा नम्बर शात, मिश शाहब !

[डाक्टर का तेजी से प्रस्थान। शोभना का बायीं ओर से प्रवेश—सुन्दर युवती, आकर्षक व्यक्तित्व। जूड़े में लाल रंग का बड़ा-सा पुष्प लगाये। पीछे-पीछे सामान लिए हुए वीरसिंह।]

वीरसिंह : नम्बर शात कमरा आपके लिए रिजर्व है मिश शाहब।

शोभना : मिस्टर रामकिशोर आ गए न ! (**साश्चर्य**) साहब को तुम नहीं जानते ? अरे वही फोटो खींचने वाले साहब, जो पिछले साल मेरे सँग आए थे !

वीरसिंह : ओ हो ! शमझा···वही फोटो साहब ! (**रुककर**) लेकिन अभी वह तो यहाँ नहीं आये मिश शाहब !

[सामान के सहित वीरसिंह का दायीं ओर प्रस्थान।]

शोभना : ताज्जुब है ! रामकिशोर को तो यहाँ कल ही आ जाना चाहिए था। (**पुकारती है**) वीरसिंह···वीरसिंह !

वीरसिंह : (**प्रवेश कर**) आया मिश शाहब !

शोभना : यहाँ अब तक कौन-कौन आया है—मेरा मतलब, मेरे परिचितों में से।

वीरसिंह : चार दिन पहले बरेली वाले कपूर शाहब आए थे, एक दिन केवल यहाँ रुककर फिर कश्मीर चले गये।

शोभना : मेरे लिए कुछ पूछ रहे थे ?

वीरसिंह : दूसरे वह चटर्जी शाहब आये थे—रेडियो वाले। यहाँ एक हफ्ता रहकर फिर मशूरी चले गये।

शोभना : तुमने बताया नहीं कि मैं यहाँ आने वाली हूँ।

वीरसिंह : बताया था शाहब ! और वह शहारनपुर
चले गये। वह आपके लिए पूछ रहे थे।

शोभना : (**सोचते हुई सहसा**) लेकिन मुझे तो इस
के लिए। उन्हें तो यहाँ कल ही पहुँच जाना···

वीरसिंह : (**प्रसन्न मुख**) और मिश शाहब, वह मा
वही मानिक बाबू···पानी की जगह शराब पीने

शोभना : ओह, वह मानिक सहाय, एडवोकेट लखन

वीरसिंह : हाँ-हाँ, वही शाहब···नम्बर तीन में हैं।

शोभना : पर मैंने तो सुना था कि उनका आधा अंग

वीरसिंह : दायाँ अंग तो नहीं, सिर्फ दायाँ पैर जरूर

[पृष्ठभूमि से मानिक की पुकार आती है वीरसि

वीरसिंह : (**जाता हुआ**) मानिक साहब पुकार रहे

[वीरसिंह चला जाता है। शोभना मुड़कर शो
अपना मेकअप ठीक करती है। जूड़े का पुष्प ढं
ओर से मानिक का प्रवेश।]

मानिक : (**देखते ही जैसे उन्मत्त**) हल्लो शोभना···

शोभना : ओह, आप ! नमस्ते···!

मानिक : अभी आयी हो न !

शोभना : जी हाँ, बिलकुल अभी ! यह क्या हो गया है

मानिक : पुण्य का फल ! (**दोनों की हँसी**) चलो
ठीक हो जायेगा।···बैठो।

शोभना : आप तशरीफ रखिए !

[दोनों कुरसियों पर बैठते हैं।]

शोभना : सुना है, चुपके से शादी कर ली

मानिक : तभी तो शादी के दूसरे साल

शोभना : दुलहिन तो फिर संग

मानिक : बल्कि वही मुझे
हुए)

ना ही पड़ा। एक साल तक इलाहाबाद—मामाजी के यहाँ
ऊ लौटी तो मेरी शादी हो गयी···।
साथ···।
चुप रहो। किससे आप यह बातें कर रहे हैं ?
हुआ) अपने से (रुककर) मैं तो चुप ही था। पर मैं अब
पानी के सोते में नहलवाकर मि० मानिक का वह लुंज पैर
कता।
प रहो। आपको यह कहने का कोई अधिकार नहीं। आपको
ीं देता। (गिरे स्वर में) तुमको ऐसा नहीं कहना चाहिए

सुओं को छिपाती हुई दायीं ओर भाग जाती है। बायीं ओर
आती है—]

ाइए, दायीं ओर वाला कमरा। कमरा नम्बर शात, मिश

स्थान। शोभना का बायीं ओर से प्रवेश—सुन्दर युवती,
में लाल रंग का बड़ा-सा पुष्प लगाये। पीछे-पीछे सामान

ापके लिए रिजर्व है मिश शाहब।
गए न! (साश्चर्य) साहब को तुम नहीं जानते? अरे
, जो पिछले साल मेरे संग आए थे!
फोटो साहब! (रुककर) लेकिन अभी वह तो

बायीं ओर प्रस्थान।]

यहाँ कल ही आ जाना चाहिए था। (पुकारती

!

—मेरा मतलब, मेरे परिचितों में से।
र साहब आए थे, एक दिन केवल यहाँ

वाले। यहाँ एक हफ्ता रहकर

वीरसिंह : बताया था शाहब! और वह शहारनपुर के शिनहा माहब आये थे—कश्मीर चले गये। वह आपके लिए पूछ रहे थे।

शोभना : (**सोचते हुई सहसा**) लेकिन मुझे तो इस समय ताज्जुब है मि० रामकिशोर के लिए। उन्हें तो यहाँ कल ही पहुँच जाना···।

वीरसिंह : (**प्रसन्न मुख**) और मिश शाहब, वह मानिक बाबू इस शाल यहाँ आये हैं, वही मानिक बाबू···पानी की जगह शराब पीने वाले···।

शोभना : ओह, वह मानिक सहाय, एडवोकेट लखनऊ···

वीरसिंह : हाँ-हाँ, वही शाहब···नम्बर तीन में हैं।

शोभना : पर मैंने तो सुना था कि उनका आधा अंग ही पैरालाइज हो गया है।

वीरसिंह : दायाँ अंग तो नहीं, सिर्फ दायाँ पैर जरूर खराब हो गया है।

[पृष्ठभूमि मे मानिक की पुकार आती है वीरसिंह के लिए।]

वीरसिंह : (**जाता हुआ**) मानिक साहब पुकार रहे हैं!

[वीरसिंह चला जाता है। शोभना मुड़कर शीशे के सामने खड़ी हो जाती है। अपना मेकअप ठीक करती है। जूड़े का पुष्प ढंग से लगाती है। उसी समय दायीं ओर से मानिक का प्रवेश।]

मानिक : (**देखते ही जैसे उन्मत्त**) हल्लो शोभना···बड़ी किस्मत है मेरी!

शोभना : ओह, आप! नमस्ते···!

मानिक : अभी आयी हो न!

शोभना : जी हाँ, बिलकुल अभी! यह क्या हो गया है आपको?

मानिक : पुण्य का फल! (**दोनों की हँसी**) चलो तुमसे भेंट हो गयी, अब यह सब ठीक हो जायेगा।···बैठो।

शोभना : आप तशरीफ रखिए!

[दोनों कुरसियों पर बैठते हैं।]

शोभना : सुना है, चुपके से शादी कर ली आपने!

मानिक : तभी तो शादी के दूसरे साल ही यह प्रसाद मिला।

शोभना : दुलहिन तो फिर संग आयी होगी?

मानिक : बल्कि वही मुझे अपने संग ले आयी है। खैर छोड़ो इन बातों को। (**मुस्कराते हुए**)

'तुम मुखातिब हो, करीब भी हो,
तुम को देखें कि तुमसे बात करें।'

(**प्रसन्न मुख**) लो यह सिगरेट पियो···।

शोभना : नहीं, अभी चाय पियूँगी।

मानिक : जरूर···जरूर! वीरसिंह! वीरसिंह!

वीरसिंह : आया शाहब ! (**प्रवेश कर**) क्या है शाहब ?

मानिक : देखो, बहू को यहाँ भेजो !

वीरसिंह : (**जाता हुआ**) अच्छा साहब।

मानिक : मजे से अभी चाय पियेंगे, और थोड़ी देर बाद 'वह भी' पियेंगे। फिर हम एक संग रहेंगे। बातें करेंगे। अरे, तुम इस तरह उदास क्यों हो गयीं ? इस चाँद पर बादल कैसे आ गये ?

[दीपा का प्रवेश, प्रणाम की मुद्रा में हाथ जोड़े हुए।]

मानिक : दीपा—मेरी धर्मपत्नी ! और यह दिली दोस्त शोभना।

शोभना : नमस्ते जी ! बड़ी खुशी हुई आपसे मिलकर। आइए बैठिए न !

मानिक : नहीं, देखो दीपा, झटपट बहुत अच्छी-सी उम्दा चाय बनाकर लाओ।

[दीपा का प्रस्थान।]

मानिक : और कहो, कहाँ हो आजकल ?

शोभना : बस, उसी स्कूल में, वही टीचर···और क्या···?

मानिक : चलो मैं तुम्हें अपने संग एक बार और कश्मीर ले चलूँ।

शोभना : बहुत घूम चुकी कश्मीर ! थक गयी अब तो घूमते-घूमते। इधर मैं अब आखिरी बार आयी हूँ।

मानिक : ऐसी भी क्या बात है भई ?

शोभना : एक हैं मिस्टर रामकिशोर···सूचना विभाग में असिस्टेण्ट डाइरेक्टर। उन्हीं की वजह से यहाँ आयी हूँ। उन्हें कल ही यहाँ आ जाना चाहिए था, लेकिन अब तक उनका यहाँ पता ही नहीं।

मानिक : अरे वही रामकिशोर, शाहजहाँ पुर वाला, फोटो खींचने वाला शेर।

शोभना : हाँ···हाँ···वही ! आप उन्हें जानते हैं क्या ?

मानिक : यह मत पूछो मैं किस-किस को नहीं जानता ! हाँ, सिर्फ आज तक अपने का नहीं जान सका, हालाँकि बहुत जानना चाहा, हुस्नो इश्क···सागरो मीना में···।

शोभना : (**सहसा उद्दीप्त हो**) चुप रहो। मरीज को अब इस तरह की बातें करने का कोई अधिकार नहीं।

मानिक : ओ हो ! तो महज़ यह एक पैर खराब हो जाने से मैं मरीज हो गया। (**हँसता है**) तुम तो ऐसा न कहो मेरी जान···।

शोभना : मरीज नहीं तो और हैं क्या आप ? माफ कीजिए मानिक साहब, सब खेल-तमाशा देख चुकने के बाद आखिर में आपने ऐसी सीधी-सादी खूबसूरत लड़की को दुलहिन बनाया। आखिर क्यों ? किसलिए किस अधिकार से ?

मानिक : तुम भी माफ करना शोभना, दोस्तों की बातें हैं ये—मुझे आखिर में दुलहिन की जरूरत उसी तरह पड़ी, जैसे तुम्हें अब एक दुलहे की जरूरत है। और जिसके

लिए तुम पिछले कितने वर्षों से घूम रही हो।

शोभना : तो इसका जिम्मेदार कौन है ?

मानिक : जिम्मेदार ! (**ठहाका मारकर हँसता है**) मैं मरीज हो गया, इसका जिम्मेदार कौन बातों को (**पुकारते हुए**) अरे वीरसिंह···दीपा

वीरसिंह : आया शाहब।

[वीरसिंह एक कुरसी लिए आता है। दीपा ट्रे तीनों कुरसियों पर बैठ चुके हैं। वीरसिंह वाप

मानिक : (**दीपा से**) अरे, अपने डाक्टर साहब को

[दीपा चुप है।]

शोभना : कौन डाक्टर साहब ?

मानिक : एक आये हैं डाक्टर सरन—मेडिकल कॉले हैं। इधर शायद किसी पीले बुखार की बीमारी सिलसिले में कुछ तीर मारने आये हैं।

[दीपा चुपचाप चाय बना रही है।]

शोभना : ओ हो ! ···पीला बुखार।

मानिक : मजा यह कि वह डाक्टर साहब इनके पहुचे है न !

मानिक : सौ खून माफ हैं तुम्हें, जो चाहो कह डालो नहीं सच कह रहा हूँ—जाओ बुला लो न बैठे हुए आज के नए बादल देख रहे होंगे

[दीपा निरुत्तर सहसा उठकर भीतर

शोभना : (**उठकर रोकती हुई**) तो···।

दीपा : अब और क्या

[शोभना

मानिक : जाने

वाली

लिए तुम पिछले कितने वर्षों से घूम रही हो।

शोभना : तो इसका जिम्मेदार कौन है ?

मानिक : जिम्मेदार ! (**ठहाका मारकर हँसता है**) खूब कहा—जिम्मेदार कौन है ? मैं मरीज हो गया, इसका जिम्मेदार कौन है ? (**सहसा**) अच्छा छोड़ो इन बातों को (**पुकारते हुए**) अरे वीरसिंह···दीपा···।

वीरसिंह : आया शाहब।

[वीरसिंह एक कुरसी लिए आता है। दीपा ट्रे लिए आती है। चाय के किनारे तीनों कुरसियों पर बैठ चुके हैं। वीरसिंह वापस चला जाता है।]

मानिक : (**दीपा से**) अरे, अपने डाक्टर साहब को भी चाय पर बुला लो !

[दीपा चुप है।]

शोभना : कौन डाक्टर साहब ?

मानिक : एक आये हैं डाक्टर सरन—मेडिकल कॉलेज कानपुर के नम्बर एक कमरे में हैं। इधर शायद किसी पीले बुखार की बीमारी का चक्कर चल रहा है, उसी के सिलसिले में कुछ तीर मारने आये हैं।

[दीपा चुपचाप चाय बना रही है।]

शोभना : ओ हो ! ···पीला बुखार।

मानिक : मजा यह कि वह डाक्टर साहब इनके पहले के दोस्त निकले। मजेदार संयोग है न !

मानिक : सौ खून माफ हैं तुम्हें, जो चाहो कह डालो ! (**रखकर**) और दीपा, मजाक, नहीं सच कह रहा हूँ—जाओ बुला लो न अपने डाक्टर साहब को। खिड़की पर बैठे हुए आज के नए बादल देख रहे होंगे।

[दीपा निरुत्तर सहसा उठकर भीतर जाने लगती है।]

शोभना : (**उठकर रोकती हुई**) बैठिए···बैठिए···कहाँ चली जा रही हैं आप ? सुनिए तो···।

दीपा : अब और क्या सुनूं ! आप ही बताइए।

[शोभना चुप रह जाती है। दीपा का प्रस्थान।]

मानिक : जाने भी दो उसे यार ! आओ तुम इधर बैठो। दुलहिन है अपनी। लड़कियों वाली तेजी है उसमें। जिद करके मुझे यहाँ ले आयी है। एक गरम पानी का सोता है यहाँ, मुझे उसी में नहलवाने के लिए, ताकि मेरा पैर ठीक हो जाए। पर मेरी भी किस्मत देखो—यहाँ मुझे तुम मिल गयी।

शोभना : (**चाय पीती हुई**) कोई और बात आप नहीं कर सकते ? डाक्टर को दिखाइए, आपमें वह पीला बुखार तो नहीं बैठा है।

मानिक : (**हँसता है**) तुम्हारे असली मेहमान राम किशोर साहब को यहाँ आ जाने

दो। हम सब अपने-आपको एक संग डाक्टर सरन को दिखाएँगे। और हाँ, रामकिशोर की नयी-नवेली पत्नी को भी दिखाएँगे। संग वह भी तो आएँगी।

शोभना : (साश्चर्य) क्या कहा ? रामकिशोर की पत्नी ? क्या कह रहे हैं आप ?

मानिक : मैं सही कह रहा हूँ। अरे आपको नहीं मालूम ? लखनऊ युनिवर्सिटी की एक मशहूर और मारूफ लड़की—कुन्तल डे से अन्तर्जातीय प्रेम-विवाह !

शोभना : सच ?

मानिक : अरे ! और तुम क्या समझती थीं ?

[तेज हँसी हँसता रहता है।]

शोभना : (तड़पकर उठती हुई) बन्द करो अपनी मनहूस हँसी।

[आवेश में दायीं ओर प्रस्थान। मानिक सिगार के लम्बे-लम्बे कश लेते हैं। कुछ क्षणों बाद, बायीं ओर से डाक्टर सरन का प्रवेश।]

डा० सरन : ओ हो ! आप यहाँ अकेले बैठे हैं ?

मानिक : अकेले तो नहीं था, अब जैसा कि आप देख रहे हैं, मैं जरूर अकेले हूँ। मेरी एक फ्रेण्ड आयी है—शोभना।

डा० सरन : जी हाँ, वीरसिंह ने अभी मुझे बताया है। और आप लोगों की बातें यूँ भी मेरे कमरे तक आ रही थीं।

मानिक : यह सब संयोग की बात है न डाक्टर साहब ?

डा० सरन : (झट बात बदलते हुए) तो कल आप गरम पानी के सोते में स्नान करने जाएँगे !

मानिक : पर क्या होगा उससे ? डाक्टर साहब, क्या किसी तरह से यह मुमकिन नहीं है कि सिर्फ आज एक रात-भर के लिए मेरा यह पैर ठीक हो जाए। मैं पाँच सौ रुपये आपको फीस दूँगा और इनाम ऊपर से।

डा० सरन : असम्भव।

मानिक : असम्भव ! अच्छा तो आज मेहरबानी करके यह भी साफ-साफ बता दीजिए कि मेरा यह पैर ठीक होगा या नहीं ? आपको दीपा की कसम।

डा० सरन : मिस्टर मानिक···।

मानिक : (उठते हुए) मुझे विश्वास है, अब आप झूठ नहीं बोल सकते, बोलिए !

डा० सरन : क्या बोलूँ ?

मानिक : सच !

डा० सरन : आपका पैर ठीक हो सकता है। इसे मैं ठीक करूँगा। नये सिरे से मैं इसकी दवा करूँगा। दवा से ठीक न हुआ तो मेरे एक अभिन्न मित्र—बहुत बड़े सर्जन हैं, उनसे ऑपरेशन कराऊँगा। बहरहाल, आपका यह पैर ठीक होगा।

मानिक : सच डाक्टर !

डा० सरन : हाँ। बिलकुल सच। जिस रास्ते से नीचे पैर में खून बहता है, वहाँ कहीं

ने-आपको एक संग डाक्टर सरन को दिखाएँगे। और हाँ,
ी-नवेली पत्नी को भी दिखाएँगे। संग वह भी तो आएँगी।
ा कहा ? रामकिशोर की पत्नी ? क्या कह रहे हैं आप ?
ा हूँ। अरे आपको नहीं मालूम ? लखनऊ यूनिवर्सिटी की एक
लड़की—कुन्तल डे से अन्तर्जातीय प्रेम-विवाह !

क्या समझती थीं ?

हता है।]

ई हुई) बन्द करो अपनी मनहूस हँसी।

प्रस्थान। मानिक सिगार के लम्बे-लम्बे कश लेते हैं। कुछ
से डाक्टर सरन का प्रवेश।]

यहाँ अकेले बैठे हैं ?

अब जैसा कि आप देख रहे हैं, मैं जरूर अकेले हूँ। मेरी
ना।

अभी मुझे बताया है। और आप लोगों की बातें यूँ भी
।

है न डाक्टर साहब ?

र) तो कल आप गरम पानी के सोते में स्नान करने

टर साहब, क्या किसी तरह से यह मुमकिन नहीं है
लिए मेरा यह पैर ठीक हो जाए। मैं पाँच सौ रुपये
र से।

रबानी करके यह भी साफ-साफ बता दीजिए
आपको दीपा की कसम।

झूठ नहीं बोल सकते, बोलिए !

ठीक करूँगा। नये सिरे से मैं इसकी
मित्र—बहुत बड़े सर्जन हैं,
र ठीक होगा।

खून बहता है, वहाँ कहीं

रुकावट आ गयी है। आपकी केस हिस्ट्री से मुझे ऐसा लगता है।

मानिक : धन्यवाद डाक्टर ! मैं आपको अपना ईश्वर मानूँगा...।

डा० सरन : नहीं, बिलकुल नहीं। यह मेरा धर्म है।

मानिक : ओह वण्डरफुल ! चमत्कार...चमत्कार !

[मानिक एक ही पैर से नाचने लगता है। फिर पुकारते हुए दौड़ता है।]

मानिक : शोभना !...शोभना ! आओ आज मैं तुम्हारे संग 'रोम्बा-शोम्बा' डान्स करूँगा। (प्रस्थान)

मानिक : (पृष्ठभूमि से आवाज) शोभना...दीपा...दीपा...। **(पुनः प्रवेश कर भावोन्मत्त)** वीरसिंह...वीरसिंह !

वीरसिंह : (प्रवेश कर) क्या है सरकार ?

मानिक : शोभना कहाँ गयी ?

वीरसिंह : मिश साहब बश स्टॉप की ओर टहलने गयी हैं।

मानिक : (हँसता है) टहलने नहीं, उस असिस्टेण्ट डाइरेक्टर रामकिशोर का रास्ता देखने गयी है। वह भला अब यहाँ आएगा ! अरे वह अपनी गुलदस्ता जैसी वाइफ—कुन्तल डे...नहीं-नहीं, अब कुन्तल किशोर को संग लिए हुए कश्मीर गया होगा, क्योंकि वहाँ उसके विभाग का डाइरेक्टर गया हुआ है। रामकिशोर को डिप्टी डाइरेक्टर होना है। जाओ, यह कह दो मिस शोभना से !

[वीरसिंह सिर झुकाए जाने लगता है।]

मानिक : (परम उत्साह में) रुको ! इस वक्त मैं खुद चलूँगा शोभना के पास। **(जाते-जाते)** मुझे सूचना देनी है कि मेरा पैर अब ठीक होने जा रहा है। मैं अब उसी तरह 'बॉल डान्स' कर सकता हूँ...।

[तेजी से प्रस्थान। पीछे वीरसिंह जाता है। डाक्टर सरन बाहर देख रहे हैं—उमड़ते बादलों को। सहसा दीपा का प्रवेश। दोनों चुप खड़े रहते हैं। डाक्टर बाहर देखते हुए, दीपा डाक्टर को देखती हुई।]

डा० सरन : दीपा ! तुम कहाँ थीं ? मानिक अभी खुशी में पागल तुम्हें ढूँढ़ रहे थे।

दीपा : मुझे नहीं; अपने उस दोस्त को। तभी वह मुझे देखकर भी न देख सके।

डा० सरन : तुमने सुना दीपा ?

दीपा : हाँ, सब सुना।

डा० सरन : फिर तुम इतनी उदास क्यों हो ? चलो, हम लोग उस देवदारु वाली सड़क पर टहल आएँ।

दीपा : मुझे देवदारु के पेड़ों से डर लगता है।

डा० सरन : अच्छा चलो, यहाँ से कहीं एक क्षण के लिए बाहर तो निकलें।

दीपा : बाहर बादल आ गए हैं।

डा० सरन : तुम्हारे यहाँ आने से कुछ ही क्षण पहले वे बादल यहाँ आए हैं !

दीपा : पता नहीं !···

डा० सरन : दीपा !

दीपा : मैंने आपसे पहले ही बता दिया कि मैं दीपा नहीं हूँ।

डा० सरन : हाँ-हाँ, तुम उस मानिक सहाय की धर्मपत्नी हो, जो आज भी, अपनी इस हालत में भी उस लड़की के साथ···।

दीपा : बस···बस ! मैं सिर्फ अपनी भावनाओं के प्रति, अपने प्रति जिम्मेदार हूँ।··· वह 'वही' हैं, वे चाहें जो कुछ करें···।

डा० सरन : तुम्हें पता है ! जिस क्षण से वह लड़की यहाँ आयी है, मिस्टर मानिक की क्या दशा है ?

दीपा : सब पता है।···यह आपके लिए आश्चर्य होगा, मैं तो आदी हो गयी हूँ···और तटस्थ भी !

डा० सरन : और वैरागी भी—यह भी कहो न !

दीपा : सुनो,···तुमसे मैं एक प्रार्थना करने आयी हूँ, बुरा मत मानना। और यदि बुरा भी मान लोगे तो क्या करूँगी।

डा० सरन : ओ हो, कुछ कहोगी तो···।

दीपा : तुम अपनी डाक्टरी से उनका पैर ठीक कर दोगे—तो क्या मुझे भी उनके संग तुम्हारे समीप रहना होगा ?

डा० सरन : हाँ, जरूर···।

दीपा : यह मुझसे सम्भव नहीं। दीपा यदि कहीं जी जाएगी तो क्या होगा ? बोलो··· उत्तर दो मुझे। अब बोलते क्यों नहीं ? मैं इस विराट् प्रकृति के बादल को नहीं जानती ! मैं अपने अन्तस् के बादलों को जानती हूँ जो मेरे आसमान से कभी नहीं छँटते।

[डा० सरन चुपचाप अपने कमरे की ओर जाने लगते हैं। दीपा सामने खड़ी हो जाती है।]

दीपा : यूँ नहीं जाने दूँगी, हाँ ! मुझे रास्ता बता कर जाना होगा ताकि वह दीपा जिए भी नहीं, और मेरे पति का पैर भी ठीक हो जाए !

[डाक्टर एक क्षण दीपा का मुख देखकर निरुत्तर भीतर चला जाता है। दीपा उसी ओर देखती खड़ी रह जाती है। दूसरी ओर से वीरसिंह के साथ बेतरह हँसते हुए मानिक का प्रवेश।]

वीरसिंह : शाहब, इन्हें शँभालिए। शँभालते-शँभालते राश्ते में कई जगह गिर पड़े।

दीपा : तो आज खूब पी ली।

मानिक : (हँसता हुआ) कमाल है ! देखो न, कहीं मेरी जबान लड़खड़ा रही है ? या मेरे व्यवहार में कोई अन्तर आ गया ? अरे, एक पैर का आदमी, वह तो लड़-खड़ाएगा ही। क्यों वीरसिंह···।

वीरसिंह : हाँ जी शाहब !

दीपा : तो वह शोभनाजी आपको नहीं मिलीं ?

मानिक : जब बीच में तुम खड़ी हो, तो मुझसे कौन
शोभना यहाँ से गयी है। 'टेबल मैनर्स' नहीं।
भाग निकली ! (प्रस्थान)

[दीपा चुपचाप भीतर जाने लगती है। पीछे-
हूँ'—यह कहते हुए जाता है।]

वीरसिंह : छी-छी-छी ! यह शाहब कैशा हो गया अ

[सामने डाक्टर का प्रवेश।]

डा० सरन : (हँसते हुए) तुम कहाँ उस खून जाँचने
बोलो वीरसिंह !

वीरसिंह : (घबरा उठता है) तो क्या पीला बुखार

डा० सरन : (चुप बादलों को देखता रह जाता है
वीरसिंह।

वीरसिंह : शाहब, कोई दवा शोचिए पीले बुखार की
है। शाहब दवा सोचिए···।

[मानिक का प्रवेश, वीरसिंह का प्रस्थान।]

मानिक : और मेरे लिए भी सोचिए डाक्टर साहब !

डा० सरन : आपके लिए !···आपके लिए उस गरम
ठीक होगा।

मानिक : और आपके हाथों मेरी दवा ? मेरा ऑपरे

डा० सरन : वह अभी मुमकिन नहीं है। आ 'एम

[मानिक कुरसी का सहारा लेकर खड़ा रह

मानिक : (कटुता से) मैं जानता था तुझे !

[भीतर से दीपा आती है।]

दीपा : (मानिक को सँभालती हुई)

मानिक : क्यों ?

दीपा : ठण्डी हवा

मानिक : आखिर

[दीपा

मानिक :

की

बता दिया कि मैं दीपा नहीं हूँ।
स मानिक सहाय की धर्मपत्नी हो, जो आज भी, अपनी इस
की के साथ···।
फ अपनी भावनाओं के प्रति, अपने प्रति जिम्मेदार हूँ।···
जो कुछ करें···।
जिस क्षण से वह लड़की यहाँ आयी है, मिस्टर मानिक की
आपके लिए आश्चर्य होगा, मैं तो आदी हो गयी हूँ···और
—यह भी कहो न !
प्रार्थना करने आयी हूँ, बुरा मत मानना। और यदि बुरा
भी।
तो···।
नका पैर ठीक कर दोगे—तो क्या मुझे भी उनके संग
यदि कहीं जी जाएगी तो क्या होगा ? बोलो···
नहीं ? मैं इस विराट् प्रकृति के बादल को नहीं
लों को जानती हूँ जो मेरे आसमान से कभी नहीं
ओर जाने लगते हैं। दीपा सामने खड़ी हो
बता कर जाना होगा ताकि वह दीपा जिए
हो जाए !
निरुत्तर भीतर चला जाता है। दीपा
ओर से वीरसिंह के साथ बेतरह हँसते
रास्ते में कई जगह गिर पड़े।
जबान लड़खड़ा रही है ? या
र का आदमी, वह तो लड़-

दीपा : तो वह शोभनाजी आपको नहीं मिलीं ?

मानिक : जब बीच में तुम खड़ी हो, तो मुझसे कौन मिल सकता है ? तुम्हारी वजह से शोभना यहाँ से गयी है। 'टेबल मैनर्स' नहीं। चाय पीते-पीते बीच में ही उठकर भाग निकली ! **(प्रस्थान)**

[दीपा चुपचाप भीतर जाने लगती है। पीछे-पीछे मानिक 'मैं तुझे खूब जानता हूँ'—यह कहते हुए जाता है।]

वीरसिंह : छी-छी-छी ! यह शाहब कैशा हो गया अब !

[सामने डाक्टर का प्रवेश।]

डा० सरन : **(हँसते हुए)** तुम कहाँ उस खून जाँचने वाली मशीन से डर रहे थे ! अब बोलो वीरसिंह !

वीरसिंह : **(घबरा उठता है)** तो क्या पीला बुखार इश बँगले में आ गया शाहब !

डा० सरन : **(चुप बादलों को देखता रह जाता है)** लगता है, आज बारिश होगी वीरसिंह।

वीरसिंह : शाहब, कोई दवा शोचिए पीले बुखार की ! मेरे लड़के की शादी तै हो चुकी है। शाहब दवा सोचिए···।

[मानिक का प्रवेश, वीरसिंह का प्रस्थान।]

मानिक : और मेरे लिए भी सोचिए डाक्टर साहब !

डा० सरन : आपके लिए ! ···आपके लिए उस गरम पानी के सोते में स्थान ही करना ठीक होगा।

मानिक : और आपके हाथों मेरी दवा ? मेरा ऑपरेशन ?

डा० सरन : वह अभी मुमकिन नहीं है। आ 'एम सॉरी···।

[मानिक कुरसी का सहारा लेकर खड़ा रह जाता है।]

मानिक : **(कटुता से)** मैं जानता था तुझे !

[भीतर से दीपा आती है।]

दीपा : **(मानिक को सँभालती हुई)** चलिए, आप अपने कमरे में आराम कीजिए।

मानिक : क्यों ?

दीपा : ठण्डी हवा चल रही है। कहीं आपको···

मानिक : आखिर क्यों ?

[दीपा चुप है।]

मानिक : सुनो, मैं बताता हूँ क्यों। इसलिए कि तुम यहाँ अपने इस प्रेमी डाक्टर से प्रेम की बातें कर सको। यहाँ आते ही मुझे यह पता चल गया कि तुम मुझे यहाँ लेकर क्यों आयीं ? मेरे पैर के बहाने से यहाँ प्रेमिका अपने प्रेमी से मिलने आयी है !

डा० सरन : चुप रहो, नहीं तो कहीं तुम्हारी जबान पर फालिज न गिर जाए! चुप रहो!

दीपा : नहीं-नहीं। इन्हें कह लेने दीजिए। इन्हें सब बक लेने दीजिए···! **(डाक्टर से)** मैं आपसे क्षमा माँगती हूँ।

मानिक : और मुझसे?

दीपा : आपसे कोई क्षमा नहीं।

डा० सरन : मरीज के पास क्षमा? (अपने **कमरे की ओर जाते-जाते सहसा मुड़कर**) दीपा···सुनो···दीपा!

दीपा : नहीं, कुछ नहीं। कुछ नहीं। (कान बन्द **करके जैसे चीख** उठती है) कुछ नहीं। मेरी दीपा को मत पुकारो···मत पुकारो उसे!

[फफक कर रोती हुई सहसा जैसे टूटकर बैठ जाती हैं।]

मानिक : **(टूटकर रोती हुई दीपा को अपलक देखकर)** दीपा···! तुम मुझे जानती हो, मैं क्या हूँ? मेरे भीतर का जानवर मेरे वश से बाहर हो जाता है। मेरा पिछला जीवन, उस जीवन की काली छाया मेरे इनसान को ढँक लेती है जैसे ये बादल···। उठो दीपा···! उठो···मुझे सहारा दो···! मुझे देखो···।

[कन्धा पकड़कर उठाता हुआ।]

देखो दीपा···जैसे ये बादल···। चलो, मुझे ठण्ड लग रही है। ले चलो मुझे!

[दीपा मानिक के साथ अविचल खड़ी है।]

कल सुबह मैं तुम्हारे साथ उस गरम पानी के सोते में स्नान करने चलूँगा। मेरा यह पैर शायद अच्छा हो जाए!

[दीपा मानिक को सम्हाले दायीं ओर बढ़ती है।]

डा० सरन : मेरा विश्वास है, यह पैर अब जरूर अच्छा हो जाएगा!

[दीपा और मानिक मुड़कर एक सजल दृष्टि से डाक्टर को देखते रह जाते हैं। डाक्टर का अपने कमरे की ओर प्रस्थान।]

[परदा]

मीनार की बाँहें

पात्र

नीरजा

अनूप

पापाजी

तुम्हारी जबान पर फालिज न गिर जाए! चुप

जिए। इन्हें सब बक लेने दीजिए…! (डाक्टर से)

(अपने कमरे की ओर जाते-जाते सहसा मुड़कर)

(कान बन्द करके जैसे चीख उठती है) कुछ
मत पुकारो उसे !

कर बैठ जाती हैं।]

देखकर) दीपा…! तुम मुझे जानती हो,
रे वश से बाहर हो जाता है। मेरा पिछला
र इनसान को ढँक लेती है जैसे ये बादल…।
…! मुझे देखो…।

लग रही है। ले चलो मुझे !

के सोते में स्नान करने चलूँगा। मेरा

।]

हो जाएगा !

डाक्टर को देखते रह जाते हैं।

मीनार की बाँहें

पात्र

नीरजा
अनूप
पापाजी
महीप
बड़े बाबू
केदार

[बहुत ही शान्त वातावरण से उभरती हुई, कहीं दूर से बाँसुरी की आवाज आ रही है। एकाएक इसी बीच बन्दूक छूटती है, जिससे बाँसुरी का स्वर सहसा काँपकर टूट जाता है और एक शक्तिपूर्ण ठहाका उभरता है। तभी उसके साथ, जैसे उस ठहाके के प्रतिरोध में, किसी स्त्री का प्रश्नों से भरा हुआ कातर स्वरआता है।]

नीरजा : (**प्रश्न-भरे कुतूहल से**) मर गयी ? लग गयी गोली ? मर गयी वह ?

महीप : (**हँसी रोककर**) पूछती हो, मर गयी ? अब भी सन्देह है ? (**मीठी हँसी के बाद**) कभी-कभी तुम बच्ची हो जाती हो, नीरू ! ···यह बन्दूक है, तुम्हारी तरह यह चाय-काफी नहीं पीती; गोली खाती है, फौलाद ! गोली निशाना बनाती है··· धर्म ही है इसका। (**रुककर**) चुप क्यों हो गयी ? डर गयी क्या ? (**मीठी हँसी**) एक बार स्वयं चलकर देखो नीरू, कितनी शक्ति और विश्वास है इसमें ! इसे बस इसके रास्ते पर छोड़ दो, मंजिल यह ढूँढ़ लेगी।

नीरू : बिना किसी लक्ष्य के भी ?

महीप : जी ! इसकी गोली बेकार नहीं जाती। देखो न, जो बाँसुरी अभी बज रही थी, उसी क्षण कँपकर टूट नहीं गयी ? (**रुककर**) बन्दूक के गीत के सामने कोई और नहीं।

[हँसने लगता है।]

नीरू : इस तरह क्यों हँसते हो तुम्हें मौत पर भी हँसी आती है ?

महीप : यह मौत नहीं, शिकार है।

नीरू : शिकार ! इसमें कहीं मौत नहीं है ?

महीप : मौत इस बन्दूक में है ? इन गिरी हुई चिड़ियों में नहीं। यह जो खून बहकर जम गया है, यह बन्दूक का खून है।

नीरू : (**दुःख से**) कितनी निर्मम हत्या है ! (**रुककर**) यह चिड़िया और बन्दूक ! शिकार हिंसक का होता है।

महीप : (**स्नेह से स्वर मीठा कर लेता है**) मैं भी यही सोचता हूँ और मानता भी हूँ, नीरू ! लेकिन कुछ चिड़ियाँ ऐसी होती ही हैं, जो स्वयं शिकार बनाना चाहती हैं, जैसे यही मोक्ष है उनका। (**रुककर**) देखो न, हम लोग तो शान्ति से घूम रहे थे। तुम जंगली फूलों को देखती चल रही थी। मैं उन्हें तुम्हारे लिए तोड़ता चला आ रहा था। कैसी-कैसी बातें हो रही थीं। इतने में ही पण्डुक सामने की डाल पर आ

बैठा। चुप भी न रहा, फड़फड़ाने लगा,
को बुलाए।

[नीरू हँस पड़ती है।]

महीप : यह पण्डुक है, पण्डुक ! कितना

नीरू : (**बीच में ही**) और मर गया !

महीप : छोड़ो इसे, चलो, आगे बढ़ें।

नीरू : पण्डुक को यहीं छोड़ कर ?

महीप : और क्या इसे लादे फिरूँगा ?
जीव-जन्तु हैं, इसका उपयोग कर

नीरू : तुम्हीं उपयोग क्यों नहीं कर लेते

महीप : (**सहसा स्वर बदलकर**) छोड़ो
खाऊँगा।

नीरू : तुम्हें तो बस हरदम भूख लगी

महीप : यह बताओ, तुम्हें भूख नहीं

नीरू : नहीं ?

महीप : तो खड़ी क्या हो, आओ,
भई। देखो, कितने प्यार से

नीरू : (**हँस पड़ती है**) ऐसी क्या

महीप : अनूप ! (**ठहाका मारता**
की आशा ! (**मद्धिम हँसी**)
है।

नीरू : क्या ? शामिल तो है।

महीप : कहाँ है ? (**रुककर**)
देखने गया है। मनुष्य को
उसी जाति का है। (
चलते रुक गया है।

नीरू : ऐसा क्यों कहते हो !

महीप : और समझते-

नीरू : बको नहीं महीप।
ला देती हूँ।

महीप : कोई पानी नहीं

[बोतल खोलकर
कड़वी साँस

महीप : पाँच महीने में

वरण से उभरती हुई, कहीं दूर से बाँसुरी की आवाज आ
बीच बन्दूक छूटती है, जिससे बाँसुरी का स्वर सहसा काँप-
एक शक्तिपूर्ण ठहाका उभरता है। तभी उसके साथ, जैसे
में, किसी स्त्री का प्रश्नों से भरा हुआ कातर स्वरआता

) मर गयी ? लग गयी गोली ? मर गयी वह ?
हो, मर गयी ? अब भी सन्देह है ? (मीठी हँसी के
हो जाती हो, नीरू !…यह बन्दूक है, तुम्हारी तरह
गोली खाती है, फौलाद ! गोली निशाना बनाती है…
) चुप क्यों हो गयी ? डर गयी क्या ? (मीठी हँसी)
नीरू, कितनी शक्ति और विश्वास है इसमें ! इसे
मंजिल यह ढूँढ़ लेगी।

हीं जाती। देखो न, जो बाँसुरी अभी बज रही थी,
(रुककर) बन्दूक के गीत के सामने कोई और

की हँसी आती है ?

यों में नहीं। यह जो खून बहकर जम

र) यह चिड़िया और बन्दूक !

ता हूँ और मानता भी हूँ,
शिकार बनाना चाहती हैं,
शान्ति से घूम रहे थे।
लिए तोड़ता चला आ
की डाल पर आ

बैठा। चुप भी न रहा, फड़फड़ाने लगा, जैसे कोई प्रेमिका गीत गाकर अपने प्रेमी को बुलाए।

[नीरू हँस पड़ती है।]

महीप : यह पण्डुक है, पण्डुक ! कितना भोला ! कितना अच्छा !

नीरू : (बीच में ही) और मर गया !

महीप : छोड़ो इसे, चलो, आगे बढ़ें।

नीरू : पण्डुक को यहीं छोड़ कर ?

महीप : और क्या इसे लादे फिरूँगा ? शिकार किया, बस ! (**रुककर**) जंगल में असंख्य जीव-जन्तु हैं, इसका उपयोग कर लेंगे।

नीरू : तुम्हीं उपयोग क्यों नहीं कर लेते ?

महीप : (**सहसा स्वर बदलकर**) छोड़ो भी इन बातों को, मुझे भूख लग गयी। मैं कुछ खाऊँगा।

नीरू : तुम्हें तो बस हरदम भूख लगी है। चाहे घर हो, चाहे जंगल।

महीप : यह बताओ, तुम्हें भूख नहीं लगी।

नीरू : नहीं ?

महीप : तो खड़ी क्या हो, आओ, बैठो न, बैठो ! नहीं बैठोगी ? (**प्यार से**) बैठ जाओ भई। देखो, कितने प्यार से बुला रहा हूँ।

नीरू : (**हँस पड़ती है**) ऐसी क्या भूख ! अनूप बाबू को तो आ जाने दो।

महीप : अनूप ! (**ठहाका मारता है**) अनूप की प्रतीक्षा ! जो शून्य है, उसे पकड़ लाने की आशा ! (**मद्धिम हँसी**) तुम सोचती होगी, अनूप हमारे पिकनिक में शामिल है।

नीरू : क्या ? शामिल तो है।

महीप : कहाँ है ? (**रुककर**) इस समय वह हमसे डेढ़ मील की दूरी पर है। कोई खँडहर देखने गया है। मनुष्य को छोड़कर, जो ईंट और पत्थरों में झख मारता है, वह उसी जाति का है। (**हँसता है**) लगता है उस बेचारे के दिमाग का कोई पुर्जा चलते-चलते रुक गया है।

नीरू : ऐसा क्यों कहते हो ? पहले उसके स्वभाव को समझो।

महीप : और समझते-समझते मेरा ही कोई पुरजा बन्द हो गया, तो ?

नीरू : बको नहीं महीप। सीधे से अपना पेट भरो। खाओ। सामने के झरने से पानी ला देती हूँ।

महीप : कोई पानी नहीं। पानी में कोई ताकत नहीं होती। पेट खराब होता है।

[बोतल खोलकर गिलास में कुछ ढालने की आवाज उभरती है, फिर उसे पीकर कड़वी साँस छोड़ने की आवाज।]

महीप : पाँच महीने में सरकार के लिए दो कोठियाँ बनवाने का कान्ट्रैक्ट लिया है।

(रुककर) अपने लिए जो नयी कोठी बनवा रहा हूँ, उसके पीछे एक 'स्विमिंग टैंक' बनवाऊँगा। सामने शानदार बगीचा होगा, सारी स्कीम दिमाग में है।

नीरू : कुछ और बातें करो महीप ! हम पिकनिक पर आए हैं।

महीप : (**अपनी ही बातों में**) यहाँ से हमारी कार सीधी नयी कोठी जाएगी। तुम्हें उसके सब नक्शे बताने हैं। काफी तैयार हो चुकी है। तुम बेहद पसन्द करोगी। मैं तुम्हारे टेस्ट को जानता हूँ। (**रुक जाता है**) क्या सोच रही हो ?

नीरू : सुन रही हूँ। पेट भर खा लिया ? और खाओ न ! इतना सब क्या होगा ?

महीप : अब इतना तुम्हारे साथ फिर खाऊँगा जब अनूप आएगा। (**रुककर**) जब तक अनूप नहीं आएगा, तुम कुछ खाओगी नहीं न ?

नीरू : उसकी भी तो कहीं भूख है ?

महीप : अच्छा, यह कल्पना करो नीरू, इस समय अगर अनूप बाबू तुम्हारे साथ होते, और मैं कहीं चला गया होता !

नीरू : तब भी यही स्थिति होती। (**झुँझलाकर**) तुम हमेशा तुलना क्यों करते हो ? महीप, यह तुम्हारी बड़ी बुरी आदत है। (**रुककर**) समान वस्तु की तुलना हो सकती है, समान भाव की नहीं।

महीप : (**हँस पड़ता है**) बहुत अच्छा लगता है, सच, बहुत अच्छा। कभी-कभी इसी तरह नाराज होकर बातें किया करो। (**रुककर**) सीधे सब लोग यहाँ से नयी कोठी की ओर चलेंगे।

नीरू : (**अपने-आप**) पता नहीं, अनूप कहाँ रह गया ?

[सहसा महीप भेद-भरे स्वर में फूट पड़ता है।]

महीप : (**उतावली और दबे स्वर से**) इधर आओ नीरू। इधर छिपकर खड़ी हो जाओ। इधर···इधर, मेरे सामने···थोड़ा और दायें। हाँ, ठीक, बिलकुल ठीक, अब सामने देखो।

नीरू : (**डर से**) नहीं, नहीं मुझसे नहीं होगा।

महीप : होगा !

नीरू : कैसे होगा ? मुझसे यह नहीं, होगा।

महीप : (**गम्भीरता से**) मेरी खुशी के लिए भी नहीं करोगी ? बोलो, जल्दी बोलो।

नीरू : मुझे बन्दूक चलानी कहाँ आती है ? मैंने कभी इसे छुआ तक नहीं है।

महीप : अभी आ आएगी। घबराओ नहीं। हिम्मत से काम लो।

नीरू : मानते नहीं तुम, कैसे हिम्मत करूँ। देखते नहीं, काँप रही हूँ।

महीप : बन्दूक यहाँ से थामो। यह कुन्दा, यहाँ टेको। और मजबूती से। हाँ, ठीक, इस हाथ से नली पकड़ो यहाँ। हाँ, इसे ऊपर उठाओ। थोड़ा और। बस, बस, यहीं। दायीं हथेली यहाँ रखो। इस पर उँगली रखो। अभी दबाना नहीं, जब मैं तीसरी बार स्टडी कहूँ, तब इसे खींच लेना, बस इसी तरह दबाए रहो। बस, बिलकुल

ठीक शाबाश !

नीरू : यह मुझसे न कराओ, महीप। यह निर्मम हत्या है।
लो।

महीप : बोलो नहीं, ऊपर देखो। वह प्वाइण्ट है। देखो।
हारिल का निशाना जोड़ो। दायीं आँख, वह प्वाइण्ट
मिलाओ। शाबाश, स्टडी ! प्लीज, स्टडी।

[सहसा फायर होता है। आवाज के खत्म होते ही, नीरू
है।]

महीप : (**प्रसन्नता से**) शाबाश ! शाबाश ! क्या निशाना
एक चिड़िया (**रुक जाता है**) अरे, यह क्या ? रोने
ओ···हँसी में आँसू। यह तो मनोरंजन था भाई।

नीरू : (**रुँधे स्वर में**) हत्या नहीं ? (**सिसकती हुई**)
मौत नहीं हुई थी।

महीप : ओफ-ओ ! यह मौत नहीं है, नीरू। शिकार
आता। कितना उम्दा शिकार है। और नीरू के
के प्लेट में यह खुशबू देगा। (**रुक जाता है**)
तरह सिसक रही है। अच्छा, माफी माँगता
क्षमा ! (**हँस देता है**) अब हँसो न ! मुझे
कुछ बोलो ही।

नीरू : क्या बोलूँ ?

[क्षणिक अन्तराल]

महीप : (**भाव से**) तो मुझसे ज्यादा
तुम्हें इनकी है। इनके सामने मेरी
मेरे साथ खाना खाया; न मेरे

नीरू : (**बीच में ही**) महीप,

[एकाएक किसी के आने

नीरू : (**प्रसन्नता से**)

अनूप : ओह-ओ ! इतनी
तो शिकार भी
पूरा कर लो

नीरू : कोई
से) अनूप !

अनूप : और क्या
क्रुएल

जो। नयी कोठी बनवा रहा हूँ, उसके पीछे एक 'स्विमिंग टैंक'
ानदार बगीचा होगा, सारी स्कीम दिमाग में है।
' महीप ! हम पिकनिक पर आए हैं।
) यहाँ से हमारी कार सीधी नयी कोठी जाएगी। तुम्हें उसके
ाफी तैयार हो चुकी है। तुम बेहद पसन्द करोगी। मैं तुम्हारे
(**रुक जाता है**) क्या सोच रही हो ?
र खा लिया ? और खाओ न ! इतना सब क्या होगा ?
साथ फिर खाऊँगा जब अनूप आएगा। (**रुककर**) जब तक
कुछ खाओगी नहीं न ?
ख है ?
करो नीरू, इस समय अगर अनूप बाबू तुम्हारे साथ होते,
होता !
ी। (**झुँझलाकर**) तुम हमेशा तुलना क्यों करते हो ?
बुरी आदत है। (**रुककर**) समान वस्तु की तुलना हो
ी नहीं।
अच्छा लगता है, सच, बहुत अच्छा। कभी-कभी इसी
या करो। (**रुककर**) सीधे सब लोग यहाँ से नयी कोठी

प कहाँ रह गया ?

फूट पड़ता है।]

इधर आओ नीरू। इधर छिपकर खड़ी हो जाओ।
और दायें। हाँ, ठीक, बिलकुल ठीक, अब सामने

ला।

ी नहीं करोगी ? बोलो, जल्दी बोलो।
भी इसे छुआ तक नहीं है।
से काम लो।
ीं, कँप रही हूँ।
और मजबूती से। हाँ, ठीक, इस
बा और। बस, बस, यहीं।
ाला नहीं, जब मैं तीसरी
ए रहो। बस, बिलकुल
1

ठीक शाबाश !

नीरू : यह मुझसे न कराओ, महीप। यह निर्मम हत्या है। यह न कराओ। स्वयं कर लो।

महीप : बोलो नहीं, ऊपर देखो। वह प्वाइण्ट है। देखो। हाँ, वही। उस प्वाइण्ट से हारिल का निशाना जोड़ो। दायीं आँख, वह प्वाइण्ट और वह हारिल, तीनों को मिलाओ। शाबाश, स्टडी ! प्लीज, स्टडी।

[सहसा फायर होता है। आवाज के खत्म होते ही, नीरू की सिसकियाँ सुनाई पड़ती हैं।]

महीप : (**प्रसन्नता से**) शाबाश ! शाबाश ! क्या निशाना पाया है। पहले निशाने में एक चिड़िया (**रुक जाता है**) अरे, यह क्या ? रोने लगी तुम ? इतने आँसू, ओफ-ओ···हँसी में आँसू। यह तो मनोरंजन था भाई।

नीरू : (**रुँधे स्वर में**) हत्या नहीं ? (**सिसकती हुई**) आज तक मेरे हाथ से किसी की मौत नहीं हुई थी।

महीप : ओफ-ओ ! यह मौत नहीं है, नीरू। शिकार है। जो पाप-पुण्य की सीमा में नहीं आता। कितना उम्दा शिकार है। और नीरू के हाथ का शिकार ! आज के डिनर के प्लेट में यह खुशबू देगा। (**रुक जाता है**) ओफ-ओ ! क्या अब तक बच्चों की तरह सिसक रही है ? अच्छा, माफी माँगता हूँ। क्षमा करो देवि ! नीरजा रानी, क्षमा ! (**हँस देता है**) अब हँसो न ! मुझे देखो। अच्छा, चलो, घर चलें यहाँ से। कुछ बोलो ही।

नीरू : क्या बोलूँ ?

[क्षणिक अन्तराल]

महीप : (**भाव से**) तो मुझसे ज्यादा तुम्हें ये परिन्दे प्यारे हैं ? मुझसे अधिक परवाह तुम्हें इनकी है। इनके सामने मेरी खुशी कोई मतलब नहीं रखती। (**रुककर**) न मेरे साथ खाना खाया; न मेरे साथ···

नीरू : (**बीच में ही**) महीप, पागल तो नहीं हो गए ?

[एकाएक किसी के आने की आहट होती है।]

नीरू : (**प्रसन्नता से**) अनूप !···कहाँ चले गए थे तुम ?

अनूप : ओह-ओ ! इतनी देर में दो-दो चिड़ियों का शिकार ! कोई शेर-बबर मारते, तो शिकार भी कहलाता। चुप क्यों हो महीप ? तुम दोनों कुछ बातें कर रहे थे। पूरा कर लो उसे। मैं अभी आया।

नीरू : कोई खँडहर देखना बाकी रह गया है ? (**रुक जाती है, फिर गिरी हुई वाणी से**) अनूप ! यह देखो, यह शिकार मैंने किया है।

अनूप : और क्या करोगी ? बन्दूक और चिड़िया। औरत हो न ! (**अपने-आप में**) मोस्ट क्रुएल एनीमल।

महीप : (**बनाता हुआ**) बस, आ गए आप अपनी फिलासफी पर। आए थे संग लेकर पिकनिक पर, चले गए खँडहर में। यह कौन-सी फिलासफी थी ?

अनूप : (**स्नेह से**) तो तुम दोनों आज मुझसे नाराज लगते हो ! अच्छा, खुश हो जाओ। हँसो नीरू ! हँसो न ! क्या घुटी-घुटी बैठी हो, जाओ। हँसो नीरू ! हँसो न ! क्या घुटी-घुटी बैठी हो ? खुलो न। (**रुककर**) महीप ! तुम इसे हँसा दो। हँसते क्यों नहीं ? हँसी, तभी जीवन में रस बरसेगा। ऐसा रस, जिसकी आज बड़ी आवश्यकता है।

नीरू : स्वयं हँसकर बताओ न ! देखें हम—कैसे, कहाँ रस बरसता है।

अनूप : हृदय में बरसता है, जहाँ मन भीग जाता है। आँखों में बिछलन आ जाती है।

महीप : तो हँसो न !

अनूप : मेरी क्या बराबरी। मैं नहीं हँस पाता, तभी चाहता हूँ, तुम दोनों हँसो। महीप, तुम ठहाका मारते हो, कितना अच्छा लगता है ! नीरू भी कितनी शिशुवत् हँसती है···जहाँ शब्द नहीं होते, भाव बरसते हैं। (**रुककर, एकाएक भाव से**) अच्छा, एक बहुत अच्छी बात बताऊँ ? खँडहर में मिली है वह बात।

नीरू : अच्छा, पहले कुछ खाओ।

अनूप : आप भी खाना ? यहाँ भी वही सब ? (**रुककर**) हम एक दिन किसी और ही तरह से जियें, तो कितना अच्छा हो ! जैसे रोज जीते हैं, उसे कहीं रोक दें, नहीं तो वह एक दिन बहुत पुराना हो जाएगा और हम ऊब जाएँगे।

नीरू : अच्छा, बैठ जाओ, यहाँ आओ।

अनूप : कभी-कभी हम कुछ और देखें। अनुभूति में कुछ और पिरोयें। अपने 'रियल सेल्फ' में बैठें। शहर से दूर आने का यही मतलब है कि हम रोज की वासनाओं से एक दिन भी ऊपर उठ सकें।

महीप : तुम्हारी बात मानी जाए, तो संसार एक ही दिन में मोमबत्ती की तरह पिघल जाए।

[नीरू हँस पड़ती है।]

महीप : अजी, तुम्हारे नाम पर नीरू ने अब तक कुछ नहीं खाया है। और मैं भी तुम्हारे खाने का रास्ता देख रहा हूँ।

अनूप : ओह-हो ! तो तुम दोनों भूखे हो ! यह बात है, अच्छा ! लेकिन खँडहर में मिली हुई बात नहीं सुनोगे क्या ?

महीप : अजी, सुन लेंगे। बात तो रोज ही सुनाते हो।

अनूप : अच्छा-अच्छा, तुम लोग शुरू करो, मैं दौड़कर पानी लाता हूँ।

नीरू : नहीं-नहीं, तुम बैठो, मैं जा रही हूँ।

अनूप : तुम क्या लाओगी, मैं अभी लाया। (**चला जाता है।**)

महीप : (**अपने-आप**) एवसर्ड ! इन्हें खँडहर में भी बात मिलती है। होपलैस !

नीरू : (**खीझकर**) क्यों इस तरह बकते हो ? मुझे बहुत बुरा लगता है।

महीप : (**मस्ती में**) आज हारिल का शोरबा बनेगा, नी...
गोश्त नहीं खाया। बहुत गरम होता है। गरमी जी...

नीरू : कभी-कभी यहाँ कितनी मोहक सुगन्ध आती है, जैसे...

महीप : यह तुम्हारी सुगन्ध है। 'कस्तूरी कुण्डल बसै···मृ...

[दोनों हँसते हैं।]

महीप : अगले हफ्ते में मुझे बम्बई और मद्रास तक जाना है... तबीयत उकता जाती है। पिताजी हैं, वह रोज शादी के... हैं।

[अनूप आता है।]

अनूप : लो, बहुत ठण्डा पानी है, बर्फ-जैसा। इतना स्वच्छ है... हंस के पंख की तरह धुल जाए।

महीप : अच्छा-अच्छा, बैठो। कविता बाद में कर लेना।

अनूप : शुरू करो न ! चलो नीरू ! यह लो···इसे ... महीप !

नीरू : और तुम, बस इतना ही ?

अनूप : इतना तो बहुत है। (**खाते-खाते**) तुम लोग ...

महीप : मियाँ, खाया करो, नहीं तो दिल-दिमाग ...

अनूप : तुम्हारी तरह दो मन के शरीर का भार ...

नीरू : (**बीच में ही**) तर्क न करो अनूप ! ...

महीप : (**हँसकर**) जो काम नहीं करेगा, वह ...

अनूप : महज ज्यादा खाने के लिए मुझे काम ...

नीरू : (**झुँझलाकर**) फिर तर्क में फँस गए ... अच्छा स्वास्थ्य है ! शरीर तो ... लेते ?

अनूप : बाहरी स्वास्थ्य ... हों, अनुभूतियाँ ...

महीप : (**व्यंग्य से** ... बस, चौबीस ...

अनूप : मुझे पता ... नहीं। तुम ... मानता हूँ ...

नीरू : अब ...

अनूप : बात ...

बस, आ गए आप अपनी फिलासफी पर । आए थे संग लेकर
गए खँडहर में । यह कौन-सी फिलासफी थी ?
तुम दोनों आज मुझसे नाराज लगते हो ! अच्छा, खुश हो
! हँसो न ! क्या घुटी-घुटी बैठी हो, जाओ । हँसो नीरू ! हँसो
बैठी हो ? खुलो न । (रुककर) महीप ! तुम इसे हँसा दो ।
हँसी, तभी जीवन में रस बरसेगा । ऐसा रस, जिसकी आज बड़ी

ओ न ! देखें हम—कैसे, कहाँ रस बरसता है ।
, जहाँ मन भीग जाता है । आंखों में बिछलन आ जाती है ।

। मैं नहीं हँस पाता, तभी चाहता हूँ, तुम दोनों हँसो । महीप,
हो, कितना अच्छा लगता है ! नीरू भी कितनी शिशुवत्
नहीं होते, भाव बरसते हैं । (रुककर, एकाएक भाव से)
छी बात बताऊँ ? खँडहर में मिली है वह बात ।
ाओ ।
हाँ भी वही सब ? (रुककर) हम एक दिन किसी और ही
ा अच्छा हो ! जैसे रोज जीते हैं, उसे कहीं रोक दें, नहीं
राना हो जाएगा और हम ऊब जाएँगे ।
आओ ।
र देखें । अनुभूति में कुछ और पिरोयें । अपने 'रियल
ाने का यही मतलब है कि हम रोज की वासनाओं से
।
ो संसार एक ही दिन में मोमबत्ती की तरह पिघल

अब तक कुछ नहीं खाया है । और मैं भी तुम्हारे

। यह बात है, अच्छा ! लेकिन खँडहर में मिली

लाते हो ।
दौड़कर पानी लाता हूँ ।

जाता है ।)
त मिलती है । होपलैस
बुरा लगता है ।

महीप : (**मस्ती में**) आज हारिल का शोरबा बनेगा, नीरू ! कभी तुमने चिड़िया का गोश्त नहीं खाया । बहुत गरम होता है । गरमी जीवन का प्रतीक है न !

नीरू : कभी-कभी यहाँ कितनी मोहक सुगन्ध आती है, जैसे कहीं कस्तूरी हो।

महीप : यह तुम्हारी सुगन्ध है। 'कस्तूरी कुण्डल बसै···मृग ढूंढ़े बन माँहि'···

[दोनों हँसते हैं ।]

महीप : अगले हफ्ते में मुझे बम्बई और मद्रास तक जाना है (**रुककर**) कभी-कभी अकेले तबीयत उकता जाती है। पिताजी हैं, वह रोज शादी के लिए नाक में दम किए रहते हैं।

[अनूप आता है ।]

अनूप : लो, बहुत ठण्डा पानी है, बर्फ-जैसा। इतना स्वच्छ है कि मन भी साफ हो जाए। हंस के पंख की तरह धुल जाए।

महीप : अच्छा-अच्छा, बैठो। कविता बाद में कर लेना।

अनूप : शुरू करो न ! चलो नीरू ! यह लो···इसे खाओ, यह सब तुम्हारा है, महीप !

नीरू : और तुम, बस इतना ही ?

अनूप : इतना तो बहुत है। (**खाते-खाते**) तुम लोग खाओ न । मैं साथ दूंगा ।

महीप : मियाँ, खाया करो, नहीं तो दिल-दिमाग दोनों साथ छोड़ देंगे !

अनूप : तुम्हारी तरह दो मन के शरीर का भार कौन ढोएगा ?

नीरू : (**बीच में ही**) तर्क न करो अनूप ! खाते रहो।

महीप : (**हँसकर**) जो काम नहीं करेगा, वह खाएगा कैसे ? कहाँ पचाएगा ?

अनूप : महज ज्यादा खाने के लिए मुझे काम नहीं करना है।

नीरू : (**झुँझलाकर**) फिर तर्क में फँस गए ? प्रत्यक्ष में तर्क क्या ? महीप का कितना अच्छा स्वास्थ्य है ! शरीर तो बनाया जा सकता है। तुम भी क्यों नहीं बना लेते ?

अनूप : बाहरी स्वास्थ्य से क्या होगा ? मनुष्य को भीतर से स्वस्थ होना है। भाव सुन्दर हों, अनुभूतियाँ शिव हों ।

महीप : (**व्यंग्य से हँसता है**) तुम-जैसे लोगों को शरीर भी मिल जाए, तो क्या हो। बस, चौबीस घण्टे सोते रहोगे। संसार को असार मानकर झक मारते रहोगे।

अनूप : मुझे पता है महीप ! अपने विषय में स्वयं कहकर अपने स्वत्व को गिराओ नहीं। तुममें आकर्षण है, शरीर का, कर्म का। लेकिन मैं उस कर्म को भी थोथा मानता हूँ जिसके पीछे कोई आस्था न हो, किसी आदर्श की लौ न जलती हो।

नीरू : अब बातें न करो, अनूप ! पहले समाप्त कर लो।

अनूप : बात न करूँ ! (**थकी हँसी**) खूब है। जब मौन होकर कुछ सोचता हूँ, तब तुम कहती हो, कुछ बोलो । जब बोलता हूँ, तब चुप हो जाने के लिए कहती हो।

महीप : (**बीच में ही**) यही तो रहस्य है ! मैं कहता हूँ, आपकी जिन्दगी ही क्या है—एक पुरलुत्फ मजाक ! अपने को उलटे टाँगकर आप जीते हैं।

नीरू : (**झुँझलाकर**) चुप रहो महीप।

अनूप : तुम महीप को भी बोलने से रोकती हो ? मुझे इसकी हर बात अच्छी लगती है। बहुत स्नेह अनुभव करता हूँ।

महीप : चापलूसी पर उतर आए ?

अनूप : खँडहर में पायी हुई बात नहीं सुनोगे, महीप ? बड़ी अच्छी बात है।

नीरू : मत सुनाओ यहाँ ! क्यों सुनाते हो ?

अनूप : क्यों ?

नीरू : (**रूठकर**) जाओ, तुम कुछ नहीं समझते।

[क्षणिक अन्तराल]

महीप : अच्छा···चलो, वापस चलें। दो से ऊपर बज रहे हैं। चलो, उठो नीरू ! अनूप ! चलो।

अनूप : (**आश्चर्य से**) यह क्या ? यह मरी हुई चिड़िया अपने साथ ले चल रहे हो ?

महीप : जी, मरी हुई नहीं, शिकार की हुई। नीरू के पवित्र हाथों का शिकार है, कितनी मर्यादा है इसकी ? (रुककर) बहुत उम्दा गोश्त होता है इसका, हारिल है। लो, हाथ पर रखो न। देखो, कितना वजनी, पर कितना मुलायम है।

[सबके चलने की आवाज और गति।]

अनूप : कभी गोश्त के भीतर जाने की कोशिश करो, महीप ! आत्मतत्त्व का अनुभव होगा। सबकी आत्मा समान है और वहाँ इतनी कोमलता, आकर्षण और इतनी नैसर्गिकता है कि तुम्हें नशा हो जाए—वह नशा, जो योगियों को होता है और जिसे भोगी मजाक समझते हैं।

महीप : (**एक क्षण कुछ सोचकर**) अगले हफ्ते में इस कार को मैं बदल दूंगा। तुम्हें लम्बी कार पसन्द है न, नीरू !

[कोई उत्तर नहीं। क्षणिक अन्तराल के बाद कार खोलने की आवाज। दरवाजे बन्द होते हैं और कार स्टार्ट होकर तेजी से चली जाती है। (क्षणिक अन्तराल) फिर सहसा खिड़कियों को बन्द करने की आवाज आती है।]

नीरू : (**नींद से चौंककर**) खिड़कियाँ क्यों बन्द कर रही हो ?

सन्तोष : अरे, जग गयी तुम ? मैंने सोचा, खिड़कियाँ बन्द कर दूं। तुम्हें और अच्छी नींद आएगी !

नीरू : मुझे बहुत अच्छी नींद आ रही थी। मैं इन खिड़कियों को कभी नहीं बन्द करती।

सन्तोष : सोते समय भद्दा नहीं लगता ? कितनी रोशनी और गर्द आती है ?

नीरू : मुझे यों ही अच्छा है, सन्तोष ! इधर आओ। वहाँ
बैठूंगी।

सन्तोष : (**आश्चर्य से**) खिड़की पर ? अब यही जगह रह ग
नीरू !

नीरू : अब क्या गिरूंगी ? (रुककर) उन दो सफेद मीनारों
अच्छा लगता है। बड़ी शान्ति मिलती है।

सन्तोष : अच्छा ! लेकिन, मुझे तो वे दोनों बड़े बदशक्ल लगते
तो म्युनिसिपैलिटी उन्हें कभी की गिरवा चुकी होती (
उसमें अच्छी लगने की क्या बात है ? दो मीनारें—
लेकिन ऊपर का हिस्सा टूटा हुआ; दूसरी में कँगूरे हैं,

नीरू : लेकिन, दोनों एक-दूसरे की पूरक हैं। मैं दोनों को अल
को मिलाकर एक सम्पूर्ण देखती हूँ। सम्पूर्ण और
लगतीं।

सन्तोष : पापा आए थे; तुम सो रही थीं। तुम्हें ढूँढ़ रहे थे
थी।

नीरू : (**निःश्वास भरकर**) उस समय मैं एक स्वप्न देख रही
किसी को न बताऊँगी। स्वप्न ने खुद कहा है कि मुझे
कोई विश्वास न करेगा !

सन्तोष : लेकिन मैं विश्वास करूँगी।

नीरू : सच !

सन्तोष : बिलकुल सच। जितना सच तुम्हारा स्वप्न है।

[दोनों हँसती हैं।]

नीरू : (भावुकता से) मैं उन दोनों मीनारों के बीच खड़ी थ
बरस रही थी। धीरे-धीरे वे दोनों मीनारें झुकती हुई मेरे
मेरे पार्श्व में आ गईं। मैंने देखा, अनुभव किया, वे
बाँहें थीं···विशाल कन्धों वाली। उन बाँहों में
में उठती गयी।

सन्तोष : (बीच में ही [illegible]
जिन्हें तुम अपलक [illegible]

नीरू : हाँ !

सन्तोष : (प्रसन्नता से)
दो, तो बता

नीरू : बताओ।

सन्तोष : [illegible]

[उसी [illegible]

यही तो रहस्य है ! मैं कहता हूँ, आपकी जिन्दगी ही क्या है —
क ! अपने को उलटे टाँगकर आप जीते हैं ।
चुप रहो महीप ।
ो बोलने से रोकती हो ? मुझे इसकी हर बात अच्छी लगती है ।
करता हूँ ।
तर आए ?
हुई बात नहीं सुनोगे, महीप ? बड़ी अच्छी बात है ।
! क्यों सुनाते हो ?

ी, तुम कुछ नहीं समझते ।

]

वापस चलें । दो से ऊपर बज रहे हैं । चलो, उठो नीरू !

ह क्या ? यह मरी हुई चिड़िया अपने साथ ले चल रहे हो ?
ीं, शिकार की हुई । नीरू के पवित्र हाथों का शिकार है, कितनी
(रुककर) बहुत उम्दा गोश्त होता है इसका, हारिल है । लो,
ो, कितना वजनी, पर कितना मुलायम है ।

ज और गति ।]

ाने की कोशिश करो, महीप ! आत्मतत्त्व का अनुभव
ान है और वहाँ इतनी कोमलता, आकर्षण और इतनी
ा हो जाए—वह नशा, जो योगियों को होता है और
है ।

अगले हफ्ते में इस कार को मैं बदल दूँगा । तुम्हें लम्बी

राल के बाद कार खोलने की आवाज । दरवाज़े
र तेजी से चली जाती है । (क्षणिक अन्तराल)
ले की आवाज आती है ।]

न्द कर रही हो ?
कियाँ बन्द कर दूँ । तुम्हें और अच्छी

इन खिड़कियों को कभी नहीं बन्द

और गर्द आती है ?

नीरू : मुझे यों ही अच्छा है, सन्तोष ! इधर आओ । वहाँ बैठो, मैं यहाँ खिड़की पर बैठूँगी ।

सन्तोष : (आश्चर्य से) खिड़की पर ? अब यही जगह रह गयी ? एक दिन गिर पड़ोगी, नीरू !

नीरू : अब क्या गिरूँगी ? (रुककर) उन दो सफेद मीनारों को देखते रहना मुझे बेहद अच्छा लगता है । बड़ी शान्ति मिलती है ।

सन्तोष : अच्छा ! लेकिन, मुझे तो वे दोनों बड़े बदशक्ल लगते हैं । धार्मिक बात न होती, तो म्युनिसिपैलिटी उन्हें कभी की गिरवा चुकी होती (रुककर) मैं नहीं समझती, उसमें अच्छी लगने की क्या बात है ? दो मीनारें—एक इतनी लम्बी-चौड़ी है, लेकिन ऊपर का हिस्सा टूटा हुआ; दूसरी में कँगूरे हैं, धड़ गायब, दोनों अधूरी···।

नीरू : लेकिन, दोनों एक-दूसरे की पूरक हैं । मैं दोनों को अलग-अलग नहीं देखती । दोनों को मिलाकर एक सम्पूर्ण देखती हूँ । सम्पूर्ण और अप्रतिम । मुझे वे दो नहीं लगतीं ।

सन्तोष : पापा आए थे; तुम सो रही थीं । तुम्हें ढूँढ़ रहे थे । शायद कोई बात करनी थी ।

नीरू : (निःश्वास भरकर) उस समय मैं एक स्वप्न देख रही थी । ऐसा स्वप्न, जिसे मैं किसी को न बताऊँगी । स्वप्न ने खुद कहा है कि मुझे कहीं बताना नहीं, नीरजा । कोई विश्वास न करेगा !

सन्तोष : लेकिन मैं विश्वास करूँगी ।

नीरू : सच !

सन्तोष : बिलकुल सच । जितना सच तुम्हारा स्वप्न है ।

[दोनों हँसती हैं ।]

नीरू : (भावुकता से) मैं उन दोनों मीनारों के बीच खड़ी थी । मेरे सिर पर चाँदनी बरस रही थी । धीरे-धीरे वे दोनों मीनारें झुकती हुई मेरे पास आने लगीं, बिलकुल मेरे पार्श्व में आ गईं । मैंने देखा, अनुभव किया, वे मीनारें नहीं थीं । दो मजबूत बाँहें थीं···विशाल कन्धों वाली । उन बाँहों में बँधकर मैं ऊपर उठने लगी । चाँदनी में उठती गयी ।

सन्तोष : (बीच में ही आश्चर्य से) स्वप्न में मीनारें बाँहें हो गयीं ? ये ही दो मीनारें जिन्हें तुम अपलक देख रहे हो ।

नीरू : हाँ !

सन्तोष : (प्रसन्नता से) अब समझी । (हँसती है) सब समझ गयी, नीरू ! कुछ इनाम दो, तो बता दूँ ।···बता दूँ ?

नीरू : बताओ ।

सन्तोष : वही दो, वही ।

[उसी समय पृष्ठभूमि से पापा की आवाज आती है ।]

पापा : जग गयी नीरू ?

नीरू : जी पापा !

पापा : (स्नेह से) तो नीरूजी अब शाम को सोती हैं।

सन्तोष : (बीच ही में) और रात-भर मीनार देखती है।

[हँसती है।]

पापा : क्यों, नीरू रानी ?

नीरू : (प्यार से रूठकर) देखिए, पापाजी, आप मुझे नीरू न कहा कीजिए। नीरजा क्यों नहीं कहते ? मेरा नाम नीरजा है। नीरू-पीरू नहीं।

पापा : नीरू-पीरू ! (हँसते हैं) नीरू-पीरू ! आज से मैं तुम्हें नीरू-पीरू के नाम से पुकारूँगा।

नीरू : जाइए, मैं नहीं बोलती।

[एकाएक पृष्ठभूमि में हार्न बजकर कोई कार रुकती है]

पापा : ओहो, महीप ! आओ, इधर आओ, बैठो !

महीप : नमस्ते। आप दोनों साहब को भी नमस्ते !

पापा : कहो, आज की पिकनिक कैसी रही ?

महीप : नीरू ने नहीं बताया ?

पापा : यह कहाँ मुझसे बताती है ! यह तो मुझसे बेहद नाराज रहती है। न जाने कब बिल्ली की तरह आयी और सो गयी। अभी-अभी उठी है। (रुककर) तो कैसा रहा ?

महीप : सो-सो। आनन्द तो बहुत आता, बड़ी उम्दा जगह थी, लेकिन यह जो अनूप है, बड़ा 'बोर' किस्म का आदमी है। खामख्वाह 'बोर' कर देता है।

नीरू : और आप तो जैसे बड़े अच्छे हैं। कभी कोई तुक की बात नहीं करते। हरदम अपनी डींग, अपने काम, अपने जलवे।

महीप : पुरुष के यही लक्षण हैं, क्यों पापाजी ?

[सब हँसते हैं।]

नीरू : सब हँसकर थक चुके न ? मैं चाय लाती हूँ।

महीप : न···न···न। चाय आप मेरे घर पिएँगी। मैं लेने आया हूँ। जल्दी चलिए, (रुककर) पापाजी, नीरू रात का खाना भी वहीं खाएगी।

पापा : जैसा यह चाहे। क्यों, क्या सोच रही हो ?

नीरू : एक ही प्रोग्राम रखो महीप, दोनों नहीं।

महीप : अच्छा, रात का खाना, येस, ओके !

पापा : इतनी जल्दी क्या है; कहाँ भाग रहे हो ?

महीप : (जाता हुआ) अभी कई काम खत्म करने हैं।

[पृष्ठभूमि में कार स्टार्ट होकर चली जाती है।]

पापा : कितना जीवन है महीप में !

नीरू : और अनूप ?

पापा : मैं तो उसे आज तक नहीं समझ सका। न जाने कैसी-
क्या सोचता-बुनता रहता है !

नीरू : क्या ऐसा नहीं हो सकता, पापा ! (सहसा रुक जात

पापा : कैसा ? बोलो। अरे, तू तो चुप हो गयी (आश्चर्य से
क्या बात है, बेटी ? इतनी पढ़-लिखकर मन की बात क
आँसुओं की भाषा मैं नहीं समझता बेटी, क्योंकि मैं बा
नहीं। बोलो, क्या बात है ?

[क्षणिक अन्तराल]

नीरू : क्या करूँ, आप मुझे फिर डाँट देंगे। एक बार मैंने आ
आपको। जब आप मेरी शादी तय कर रहे थे, मैंने आप
लड़की एक पुरुष के जीवन में ब्याह के नाम पर बाँध
उतार दी जाए, इसके अतिरिक्त क्या और कोई वि
क्या ऐसा नहीं हो सकता, कि एक लड़की दो पुरु
के बीच में रहकर अपना जीवन···।

पापा : (बीच ही में, दृढ़ स्वरों में) झूठ है ! किसी
पर पाँव नहीं रखती।

नीरू : मुझे पता था, आप यही कहेंगे। पिछली
आप सोचते हैं, वह कल्पना हो सकती है;
सत्य है; मृत्यु की तरह सत्य।

पापा : सन्तोष ! समझा, अपनी नीरू को
देखी।

सन्तोष : तो इसे स्वयं देखने दीजिए
दुनिया दिखायी है। नीरू
कहीं गुमराह नहीं हो

पापा : (व्यंग्य से)
भावुकता बहुत
भटकना प

सन्तोष : अपना

पापा : तुम दोनों
(सब
कोई

नीरू :

पापा :

पापा : कितना जीवन है महीप में !

नीरू : और अनूप ?

पापा : मैं तो उसे आज तक नहीं समझ सका। न जाने कैसी-कैसी बातें करता है ! क्या-क्या सोचता-बुनता रहता है !

नीरू : क्या ऐसा नहीं हो सकता, पापा ! **(सहसा रुक जाती है।)**

पापा : कैसा ? बोलो। अरे, तू तो चुप हो गयी **(आश्चर्य से)** आँखों में ? **(प्यार से)** क्या बात है, बेटी ? इतनी पढ़-लिखकर मन की बात कहने में रोती हो। **(रुककर)** आँसुओं की भाषा मैं नहीं समझता बेटी, क्योंकि मैं बाप हूँ, कोई शायर-कलाकार नहीं। बोलो, क्या बात है ?

[क्षणिक अन्तराल]

नीरू : क्या करूँ, आप मुझे फिर डाँट देंगे। एक बार मैंने आपसे कहा था—याद होगा आपको। जब आप मेरी शादी तय कर रहे थे, मैंने आपसे संकेत किया था कि एक लड़की एक पुरुष के जीवन में ब्याह के नाम पर बाँध दी जाए, उसके जीवन में उतार दी जाए, इसके अतिरिक्त क्या और कोई विकल्प ही नहीं ! **(रुककर)** क्या ऐसा नहीं हो सकता, कि एक लड़की दो पुरुषों के दो अलग-अलग तत्वों के बीच में रहकर अपना जीवन···।

पापा : **(बीच ही में, दृढ़ स्वरों में)** झूठ है ! किसी कलाकार की कल्पना है, जो धरती पर पाँव नहीं रखती।

नीरू : मुझे पता था, आप यही कहेंगे। पिछली बार भी यही कहा था। **(रुककर)** जो आप सोचते हैं, वह कल्पना हो सकती है; पर मैं जो कह रही हूँ, वह कल्पना नहीं सत्य है; मृत्यु की तरह सत्य।

पापा : सन्तोष ! समझा, अपनी नीरू को। इसे जमीन पर उतार। इसने दुनिया नहीं देखी।

सन्तोष : तो इसे स्वयं देखने दीजिए न ! क्या हानि है ! आपने मुझे अपनी दृष्टि से दुनिया दिखायी है। नीरजा को अपनी दृष्टि से देखने दीजिए। मुझे विश्वास है, वह कहीं गुमराह नहीं हो सकती। उसे नयी दृष्टि मिलेगी।

पापा : **(व्यंग्य से)** नयी दृष्टि मिलेगी ! उसके लिए यातना कौन सहेगा ? **(रुककर)** भावुकता बहुत दूर तक नहीं ले जाती। पता है ? बीच ही में छोड़ देती है, फिर भटकना पड़ता है।

सन्तोष : अपना-अपना विश्वास है।

पापा : तुम दोनों निरी बच्ची हो। तुम्हारी शादी हो गई है, सन्तोष। लेकिन तुम्हें कुछ **(रुक जाते हैं)** शान्ति एक जगह मिलती है, दो जगह नहीं। दो किश्ती पर बैठकर कोई आज तक उस पार नहीं पहुँच सका है।

नीरू : किश्ती जड़ है और मेरे जीवन में जो आए हैं, वे अपनी-अपनी जगह आदर्श हैं।

पापा : महीप और अनूप ! मुझसे कहलाओ नहीं, वे दोनों अधूरे हैं।

?

नीरूजी अब शाम को सोती हैं।

) और रात-भर मीनार देखती है।

?

) देखिए, पापाजी, आप मुझे नीरू न कहा कीजिए। नीरजा

मेरा नाम नीरजा है। नीरू-पीरू नहीं।

हँसते हैं) नीरू-पीरू ! आज से मैं तुम्हें नीरू-पीरू के नाम से

ती।

में हार्न बजकर कोई कार रुकती है]

ओ, इधर आओ, बैठो !

साहब को भी नमस्ते !

कैसी रही ?

?

है ! यह तो मुझसे बेहद नाराज रहती है। न जाने कब

र सो गयी। अभी-अभी उठी है। (रुककर) तो कैसा

ता, बड़ी उम्दा जगह थी, लेकिन यह जो अनूप है,

है। खामख्वाह 'बोर' कर देता है।

हैं। कभी कोई तुक की बात नहीं करते। हरदम

लवे।

पापाजी ?

ती हूँ।

एँगी। मैं लेने आया हूँ। जल्दी चलिए,

भी वहीं खाएगी।

?

नीरू : पर मुझे तो पूर्णता मिलती है। ऐसी पूर्णता, जो आज के समाज में किसी एक व्यक्ति में नहीं मिलती। बाह्य और अन्तर, शरीर और बुद्धि। और दोनों का समन्वय !

पापा : (**व्यंग्य से हँसकर**) हँसी आती है, अनूप और महीप तो दो हैं—दो और अलग-अलग फिर वे दोनों समन्वित कैसे हैं ?

नीरू : वह समन्वय मैं करती हूँ।

पापा : यह मेरी अक्ल के बाहर है।

नीरू : क्योंकि उसमें सहानुभूति नहीं है।

पापा : (**झुंझलाहट से**) अकेली मेरी सहानुभूति चिल्लाएगी? क्या करेगी सहानुभूति? आज की दुनिया में एक से तो निभ नहीं पाती, जाने कैसे दो से निभेगी !

नीरू : निभती वहाँ नहीं जहाँ स्वार्थ होते हैं, अधिकार की लिप्सा होती है। (**रुककर**) हमारा सम्बन्ध भावों का है, वस्तु का नहीं।

[क्षणिक अन्तराल]

पापा : इसे लेकर अब ज्यादा न सोचो। छोड़ो यहीं। जाओ, बाहर कहीं खुली हवा में टहल आओ। मैं बाप हूँ, अपनी सारी चिन्ता मुझ पर छोड़ दो। बाप की छाया में अधिकारों के सुख लो, बेटी ! (**रुककर**) तेरे लिए मैं किसी भी कीमत पर ऐसा वर ढूँढूँगा, जिसमें तेरे समन्वय का स्वप्न साकार होगा।

नीरू : ऐसा नहीं होगा, पापा ! जो सत्य मुझे प्राप्त है, उसे छोड़ और क्यों तलाशा जाए। इसे मैं भावों के प्रति विश्वासघात समझती हूँ। यहाँ आस्था अनादृत होती है। (**रुककर**) जो सत्य मेरी आत्मा में बस गया, वह ढूँढ़ा भी कैसे जाएगा। (**रुंधे कण्ठ से**) मेरी आत्मा ने, न जाने कब से सँजोकर इसे पाला है। इसको कोई और न समझे, मैं क्या करूँ! यह मेरी अनुभूति की तपस्या है··· मेरे भावों का सत्य है।

[सिसकने लगती है।]

पापा : यह सत्य अधूरा है, अपूर्ण है; क्योंकि यह सापेक्षिक है; दो को मिलाकर पूर्ण होता है।

[नीरू सिसकती रहती है।]

सन्तोष : चुप रहो, नीरू ! मान जाओ मेरी। चलो, बाहर कहीं घूम आएँ। उठो, यहाँ से। (**किसी के आने की आहट होती है**) देखो, कोई आ रहा है। अरे अनूप बाबू हैं।

नीरू : (**आश्चर्य से**) सच !

सन्तोष : स्वयं देख लो न !

नीरू : (**प्रसन्नता से**) अनूप, आओ ! इधर आ जाओ।

अनूप : तुम लोग इस तरह क्यों गुमसुम बैठे हो ? नीरू ! तुम कुछ उदास लग रही हो, जैसे रोकर उठी हो।

[नीरू हँस पड़ती है।]

अनूप : अच्छा है, उदासी पीने के लिए होंठों पर हँसी चाहिए र
पड़ जाता है।

[तीनों की सम्मिलित हँसी से वातावरण बदल जाता है।]

नीरू : चलो, गरम-गरम चाय पी जाए। फिर कहीं टहलने चलें
चूर हो जाएँ। क्यों, अनूप ? (**सब चुप हैं**) उधर ही से मही
लौट आएँगे।···बोलो अनूप ! तुम तो कुछ बोलते ही नहीं
करो। (**रुककर**) क्या सोचने लगे इतनी देर ?

अनूप : **खँडहर की बात मुझे नहीं भूल रही है।** वहाँ भेड़ चरात
था। वह बता रहा था कि किसी जमाने में, उस विशाल भव
का वनवास हुआ। लोग बताते हैं कि उसका यह अपराध
राजभवन से बाहर निकलकर, पास की नदी को अकेली
गयी। (**रुककर**) जिस तूफानी रात को वह राजमहल से
की इमारत में लायी गयी थी, उसी रात वह इमारत बीच
और वहाँ अथाह तालाब हो गया। सुबह लोगों ने देखा,
पर बैठी हुई थी, और उसे खेता हुआ पुरुष राजकुमारी
रहा था।

नीरू : (**विस्मय से**) तुम तो कह रहे थे, वहाँ केवल
अनूप : चारों ओर खँडहर, और बीच में तालाब।
नीरू : उसे देखने अब मैं भी जाऊँगी। मुझे नहीं पता
अनूप : उस तालाब के पानी के विषय में वहाँ के
पानी पीने से बिछुड़ा हुआ प्रेमी मिलता है।

[कहते-कहते अनूप हँसने लगता है;
जाती हैं।]

सन्तोष : आपने
अनूप : मैं क्यों;

ा मिलती है। ऐसी पूर्णता, जो आज के समाज में किसी एक
ती। बाह्य और अन्तर, शरीर और बुद्धि। और दोनों का

) हँसी आती है, अनूप और महीप तो दो हैं—दो और अलग-
समन्वित कैसे हैं ?
रती हूँ।
बाहर है।
नुभूति नहीं है।
अकेली मेरी सहानुभूति चिल्लाएगी ? क्या करेगी सहानुभूति ?
एक से तो निभ नहीं पाती, जाने कैसे दो से निभेगी !
वहाँ स्वार्थ होते हैं, अधिकार की लिप्सा होती है। (रुककर)
का है, वस्तु का नहीं।

न सोचो। छोड़ो यहीं। जाओ, बाहर कहीं खुली हवा में टहल
री सारी चिन्ता मुझ पर छोड़ दो। बाप की छाया में अधि-
! (रुककर) तेरे लिए मैं किसी भी कीमत पर ऐसा वर
य का स्वप्न साकार होगा।
! जो सत्य मुझे प्राप्त है, उसे छोड़ और क्यों तलाशा
विश्वासघात समझती हूँ। यहाँ आस्था अनादृत होती
आत्मा में बस गया, वह ढूँढ़ा भी कैसे जाएगा। (रुँधे
जाने कब से सँजोकर इसे पाला है। इसको कोई और
अनुभूति की तपस्या है··· मेरे भावों का सत्य है।

यह सापेक्षिक है; दो को मिलाकर पूर्ण होना

चलो, बाहर कहीं घूम आएँ। उठो, यहाँ
कोई आ रहा है। अरे अनूप बाबू हैं।

कुछ उदास लग रही हो,

[नीरू हँस पड़ती है।]

अनूप : अच्छा है, उदासी पीने के लिए होंठों पर हँसी चाहिए रंग नहीं, उससे तो दाग पड़ जाता है।

[तीनों की सम्मिलित हँसी से वातावरण बदल जाता है।]

नीरू : चलो, गरम-गरम चाय पी जाए। फिर कहीं टहलने चलें···खूब टहलें···थककर चूर हो जाएँ। क्यों, अनूप ? (**सब चुप हैं**) उधर ही से महीप के यहाँ डिनर खाकर लौट आएँगे।···बोलो अनूप ! तुम तो कुछ बोलते ही नहीं। झट से बोलो, हाँ-न करो। (**रुककर**) क्या सोचने लगे इतनी देर ?

अनूप : खँडहर की बात मुझे नहीं भूल रही है। वहाँ भेड़ चराता हुआ एक बुड्ढा मिला था। वह बता रहा था कि किसी जमाने में, उस विशाल भवन में किसी राजकुमारी का वनवास हुआ। लोग बताते हैं कि उसका यह अपराध था कि वह एक रात राजभवन से बाहर निकलकर, पास की नदी को अकेली पार करती हुई पायी गयी। (**रुककर**) जिस तूफानी रात को वह राजमहल से निकलकर उस जंगल की इमारत में लायी गयी थी, उसी रात वह इमारत बीच से जमीन में धँस गयी। और वहाँ अथाह तालाब हो गया। सुबह लोगों ने देखा, राजकुमारी एक किश्ती पर बैठी हुई थी, और उसे खेता हुआ पुरुष राजकुमारी को तालाब के पार ले जा रहा था।

नीरू : (**विस्मय से**) तुम तो कह रहे थे, वहाँ केवल खँडहर है।

अनूप : चारों ओर खँडहर, और बीच में तालाब।

नीरू : उसे देखने अब मैं भी जाऊँगी। मुझे नहीं पता था !

अनूप : उस तालाब के पानी के विषय में वहाँ के लोगों का यह विश्वास है कि उसका पानी पीने से बिछुड़ा हुआ प्रेमी मिलता है।

[कहते-कहते अनूप हँसने लगता है; नीरू और सन्तोष भी हँसी में सम्मिलित हो जाती हैं।]

सन्तोष : आपने उसका पानी पिया होगा !

अनूप : मैं क्यों; मुझे किससे मिलना है !···मिलने से दो की सत्ता नष्ट होती है।

नीरू : अच्छा मैं चाय ला रहा हूँ।

सन्तोष : आपके आने के पहले नीरू रो रही थी।

अनूप : स्वभाव है। मनुष्य को रोने न दिया जाए तो वह कभी हँस नहीं सकता।

नीरू : यह चाय पियो।

सन्तोष : पापा न जाने कहाँ चले गए।

नीरू : पता नहीं।

[कप-प्याले की आवाज।]

अनूप : (**उसी बीच से**) एक समय वह भी था, जब कहीं किसी एक राजकुमार का वनवास होता था···कभी किसी रानी या राजकुमारी का।···आज अनुभव होता है, सबके मन का वनवास हो गया है।

नीरू : तुम तो वैराग्य की बातें करने लगते हो।

अनूप : दर्शन के सहारे ही जीना होगा, नहीं तो कठिन है। आज कोई जी नहीं रहा है, जीने के लिए स्कीमें बना रहा है। जो जहाँ है, उससे ऊबा हुआ है।

नीरू : हम तो नहीं ऊबे हैं।

अनूप : 'हम' की बात कौन करे। जब मैं अपने 'मैं' को नहीं जानता।

[सबके जाने की आवाज। काल-परिवर्तन-सूचक संगीत। संगीत के मिटाते ही, पृष्ठभूमि में मकान बनाने का आभास मिलता है। कभी-कभी पीटने-तोड़ने की आवाज उभरती रहती है।]

महीप : जानती हो, इस इमारत का नाम होगा 'नीरजा'।

नीरू : जब मैं मर जाऊँ, तब मेरी स्मृति में ऐसा करना। अभी तो मैं तुम्हारे साथ हूँ।

महीप : कैसी बात मुँह से निकालती हो! अनूप से मिलकर आ रही हो क्या! जो जिन्दा है, वह मृत्यु की बात क्यों करे! अनूप को मैं जिन्दा नहीं समझता। (**एकाएक घबराकर**) अरे, क्या बात है? कहाँ, जा कहाँ रही हो?

नीरू : क्या करूँ! तुम हमेशा किसी-न-किसी प्रसंग से अनूप को उलटी-सीधी सुनाने लगते हो। शोभा नहीं देता। सोचो जरा, कितना सीधा है अनूप। तुम्हारे बारे में कभी कोई अपशब्द सोच नहीं सकता।

महीप : (**हँसकर टाल देता है**) तो तुम्हें इस इमारत का नाम नहीं पसन्द आया! अच्छा, कुछ और सोचूँगा। रूठ गयी?

नीरू : कुछ और बातें करो महीप! बल्कि कहीं चलो यहाँ से अनूप को ले लें, और कहीं बहुत दूर घूम आएँ; बहुत दूर।

महीप : अच्छा चलो कार में बैठें। इस खटपट में···। (**क्षणिक अन्तराल**) यह कार पसन्द आयी न? तुम्हारी रुचि इसमें झलक रही है। कितनी लम्बी है यह!

नीरू : आज का मौसम कितना भद्दा लग रहा है। आसमान में जैसे कुछ भरा-भरा है।

महीप : कितनी 'सेंस्टिव' हो नीरू, तुम! तुम्हें तो कोई बहुत बड़ा कलाकार होना चाहिए। कितनी जल्दी छू जाती हो तुम! मुझे तो अपने से ऐसा कुछ नहीं लगता।

नीरू : तुम स्वस्थ जो हो!

महीप : एक बात कहूँ?

नीरू : कहो।

महीप : इस इमारत का गृह-प्रवेश उस दिन होगा, जब मैं तुम्हें ब्याह कर लाऊँगा। खूबसूरत कारों की एक लम्बी-सी कतार होगी। सबसे आगे हम होंगे। हमारी कार बेले-चमेली के फूलों से लदी होगी। और इस इमारत के चारों कोनों पर शहनाई बजती रहेगी।

नीरू : इस बात को [illegible]
बात को हमारे [illegible]
महीप : क्यों, इसे इतने [illegible]
नीरू : प्रेम की कोई [illegible]
है। ब्याह को मैं [illegible]
महीप : मैं इसे आदर्श [illegible]
नीरू : आदर्श मानते [illegible]
चाहोगे, पर आ [illegible]
महीप, (कुछ [illegible]
मैं भावों में [illegible]
महीप : (बीच ही [illegible]
उतरो, जहाँ [illegible]
नीरू : (दुःख से) [illegible]
सुहागन ही [illegible]
महीप : ब्याह [illegible]
नीरू : (उत्तेजि [illegible]
ही नहीं [illegible]
[क्षणिक [illegible]
महीप : मेरे [illegible]
नीरू : तुमने [illegible]
महीप : विश्वा [illegible]
इमारत [illegible]
हैं।
नीरू : (क [illegible]
महीप : ([illegible]
तुम्हें [illegible]
दूँगा। [illegible]
नीरू : ([illegible]
···[illegible]
महीप : [illegible]
नीरू : [illegible]

एक समय वह भी था, जब कहीं किसी एक राजकुमार का
'कभी किसी रानी या राजकुमारी का।···आज अनुभव होता
नवास हो गया है।
बातें करने लगते हो।
ी जीना होगा, नहीं तो कठिन है। आज कोई जी नहीं रहा है,
बना रहा है। जो जहाँ है, उससे ऊबा हुआ है।
ूँ।
न करे। जब मैं अपने 'मैं' को नहीं जानता।

ावाज। काल-परिवर्तन-सूचक संगीत। संगीत के मिटते ही,
बनाने का आभास मिलता है। कभी-कभी पीटने-तोड़ने की
ती है।]

इमारत का नाम होगा 'नीरजा'।
तब मेरी स्मृति में ऐसा करना। अभी तो मैं तुम्हारे साथ हूँ।
निकालती हो! अनूप से मिलकर आ रही हो क्या! जो
की बात क्यों करे! अनूप को मैं जिन्दा नहीं समझता। (एका-
क्या बात है? कहाँ, जा कहाँ रही हो?
शा किसी-न-किसी प्रसंग से अनूप को उलटी-सीधी सुनाने
देता। सोचो जरा, कितना सीधा है अनूप। तुम्हारे बारे में
नहीं सकता।
) तो तुम्हें इस इमारत का नाम नहीं पसन्द आया! अच्छा,
यी?
प! बल्कि कहीं चलो यहाँ से अनूप को ले लें, और कहीं
दूर।
। इस खटपट में···। (क्षणिक अन्तराल) यह कार
इसमें झलक रही है। कितनी लम्बी है यह!
लग रहा है। आसमान में जैसे कुछ भरा-भरा है।
! तुम्हें तो कोई बहुत बड़ा कलाकार होना
तुम! मुझे तो अपने से ऐसा कुछ नहीं लगता।

जब मैं तुम्हें ब्याह कर लाऊँगा।
। सबसे आगे हम होंगे। हमारी
इमारत के चारों कोनों पर

नीरू : इस बात को छोड़कर तुम दुनिया की कोई भी बात करो, महीप! लेकिन इस बात को हमारे बीच कभी न लाओ।

महीप : क्यों, इसे इतना पाप समझती हो?···ब्याह तो प्रेम की चरम सीमा है।

नीरू : प्रेम की कोई चरम सीमा नहीं होती। इसका आरम्भ ही चरम सीमा से होता है। ब्याह को मैं सबसे बड़ा स्वार्थ मानती हूँ।

महीप : मैं इसे आदर्श मानता हूँ।

नीरू : आदर्श मानते हो! तब कहीं भी कर लो शादी। तुम आज जैसी भी लड़की चाहोगे, पा जाओगे। ब्याह करो, तुम्हें मेरी मंगल बधाई।···पर मुझे धक्के न दो महीप, **(कण्ठ भर आता है)** मुझे न तोड़ो···मैं जहाँ हूँ, वहीं मुझे खड़ी रहने दो··· मैं भावों में भरी हुई···।

महीप : **(बीच ही में)** तुम भावों में रहती-रहती कल्पना हो गयी हो···कभी सत्य पर उतरो, जहाँ जमीन है।

नीरू : **(दुःख से)** मैं कल्पना हूँ, **(रुक जाती है)** कल्पना—सदा सुहागन! तब मुझे सुहागन ही क्यों नहीं समझते?

महीप : ब्याह उस सुहाग में भक्ति ला देगा।

नीरू : **(उत्तेजित-सी)** ब्याह···ब्याह क्या है महीप? क्या हम इससे ऊपर कभी उठ ही नहीं सकते! क्या इससे भी सुन्दर जीने का ढंग नहीं है!

[क्षणिक अन्तराल]

महीप : मेरे घर में न जाने कब से सबको विश्वास है कि हमारी शादी होगी।

नीरू : तुमने भी विश्वास बना लिया है?

महीप : विश्वास क्या, वही मेरा जीवन हो गया, और यह तुम्हीं ने बनाया है। सच, यह इमारत मैं तुम्हारे लिए बनवा रहा हूँ। हरएक ईंट में मेरी गृहस्थी के स्वप्न रचे हैं।

नीरू : **(कण्ठ रुँध जाता है)** महीप! **(सिसकने लगती है।)**

महीप : **(स्नेह से)** बच्ची हो जाती हो तुम। ऐसी भी क्या बात है, जो हमारे विवाह से तुम्हें रोक रही है। मुझे बताओ नीरू! वह दीवार कैसी भी होगी, मैं तोड़ दूँगा।

नीरू : **(सिसकती हुई)** उस दिन की तरह आज फिर एक बार बन्दूक उठाओ महीप! ···उस पण्डुक की तरह मुझे दाग दो।

महीप : क्या हो गया है नीरू, तुम्हें?

नीरू : कुछ नहीं महीप!···कुछ नहीं···मैं पण्डुक हूँ। मैं पण्डुक हूँ, महीप!

[भागती हुई आवाज दूर चली जाती है, पृष्ठभूमि में महीप की पुकार—नीरू! नीरू···!···नीरू···!···उसके पीछे-पीछे डूब जाती है।

डूबी हुई आवाज की जगह एकाएक एक मोटी हँसी फूटती है और अचानक टूट जाती है। जहाँ टूटती है, वहाँ से नीरू का स्वर उभरता है।]

नीरू : (पुकारती हुई) अनूप ! अनूप !! सो रहे हो क्या ?

अनूप : (जैसे जागकर) अयँ !···ओह !···आओ···कुछ पढ़ रहा था, इधर बैठो।

नीरू : उठकर देखो, वह देखो, जा रहा है, वह कौन है ? क्यों इस तरह हँसता है ? मैं जैसे ही यहाँ आयी, वह हँस रहा था।

अनूप : वह···पागल है। अक्सर इसी तरह हँस उठता है।···यूँ ही हँस उठता है, बेमतलब।

नीरू : रोज सुनते हो ?

अनूप : मैं नहीं सुनता, लेकिन वह इसी तरह हँस उठता है।

नीरू : वह यहाँ हँसता है, फिर भी तुम नहीं सुनते। न जाने क्यों, इतना निरपेक्ष मैं नहीं रह पाती।

अनूप : स्त्री हो। मोह है तुममें, तभी इतनी निर्बल हो, कि वही तुम्हारी विशेषता हो गयी है।

नीरू : इसे मैं विशेषता नहीं मानती। पाप मानती हूँ···यह कलंक है।

अनूप : (झुँझलाहट से) बिना स्वयं को जाने बात-बात में अपने को मत कोसो, नीरू ! उससे आत्मा का अपमान होता है।

[नीरू चुप रहती है।]

नीरू ! मुझे देखो, सिर ऊपर उठाओ। क्यों इतनी उदास लग रही हो आज ? मुख पर इतनी थकान क्यों। इधर आओ। ऐसे लेट जाओ···ओफ ! इतना गरम है तुम्हारा मस्तक !

नीरू : अनूप ! ले चलो मुझे, कहीं टहला लाओ।

अनूप : नहीं, यहाँ लेट जाओ···ऐसे लेट जाओ। कहीं बाहर न निकलो।

नीरू : नहीं, मेरी मानो। मुझे टहला लाओ, अनूप ! आओ, उठो, चलो, बाहर चले··· आओ।

अनूप : बाहर तो बिलकुल हवा नहीं है। आकाश देखो, वर्षा के बादलों से झुका जा रहा है। लगता है, जैसे आँधी भी आएगी।

नीरू : कोई बात नहीं, आँधी भी आए। (रुककर) इधर आओ अनूप, अपना दायाँ हाथ मुझे दो···हाँ, अब चलो, (रुककर) कितने शिशु हो तुम, अनूप ! फिर भी कभी कुछ माँगते नहीं, कभी रूठते नहीं। स्पृहा नहीं करते। किसी से कुछ व्यवहार नहीं जानते।

अनूप : (अनिच्छा से) उँह ! छोड़ो इन बातों को। सामने का उमड़ता हुआ आकाश देखो। कितना भरा हुआ है। उसे कुछ भी पता नहीं कि वह धरती को पानी देगा, फिर धरती पर अन्न उपजेगा ! वह अपना आत्म-धर्म कर रहा है, बस ! यही सुख है उसका। अपना धर्म···अपनी शान्ति।

नीरू : अनूप, हम लोग क्यों अपना धर्म नहीं निभा पाते ?

अनूप : फल की कामना लेकर चलते हैं। परिणाम सोचकर कर्म आरम्भ करते हैं।

(रुककर) सामने वह आम का पेड़ है न, वह
देते हैं। बस, उग गया है, यूँ ही बढ़कर फैल
जब इसमें अनेक फल अपने-आप लटक जाएँ
नीरू : फल-प्राप्ति पर इसका कर्म समाप्त हो जाए
अनूप : नहीं। फल की कामना से तो यह चला है
फलों को गिराता चला जाएगा, और उनके
से अनेक बनाता चला जाएगा···चला जाए
है।
नीरू : चुप क्यों हो गए, अनूप ?
अनूप : ग्लानि होती है अपने पर। सोचता इतना है
मुझे अपने ज्ञान पर पश्चात्ताप होता है।
नीरू : ऐसा न कहो, अनूप !
अनूप : वह ज्ञान झूठा है जो कर्म में परिणत न हो
नीरू : (श्रद्धा से) तुम महान् हो।
अनूप : (सहसा झुँझलाहट से भर जाता है) चुप
करती हो। जाओ, अकेली। मैं तुम्हारे साथ
(नीरू रो पड़ती है) जाओ अपने घर, जाओ
नीरू : ऐसे न भेजो अनूप ! मैं चूक गयी, इसलिए
रही हूँ। मुझे रो लेने दो।
अनूप : घर जाकर रोओ। देखती नहीं, बारिश होने
नीरू : ऐसे न कहो। जीवन में मनुष्य एक चूकता है,
बारिश होने दो अनूप ! सब कुछ तूफानी हो जा
खँडहर देखकर आए थे। एक राजकुमारी की
हुआ था। वह तूफानी रात में उस भवन में
[सहसा पृष्ठभूमि में हवा के झोंके उभरते हैं
सारा वातावरण तूफानी हो जाता है
है।]
पापा : सन्तोष !···
सन्तोष : क्या है, पापा
पापा : अभी तक
सन्तोष : जी नहीं
नीरू :
सन्तोष :
नीरू :

ूप ! अनूप !! सो रहे हो क्या ?
यँ !···ओह !···आओ···कुछ पढ़ रहा था, इधर बैठो ।
खो, जा रहा है, वह कौन है ? क्यों इस तरह हँसता है ? मैं
ह हँस रहा था ।
अक्सर इसी तरह हँस उठता है ।···यूँ ही हँस उठता है,

कन वह इसी तरह हँस उठता है ।
फिर भी तुम नहीं सुनते । न जाने क्यों, इतना निरपेक्ष मैं नहीं

तुममें, तभी इतनी निर्बल हो, कि वही तुम्हारी विशेषता हो

हीं मानती । पाप मानती हूँ···यह कलंक है ।
बिना स्वयं को जाने बात-बात में अपने को मत कोसो, नीरू !
मान होता है ।
]

ऊपर उठाओ । क्यों इतनी उदास लग रही हो आज ? मुख
इधर आओ । ऐसे लेट जाओ···ओफ ! इतना गरम है

कहीं टहला लाओ ।
ऐसे लेट जाओ । कहीं बाहर न निकलो ।
हला लाओ, अनूप ! आओ, उठो, चलो, बाहर चलें···

है । आकाश देखो, वर्षा के बादलों से झुका जा रहा
आएगी ।
। (रुककर) इधर आओ अनूप, अपना दायाँ हाथ
) कितने शिशु हो तुम, अनूप ! फिर भी कभी
स्पृहा नहीं करते । किसी से कुछ व्यवहार नहीं

ों को । सामने का उमड़ता हुआ आकाश
पता नहीं कि वह धरती को पानी देगा,
त्म-धर्म कर रहा है, बस ! यही सुख

?
र कर्म आरम्भ करते हैं ।

(**रुककर**) सामने वह आम का पेड़ है न, वह यह सोचकर नहीं उगा है कि उसे फल देने हैं । बस, उग गया है, यूँ ही बढ़कर फैलता चला जा रहा है । एक दिन आएगा, जब इसमें अनेक फल अपने-आप लटक जाएँगे; और इसे पता तक न होगा ।

नीरू : फल-प्राप्ति पर इसका कर्म समाप्त हो जाएगा ?

अनूप : नहीं । फल की कामना से तो यह चला ही नहीं है । यह आम का पेड़ असंख्य फलों को गिराता चला जाएगा, और उनके बीज के माध्यम से, अपने को एक से अनेक बनाता चला जाएगा···चला जाएगा । कर्म अनन्त है, अनन्त सुख भी है ।

नीरू : चुप क्यों हो गए, अनूप ?

अनूप : ग्लानि होती है अपने पर । सोचता इतना हूँ, पर मैं स्वयं कर्म नहीं कर पाता । मुझे अपने ज्ञान पर पश्चात्ताप होता है ।

नीरू : ऐसा न कहो, अनूप !

अनूप : वह ज्ञान झूठा है, जो कर्म में परिणत न हो सके ।

नीरू : (**श्रद्धा से**) तुम महान् हो ।

अनूप : (**सहसा झुँझलाहट से भर जाता है**) चुप रहो नीरू ! बको नहीं ! मुझे जलील करती हो । जाओ, अकेली । मैं तुम्हारे साथ नहीं टहल सकता । मुझे छोड़ दो । (**नीरू रो पड़ती है**) जाओ अपने घर, जाओ !

नीरू : ऐसे न भेजो अनूप ! मैं चूक गयी, इसलिए नहीं रो रही हूँ । पता नहीं, क्यों रो रही हूँ । मुझे रो लेने दो ।

अनूप : घर जाकर रोओ । देखती नहीं, बारिश होने वाली है ।

नीरू : ऐसे न कहो । जीवन में मनुष्य एक चूकता है, बस । (**सिसकती है**) आँधी के साथ बारिश होने दो अनूप ! सब कुछ तूफानी हो जाए । (**सिसकती है**) एक दिन तुम खँडहर देखकर आए थे । एक राजकुमारी की घटना सुना रहे थे ! उसका वनवास हुआ था । वह तूफानी रात में उस भवन में भेजी गयी थी ।

[सहसा पृष्ठभूमि में हवा के झोंके उभरते हैं, पानी बरसने लगता है, क्षण-भर में ही सारा वातावरण तूफानी हो जाता है । कुछ क्षणों के बाद दूर पापा की पुकार आती है ।]

पापा : सन्तोष !···सन्तोष !!

सन्तोष : क्या है, पापा ?

पापा : अभी तक नीरजा नहीं आयी ?

सन्तोष : जी नहीं ।

नीरू : (**एकाएक**) नहीं, मैं नहीं आ गयी । सन्तोष, मुझे कौन पूछ रहा था ?

सन्तोष : इस तरह भीग गयी ? 'बस' नहीं किया क्या ? अच्छा, झट कपड़े बदलो । चलो, खड़ी क्यों हो ?

नीरू : इन खिड़कियों को बन्द कर दो, सन्तोष ! इन्हें खुली न रखो ।

सन्तोष : बन्द कर दूँ ! तुम्हारी वे मीनारें कैसे दीखेंगी ?

नीरू : नहीं बन्द कर दो, पानी के छींटे आ रहे हैं । कितनी हवा आ रही है···मैं स्वयं बन्द कर दूँगी ।

[खिड़कियाँ बन्द होती हैं, झोंके शान्त हो जाते हैं ।]

पापा : आ गयी तुम ? बड़ी देर से मैं तुमसे मिलना चाह रहा था ।

नीरू : मुझसे ?

पापा : हाँ, बहुत बड़ी खुशखबरी है । अपनी युनिवर्सिटी के डाक्टर श्रीनाथ हैं, दर्शन विभाग में । वह तुम्हारे रिश्ते के लिए सहमत हो गए । आज शाम को वह चाय पर आ रहे हैं ।

[नीरू चुप रहती है ।]

डॉ॰ नाथ में तुम्हारे दृष्टिकोण की सम्पूर्णता है । बाह्य और अन्तर का उनमें अद्भुत समन्वय है । (रुककर) उन्होंने रिश्ता स्वीकार कर लिया, यह बस तुम्हारा भाग्य है, मेरी क्या हस्ती थी । (रुककर) शास्त्रों में कहा गया है, जो कन्या अपनी आत्मा के पवित्र संकल्प से जैसे पति की इच्छा करती है, उसे वैसा ही वर मिलता है ।

नीरू : शास्त्र में स्वयंवर का भी तो विधान है, क्यों पापाजी !

पापा : यह स्वयंवर ही समझो, बेटी । तुम्हारी इच्छा चरितार्थ हुई है ।

नीरू : नहीं, स्वयंवर मैं करूँगी । मुझे विवाह करना है, पापा ! मैं अभी विवाह करूँगी (उत्तेजित होकर) विवाह करूँगी··· मेरा स्वयंवर होगा । इसी तूफान में होगा··· अभी होगा ।

[आवाज दूर हटने लगती है ।]

पापा : (घबराहट) कहाँ जा रही हो नीरू ? ···नीरू ?

नीरू : मेरा विवाह होगा । अभी होगा । विवाह के लिए किसी की छानबीन नहीं होती । विवाह संयोग है···अन्धी का स्वयंवर है ।

पापा : कहाँ जा रही हो ? बाहर तूफान चल रहा है । रुको !

नीरू : इसी तूफान में मैं किसी भी पुरुष का हाथ पकड़ लूँगी, वही मेरा पति होगा···

[नीरू चली जाती है । पापा उसे रोकते-पुकारते रह जाते हैं । तूफान की आवाज धीरे-धीरे खत्म हो जाती है और वातावरण शान्त हो जाता है । क्षणिक अन्तराल से बन्द किवाड़ों पर कोई दस्तक देता है ।]

केदार : खोलो नीरू, खोलो !

नीरू : (किवाड़ खोलकर) आ गए ! आज देर हो गयी ।

केदार : दफ्तर में आज कुछ काम बढ़ गया था । (रुककर) आपने भी चाय नहीं पी । ऐसी भी क्या बात है । आप अपने वक्त पर चाय तो पी लिया कीजिए । (रुककर) अरे ! यह नया 'पुलोवर' किस के लिए बुना जा रहा है ?

नीरू : तुम्हारे लिए ।

केदार : दो क्या कम थे ? अभी तो आपने तैयार किए हैं

नीरू : केदार ! मैं तुम्हें कई बार टोक चुकी हूँ । हमारे
गए । तुम मुझे 'आप' कहकर सम्बन्धित करते हो
दो ।

केदार : सच, अपने को मैंने कई बार बाँधा । 'आपको' तु
कैसे तुम 'आप' हो जाती हो । (रुककर) अच्छा, अ

नीरू : लो चाय पियो । देख लो, शायद चीनी कम हो
होगा ।

केदार : इतना सब क्यों बना डाला ? अब तुम भी खाओ,

नीरू : तुम इतना काम जो करते हो ! (रुककर) मुझे नी
बहुत अच्छा लगता है । नीरू मेरी एक आत्मीय सहे
उसकी मुझे सुध हो जाती है ।

केदार : लीजिए, आप भी खाइए न ! (घबराकर) नहीं
गया न । सहज में कितनी शक्ति होती है । तुम भी ख
न, नीरजा ?

नीरू : (थकी हँसी के बीच) ठीक है ।

केदार : (स्नेह से) आजकल कितनी अच्छी चाँदनी हो
फर्लांग की दूरी पर एक बहुत ही शानदार पार्क है ।
भरा है । चलो, आज टहल आएँ । (रुककर) क्या सो

नीरू : तुम अकेले टहल आओ, मुझे छोड़ो···घर रहूँगी ।

केदार : अच्छा, यहीं सड़क पर ही टहल लेंगे । मुझे बहु
की ।

नीरू : इसी आँगन में टहल लेंगे ।

केदार : आज तक आप मेरे साथ कहीं टहलने
आपको ?

नीरू : (पीड़ा से) नहीं, सच, कोई संकोच

केदार : मैं याद कर रहा हूँ, जब से
कभी बाहर भी नहीं नि

नीरू : आवश्यकता ही
क्या लेना-देना !

केदार : अच्छा,

नीरू : (घबराह

केदार : सोच

नीरू : क्या ही

केदार :

हारी वे मीनारें कैसे दीखेंगी ?
नी के छींटे आ रहे हैं। कितनी हवा आ रही है···मैं स्वयं

हैं, झोंके शान्त हो जाते हैं।]
देर से मैं तुमसे मिलना चाह रहा था।

री है। अपनी युनिवर्सिटी के डाक्टर श्रीनाथ हैं, दर्शन
ने के लिए सहमत हो गए। आज शाम को वह चाय

की सम्पूर्णता है। बाह्य और अन्तर का उनमें
) उन्होंने रिश्ता स्वीकार कर लिया, यह बस तुम्हारा
(रुककर) शास्त्रों में कहा गया है, जो कन्या अपनी
ति की इच्छा करती है, उसे वैसा ही वर मिलता

मान है, क्यों पापाजी !
री इच्छा चरितार्थ हुई है।
ह करता है, पापा ! मैं अभी विवाह करूंगी
स्वयंवर होगा। इसी तूफान में होगा···

रू ?
लिए किसी की छानबीन नहीं होनी।

को !
ऊँगी, वही मेरा पति होगा···

ते हैं। तूफान की आवाज
ता है। क्षणिक अन्तराल

चाय नहीं पी।
। (रुककर)

नीरू : तुम्हारे लिए।

केदार : दो क्या कम थे ? अभी तो आपने तैयार किए हैं।

नीरू : केदार ! मैं तुम्हें कई बार टोक चुकी हूँ। हमारे विवाह को आज सात महीने हो गए। तुम मुझे 'आप' कहकर सम्बन्धित करते हो ? मुझे श्रद्धा न दो, करुणा दो।

केदार : सच, अपने को मैंने कई बार बाँधा। 'आपको' तुम कहना चाहा, लेकिन न जाने कैसे तुम 'आप' हो जाती हो। (रुककर) अच्छा, आज से तुम कहूँगा।

नीरू : लो चाय पियो। देख लो, शायद चीनी कम हो। यह सब तुम्हें आज खाना होगा।

केदार : इतना सब क्यों बना डाला ? अब तुम भी खाओ, नीरू !

नीरू : तुम इतना काम जो करते हो ! (रुककर) मुझे नीरजा कहा करो केदार। मुझे बहुत अच्छा लगता है। नीरू मेरी एक आत्मीय सहेली थी। न जाने कहाँ खो गयी, उसकी मुझे सुध हो जाती है।

केदार : लीजिए, आप भी खाइए न ! (घबराकर) नहीं-नहीं, (हँसकर) देखो, भूल गया न। सहज में कितनी शक्ति होती है। तुम भी खाओ (हँसकर) अब ठीक है न, नीरजा ?

नीरू : (थकी हँसी के बीच) ठीक है।

केदार : (स्नेह से) आजकल कितनी अच्छी चाँदनी होती है। (रुककर) यहाँ से दो फर्लांग की दूरी पर एक बहुत ही शानदार पार्क है। फूलों से उसका कोना-कोना भरा है। चलो, आज टहल आएँ। (रुककर) क्या सोच रही हो, चलोगी न ?

नीरू : तुम अकेले टहल आओ, मुझे छोड़ो···घर रहूँगी।

केदार : अच्छा, यहीं सड़क पर ही टहल लेंगे। मुझे बहुत साध है तुम्हारे साथ टहलने की।

नीरू : इसी आँगन में टहल लेंगे।

केदार : आज तक आप मेरे साथ कहीं टहलने न गयीं। शायद कोई सकोच है, आपको ?

नीरू : (पीड़ा से) नहीं, सच, कोई संकोच नहीं है। अब तुमसे भी क्या संकोच।

केदार : मैं याद कर रहा हूँ, जब से आप इस आँगन में आयीं, आप शायद इस घर से कभी बाहर भी नहीं निकली हैं।

नीरू : आवश्यकता ही क्या है ? आँगन ही पत्नी का पूरा संसार है। घर से बाहर उसे क्या लेना-देना ?

केदार : अच्छा, चलो आज शहर चलें ?

नीरू : (घबराहट से) नहीं-नहीं, शहर नहीं।

केदार : सोचता हूँ, तुम्हें किसी डॉक्टर को दिखाऊँ।

नीरू : क्या हो गया है, मुझे ?

केदार : सेहत कितनी गिर गयी है। जब आप यहाँ आयी थीं, कैसी थीं, आप अन्दाज नहीं

लगा सकतीं।

नीरू : (**हँसती है**) क्या हो गया है आज तुम्हें ? पुरुष होकर इतने मोह में नहीं फँसना चाहिए !

[क्षणिक अन्तराल]

केदार : कहीं आओ-जाओगी नहीं, बाहर घूमो-फिरोगी नहीं, तो जीवन नीरस नहीं हो जाएगा।

नीरू : बाहर रस नहीं है, शायद ! भीतर है।

केदार : दोनों के सामंजस्य में है।

[सहसा नीरू कराहने लगती है।]

नीरू : आह !···लग रहा है, दर्द से मेरा सिर उड़ जाएगा।

केदार : (**घबराहट से**) क्या हो गया ? लेट जाओ। अब कैसा लग रहा है ?

नीरू : अब ठीक हूँ। न जाने क्यों एक क्षण के लिए शरीर का सारा रक्त सिर में घूम गया। अब ठीक हूँ। क्यों इतना घबरा गए ?

केदार : तभी मैं कह रहा हूँ, तुम्हें डॉक्टर को दिखाऊँ। तुम्हें खुली हवा चाहिए। इन बन्द दीवारों में तुम घबरा जाओगी।

नीरू : नहीं, मैं बिलकुल ठीक हूँ।

केदार : आखिर आप घर से बाहर निकलने में इतना घबराती क्यों हैं ? क्या संकोच है ?

नीरू : (**पीड़ा से**) हाथ जोड़ती हूँ ! इन बातों पर तुम मुझसे तर्क न किया करो। (**रुककर**) यह छोटा-सा आँगन, ये दीवारें, यह गृहस्थी, मेरे घूमने के लिए बहुत है ! समझो, यही मेरे लिए बाहर है—पार्क है, सड़क है, पूरा शहर।

[उसी समय पृष्ठभूमि में एक कार रुकती है। किसी की पुकार आती है—कोई है ? भाई, यह किसका क्वार्टर है ?]

केदार : कौन हैं, आप लोग ?

महीप : आप शहर के रईस शारदाप्रसादजी हैं। (**रुककर**) और मेरा नाम महीप है।··· आपका शुभ नाम ?

केदार : मुझे केदारनाथ कहते हैं ?

पापा : आप सेक्रेटेरिएट में काम करते हैं ?

केदार : जी।

पापा : नीरजा यहीं है ?

केदार : जी, नीरजा मेरी पत्नी का नाम है।···क्यों, क्या बात है !

पापा : (**श्रद्धा से**) ओह-ओ ! आइए, भीतर आइए। बड़ी खुशी हुई मिलकर। चलिए भी···बड़े सौभाग्य मेरे। आइए।

[सहसा तेजी से सामने दरवाजा बन्द होता है।]

केदार : (**पुकारता हुआ**) नीरजा ! नीरजा !! दरवाजा
···देखो, यहाँ तुम्हारे कौन-कौन खड़े हैं। तुम्हा
नीरजा !! कैसी हो तुम, किसी से नहीं मिल सकती

पापा : (**पुकारते हैं**) नीरू बेटी ! ओ नीरू-पीरू।···मैं आ
पहचानतीं ? यह देख, महीप भी तुमसे मिलने आया

महीप : मैं महीप हूँ, नीरू ! दरवाजा क्यों बन्द कर लिया

[भीतर से कोई आवाज नहीं आती। दरवाजे पर ख
पुकार होती रहती है। पर भीतर से कोई प्रत्युत्तर
एकाएक टूट जाती है। फिर सन्नाटे में उभरती हुई
फैलकर दूर चली जाती हैं।]

[परदा]

हो गया है आज तुम्हें ? पुरुष होकर इतने मोह में नहीं

गी नहीं, बाहर घूमो-फिरोगी नहीं, तो जीवन नीरस नहीं हो

शायद ! भीतर है ।
में है ।

लगती है ।]

है, दर्द से मेरा सिर उड़ जाएगा ।
या हो गया ? लेट जाओ । अब कैसा लग रहा है ?
ने क्यों एक क्षण के लिए शरीर का सारा रक्त सिर में घूम
क्यों इतना घबरा गए ?
तुम्हें डॉक्टर को दिखाऊँ । तुम्हें खुली हवा चाहिए । इन
रा जाओगी ।
क हूँ ।
हर निकलने में इतना घबराती क्यों हैं ? क्या संकोच

हूँ ! इन बातों पर तुम मुझसे तर्क न किया करो । (रुक-
बे दीवारें, यह गृहस्थी, मेरे घूमने के लिए बहुत है !
है—पार्क है, सड़क है, पूरा शहर ।

कार रुकती है । किसी की पुकार आती है—कोई
है ?]

ही है । (रुककर) और मेरा नाम महीप है ।···

बात है !
खुशी हुई मिलकर । चलिए

[सहसा तेजी से सामने दरवाजा बन्द होता है ।]

केदार : **(पुकारता हुआ)** नीरजा ! नीरजा ! ! दरवाजा क्यों बन्द कर लिया, खोलो । ···देखो, यहाँ तुम्हारे कौन-कौन खड़े हैं । तुम्हारे पापा आए हैं । नीरजा ! नीरजा ! ! कैसी हो तुम, किसी से नहीं मिल सकती । तुम्हारे पापा हैं !

पापा : **(पुकारते हैं)** नीरू बेटी ! ओ नीरू-पीरू ।···मैं आया हूँ, बेटी । आवाज भी नहीं पहचानती ? यह देख, महीप भी तुमसे मिलने आया है ।

महीप : मैं महीप हूँ, नीरू ! दरवाजा क्यों बन्द कर लिया ?

[भीतर से कोई आवाज नहीं आती । दरवाजे पर खड़खड़ाहट और सम्मिलित पुकार होती रहती है । पर भीतर से कोई प्रत्युत्तर नहीं मिलता । पुकार थककर एकाएक टूट जाती है । फिर सन्नाटे में उभरती हुई सिसकियाँ सारी पृष्ठभूमि में फैलकर दूर चली जाती हैं ।]

[परदा]

हम जागते रहें

पात्र

पदमदास
रामभार्गव
श्रीकान्त
लता
शारदा
झा बाबू

[पदमदास के बँगले का कमरा। पूरे फर्श पर कॉर्पेट
सेट लगा हुआ है। बायीं ओर दो कुरसियाँ हैं, बीच
राइटर रखा है। किनारे एक बुकरैंक है जिसके खानों
हैं, कुछ पुस्तकें और अन्य कागजात—सब कुछ करीने
रैंक पर महात्मा गांधी का चित्र रखा है। सोफा-सेट
टेलीफोन रखा हुआ है। सामने दीवार पर भी गांधी
दरवाजे हैं। बायीं ओर बाहर का दरवाजा है और
सितम्बर के दिन हैं। सन्ध्या के पाँच बज रहे हैं। पर
सूना। सहसा टेलीफोन की घण्टी बजती है। भीतर से
तीस वर्ष, भरा-पूरा बदन, गुलाबी रंग की साड़ी में।

लता : **(टेलीफोन उठाती है)** हलो। जी, श्रीकान्त बाबू, न
—क्यों नहीं—वाह-वाह, **(हँसने लगती है)** हाँ-हाँ
लोगों को भूल ही गए…।

[भीतर से दौड़ी हुई शारदा का प्रवेश। अवस्था तेईस
साड़ी पहने है।]

शारदा : भाभी—भाभीजी, किसका टेलीफोन है भाभी?

लता : **(जो अभी टेलीफोन में हँस रही थी)** आपकी शारदा
खिलाइए पहले। ओहो, यह बात, हाय-हाय, प्रेम में
है।

शारदा : भाभी—प्लीज—मुझे टेलीफोन दो न।

लता : **(फोन से अलग)** क्यों दूँ?—अभी
भीतर चली जाओ। **(सहसा फोन में)**
लो शारदा रानी अपने

[टेलीफोन शारदा को

शारदा : **(फोन में)** जी,
जब मैंने टेलीफोन
लेखक बने फिरते
रही कॉफी-
बड़ी है,

हम जागते रहें

पात्र

पदमदास
रामभार्गव
श्रीकान्त
लता
शारदा
झा बाबू

[पदमदास के बँगले का कमरा। पूरे फर्श पर कॉर्पेट बिछा है। दायीं ओर सोफा-सेट लगा हुआ है। बायीं ओर दो कुरसियाँ हैं, बीच की गोल मेज पर टाइप-राइटर रखा है। किनारे एक बुकरैक है जिसके खानों में पत्र-पत्रिकाओं की फाइलें हैं, कुछ पुस्तकें और अन्य कागजात—सब कुछ करीने से सजाकर रखा हुआ है। रैक पर महात्मा गांधी का चित्र रखा है। सोफा-सेट के पास एक छोटी-सी मेज पर टेलीफोन रखा हुआ है। सामने दीवार पर भी गांधी जी का चित्र है। कमरे में दो दरवाजे हैं। बायीं ओर बाहर का दरवाजा है और सामने भीतर जाने के लिए। सितम्बर के दिन हैं। सन्ध्या के पाँच बज रहे हैं। परदा उठाने पर कमरा बिलकुल सूना। सहसा टेलीफोन की घण्टी बजती है। भीतर से लता बहू का प्रवेश—अवस्था तीस वर्ष, भरा-पूरा बदन, गुलाबी रंग की साड़ी में।]

लता : (**टेलीफोन उठाती है**) हलो। जी, श्रीकान्त बाबू, नमस्ते, ओहो—शारदा बीबी—क्यों नहीं—वाह-वाह, (**हँसने लगती है**) हाँ-हाँ, जी हाँ, आज तो जैसे हम लोगों को भूल ही गए···।

[भीतर से दौड़ी हुई शारदा का प्रवेश। अवस्था तेईस वर्ष, सुन्दर। धानी रंग की साड़ी पहने है।]

शारदा : भाभी—भाभीजी, किसका टेलीफोन है भाभी ?

लता : (**जो अभी टेलीफोन में हँस रही थी**) आपकी शारदा रानी भी आ गयी। मिठाई खिलाइए पहले। ओहो, यह बात, हाय-हाय, प्रेम में फिर विरह में ऐसा ही होता है।

शारदा : भाभी—प्लीज—मुझे टेलीफोन दो न।

लता : (**फोन से अलग**) क्यों दूँ ?—अभी दे दूँगी तो कहोगी ठीक भाभी, जरा यहाँ से भीतर चली जाओ। (**सहसा फोन में**) जी हाँ, अच्छी बात है। (**फोन देती हुई**) लो शारदा रानी अपने श्रीकान्त राजा का टेलीफोन···।

[टेलीफोन शारदा को दे देती है।]

शारदा : (**फोन में**) जो, कल दिन-भर तुम कहाँ थे ?···झुट्ठे कहीं के,···कल···जब-जब मैंने टेलीफोन किया, आप साहब गायब। आवारा कहीं के, ओहो, बड़े भारी लेखक बने फिरते हैं।···वही···लायब्रेरी···युनिवर्सिटी में जरा-सा लेक्चर फिर रही कॉफी-हाउस न। (**हँसने लगती है**) हाँ, हाँ, लता भाभी बिलकुल मेरे पास खड़ी हैं, क्यों ? हाँ-हाँ।

लता : तो अब मैं यहाँ से भाग जाऊँ न ?

शारदा : हाँ मेरी प्यारी भाभी, बस दो मिनिट के लिए, माई स्वीट भाभी।

लता : पर टेलीफोन रखना नहीं। हाँ, वही बात···।

[हँसती हुई लता का भीतर प्रस्थान।]

शारदा : (**फोन में**) हाँ, हैलो···अब भाभीजी हट गयीं मेरे पास से। हाँ, हाँ, भीतर चली गयीं। हाँ, बोलो, अरे तुम आदमी भी तो अच्छे नहीं हो। मेरे पापाजी को तुमने इतना नाराज कर दिया है कि···। ओहो तो, रहने भी दो अपनी इतनी ईमानदारी। ब्याह? मेरे पापाजी तुमसे मेरा ब्याह करेंगे? ···तुम्हें तो वह आवारा कहते हैं।···कहते थे कि श्रीकान्त अगर लेखक न होता···सिर्फ अध्यापक होता तो ठीक था। जी···। अरे···। तुम्हारा वह लेखक व्यक्तित्व? हाय, यही तो सारी मुसीबत है। मैं तो तुम्हारे लेखक पर ही···। हटो···अच्छा सुनो···कब आओगे यहाँ? आज अभी···सच? पर कब? ···टाइम नहीं बताओगे? जाओ मैं नहीं बोलती तुमसे। मैं टेलीफोन रखने जा रही हूँ। माफी···सच? मेरी कसम? ···यू आर ग्रेट।

[उसी क्षण लता बहू का प्रवेश।]

लता : अरे···रे···रे···रे···। मुझे तो फोन।···बस।

[फोन ले लेती है, शारदा पीछे खड़ी रहती है।]

लता : ओहो! आज इतनी जल्दी बातें खतम हो गयीं? सच? आ रहे हो? लालाजी तो घर पर नहीं हैं अभी। बस···आ जाओ। ताकि आज रात मेरी शारदा बीबी को पूरी नींद तो आ जाए।···बहुत···। अच्छा···धन्यवाद।

[टेलीफोन रख देती है।]

लता : अब बोलो, (**उठकर**) अब तो खुश···।

शारदा : टेलीफोन पर श्रीकान्त का कहना था कि आज वह पापाजी से हमारी शादी के लिए कहेगा।

लता : पर लालाजी तो अभी बहुत नाराज हैं श्रीकान्त से !

शारदा : फिर क्या होगा भाभी?

लता : केवल एक ही सूरत है—श्रीकान्त लालाजी से अपने उस व्यवहार के लिए माफी माँग ले। मैंने लालाजी से शादी की बात चलायी थी एक दिन—तब उन्होंने यही कहा था कि श्रीकान्त मुझे पसन्द है। और मुझे यह भी मालूम है कि मेरी शारदा बेटी उससे प्रेम करती है। श्रीकान्त भी मेरी बेटी से प्रेम करता है। पर उसने मेरी ही पत्रिका में मेरे ही खिलाफ वह कहानी लिखकर मुझे जो चोट पहुँचायी है—वह उसके लिए पहले माफी माँगे।

शारदा : पर जहाँ तक मेरा अनुभव है—श्रीकान्त इस तरह पापाजी से माफी नहीं

माँगेगा। 'हम जागते रहें' यह कहानी उसने हमारे
की वास्तविक पृष्ठभूमि पूरे समाज के प्रति लिखी

लता : नहीं, यह बात नहीं। सच बात है शारदा बीबी
छिपाकर, किन्तु वस्तुतः हमारे लालाजी को ही
जागते रहें' लिखी थी। हाथ कंगन को आरसी क्या
देख ही लो न (**बढ़कर बुकरैक से उस अंकवाली फा**
है) देखो न, कहानी के मूल चरित्र का नाम ही
लालाजी का नाम—पदमदास ! पदमदास और प

शारदा : पर भाभी, इससे क्या हो गया? हमारे समाज
नाम पदमपतदास होगा।

लता : (**पत्रिका फाइल में रखती हुई**) वह तो सही है।
सारी सम्पत्ति और खास तौर से उतने छिपे सोने के
लिखना—इससे बात बिलकुल जाहिर हो गयी।
उसके तुरन्त बाद ही हमारी इस कोठी पर पुलिस
ही छापा पड़ा। इसे क्यों भूल जाती हो?

शारदा : पर उस छापे से भी क्या हुआ, पिताजी का
पकड़ा गया।

लता : (**घबरा जाती है**) शी···धीरे-धीरे बोलो, वरना
हो जाएगा, हाँ समझ लो।

[बढ़कर बाहर का दरवाजा भीतर से बन्द कर

लता : यह सही है कि उस छिपे हुए सोने **की बात**
बदनामी हुई लालाजी की? **कितना परेशान**
पाए। अपनी पत्रिका **के सम्पादक**
निकालना पड़ा। तब से **पत्रिका की सारी**
सब बातें।

शारदा : ठीक है। **मैं जितना सोचती**
उस कहानी में **उसने**
अधिक धन या **उतना**
भाभी दिया **तो**
नहीं दिया।

लता : यह तो **सब**

शारदा : बताओ न

अपने सोने के

पर हम सब

देश की

भाग जाऊँ न ?

भाभी, बस दो मिनिट के लिए, माई स्वीट भाभी।

ना नहीं। हाँ, वही बात···।

भीतर प्रस्थान।]

लो···अब भाभीजी हट गयीं मेरे पास से। हाँ, हाँ, भीतर
, अरे तुम आदमी भी तो अच्छे नहीं हो। मेरे पापाजी को
कर दिया है कि···। ओहो तो, रहने भी दो अपनी इतनी
े पापाजी तुमसे मेरा ब्याह करेंगे ? ···तुम्हें तो वह आवारा
श्रीकान्त अगर लेखक न होता···सिर्फ अध्यापक होता तो
···। तुम्हारा वह लेखक व्यक्तित्व ? हाय, यही तो सारी
रे लेखक पर ही···। हटो···अच्छा सुनो···कब आओगे
? पर कब ? ···टाइम नहीं बताओगे ? जाओ मैं नहीं
रखने जा रही हूँ। माफी···सच ? मेरी कसम ? ···यू

।]

फोन।···बस।

ड़ी रहती है।]

तम हो गयीं ? सच ? आ रहे हो ? लालाजी
आ जाओ। ताकि आज रात मेरी शारदा बीबी को
अच्छा···धन्यवाद।

कि आज वह पापाजी से हमारी शादी के

न्त से !

अपने उस व्यवहार के लिए माफी
भी एक दिन—तब उन्होंने यही
भी मालूम है कि मेरी शारदा
प्रेम करता है। पर उसने
र मुझे जो चोट पहुँचायी है

पाजी से माफी नहीं

माँगेगा। 'हम जागते रहें' यह कहानी उसने हमारे देश पर चीनी आक्रमण के बाद की वास्तविक पृष्ठभूमि पूरे समाज के प्रति लिखी थी।

लता : नहीं, यह बात नहीं। सच बात है शारदा बीबी, कि श्रीकान्त ने बेशक बहुत छिपाकर, किन्तु वस्तुतः हमारे लालाजी को ही चरित्र बनाकर वह कहानी 'हम जागते रहें' लिखी थी। हाथ कंगन को आरसी क्या—'समाज' का वह अंक फिर से देख ही लो न (**बढ़कर बुकरैक से उस अंकवाली फाइल निकालती है—फिर दिखाती है**) देखो न, कहानी के मूल चरित्र का नाम ही है—पदमपतदास ! बिलकुल लालाजी का नाम—पदमदास ! पदमदास और पदमदास में क्या फर्क है ?

शारदा : पर भाभी, इससे क्या हो गया ? हमारे समाज में न जाने कितने आदमियों का नाम पदमपतदास होगा।

लता : (**पत्रिका फाइल में रखती हुई**) वह तो सही है। पर उस कहानी में लालाजी की सारी सम्पत्ति और खास तौर से उनके छिपे सोने के बारे में उस तरह से खुलकर लिखना—इससे बात बिलकुल जाहिर हो गयी। भई सबसे बड़ी बात तो यह कि उसके तुरन्त बाद ही हमारी इस कोठी पर पुलिस और 'एक्साइज' वालों का साथ ही छापा पड़ा। इसे क्यों भूल जाती हो ?

शारदा : पर उस छापे से भी क्या हुआ, पिताजी का वह छिपा हुआ सोना तो नहीं पकड़ा गया।

लता : (**घबरा जाती है**) शी···धीरे-धीरे बोलो, वरना किसी ने सुन लिया तो गजब हो जाएगा, हाँ समझ लो।

[बढ़कर बाहर का दरवाजा भीतर से बन्द कर लेती है।]

लता : यह सही है कि उस छिपे हुए सोने की बात सिद्ध नहीं हुई, पर उससे कितनी बदनामी हुई लालाजी की ? कितना परेशान हुए लालाजी ! दो रात तक सो नहीं पाए। अपनी पत्रिका के सम्पादक विश्वनाथजी को उन्हें रातों-रात दफ्तर से निकालना पड़ा। तब से पत्रिका की सारी 'डमी' लालाजी खुद देखने लगे हैं। सोचो सब बातें।

शारदा : ठीक है। मैं जितना सोचती हूँ मुझे श्रीकान्त उतना ही याद आता है। अपनी उस कहानी में उसने कितनी पते की यह बात लिखी थी कि जिसके पास जितना ही अधिक धन था उतना उसने ही कम देश के राष्ट्रीय सुरक्षा कोष में दिया। सच भाभी दिया तो सारा मिडिल क्लास और गरीबों ने; ऊपर वालों ने बिलकुल कुछ नहीं दिया।

लता : यह तो सच ही है।

शारदा : बताओ न भाभी, हमने या हमारे रिश्तेदार के घरों में से कितनी स्त्रियों ने अपने सोने के गहने दिए हैं ? (**रुककर**) मैं तो कहती हूँ कि वह दान न भी सही—पर हम सब कोठी वाले—इस सेठ-साहूकार-व्यापारी वर्ग ने अपना सारा सोना देश की पुकार पर सरकार के सामने प्रकट ही कर दिया होता। आखिर यह धन

किसका है, कहाँ से आया है ?

लता : अपने इसी देश से ही···।

शारदा : फिर जब यह देश नहीं रहेगा तो इस काले धन का क्या होगा ? **(रुककर)** श्रीकान्त सच कहता है, कैसी भावना है हमारी । हम राष्ट्र, देश, समाज सब स्तर पर भावनाहीन हैं जैसे ।

[बाहर बन्द दरवाजे पर से पदमदास की आवाज आती है ।]

पदमदास : भई, यह दरवाजा क्यों बन्द है ?

[लता बढ़कर दरवाजा खोलती है । पदमदासजी का प्रवेश । अवस्था करीब पचास वर्ष, धोती पर बन्द गले का कोट पहने हुए । आँखों पर मोटा चश्मा । सिर पर गांधी टोपी । आते ही थके-से सोफे पर जैसे गिर जाते हैं ।]

पदमदास : क्यों, शारदा, यह दरवाजा क्यों भीतर से बन्द कर रखा था ?

शारदा : भाभीजी ने यूँ ही बन्द कर दिया था पापाजी ।

पदमदास : फिर तो यहाँ कुछ गम्भीर बातें हो रही थीं—क्यों बहू !

लता : **(हँस पड़ती है)** जी हाँ । **(शारदा से)** क्यों बीबी, बता दूँ ?

[शारदा शरमाकर भीतर भाग जाती है ।]

पदमदास : क्या बातें हो रही थीं ? **(फोन का डायल घुमाते हुए, फिर फोन पर)** हलो, ट्रंक बुकिंग । मैंने दो बजे बम्बई के लिए एक 'काल' बुक की थी, क्या हुआ ? कब तक लाइन मिलेगी ? जी हाँ ठीक । अच्छा सुनिए—एक और 'काल' कानपुर के लिए अर्जेंट में बुक कर लीजिए । कानपुर का नम्बर है···रुकिए जरा **(डाइरेक्ट्री ढूँढ़ते हैं)** बहू, डाइरेक्ट्री कहाँ है ?

[लता सोफे के किनारे से डाइरेक्ट्री ढूँढ़कर देती है ।]

पदमदास : **(नम्बर देखकर)** हाँ, जी, नम्बर नोट कीजिए, तीन, दो, चार, पाँच । अर्जेंट और पी० पी०—श्री रघुनाथ दास, आइरन मर्चेण्ट, सदर बाजार, कानपुर ।

[टेलीफोन रख देते हैं ।]

पदमदास : हाँ, बहू, क्या बातें हो रही थीं ?

लता : वही श्रीकान्त बाबू की बात ।

पदमदास : कैसी बात ?

लता : यही ब्याह की बात । शारदा और श्रीकान्त दोनों ही एक-दूसरे को बहुत चाहते हैं ।

पदमदास : मुझे मालूम है बहू । मैं भी श्रीकान्त को बहुत चाहता हूँ । यह भी चाहता हूँ कि यह शादी हो जाए । मगर श्रीकान्त ने जो व्यवहार मेरे साथ किया है, उसे मैं कतई नहीं भूल सकता । सोचो बहू, मैं उसको अपना दामाद बनाऊँ, जिसने मेरा

सत्यानास करना चाहा था ?

लता : छोड़िए लालाजी, ईश्वर की कृपा से आपका कुछ

पदमदास : नुकसान ? नुकसान तो इतना हुआ है बहू, कि कांग्रेस का इतना पुराना मैं सदस्य, स्वतन्त्रता आन्दो 'गांधी-सभा' नामक संस्था का जन्मदाता । राष्ट्रीय उस तरह पुलिस का छापा ! यह मेरी कोई मामूली

लता : 'गोल्ड कण्ट्रोल' के ऑर्डर के समय उस तरह से पड़े थे ।

पदमदास : बहुतों के यहाँ तो पड़ने ही चाहिए, सवाल यह पड़ा ? मैं···मैं···

लता : पर अब तो आपकी कोई बदनामी नहीं है ।

पदमदास : मेरी बदनामी ? मेरे मित्र वह जो राम सुपरिन्टेण्डेण्ट साहब । वह आज यहाँ आएँगे तो उ बताएँगे कि जहाँ-जहाँ मेरे 'बिजनेस' की फाइलें, मेरे मेरी वह बदनामी भूत की तरह खड़ी मिलती है कि कुछ नहीं दिया—कि मेरे यहाँ **(सहसा रुक जाते हैं)** ने तो मुझे कहीं का न रखा ।

[भीतर से उसी समय शारदा का प्रवेश ।]

शारदा : पापाजी, आपकी वह बदनामी अब खत्म नहीं हो

पदमदास : बेटी बदनामी भी कहीं खत्म होती है ?

शारदा : क्यों नहीं ? जिस बात के लिए आपकी बदना डालिए ।

पदमदास : पर उसके लिए इतना धन कहाँ है ? एक रुपया मैंने तभी दे दिया । **(भावावेश** है । अपने जिस प्यारे देश के स्वतन्त्रता लगायी थी, और आज जब वही एक पड़ोसी देश की से कम दर्द है ? समझते हैं ?

[उसी समय

पदमदास :

ाया है ?

ी···।

नहीं रहेगा तो इस काले धन का क्या होगा ? (रुककर) कैसी भावना है हमारी । हम राष्ट्र, देश, समाज सब स्तर

से पदमदास की आवाज आती है ।]

यों बन्द है ?

िलती है । पदमदासजी का प्रवेश । अवस्था करीब पचास कोट पहने हुए । आँखों पर मोटा चश्मा । सिर पर सोफे पर जैसे गिर जाते हैं ।]

ा क्यों भीतर से बन्द कर रखा था ?

िया था पापाजी ।

ातें हो रही थीं—क्यों बहू !

ा से) क्यों बीबी, बता दूं ?

ी है ।]

ा डायल घुमाते हुए, फिर फोन पर) हलो,

एक 'काल' बुक की थी, क्या हुआ ? कब

ा सुनिए—एक और 'काल' कानपुर के

ा नम्बर है···रुकिए जरा (डाइरेक्ट्री

ी है ।]

िए, तीन, दो, चार, पाँच । अजेंट

, सदर बाजार, कानपुर ।

ूसरे को बहुत चाहते

वह भी चाहता हूँ

िया है, उसे मैं

जिसने मेरा

सत्यानास करना चाहा था ?

लता : छोड़िए लालाजी, ईश्वर की कृपा से आपका कुछ नुकसान तो नहीं हुआ ।

पदमदास : नुकसान ? नुकसान तो इतना हुआ है बहू, कि मैं क्या-क्या गिनाऊँ तुम्हें ? कांग्रेस का इतना पुराना मैं सदस्य, स्वतन्त्रता आन्दोलन में दो बार मैं जेल गया । 'गांधी-सभा' नामक संस्था का जन्मदाता । राष्ट्रीय कार्यकर्ता—और मेरे घर पर उस तरह पुलिस का छापा ! यह मेरी कोई मामूली बदनामी है ?

लता : 'गोल्ड कण्ट्रोल' के ऑर्डर के समय उस तरह से तो बहुतों के यहाँ पुलिस के छापे पड़े थे ।

पदमदास : बहुतों के यहाँ तो पड़ने ही चाहिए, सवाल यह है वह छापा मेरे यहाँ क्यों पड़ा ? मैं···मैं···

लता : पर अब तो आपकी कोई बदनामी नहीं है ।

पदमदास : मेरी बदनामी ? मेरे मित्र वह जो रामभार्गव बाबू हैं—सेक्रेटेरियट में सुपरिन्टेण्डेण्ट साहब । वह आज यहाँ आएँगे तो उनसे तुम पूछना बहू । वह तुम्हें बताएँगे कि जहाँ-जहाँ मेरे 'बिजनेस' की फाइलें, मेरे कागजात पहुँचते हैं वहाँ-वहाँ मेरी वह बदनामी भूत की तरह खड़ी मिलती है कि मैंने 'राष्ट्रीय सुरक्षा कोष' में कुछ नहीं दिया—कि मेरे यहाँ (**सहसा रुक जाते हैं**) तुम्हें बताऊँ बहू, इस श्रीकान्त ने तो मुझे कहीं का न रखा ।

[भीतर से उसी समय शारदा का प्रवेश ।]

शारदा : पापाजी, आपकी वह बदनामी अब खत्म नहीं हो सकती क्या ?

पदमदास : बेटी बदनामी भी कहीं खत्म होती है ?

शारदा : क्यों नहीं ? जिस बात के लिए आपकी बदनामी है, उस बात को अब पूरा कर डालिए ।

पदमदास : पर उसके लिए इतना धन कहाँ है ? जितना मुझसे सम्भव था—पाँच सौ एक रुपया मैंने तभी दे दिया । (**भावावेश में खड़े हो जाते हैं**) देश पर संकट आया है । अपने जिस प्यारे देश के स्वतन्त्रता संग्राम में मैंने अपने तन-मन-धन की बाजी लगायी थी, और आज जब वही स्वतन्त्रता अकस्मात् संकट में पड़ गयी है, वह भी एक पड़ोसी देश की अदूरदर्शिता और अहंकार के नाते, तो क्या मेरे सीने में किसी से कम दर्द है ? जो कल के लौंडे इस तरह मुझे उपदेश देने चलते हैं ? मुझे गैर समझते हैं ? अपनी यह मातृभूमि मुझे कम प्यारी है क्या ?

[उसी समय टेलीफोन की घण्टी बजती है, पदमदास बढ़कर उठाते हैं ।]

पदमदास : हलो···बम्बई···अच्छा कहिए श्यामबहादुरजी, राम-राम, कपड़ों की बिल्टी भेजिए । ऊनी-सूती दोनों बिल्टी । बाजार के क्या हाल हैं वहाँ ? जी···जी···हाँ जी, और वह अपनी निजी चीज ?···हाँ जी···ठीक है, समझ गया । हाँ-हाँ, मेरी 'समाज' पत्रिका की पॉलिसी ही वही है । जी हाँ, वह तो हमें करना ही होगा ।··· विज्ञापन भेजिए, हाँ-हाँ···जी और सब ठीक है । हाँ, हाँ मैं आपको फौरन ट्रंककाल

करूँगा। बेशक···राजनीति, व्यवसाय, धर्म वगैरह सब क्षेत्रों में। अफवाह और कन्फ्यूजन दोनों। 'समाज' के अगले अंकों में आप देखिएगा मजा, हाँ। (**हँसते हैं।**)

[फोन रखकर सुख की एक लम्बी साँस लेते हैं।]

पदमदास : (**प्रसन्न**) अरे बेटी, कुछ चाय-वाय भी पिलाओगी कि अपने उसी श्रीकान्त के लिए खड़ी वकालत ही करोगी?

[हँस पड़ते हैं, शारदा भीतर जाती है।

लता : लालाजी, श्रीकान्त बाबू आज यहाँ आने वाले हैं।

पदमदास : श्रीकान्त?

लता : जी हाँ, उनका फोन आया था, वह आएँगे यहाँ।

पदमदास : यहाँ आएँगे?···आज ही अभी, अरे, ठीक है।

लता : और वह आपसे माफी भी माँगेंगे—फोन पर मुझसे कहा भी था यह। चलिए, माफ कीजिएगा! लालाजी।

पदमदास : बहू, यह उसका नाटक है। मैं जानता हूँ उस श्रीकान्त को उसके पिता और उसके बाबा को भी। तीन पीढ़ियाँ मैं जानता हूँ उसकी। इन लोगों ने किसी से कभी माफी माँगी भी है कि—ये लोग जिद्दी हैं जिद्दी। ईमान की जिद। सच बोलने की जिद, कभी न झुकने की जिद। वरना ये लोग आज लखपती होते लखपती···। यह श्रीकान्त आज इस तरह चार-पाँच सौ रुपयों पर युनिवर्सिटी में लेक्चररी न करता फिरता। ये लोग भी बड़े उद्योगपति होते।

[उसी समय बाहर की 'कालबेल' कोई धीरे से दबाता है।]

पदमदास : कौन?···देखो बहू, कौन आया है।

[लता बाहर जाकर वापस आती है।]

लता : 'समाज' के सम्पादकजी—झा बाबू हैं।

पदमदास : हाँ-हाँ, बुला लो···।

लता : (**दरवाजे की ओर बढ़कर**) आ जाइए झा बाबू।

[झा बाबू का प्रवेश। पेंतालीस वर्ष के एक प्रौढ़ व्यक्ति। धोती के ऊपर बन्द गले का कोट। आँखों पर चश्मा। हाथ में फाइल लिए हुए।]

पदमदास : आइए, बैठिए-बैठिए।

[झा बाबू बायीं ओर की कुर्सी पर बैठते हैं। लता बहू भीतर जाती है। कुछ ही क्षणों बाद भीतर से चाय की ट्रे लिए हुए शारदा का प्रवेश। ट्रे सोफा के सामने वाली टेबल पर रखती है। चाय बनाने लगती है।]

पदमदास : झा बाबू, यह कहते हुए मुझे अफसोस है कि इस सप्ताह का 'समाज' का अंक

मुझे कतई नहीं अच्छा लगा। इसमें तो वह मे
पड़ी। बस वही सीधा-सादा अंक। न कोई अफ
सीक्रेट···।

[घूरकर देखते रह जाते हैं।]

झा बाबू : (**हतप्रभ**) जी।

पदमदास : इसकी 'डमी' मैंने देखी थी?

झा बाबू : जी हाँ।

पदमदास : और यह वही अंक है?

झा बाबू : जी नहीं, उसमें से मैंने कुछ घटा-बढ़ा दि
मैटर भी मैंने नहीं दिए···।

पदमदास : क्या कहा? रामभार्गवजी के दिए हुए म
को मैं इसके लिए पाँच सौ रुपये महीने देता
आपको मैंने क्या समझाया था? अच्छा लीजि

झा बाबू : जी नहीं, मैं चाय नहीं पीता?

पदमदास : आप चाय नहीं पीते? ताज्जुब है।

झा बाबू : जी हाँ, आज दस वर्ष हो गए मुझे चाय

शारदा : पर आपके लिए तो मैंने चाय बना भी दी

झा बाबू : धन्यवाद···।

पदमदास : कोई बात नहीं, तुम पी लो बेटी।

[पदमदास और शारदा दोनों चाय पीते हैं।
देखने लगते हैं।]

पदमदास : देखिए न, आपने क्या से क्या कर दिया
इस वर्ष चावल की फसल भरपूर है। अब च
स्तम्भ को देखिए—इस वर्ष पिछले वर्षों की
है। लेख में आपने स्पष्ट लिख दिया है कि गन्ने
पर से कण्ट्रोल उठेगा। (**अंक मेज पर फेंककर**
निकालिए। (**झा बाबू के हाथ से अभी** [illegible]
बिलकुल उलटा—इस वर्ष, [illegible]
फसल की भारी [illegible]
को अभी इस [illegible]
इस पूरे मैटर [illegible]
तमाशा है [illegible]
न आप [illegible]
[illegible]

नीति, व्यवसाय, धर्म वगैरह सब क्षेत्रों में। अफवाह और
के अगले अंकों में आप देखिएगा मजा, हाँ। (हँसते

लम्बी साँस लेते हैं।]

कुछ चाय-वाय भी पिलाओगी कि अपने उसी श्रीकान्त
करोगी ?

आती है।

यहाँ आने वाले हैं।

वह आएँगे यहाँ।
अभी, अरे, ठीक है।
—फोन पर मुझसे कहा भी था यह। चलिए,

जानता हूँ उस श्रीकान्त को उसके पिता और
जानता हूँ उसकी। इन लोगों ने किसी से
जिद्दी हैं जिद्दी। ईमान की जिद। सच
। वरना ये लोग आज लखपती होते
चार-पाँच सौ रुपयों पर युनिवर्सिटी में
उद्योगपति होते।

दबाता है।]

धोती के ऊपर बन्द गले

आती है। कुछ ही
सोफा के सामने

का अंक

मुझे कतई नहीं अच्छा लगा। इसमें तो वह मेरी सारी पॉलिसी ही नहीं दिखाई पड़ी। बस वही सीधा-सादा अंक। न कोई अफवाह, न सेंसेसन, न कोई आफिसियल सीक्रेट···।

[घूरकर देखते रह जाते हैं।]

झा बाबू : (हतप्रभ) जी।

पदमदास : इसकी 'डमी' मैंने देखी थी ?

झा बाबू : जी हाँ।

पदमदास : और यह वही अंक है ?

झा बाबू : जी नहीं, उसमें से मैंने कुछ घटा-बढ़ा दिया है। रामभार्गवजी के दिए हुए वे मैटर भी मैंने नहीं दिए···।

पदमदास : क्या कहा ? रामभार्गवजी के दिए हुए मैटर नहीं गए ? जानते हैं, रामभार्गव को मैं इसके लिए पाँच सौ रुपये महीने देता हूँ। फिर फायदा ही क्या हुआ ? आपको मैंने क्या समझाया था ? अच्छा लीजिए, पहले चाय पीजिए।

झा बाबू : जी नहीं, मैं चाय नहीं पीता ?

पदमदास : आप चाय नहीं पीते ? ताज्जुब है।

झा बाबू : जी हाँ, आज दस वर्ष हो गए मुझे चाय छोड़े। पेट का रोगी हूँ मैं।

शारदा : पर आपके लिए तो मैंने चाय बना भी दी···।

झा बाबू : धन्यवाद···।

पदमदास : कोई बात नहीं, तुम पी लो बेटी।

[पदमदास और शारदा दोनों चाय पीते हैं। झा बाबू अपनी फाइल खोलकर कुछ देखने लगते हैं।]

पदमदास : देखिए न, आपने क्या से क्या कर दिया है। (**अंक लेकर**) अंक में छपा है—इस वर्ष चावल की फसल भरपूर है। अब चावल सस्ता होगा। दूसरी ओर इस स्तम्भ को देखिए—इस वर्ष पिछले वर्षों की अपेक्षा गन्ने की फसल दुगुनी-चौगुनी है। लेख में आपने स्पष्ट लिख दिया है कि गन्ने की इस फसल के बाद ही चीनी पर से कण्ट्रोल उठेगा। (**अंक मेज पर फेंककर**) और इस अंक की मेरी 'डमी' निकालिए। (**झा बाबू के हाथ से डमी लेकर**) यह देखिए यहाँ क्या है ? उससे बिलकुल उलटा—इस वर्ष, सूखा और कम वर्षा के कारण चावल और गन्ने की फसल की भारी क्षति। इधर अर्थ और वाणिज्य में देखिए, मैंने दिया था—समाज को अभी इस क्षेत्र में और संकट तथा संघर्ष का सामना करना पड़ेगा। और आपने इस पूरे मैटर को ही निकाल दिया। राजनीतिक क्षेत्र में सब शान्ति। यह क्या तमाशा है ? यही मेरा 'समाज' है ? (**डमी को मेज पर फेंक देते हैं**) देख रहे हैं न आप ? देख लिया न ? यह मेरा 'समाज' कतई नहीं है ? क्या समझे आप ? बोलिए न ? अरे, मेरा मुँह आप क्या देख रहे हैं ?

झा बाबू : जी हाँ।

पदमदास : ऐसा क्यों किया आपने ? मैंने जब आपको इस सम्पादक पद पर नियुक्ति की थी, तब आपको मैंने पत्रिका की क्या पॉलिसी बतायी थी ? बताइए !··· बोलिए न !

झा बाबू : जी आपने बताया था कि इस पत्रिका में समाज, राजनीति और बाजार व्यापार का सत्य कम जाना चाहिए, अफवाह सेंसेशन ज्यादा जाना चाहिए।

पदमदास : जी हाँ, जिससे हमारी यह पत्रिका भी ज्यादा बिके और इससे हमारे और व्यापारों पर भी अच्छा असर पड़े। पता है न, मैंने साफ-साफ बताया था आपको —हमारी यह कम्पनी लिमिटेड है। इसमें जितने शेयर हैं—सब हमारे नाते-रिश्तेदारों के हैं। और हम सभी तेल, गुड़, गल्ला, कपड़ा, लोहा, कागज वगैरह के व्यापारी हैं। यह पत्रिका हमारे उसी बड़े व्यापार के हित के लिए है। हम व्यापार चाहते हैं, धन चाहते हैं। क्या समझे ? बात समझ में आ गई न अब ?

झा बाबू : पर अफवाह फैलाना तो अपराध है। आज जहाँ-जहाँ मैं जाता हूँ, वहाँ यही पोस्टर लगा देखता हूँ—'अफवाह सुनना और फैलाना अपराध है'।

पदमदास : अजी, वह बात महज विज्ञापन की है ! सच बात यह है—कान खोलकर मेरी बात सुन लीजिए और इसे याद रखिए—कि बिना अफवाह के सेंसेशन से हमारा यह समाज चल नहीं सकता। जब अफवाहें न होंगी, तो पब्लिक माल क्या खरीदेगी। फिर वह अपनी जरूरत से ज्यादा चीज क्यों खरीदेगी ? और फिर दाम कैसे बढ़ेगा ? और हमारा व्यापार कैसे बढ़ेगा ?

झा बाबू : (**परेशान**) माफ कीजिएगा, मेरी समझ में कुछ नहीं आया ?

पदमदास : घबराइए नहीं, सब समझ में आ जाएगा आपको। यह केवल पॉलिसी की बात है, बस, और कुछ नहीं। (**शारदा से**) बेटी तुम चाय के बरतन लेकर अन्दर जाओ।—झा बाबू, मैं फिर से आपको समझाता हूँ। मेरे पास ऐसे 'मैटर' हैं कि बम फूटने लगे (**शारदा ट्रे लिए हुए अन्दर जाती है**) आपकी नियुक्ति चार सौ रुपया महीने तनख्वाह पर हुई है न ? सिर्फ चार सौ रुपये। यह बहुत कम है न ? बहुत महँगा जमाना है न ? इतने में आपका काम नहीं चलता न ?

झा बाबू : जी हाँ।

पदमदास : जाइए आपकी तनख्वाह आज से पाँच सौ रुपये कर दी गई। घबराइए नहीं, बात को समझ लीजिए। व्यवस्था और विश्वास ये दोनों तत्त्व व्यापार के दुश्मन हैं—बस हमेशा यही याद रखिए और आज समाज में अव्यवस्था-अविश्वास फैलाने के लिए मैं देता हूँ आपको 'मैटर', एक से एक मैटर। ठीक, मेरी बात समझ रहे हैं न ? साफ-साफ बोलिए अब। हाँ जी···।

झा बाबू : पर मुझ···।

पदमदास : जी आप पर कभी कोई आँच नहीं आएगी। मेरी पहुँच बहुत दूर तक है। पार्टी और शासनतन्त्र दोनों से। भाई मैं गांधीजी के साथ इस देश के स्वतन्त्रता-संग्राम में जूझा हूँ। मेरी कीमत है यहाँ; मैं मामूली आदमी नहीं। क्या समझे ?

मेरा मतलब···। समझ गए न ?

झा बाबू : जी।

पदमदास : और हाँ, अगले महीने की नई 'डमी' मैंने देख

बुकरैक में से निकालकर देते हैं) इनमें कुछ बहुत

लाइन भी इसमें से नहीं कटेगी। जब सरकार हम

फायदा होगा, हमारी धाक जमेगी। प्रजातन्त्र सर

स्वतन्त्रता से बोलने, लिखने और छापने का पूरा

(**एकाएक घबराकर**) कौन ? कौन है ? बाहर ? (

देखो। कोई बाहर खड़ा मेरी ये बातें कहीं सुन तो न

[लता तेजी से निकलती है और बाहर जाती है।]

लता की आवाज : ओहो, श्रीकान्त बाबू ! यहाँ क्यों ख

खड़े हैं यहाँ ? आप सीधे अन्दर क्यों नहीं चले आए

[लता के पीछे श्रीकान्त का प्रवेश। पैण्ट और बुश

तीस वर्ष। आकर्षक व्यक्तित्व।]

श्रीकान्त : नमस्ते !

पदमदास : नमस्ते, तुम बाहर खड़े थे ? अन्दर क्यों नहीं

श्रीकान्त : आप इतनी जरूरी बातें कर रहे थे···।

पदमदास : कितनी देर से बाहर खड़े थे ?

श्रीकान्त : बस, तभी आया था। कोई खास बात नहीं। अ

मैं अन्दर चला जाता हूँ ?

पदमदास : पता नहीं आज चपरासी कहाँ मर गया। ब

(रुककर) अच्छा झा बाबू, अब जाइए आप। ठीक

श्रीकान्त : अरे रे रे, आप बात कीजिए न, मैं अन्दर च

अन्दर चलें। लालाजी, आप काम कीजिए अपना

[लता के साथ भीतर प्रवेश।]

पदमदास : झा बाबू जरा गौर कर लीजिए, यही

कहानी लिखी थी, 'हम जागते रहें'

पागलों की तरह

मुझे उन्हें

झा बाबू : जी।

पदमदास :

झा बाबू :

मेरा मतलब···। समझ गए न ?

झा बाबू : जी।

पदमदास : और हाँ, अगले महीने की नई 'डमी' मैंने देख ली है। लेते जाइए (**बढ़कर बुकरैक में से निकालकर देते हैं**) इनमें कुछ बहुत नई चीजें जा रही हैं। एक लाइन भी इसमें से नहीं कटेगी। जब सरकार हमसे डरेगी तभी समाज से हमारा फायदा होगा, हमारी धाक जमेगी। प्रजातन्त्र सरकार में हर व्यक्ति को अपनी स्वतन्त्रता से बोलने, लिखने और छापने का पूरा अधिकार है, क्या समझे ? (**एकाएक घबराकर**) कौन ? कौन है ? बाहर ? (**पुकारकर**) बहू, जरा बाहर तो देखो। कोई बाहर खड़ा मेरी ये बातें कहीं सुन तो नहीं रहा है !

[लता तेजी से निकलती है और बाहर जाती है।]

लता की आवाज : ओहो, श्रीकान्त बाबू ! यहाँ क्यों खड़े हैं। आइए···आइए···कब से खड़े हैं यहाँ ? आप सीधे अन्दर क्यों नहीं चले आए ?

[लता के पीछे श्रीकान्त का प्रवेश। पैण्ट और बुशशर्ट पहने हुए। अवस्था करीब तीस वर्ष। आकर्षक व्यक्तित्व।]

श्रीकान्त : नमस्ते !

पदमदास : नमस्ते, तुम बाहर खड़े थे ? अन्दर क्यों नहीं चले आए ?

श्रीकान्त : आप इतनी जरूरी बातें कर रहे थे···।

पदमदास : कितनी देर से बाहर खड़े थे ?

श्रीकान्त : बस, तभी आया था। कोई खास बात नहीं। आप यहाँ अपना काम कीजिए, मैं अन्दर चला जाता हूँ ?

पदमदास : पता नहीं आज चपरासी कहाँ मर गया। बदमाश आज आया ही नहीं। (**रुककर**) अच्छा झा बाबू, अब जाइए आप। ठीक है न। समझ गए न ?

श्रीकान्त : अरे रे रे, आप बात कीजिए न, मैं अन्दर चला जाता हूँ, आइए भाभीजी अन्दर चलें। लालाजी, आप काम कीजिए अपना !

[लता के साथ भीतर प्रवेश।]

पदमदास : झा बाबू जरा गौर कर लीजिए, यही वह श्रीकान्त साहब हैं, जिन्होंने वह कहानी लिखी थी, 'हम जागते रहें' जिसे हमारे पिछले सम्पादक विश्वनाथजी ने पागलों की तरह हमारी इसी पत्रिका में प्रकाशित कर दिया था और जिसके लिए मुझे उन्हें अपने यहाँ से निकालना पड़ा। समझ रहे हैं न !

झा बाबू : जी।

पदमदास : पहचान लिया न ?

झा बाबू : जी।

[उसी समय बाहर से रामभार्गव का प्रवेश। अवस्था करीब पैंतालीस वर्ष। पैण्ट और कमीज में। पतला-दुबला शरीर। हाथ में चमड़े का बैग है।]

रामभार्गव : नमस्ते लालाजी।

पदमदास : (बढ़कर) ओह रामभार्गव साहब। आइए, आइए। कई दिन से आपका इन्तजार कर रहा था।

रामभार्गव : क्या बताऊँ लालाजी, सेक्रेटेरिएट में इतना काम बढ़ गया है कि पूछिए नहीं। और ऊपर से इतनी निगरानी, इतनी कड़ी निगाह कि पूछिए नहीं।

पदमदास : भाई क्यों न हो, 'इमरजेन्सी' का पीरियड है यह। आपको बड़ी सावधानी से अपना सारा काम करना होगा।

रामभार्गव : आपके सभी काम हो रहे हैं न। दरअसल बात यह है कि मैं सदा चिन्तित रहता हूँ।

पदमदास : अजी, अब आपकी मेहरबानी है। आइए इधर बैठा जाए।

रामभार्गव : **(देते हुए)** यह बैग तब तक आप देखिए झा बाबू, इसमें आपके ही देखने का मसाला है।

पदमदास : पर जरा सावधानी से झा बाबू। श्रीकान्त भीतर है, याद रहे। समझे?

रामभार्गव : श्रीकान्त बाबू भीतर हैं? फिर तो बैग खोलिए नहीं। बस अपने सामने रखिए। यह भी न कहीं पता चले कि यह मेरा बैग है। समझ रहे हैं न?

[पदमदास और रामभार्गव सोफ़े पर जा बैठते हैं।]

पदमदास : और बातें मैं आपसे फिर कर लूँगा। या खाना खाकर कार से सीधे आपके घर आऊँगा। बात यह है कि हमें बहुत सावधान रहना होगा। दीवार के भी कान होते हैं। यह कहावत ही नहीं, कि बिलकुल सत्य बात है।

रामभार्गव : जी बिलकुल ठीक (रुककर) यह श्रीकान्त साहब फिर आपके घर आने-जाने लगे हैं? ···ही इज डेंजरस मैन···।

झा बाबू : **(बीच में ही)** माफ कीजिएगा···मैं अब यहाँ से जा सकता हूँ न। बात यह है कि मेरा सिर दुख रहा है। मैं अब यहाँ से जाना चाहूँगा।

पदमदास : रुकिए, रुकिए···थोड़ी देर और रुकिए। बल्कि मैं ऐसा सोचता हूँ कि आप भार्गवजी के साथ ही क्यों न यहाँ से जाएँ। सब 'मैटर' भी समझ लीजिएगा और बस। फिर हाथ कागज भी वापस।

झा बाबू : जी···।

रामभार्गव : यस्-यस्, वेरी गुड आइडिया।

पदमदास : हाँ तो भार्गव साहब, आप श्रीकान्त बाबू के विषय में पूछ रहे थे न। मैं भी आपसे बिलकुल सहमत हूँ। मैं तब से बहुत सावधान भी रहता हूँ।

रामभार्गव : जी···! बहुत जरूरी है यह।

पदमदास : भार्गव साहब, ऐसा है कि उस घटना के पहले से ही श्रीकान्त और अपनी शारदा बेटी की शादी की बात चल रही थी। करीब-करीब शादी तय ही हो चुकी थी। मगर श्रीकान्त के उस व्यवहार से मैंने वह सब बात टाल दी। मगर ये दोनों बचपन से ही एक-दूसरे को जानते हैं। दोनों घरों में बराबर आना-जाना रहा है।

और आपसे क्या छिपाना, दोनों एक-दूसरे को बेहतर
यही सारी मुसीबत है। समझ रहे हैं न!

रामभार्गव : तो आप बेटी की शादी श्रीकान्त से कर देंगे
पदमदास : अगर श्रीकान्त पहले मुझसे माफी माँग ले तो
मुझसे माफी नहीं माँगेगा। भाई शादी-ब्याह अपने
नहीं···। क्यों आपका क्या खयाल है?

[सहसा उसी क्षण भीतर से श्रीकान्त का प्रवेश।]

श्रीकान्त : जी, मैं आपसे जरूर माफी माँग लूँगा—क्यों
बराबर है **(रुककर सोचता हुआ)** किन्तु मैं आपसे
हूँ। एक बहुत ही छोटा-सा समझौता, जिसमें मेरे खय
न होगी।

पदमदास : वह क्या?

श्रीकान्त : एक मामूली-सी बात। अपने इस कमरे से अ
हटा दीजिए। और किसी से यह न बताइए कि
आपका क्या जीवन था। क्या महत् कर्म और विचा

पदमदास : मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझा।

श्रीकान्त : कल्पना कीजिए कि यह आपका बैग है। **(भ**
बैग को सहसा उठा लेता है) देख रहे हैं न इस **बैग**

रामभार्गव : (उठ खड़े होकर) अरे रे रे! उस **बैग को क्यों**
दीजिए, कोई और उदाहरण लीजिए। प्लीज···।

श्रीकान्त : मैं इसे अभी रख देता हूँ आप घबराइए **नहीं**
यह बैग आपका है—आप यानी, **श्री राम**
टेरिएट—(**रुककर**) देखिए लालाजी, **जैसे कि**
भी है—हम उसे कतई नहीं **जानते। ले**
पद, पता सब **लिखा हो तो हमें सहज**
हम इससे **कभी धोखा नहीं खा स**
है···आज **जो आप हैं—**
का वह सारा **यथार्थ**
से बिलकुल **अलग,**
आप **क्यों**

पदमदास : तुम
श्रीकान्त : उपे
पदमदास : फि
बैग
श्रीकान्त :

और आपसे क्या छिपाना, दोनों एक-दूसरे को बेहतर प्यार भी करते हैं। समझिए यही सारी मुसीबत है। समझ रहे हैं न !

रामभार्गव : तो आप बेटी की शादी श्रीकान्त से कर देंगे क्या ?

पदमदास : अगर श्रीकान्त पहले मुझसे माफी माँग ले तो। पर मेरा विश्वास है कि वह मुझसे माफी नहीं माँगेगा। भाई शादी-ब्याह अपने आदमी से होता है, दुश्मन से नहीं···। क्यों आपका क्या खयाल है ?

[सहसा उसी क्षण भीतर से श्रीकान्त का प्रवेश।]

श्रीकान्त : जी, मैं आपसे जरूर माफी माँग लूँगा—क्योंकि शारदा मेरे लिए प्राणों के बराबर है (**रुककर सोचता हुआ**) किन्तु मैं आपसे भी एक समझौता करना चाहता हूँ। एक बहुत ही छोटा-सा समझौता, जिसमें मेरे खयाल से आपको जरा भी दिक्कत न होगी।

पदमदास : वह क्या ?

श्रीकान्त : एक मामूली-सी बात। अपने इस कमरे से आप गांधीजी के इन चित्रों को हटा दीजिए। और किसी से यह न बताइए कि इस देश की आजादी के पहले आपका क्या जीवन था। क्या महत् कर्म और विचार थे आपके।

पदमदास : मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझा।

श्रीकान्त : कल्पना कीजिए कि यह आपका बैग है। (**झा बाबू के सामने रखे हुए उस बैग को सहसा उठा लेता है**) देख रहे हैं न इस बैग को।

रामभार्गव : (**उठ खड़े होकर**) अरे रे रे ! उस बैग को क्यों उठा रहे हैं आप ? उसे रख दीजिए, कोई और उदाहरण लीजिए। प्लीज···।

श्रीकान्त : मैं इसे अभी रख देता हूँ आप घबराइए नहीं। मैं इस बैग को पहचानता हूँ—यह बैग आपका है—आप यानी, श्री रामभार्गव—सुपरिन्टेण्डेण्ट, सेण्ट्रल सेक्रेटेरिएट—(**रुककर**) देखिए लालाजी, जैसे कि यह बैग है। इसके भीतर जो कुछ भी है—हम उसे कतई नहीं जानते। लेकिन यदि इस पर रामभार्गव का नाम, पद, पता सब लिखा हो तो हमें सहज ही इस बैग का परिचय मिल जाएगा—और हम इससे कभी धोखा नहीं खा सकते। ठीक इसी तरह लालाजी आपकी स्थिति है···आज जो आप हैं—वह आपका एक अपना यथार्थ है—और उस गांधीजी का वह सारा यथार्थ अपना है—अहिंसा, सत्य, देश-प्रेम, कर्मयोग। आपके यथार्थ से बिलकुल अलग, बहुत दूर। फिर उस गान्धी को दीवार की इन सूलियों पर आप क्यों लटकाते हैं ? यह धोखा क्यों ? यह हिंसा क्यों ?

पदमदास : तुम इस तरह उपदेश दोगे क्या ?

श्रीकान्त : उपदेश नहीं, एक दृष्टान्त दे रहा हूँ आपको।

पदमदास : फिर तो बड़ा अजीब है तुम्हारा दृष्टान्त। तुम मुझे समझते क्या हो ? वह बैग तुम पहले वहीं रख दो, फिर मुझसे बातें करो। क्या समझते हो तुम मुझे।

श्रीकान्त : आदमी।

पदमदास : अगर मैं अपनी मेहनत और गाढ़ी कमाई करके आज थोड़ा सुखी हूँ तो क्या मैं गांधीवादी नहीं ? क्या गरीब और दुखी रहना ही गांधी धर्म है ? क्या मुझे अपने देश की रक्षा की चिन्ता नहीं है ?

श्रीकान्त : जी हाँ, देश के लिए दुखी होना गांधी धर्म है। जरूर आज देश की रक्षा की भी चिन्ता सबको है।

पदमदास : वह तो है ही। मैं क्या किसी से कम दुःखी और चिन्तित हूँ ?

[श्रीकान्त हँस पड़ता है।]

पदमदास : (**उठ खड़े होते हैं**) हँसते क्यों हो ? वह बैग मुझे दो। इधर लाओ। (**रुककर**) और जो थोड़ा-बहुत आज 'बिजनेस' भी है मेरे यहाँ—वह मेरे बड़े लड़के गोपालदास का सारा किया हुआ है। यह सब आखिर अपने इसी देश की उन्नति के लिए तो···।

श्रीकान्त : जो कुछ भी हो, मैं तो महज इस बैग का दृष्टान्त जानता हूँ।

रामभार्गव : मेहरबानी करके मेरा बैग दीजिए, मुझे जाना है।

श्रीकान्त : भाई सबको जाना है (**रुककर**) सवाल सिर्फ बाहर-भीतर का है। जैसे देखिए इस बैग के भीतर क्या है ?

[श्रीकान्त जैसे ही बैग खोलने को होता है, रामभार्गव दौड़कर बैग पर झपट पड़ते हैं। श्रीकान्त इस तरह वह बैग नहीं देना चाहता। पर रामभार्गव भी अपने उस बैग को नहीं छोड़ना चाहते। संघर्ष। पदमदास भी स्वभावतः उस संघर्ष में रामभार्गव के साथ हैं। भीतर से दौड़ी हुई लता, बहू और शारदा आती हैं। दरवाजे पर हतप्रभ खड़ी रह जाती हैं। इस पूरे संघर्ष में झा बाबू बैरागी की तरह अपनी कुरसी पर चुपचाप बैठे रहते हैं—जैसे तटस्थ। अन्ततः श्रीकान्त के हाथ से वह बैग छिन जाता है।]

पदमदास : (**भावावेश में**) ड्राइवर, ड्राइवर, कहाँ मर गए सब, बहू ! तुम्हीं अपनी कार ले आओ। रामभार्गव साहब को उस पर बैठाकर फौरन इन्हें इनके घर पहुँचाओ। चलिए भार्गव साहब। क्या सभ्यता है कि दूसरे की चीज लोग छीनने लगते हैं। यही आज की आजादी है।

[रामभार्गव, पदमदास और लता बहू का बाहर प्रस्थान। श्रीकान्त और शारदा एकटक एक-दूसरे को देखते हैं। श्रीकान्त बढ़कर टेलीफोन करता है।]

श्रीकान्त : हलो पुलिस···कण्ट्रोल रूम। इंचार्ज साहब—एक सौ बारह नई बस्ती फौरन पहुँचिए। अपराधी रामभार्गव पदमदास की कार से अपने घर पहुँच रहा है। उसके हाथ में जो बैग है उसे कब्जे में लीजिए, फौरन। (**टेलीफोन रखकर, फिर उठाता है और तेजी से डायल करता है**) हेलो, एस० पी०, सी० आई० डी०, यस श्रीकान्त स्पीकिंग···रश अप टू एक सौ बारह नई बस्ती—रेजिडेन्स रामभार्गव—सुपरिन्टेण्डेण्ट सेण्ट्रल सेक्रेटेरिएट।

[उसी क्षण बाहर से पदमदास का प्रवेश। श्रीकान
है।]

पदमदास : मुझे सख्त अफसोस है श्रीकान्त कि तुमने
तरह···।

शारदा : उस बैग के भीतर क्या था ?

पदमदास : मुझे क्या पता। मैं क्या जानूँ।

झा : मुझे पता है मैं बता दूँ, कि क्या था उस बैग में।

पदमदास : झा बाबू, आप होश में हैं कि नहीं।

झा : जी हाँ, अब बिलकुल होश में हूँ। यह लीजिए
ऐसी साप्ताहिक पत्रिका 'समाज' का सम्पादक
समाज का इतना बड़ा गद्दार नहीं।

पदमदास : झा बाबू !

झा : जी, आप परेशान मत होइए। यह निर्णय मैंने
स्वयं कर लिया है। सब अपने ही कानों सुनकर,

पदमदास : क्या कहा ?

झा : मैं समाज में अफवाह, कनफ्यूजन, सेंसेशन
नहीं हूँ। मैं एक चेतन प्राणी हूँ, इस देश का नागरि
अन्न दे-देकर अपना जीवन देकर मेरा पालन किया
अफवाहों के वृक्ष उगाऊँ ? अनेकता, फूट-म
साम्प्रदायिकता के बीज यहाँ बिखेरूँ। वह भी उस
मातृभूमि पर एक अदूरदर्शी विश्वासघाती चीन स
आक्रमण का यह देश सामना कर रहा हो। नहीं-नह
पतित नहीं हो सकता। मैं भूखों मर जाऊँगा, पर
सोच सकता।

पदमदास : झा बाबू सुनिए···सुनिए झा बाबू।

झा : नहीं, मैं अब आपकी नहीं सुन सकता।
अखबार निकालूँगा। अपने हाथ से
निकालूँगा।

पदमदास : चुप रहो,

झा : तुम जैसे
मिली, तो
रहो,

मेहनत और गाढ़ी कमाई करके आज थोड़ा सुखी हूँ तो क्या
क्या गरीब और दुखी रहना ही गांधी धर्म है? क्या मुझे
चिन्ता नहीं है ?

लिए दुखी होना गांधी धर्म है। जरूर आज देश की रक्षा
है।

मैं क्या किसी से कम दुःखी और चिन्तित हूँ ?

।]

हैं) हँसते क्यों हो? वह बैग मुझे दो। इधर लाओ।
न-बहुत आज 'बिजनेस' भी है मेरे यहाँ—वह मेरे बड़े
रा किया हुआ है। यह सब आखिर अपने इसी देश की

ी महज इस बैग का दृष्टान्त जानता हूँ।

रा बैग दीजिए, मुझे जाना है।

ककर) सवाल सिर्फ बाहर-भीतर का है। जैसे देखिए

को होता है, रामभार्गव दौड़कर बैग पर झपट पड़ते
नहीं देना चाहता। पर रामभार्गव भी अपने उस
संघर्ष। पदमदास भी स्वभावतः उस संघर्ष में
ी हुई लता, बहू और शारदा आती हैं। दरवाजे
पूरे संघर्ष में झा बाबू बैरागी की तरह अपनी
से तटस्थ। अन्ततः श्रीकान्त के हाथ से वह बैग

कहाँ मर गए सब, बहू! तुम्हीं अपनी कार
बैठाकर फौरन इन्हें इनके घर पहुँचाओ।
सरे की चीज लोग छीनने लगते हैं।

र प्रस्थान। श्रीकान्त और शारदा
टेलीफोन करता है।]

सौ बारह नई बस्ती फौरन
घर पहुँच रहा है। उसके
रखकर, फिर उठाता
बी०, यस श्रीकान्त
रामभार्गव—

[उसी क्षण बाहर से पदमदास का प्रवेश। श्रीकान्त तब तक टेलीफोन रख चुकता है।]

पदमदास : मुझे सख्त अफसोस है श्रीकान्त कि तुमने नाहक उस बैग के लिए इस तरह···।

शारदा : उस बैग के भीतर क्या था ?

पदमदास : मुझे क्या पता। मैं क्या जानूँ।

झा : मुझे पता है मैं बता दूँ, कि क्या था उस बैग में।

पदमदास : झा बाबू, आप होश में हैं कि नहीं।

झा : जी हाँ, अब बिलकुल होश में हूँ। यह लीजिए मेरा त्यागपत्र। मैं अब आपकी ऐसी साप्ताहिक पत्रिका 'समाज' का सम्पादक नहीं रह सकता। मैं अपने देश-समाज का इतना बड़ा गद्दार नहीं।

पदमदास : झा बाबू !

झा : जी, आप परेशान मत होइए। यह निर्णय मैंने यहाँ इतनी देर मौन रहकर स्वयं कर लिया है। सब अपने ही कानों सुनकर, और सब प्रत्यक्ष देखकर।

पदमदास : क्या कहा ?

झा : मैं समाज में अफवाह, कनफ्यूजन, सेंसेशन बोने वाला वह आपका सम्पादक नहीं हूँ। मैं एक चेतन प्राणी हूँ, इस देश का नागरिक। जिस पवित्र भूमि ने अपना अन्न दे-देकर अपना जीवन देकर मेरा पालन किया है, उस धरती माँ पर मैं गन्दी अफवाहों के वृक्ष उगाऊँ? अनेकता, फूट-महँगाई, अशान्ति, अविश्वास, साम्प्रदायिकता के बीज यहाँ बिखेरूँ। वह भी उस समय, जब आज अपनी उसी मातृभूमि पर एक अदूरदर्शी विश्वासघाती चीन सरकार की इतनी बड़ी फौज के आक्रमण का यह देश सामना कर रहा हो। नहीं-नहीं, कभी नहीं। मैं इतना नीच, पतित नहीं हो सकता। मैं भूखों मर जाऊँगा, पर मैं देश का अहित कभी नहीं सोच सकता।

पदमदास : झा बाबू सुनिए···सुनिए झा बाबू।

झा : नहीं, मैं अब आपकी नहीं सुन सकता। मैं आज ही, अभी से एक 'नया समाज' अखबार निकालूँगा। अपने हाथ से ही लिखकर उसे निकालूँगा। जरूर-जरूर निकालूँगा।

पदमदास : चुप रहो, निकल जाओ यहाँ से।

झा : तुम जैसे 'ब्लैक मार्केटियर' के कारण यदि मुझे बाजार में कागज और स्याही न मिली, तो मैं अपने खून से इस शरीर पर लिखकर चारों ओर घूमूँगा कि—जागते रहो, देश के इन गद्दारों से होशियार, होशियार, होशियार···।

पदमदास : बदतमीज कहीं का।

[हाथ उठाकर बड़बड़ाते हुए झा बाबू का तेजी से प्रस्थान।]

पदमदास : हाँ-हाँ, जाओ—मुझे सम्पादकों की कमी नहीं।

श्रीकान्त : आपको भला किस चीज की कमी हो सकती है। जिसके पास भावना नहीं, मूल्य नहीं, उसको भला किस चीज की कमी।

पदमदास : कैसी भावना, कैसा मूल्य ?

श्रीकान्त : ईमानदारी की भावना, स्वदेश का मूल्य···अपने इस राष्ट्र का मूल्य, जिसकी धरती पर हम-आप यहाँ खड़े हैं और आज जिसके गर्भ से एक महाशक्ति हमें पुकार रही है कि उठो जागो, न्याय के लिए अपने धनधान्य और जीवन की बलि दो और अमर हो जाओ। चित्तौड़ पर और उन्नीस सौ बयालीस में एक ऐसा ही संकट आया था, तब इसी धरती माँ ने, इस महाशक्ति ने कहा था—मैं भूखी हूँ, मुझे मेरा मूल्य दो, बलि दो मुझे, मेरी पूजा दो। और आज चीनी आक्रमण के इस संकटकाल में भी वही माँ ठीक वैसे ही जाग उठी है और पुकार रही है—मैं जाग गयी हूँ। मुझे मेरी पूजा लाओ। और आप हैं कि···।

पदमदास : सुनो-सुनो। तुम क्या चाहते हो ?

श्रीकान्त : मैं, मैं अपनी इस मातृभूमि के अलावा और कुछ नहीं चाहता। आज यही सब कुछ है मेरे लिए।

[उसी समय बाहर से तेजी में लता बहू का प्रवेश।]

लता : लालाजी, गजब हो गया।

पदमदास : क्या हुआ ?

लता : रामभार्गवजी गिरफ्तार हो गए। गजब हो गया।

पदमदास : गिरफ्तार !

लता : हाँ, उनके उसी बैग में से बहुत जरूरी और कन्फीडेंशियल सरकारी कागजात बरामद हुए हैं। घर में घुसते ही पुलिस ने उन्हें पकड़ लिया। मैं भागी नहीं तो···।

पदमदास : पुलिस ने। पर यह सब कैसे हुआ ?

श्रीकान्त : मैंने पुलिस को टेलीफोन किया।

पदमदास : तुमने, तुमने पुलिस को टेलीफोन किया ? अच्छा, तो मेरी बेटी से तुम्हारा ब्याह ? तुम वह ब्याह नहीं करोगे क्या ?

श्रीकान्त : नहीं, मैं वह ब्याह अब नहीं करूँगा ?

पदमदास : और उससे तुम्हारा वह प्रेम ?

श्रीकान्त : मातृभूमि के प्रेम के सामने मेरा निजी प्रेम कोई महत्त्व नहीं रखता, कोई महत्त्व नहीं रखता।

[शारदा खड़ी रोने लगती है।]

श्रीकान्त : शारदा, रोओ नहीं, जागो, माँ के इस महाप्रकाश को देखो और अपने इस पिता को भी जगाओ और देखो माँ के मुख पर जो आवरण था वह आज खिसकता

1

जा रहा है। अन्दर से उसकी दिव्य ज्योति वि
भव्य मूर्ति देख रहा हूँ। उसके ललाट से लपटें उ
हाथों में ढाल-तलवार है। पूजा दो···महापूजा ल

[तेजी से श्रीकान्त का प्रस्थान। लता बहू रोती
पदमदास की दृष्टि दीवार पर लगे महात्मा ग
कुछ ही क्षणों बाद टेलीफोन की घण्टी बजती है।
है।]

लता : हेलो, कानपुर से ट्रंककाल, जी···अच्छा (
लालाजी। कानपुर के लिए आपका ट्रंककाल···

पदमदास : नहीं बेटी, अब नहीं, रख दो वह टेलीफोन

[लता फोन रखती है पर फोन की घण्टी बजती
हुई शारदा को अपने अंक से लगा लेते हैं। लाला
है।]

[परदा]

स चीज की कमी हो सकती है। जिसके पास भावना नहीं,
ा किस चीज की कमी।
सा मूल्य ?
ावना, स्वदेश का मूल्य···अपने इस राष्ट्र का मूल्य, जिसकी
हाँ खड़े हैं और आज जिसके गर्भ से एक महाशक्ति हमें
जागो, न्याय के लिए अपने धनधान्य और जीवन की बलि
ो। चित्तौड़ पर और उन्नीस सौ बयालीस में एक ऐसा ही
सी धरती माँ ने, इस महाशक्ति ने कहा था—मैं भूखी हूँ,
ा दो मुझे, मेरी पूजा दो। और आज चीनी आक्रमण के इस
माँ ठीक वैसे ही जाग उठी है और पुकार रही है—मैं जाग
ा लाओ। और आप हैं कि···।
क्या चाहते हो ?
मातृभूमि के अलावा और कुछ नहीं चाहता। आज यही

ी में लता बहू का प्रवेश।]

ाए। गजब हो गया।

ा जरूरी और कन्फीडेंशियल सरकारी कागजात
ी पुलिस ने उन्हें पकड़ लिया। मैं भागी नहीं

हुआ ?
ा।
ा किया ? अच्छा, तो मेरी बेटी से तुम्हारा
?
ा ?

ी प्रेम कोई महत्त्व नहीं रखता, कोई

ा को देखो और अपने इस
रण था वह आज खिसकता

जा रहा है। अन्दर से उसकी दिव्य ज्योति दिखाई पड़ने लगती है। मैं उसकी भव्य मूर्ति देख रहा हूँ। उसके ललाट से लपटें उठ रही हैं। आँखें दमक रही हैं। हाथों में ढाल-तलवार है। पूजा दो···महापूजा लाओ··· पूजा दो···पूजा···।

[तेजी से श्रीकान्त का प्रस्थान। लता बहू रोती हुई शारदा को सँभाले हुए है। पदमदास की दृष्टि दीवार पर लगे महात्मा गांधी के चित्र से जैसे टँग गयी है। कुछ ही क्षणों बाद टेलीफोन की घण्टी बजती है। लता बहू बढ़कर टेलीफोन उठाती है।]

लता : हेलो, कानपुर से ट्रंककाल, जी···अच्छा (**टेलीफोन से अलग**) लालाजी, लालाजी। कानपुर के लिए आपका ट्रंककाल···आइए···आइए लालाजी···

पदमदास : नहीं बेटी, अब नहीं, रख दो वह टेलीफोन।

[लता फोन रखती है पर फोन की घण्टी बजती रहती है। पदमदास बढ़कर रोती हुई शारदा को अपने अंक से लगा लेते हैं। लाला की आँखें आँसुओं से भर आयी हैं।]

[परदा]